हैं। आप ही कोई जिक्र छेड़िए। मैं भला क्या सुनाने लायक हूँ !'

'वाह, आप यह क्या फरमा रहे हैं।' मिरजा ने कहा—'सारा लखनऊ जानता है कि आप शाही जमाने की एक यादगार हैं। उस जमाने के हजारों अजीब-गरीब वाकए आप के सीने में बन्द हैं। उस जमाने के सैकड़ों सच्चे और आँखों देखे किस्से आप को याद हैं। उन्हीं मे से कोई दिलचस्प सी कहानी शुरू कीजिए।'

'आप का यह कहना मैं किसी हद तक सही मान सकता हूँ।' जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान से कहा—'जमाने की उथल-पुथल और सफेद-सियाह रंग देखते-देखते ही मैंने अपने बाल सफेद किये हैं। आँखों से भी देखा है व कानों से भी सुना है लेकिन आज उन गड़े मुर्दों को उखाड़ कर खड़ा करने में क्या लुत्फ है ? यह नया जमाना है। नई सभ्यता, नयी रहन-सहन, गरज कि सभी कुछ नया है, उसी की पैरवी कीजिए। उन रुखे-सूखे पुराने जिक्रों को सुन कर क्या कीजिएगा ?'

'उन्हें सुन कर क्या करूँगा, यह तो बाद में अर्ज करने की बात रही।' मिरजा ने कहा—'पहले आप कोई आँखों देखा तारीखी किस्सा शुरू तो कीजिए।'

जमालुद्दौला चुप हो गये।

मिरजा शैदा फिर बोले—'नवाब साहब ! इस खाकसार की यह अर्ज आज आपको कबूल फरमानी ही पड़ेगी। और इस गुस्ताखी के लिए मैं दस्तबस्ता माफ का ख्वास्तगार हूँ।' फिर जरा मुस्करा कर कहा—'आज जब तक मैं आप की जबानी मुबारक से कोई पुराना किस्सा न सुन लूँगा, धक्के देकर हटाने पर भी नहीं हटूँगा।'

जमालुद्दौला गम्भीर होकर बोले—'मिरजा शैदा साहब, आप इसे अपनी गुस्ताखी कह रहे हैं। लेकिन मैं इसे आपकी ऐन नवाजिश समझ रहा हूँ। और हृदय से आपका आभारी हूँ, उपकार मानता हूँ। आप के आ बैठने और कुछ इधर-उधर की बातें करने से मेरी मनहूसियत दूर हो जाती है। दिल में कुछ ताजगी-सी आ जाती है। वक्त गुजर जाता है। वरना मेरी इस अकेली जिन्दगी का सूनापन जाने कैसी-कैसी भयानक और डरावनी शकलें दिखला कर मुझे डराता रहता है।...सच तो यह है कि अपनी इस अकेली जिन्दगी, मन की उदासी और समय की कठोरता की शिकायत करना बेकार है। इन सबके बदले केवल एक अपने भाग्य को क्यों न कोसा जाय ! उसी का तो यह सारा खेल है।'

'भाग्य को कोसना भी गलत है। यह सब कुदरत का खेल है।' मिरजा ने सहानुभूति से कहा—'इस मामले में इन्सान का कोई दखल नहीं है। उसका इख्तियार इतना ही है कि सब्रो-सकून के साथ जिन्दगी के दिन गुजारता रहे।'

जमालुद्दौला एक क्षण चुप रहे फिर बोले—'मिरजा साहब, अगरचे मुझे इस मौजूदा वक्त में किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं है। किसी मुसीबत का सामना नहीं करना पड़ता। खुदा का दिया हुआ सब कुछ मौजूद है। खुले हाथों खर्च करने के लिए धन-दौलत मौजूद है। आराम देने के लिए नौकर-चाकर हैं। लेकिन अकेली जिन्दगी की मनहूसियत जैसी हुआ करती है उसे आप समझ सकते हैं। अकेले में यह

गुलफ़ाम मंजिल मुझे काटने दौड़ा करती है। जिन्दगी की गुजरी हुई यादों का हजूम सामने आ जाता है। मेरी परेशानी और घबराहट का ठिकाना नहीं रहता।'

'तब उन्हीं यादों को बयान कीजिए।' मिरजा ने कहा।

'मेरी जिन्दगी की करवटें सचमुच एक विचित्र कहानी है।'

'फिर शुरू कीजिए। बन्दा उन्हें सुनने का मुश्ताक है।'

जमालुद्दौला चुप रह कर किसी सोच-विचार में पड़ गये।

मिरजा फिर बोले—'क्या कोई ख्याल मना कर रहा है? जनाब खामोश क्यों हैं?'

'ख्याल कोई भी मना नहीं कर रहा। मैं बयान करने को तैयार हूँ।' जमालुद्दौला ने उनकी तरफ दृष्टि उठा कर कहा—'संकोच यही है कि मैं किसी भाषा का पंडित नहीं हूँ। मातृभाषा हिन्दी होने के कारण उसी का कुछ ज्ञान है, बोल समझ लेता हूँ। उर्दू का मुझे कोई विशेष ज्ञान नहीं है। लखनऊ में पैदा होकर बचपन से नवाबजादों की सोहबत, शाही हरम तक पहुँच। किसी कदर शाही दरबार से लगाव रखने की वजह से मेरी जबान में कुछ उर्दू शामिल हो गई है। फिर तो एक तरह से मेरी बोली खिचड़ी बन गई है। न शुद्ध हिन्दी है न शुद्ध उर्दू। धर्म-परिवर्तन के बाद मोलवी-मुल्लाओं के जोर देने पर सही उर्दू का कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहा था, मगर नहीं कर पाया। बरायनाम ही सीख सका। लखनऊ का निवासी होकर कम से कम उर्दू तो साफ-शुद्ध बोलना ही चाहिए, मगर नहीं बोल सका। जबरदस्ती मुंह से हिंदी भाषा के शब्द, निकल पड़ते हैं। कहने का मतलब यह है कि मुझे अपनी भाषा के कारण संकोच हो रहा है। दो-चार बातें करना और धारावाहिक कहानी कहने में बड़ा अन्तर है। आप, फारसी, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी के विद्वान होने के अलावा एक मशहूर शायर हैं। सुन कर मेरी भाषा का मजाक उड़ायेंगे।' और वह मुस्करा दिए।

मिरजा जफर हुसैन शैदा गम्भीर होकर बोले—'ऐसा कभी ख्याल न फरमाइएगा। आप जिस जबान, जिस लब व लहजे से कहानी सुनाइएगा मुझे उसी में लुत्फ आएगा।' फिर थोड़ा मुस्करा कर कहा—'आपका मजाक उड़ाने की मेरी हिम्मत है?'

'बेहतर है?'

'गुस्ताखी माफ फरमाएँ तो एक अर्ज करूँ।' मिरजा ने मीठे लहजे से कहा।

'हाँ हाँ, कहिए! यहाँ गुस्ताखी का क्या जिक्र है?'

'मेरे दिल में एक उलझन पैदा हो गई है। कहानी शुरू करने के पहले उसे सुलझा दीजिए।'

'ऐसी क्या उलझन है! मुझसे सुलझ सकेगी तो जरूर सुलझा दूंगा।'

'अभी आपने फरमाया कि धर्म-परिवर्तन के बाद मैंने उर्दू सीखनी चाही थी। इस जुमले ने मेरे अन्दर यह सवाल पैदा कर दिया है कि क्या आप पहले किसी दूसरे मजहब के पाबन्द थे? आपने उस धर्म को छोड़ कर क्या इस्लाम धर्म कबूल किया था?'

'जी हाँ', जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान के साथ कहा—'मैं जन्मजात हिन्दू था। मेरा जन्म लखनऊ के एक प्रसिद्ध खत्री घराने में हुआ था। वह परिवार तन-मन-धन से हिन्दू सनातन धर्म को मानने वाला था। भगवान राम और कृष्ण पर पूर्ण आस्था थी। मेरे पिता का नाम चिरंजीलाल और मेरा नाम जीवनलाल था। घर में ठाकुरद्वारा मौजूद था और वहाँ श्रीकृष्ण की प्रतिमा स्थापित थी। सुन्दर झाँकी सजी रहती थी। नियमपूर्वक पूजा-पाठ, सेवा, आराधना और आरती हुआ करती थी।'

तब आपने अपने धर्म को छोड़ कर इस्लाम धर्म क्यों इख्तियार किया था ? क्या कोई ऐसी वजह पैदा हो गई थी कि आपको हिन्दू से मुसलमान होना पड़ गया था ?'

'जी हाँ, ऐसा ही समझिए।' जमालुद्दौला ने धीरे से कहा।

'अगर उस वजह को बयान कर दें तो मेरी उलझन बिलकुल दूर हो जाय।'

'उसका बयान अभी नहीं हो सकता।' जमालुद्दौला ने गम्भीर होकर कहा—'जब मैं अपनी जिन्दगी की कहानी आपको सुनाऊँगा। उसका बयान खुद-ब-खुद अपने मौके पर आ जायगा। फिर मेरी जिन्दगी की करवटों में वह काफी दूर की करवट है।'

'खैर, कहानी शुरू कीजिए !' मिरजा ने उत्सुकता के साथ कहा।

'आज और इसी वक्त कहानी सुनना चाहते है ?' जमालुद्दौला हँस पड़े।

'और कब सुनाइएगा ?'

जमालुद्दौला ने घड़ी की तरफ देखा। ग्यारह बज रहे थे। नवाब साहब बोले—'लीजिए जनाब ग्यारह बज चुके। दस्तरख्वान पर बैठने का वक्त आ गया। अन्दर नौकर मेरा इन्तजार कर रहा होगा।'

'तब तीसरे पहर हाजिर होऊँगा।' मिरजा ने कहा।

'जी नहीं,' नवाब ने कहा —'वह वक्त मेरे मन-बहलाव का है। दस्तरख्वान से उठ कर कुछ देर आराम करूँगा। तीसरा पहर शुरू होते ही मुझे हँसाने-गुदगुदाने के लिए बीबी वहीदन आ जायेंगी और वह सिलसिला रात में सोने के वक्त तक जारी रहेगा।'

'तब कब हाजिर होऊँ ?' मिरजा ने धीरे से पूछा।

'ऐसी जल्दी क्या है ?' जमालुद्दौला ने कहा—'मैं वादा कर चुका हूँ। आप को आदि से अन्त तक अपनी जीवन-कथा सुनाऊँगा। मेरी जिन्दगी ने जब जैसी करवट ली है जो वारदात जैसी गुजरी है, उसको पूरी सच्चाई के साथ सुनाऊँगा। आप शौक से सुनिएगा और जी चाहे तो लिखते भी जाइएगा। मेरा यह सुबह का समय फुरसत और इतमीनान का हुआ करता है। इस वक्त मैं अकेला होता हूँ। इसलिए मुझे भी किसी यार-दोस्त की तालाश रहा करती है। कुछ हँसने-बोलने और बातें करने को जी चाहा करता है। आप सुबह तशरीफ लाया करें। मेरे साथ नाश्ता किया करें और कहानी भी सुना करें। लेकिन मेरी जिन्दगी की करवटें बहुत काफी हैं। इसलिए आप को कुछ अर्से तक आने-जाने की तकलीफ जरूर उठानी पड़ेगी।'

'मेरे तकलीफ की आप फिक्र न कीजिए ?' मिरजा ने मुस्करा कर कहा—'आप जानते हैं, गरजमन्द बावला हुआ करता है। आप की बहुत बड़ी इनायत है कि मुझ नाचीज को आप अपनी सरगुजश्त सुनाने को तैय्यार हैं। इसका शुक्रिया अदा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।'

'इंशाअल्ला ! कल से कहानी शुरू हो जायेगी।' नवाब ने धीरे से कहा।

इसके बाद मिरजा जफर हुसैन शैदा तस्लीम के लिए हाथ उठाकर अपने घर चले गये।

नवाब जमालुद्दौला की आयु साठ वर्ष पार कर सत्तर को पकड़ने के लिए दौड़ रही थी। लेकिन पुरानी हड्डी और खून था। शरीर का कोई भी अंग कमजोर नहीं दिखाई देता था। बुढ़ापे का नजला केवल बालों पर गिरा था। सफेद चाँदी की तरह बाल चमक उठे थे। लेकिन उनकी सफेदी सुर्खी में बदली रहती। हर दूसरे-तीसरे दिन मेंहदी से लाल रंग दिया जाता था। लाल जुलफों तथा गलमुच्छों के किनारों पर पक्के मोतियों के गुच्छे हर समय उनके गालों को चूमते दिखाई देते थे। नवाब का हुलिया, चेहरा-मोहरा स्वाभाविक रूप से बहुत सुन्दर तथा आकर्षक था। गोरा-चिट्टा रंग, नाक-नकश मानो ईश्वर ने पूर्ण अवकाश में गढ़ा था। आँखें बड़ी और तेजस्वी थीं। इस बुढ़ापे में उनके रूप-सौन्दर्य को देख कर कहना पड़ता था कि जवानी में उनका निखार लाखों में एक रहा होगा। साक्षात् परीजाद मालूम होते रहे होंगे। जिस समय अतलस का पायजामा और गुलबदन का अंगरखा पहन कर मसनद पर तकिए का सहारा लिए दीवानखाने में बैठे होते, तब लखनऊ की पुरानी नवाबी शान की एक झलक नजर आ जाती थी। नवाब साहब बन-ठन कर दीवानखाने में बैठने के पहले एक विशेष काम कभी नहीं भूलते थे। बड़े आईने के सामने खड़े होकर आँखों में सुर्मे की सलाई करना और फिर अपने चेहरे-मोहरे तथा सजावट को खुली-आँखों से दो क्षण देखते रहना बहुत जरूरी था।

दस्तरख्वान पर बैठने का समय हो चुका था। इसलिए दीवानखाने से दूसरे कमरे में पहुँच कर जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान के साथ खाना खाया। मुँह-हाथ धो कर आरामगाह में पहुँच गये। नौकर ने पान की गिलौरियाँ पेश कीं। उन्होंने एक गिलौरी मुँह में रखा फिर एकरस करते हुए पलंग पर लेट गये। पेचवान लाकर सामने रख दिया गया। उन्होंने सटक हाथ में ली। मोहनाल को होठों से लगाया। दो-तीन मजेदार कश लिए। आँखें अलसा उठीं। पेचवान का मजा खतम करके करवट बदल ली। पलकें झुक गईं।

तीसरा पहर शुरू होते ही वहीदन आ गई। वहीदन चौक बाजार में रहने वाली लखनऊ की एक शानदार तथा प्रसिद्ध तवायफ थी। रूप की धनी थी। इस समय उसकी उम्र पैंतीस-चालीस के बीच थी। चेहरे पर जवानी का आकर्षण मौजूद था। उसकी आँखें मानो चमत्कारों का खजाना या जादू का पिटारा थीं। जिधर उठ जातीं मंत्र सा पढ़ कर फूंक देती थीं। दिल तड़प जाते थे। वहीदन सुशिक्षित भी

थी। जवानी में तो नाचने-गाने में वह अपना जोड़ नहीं रखती थी। लेकिन अब उसने नाचना-गाना छोड़ दिया था। एक प्रकार से बेगम जमालुद्दौला बन गई थी। क्यों? इस प्रश्न का जवाब दिया जाना बहुत कठिन है। शायद उसके कुछ पूर्व जन्म के संस्कार-संबंध जाग उठे थे। वहीदन नवाब जमालुद्दौला पर दिलो-जान से फ़िदा थी। दुनिया जहान में उसके लिए बस जमालुद्दौला ही थे। वह उन्हें ही अपने जीवन का सर्वस्व समझती थी। नवाब को वह अपना माशूक समझती थी।

अगरचे नवाब जमालुद्दौला वहीदन के आशिक, उसके रुप-सौंदर्य पर मरने वाले न थे फिर भी उसके प्रेम की कदर करने वाले तथा उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। उसे अपनी मौजूदा जिन्दगी की सच्ची साथिन समझते थे। उनका विश्वास था कि इस समय मेरे दुख-दर्द को समझने वाला सिवा बीबी वहीदन के दूसरा कोई नहीं है। उन्हें बिना वहीदन के अपनी इस जिन्दगी को आगे धकेलना असंभव सा मालूम होता था। लेकिन उनके यार-दोस्तों का ख्याल था कि लखनऊ में जो यह पुरानी परिपाटी चली आ रही है कि छोटा-बड़ा चाहे जैसा भी नवाब-रईस हो, उसके पास मन बहलाव के लिए एक तवायफ का होना जरूरी है, नवाब जमालुद्दौला उस परि-पाटी के ही पोषक हैं।

गुलफ़ाम मंजिल के अन्दर आकर वहीदन सीधे नवाब के आरामगाह में पहुँची। देखा, नवाब करवट बदले आँखें बन्द किए पलंग पर लेटे हुए हैं। समझा सो रहे हैं। धीरे से उनके पीछे पलंग पर बैठ गई। जागने का इन्तजार करने लगी। जब वह न जागे, वहीदन ने उनके कंधे पर हाथ रख कर कहा—'ऐ, अब सोते ही रहोगे?' जब इतने पर भी नवाब न जागे, उसी तरह बेहोश पड़े रहे तो वहीदन ने अपने हाथ की कोमल उँगलियाँ उनके पहलू में नचाना शुरू किया। कुछ देर में नवाब कुलबुलाए, गुदगुदी महसूस करके करवट बदली और आँखें खोल दीं। देखा वहीदन सामने बैठी मुस्करा रही थी। नवाब ने उसकी नजर से नजर मिला कर कहा—'बीबी, कभी तो शांत बैठा करो। हर वक्त चुलबुलाती ही रहती हो?'

वहीदन अपनी जादूभरी आँखों का चमत्कार दिखा कर, इठलाती हुई बोली, 'ऐ, मुझे शांत बैठने को कहते हो। जरा अपनी तरफ भी तो देखो। मुझे चुलबुलाने के लिए एक तुम्हीं तो हो। तुम न छेड़ो तो मैं क्यों चुलबुलाऊँ?'

'ऐ, हमने अभी कहाँ छेड़ा है? हम तो पड़े मीठी नींद सो रहे थे।'

'आप सो रहे थे तो क्या हुआ। आप के चेहरे की ये रौनक, ये बनाव-सिंगार तो जाग रहा था। यही तो मेरे दिल में हलचल पैदा करके शांत नहीं बैठने देता। इन जुलफों और गलमुच्छों को सफेद चाँदी की तरह चमकने क्यों नहीं दिया करते? इन पर मेंहदी का लाल रंग क्यों चढ़ा दिया करते हो? मेरा खून बहाने के लिए ही इन्हें रंगा करते हो?'

'अगर इन्हें रंगीन न बनाएँ, तो बीबी वहीदन किस तरह रीझें?' नवाब ने मुस्करा कर कहा और उठ कर बैठ गये। तकिये से टिक से गये।

वहीदन जरा गम्भीर होकर बोली, 'मेरी रीझने की क्या बात करते हो ! मैं तो जाने कितने जन्मों से तुम पर रीझी हूँ और आगे भी रीझी रहूँगी ।'···फिर जुलफों और गलमुच्छों को हाथ से छूकर कहा—'हाय ये रंगीन जुलफें, ये गलमुच्छे और इनमें गुँथे हुए ये मोतियों के गुच्छे ! इन्हें देख कर मैं तो जली जा रही हूँ ।' और उसने मुँह फुला लिया ।

'क्यों भई, इनसे तुमको क्यों जलन है ? क्या ये तुम्हारी कोई सौत हैं ?'

'सरासर ये मेरी सौत हैं । इन पर नजर डालते ही मेरे सीने पर साँप लोट जाता है ।'

'ऐसा क्यों ?' नवाब ने धीरे से उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया ।

'बहुत बड़ी डाह और जलन की बात है ।' फिर गलमुच्छों के मोतियों को छू-हिला कर कहा—'हाय, ये झुमके कितने बड़े खुशकिस्मत हैं । हर वक्त झूम-झूम कर मेरे माशूक के गालों के बोसे लिया करते हैं । और मैं निगोड़ी तरसती ही रह जाती हूँ ।'

'अच्छा, तुम्हारे जलन की यह वजह है ?' नवाब ने मुस्करा कर कहा—'तब...'

'तब वब कुछ नहीं', वहीदन बोल उठी और जमालुद्दौला के गले से लिपट गई ।

फिर दोनों के मिले-जुले ठहाकों और कहकहों से कमरा गूँज गया ।

इस प्रकार नवाब जमालुद्दौला और बीबी वहीदन में, छेड़-छाड़, हँसी-मजाक और मन बहलाव होता रहा । रात में दोनों एक साथ दस्तरख्वान पर बैठे । पहर रात गुजर जाने के बाद जब नवाब साहब बिस्तर पर लेट गये, वहीदन उनके पायताने बैठ गई । कुछ देर तक पैर दबाने के बाद अपनी नजुक उँगलियों से पैरों के तलुवे सहलाने लगी । कुछ देर में नवाब साहब को नींद आ गई । खर्राटे भरने लग गये ।

वहीदन ने साईस को बुला कर गाड़ी तैय्यार कराई और उस पर बैठ कर अपने घर चली गई ।

दो

दूसरे दिन सुबह सात बजने से दस मिनट पहले ही मिरजा जफर हुसैन शैदा गुलफ़ाम मंजिल में आकर दीवानखाने में जम गये। नवाब जमालुद्दौला की मसनद खाली थी। वह अन्दर थे। मिरजा शैदा उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर बाद नवाब साहब अन्दर से दीवानखाने में तशरीफ लाये। आदाब-तस्लीम के बाद नवाब साहब मसनद के सहारे बैठ गये। फिर मिरजा की तरफ निगाह उठा कर बोले—'मिरजा शैदा साहब, आप अपने वादे के सच्चे हैं। ठीक समय पर तशरीफ ले आए।'

'वादे का क्या सच्चा हूँ, मुझे तो रात भर नींद नहीं आई।' मिरजा ने कहा—'इसी उधेड़बुन में करवटें बदलता रहा कि कब सुबह हो और मैं नवाब साहब की खिदमत में पहुँच कर कहानी सुनूँ।'

'आप लगन के आदमी हैं। आप को पुराने हालात और तजकरे सुनने का शौक है और सच भी है। जिस बात की जिसको लगन लग जाती है उसे उसी की धुन ,सवार रहती है। सब कुछ भूल जाता है। मुझे आप का मशगला पसंद है। दुनिया में यही नाम को कायम रखने वाला और दिल को बहलाने वाला है। दोनों तरह के फायदे है। लेकिन हर इन्सान की किस्मत में यह फायदा नहीं होता। आप जैसे विद्वान और साहित्यकार ही इस फायदे के हकदार हैं।······अभी तक आप कितने उपन्यास लिख चुके हैं ?'

'दस-बारह लिख कर शाया करा चुका हूँ।' मिरजा ने कहा—'लेकिन मैं तारीखी उपन्यास ही लिखा करता हूँ। मुझे इतिहास से बहुत दिलचस्पी है। और मैं इतिहास से एक इंच भी बाहर नहीं जाता। सचाई की पूरी रक्षा करता हूँ। जो जैसी घटना होती है, उसका सच्चा नक्शा खींच कर सामने रख देना ही मेरा काम हुआ करता है।'

'क्या आप मेरी कहानी सुन कर उसका भी कोई उपन्यास तैय्यार करेंगे !'

'गरज-मतलब तो यही है। इसीलिए आप को तकलीफ भी दे रहा हूँ।'

'लेकिन, एक ख्याल यह भी कहता है कि मेरी कहानी इस योग्य न हुई कि आप उसका दिलचस्प उपन्यास लिख सकें, उस हालत में आपका कीमती वक्त बर्बाद होगा और······'

मिरजा ने उनकी बात पूरी न होने दी। बोले—'छोड़िए इस ख्याल को। मेरे यकीन को कायम रहने दीजिए।'

नौकर ने नाश्ता लाकर दोनों साहबों के सामने रख दिया। जमालुद्दौला बोले—'लीजिए, नाश्ता कीजिए।'

दोनों ने इत्मीनान के साथ नाश्ता किया, हाथ मुँह धोए। पान की तश्तरी आ गई। गिलौरी को मुँह में रख कर नवाब ने उसे एकरस किया। फिर पेचवान की सटक उठा कर होठों से लगाई और तकिए से टिक कर हुक्के का मजा लेने लगे। दीवानखाने में धुएँ के बादल दौड़ लगाते नजर आने लगे।

मिरजा जफर हुसैन अपनी धुन में थे। कहानी शुरू होने और सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे। उत्सुकता भरी उनकी नजर बार-बार नवाब के चेहरे से टकरा कर नीची हो जाती थी। आखिर एक बार नजर से नजर मिल गई। नवाब मिरजा की नजर पहचान गये। मुस्करा कर बोले—'आप शायद कहानी सुनने के लिए बेकरार हो रहे है।

'जी हाँ'······मिरजा ने थोड़ा मुस्करा कर कहा—'मगर हुजूर शुरू ही नहीं कर रहे।'

जमालुद्दौला मुँह का पान उगालदान के सिपुर्द करके और हुक्के की सटक को एक तरफ डाल कर संभल कर बैठ गये। मिरजा ने जल्दी से कलम-कागज संभाल लिया।

'क्या कहानी का मसौदा भी लिखते जाइएगा ?' जमालुद्दौला ने पूछा।

'बिला मसौदा तैयार किए कैसे काम चलेगा ?' मिरजा ने मुस्करा कर कहा—'यहाँ इस वक्त कहानी का खाका एक ढाँचे की शकल में खिंच जायेगा और घर में इतमीनान के साथ उसका सही नक्शा तैय्यार करके रंगआमेजी कर लिया करूँगा।'

'लेकिन कहानी शुरू करने के पहले मेरी एक अर्ज सुन लीजिए। मैं कोई विद्वान पंडित या किस्सागो नहीं हूँ। अलिफ लैला और दास्तान अमीर इमजा की तरह लम्बी-चौड़ी भूमिकाएँ बाँधना, जमीन आसमान की कड़ियाँ मिलाना, किसी मामूली सी बात को लेकर सागर उलट देना मुझसे न हो सकेगा। कहानी भले ही रूखी-सूखी मालूम हो। झूठी बातों से मुझे सख्त नफरत है। मैं सचाई-पसंद आदमी हूँ। सचाई को छोड़ कर झूठा विस्तार बढ़ाना, सुनने वाले को आश्चर्य के अथाह सागर में डुबो देना मेरा काम नहीं। यह किसी घिसे-घिसाये उस्ताद कथावाचक या किस्सागो का काम होगा। यह कहने का मतलब यह है कि मैं आपको अपनी जिन्दगी की सही सच्ची करवटें, जब जो घटना जिस तरह सामने आई है, सीधी सादी जबान में सुनाऊँगा।'

'मैं भी यही चाहता हूँ।' मिरजा ने कहा—'मैं आप से अर्ज कर चुका हूँ कि मैं ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखक हूँ। इतिहास के बाहर कदम रखना, सचाई को एक तरफ डाल कर झूठे शीराजे बाँधना मुझे पसंद नहीं है।'

'सुनने और लिखने के बाद अगर आप को मेरी कहानी पसंद न आए, तो मसौदे को चिराग के सिपुर्द कर दीजिएगा।'

'हुजूर अब इन बातों को रहने दें। कहानी शुरू करें।'

'अच्छा सुनिए।' जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान के साथ कहना आरम्भ किया

—'यह तो मैं कल आपको बता चुका हूँ कि मेरा जन्म एक हिन्दू परिवार में हुआ था। मेरे पिता का नाम चिरजीलाल और मेरा जन्मजात नाम जीवनलाल था।'

'जी हाँ, यह तो कल आपने फरमाया था।' मिरजा ने कहा।

'मिरजा साहब एक बात याद रखने की है। और वह यह कि मैं अपने पूज्य पिताजी को लालाजी कहा करता था। इसलिए कहानी में उनका नाम लेने के बजाय मैं लालाजी का ही प्रयोग करूँगा।'

'जरूर याद रखूँगा।' मिरजा ने कहा।

'अच्छा तो, मेरे लालाजी बहुत बड़े धनी, मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा वाले, पशमीना और दूसरे कपड़ों के व्यापारी थे। उस समय लखनऊ में उनका मुकाबला करने वाला कपड़े का एक भी दूकानदार न था। नखास बाजार में उनकी दूकान थी। प्रतिदिन हजारों रुपयों के वारे-न्यारे हुआ करते थे। दूकान में लाखों रुपयों का बेशुमार पशमीना और हर तरह का दूसरा कपड़ा ठसाठस भरा रहता था।'

मिरजा शैदा ने जिज्ञासा प्रगट की—'क्या उस वक्त लखनऊ में पशमीना वगैरा की इस कदर खपत हुआ करती थी? लाखों रुपये के पशमीना की बिक्री हो जाती थी?'

'अजी जनाब, वह आज का जमाना नहीं था कि दूकानदार हाथ पर हाथ रखे बैठा मक्खियाँ उड़ाया करे। सुबह से शाम तक पाँच रुपये की भी बिक्री न हो। वह शाही जमाना था। दूकानों पर ग्राहकों की भीड़ जमा रहती थी। ग्राहकों से निपटना-निपटाना कठिन हुआ करता था। साँस लेने की भी फ़ुरसत नहीं मिला करती थी। और लालाजी की दूकान की तो बात ही निराली थी। शाही महलों तथा खान्दानी नवाब रईसों के यहाँ जो भी कपड़ा खर्च होता था, सब लालाजी की दूकान से ही खरीदा जाता था। और आँखें बन्द करके दाम चुका दिये जाते थे। मोल-भाव करना तो कोई जानता ही न था। असली मूल्य का चौगुना मुनाफा होता था। दूकानदारी और कमाई का मजा उसी जमाने में था। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की बादशाहत थी। हरमसरा में बेगमों के ठाठ थे। ऐशमहल में नाचने-गाने तथा जलसे वाली परी जमालों का जमाव था। दिन में कम-से-कम पाँच बार नये जोड़े बदले जाते थे। पुराने उतारन नौकरानियों के पल्ले पड़ते थे। ऐसी सूरत में कपड़ों की खपत का क्या हिसाब-किताब अर्ज किया जा सकता है।' फिर जरा देर ठहर कर बोले—'अब आप को उस जमाने की बिक्री और मुनाफे का एक सच्चा-सही वाकया सुनाता हूँ। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की एक बेगम नवाब कुदसिया महल थीं। पहली-दूसरी बेगमों का जमाना गिर चुका था। उनकी चाहत खतम हो चुकी थी। कुदसिया महल का चढ़ाव था। हजरत नसीरुद्दीन हैदर का प्रेम-प्यार उन्हीं की तरफ बह रहा था। बेगम के भी चोचलों का कुछ ठिकाना न था। एक दिन बादशाह सलामत से फरमाइश की—हमने आप का पशमीनाखाना अभी तक नहीं देखा। बादशाह सलामत ने उसी वक्त वजीरे आजम नवाब रोशनुद्दौला को बुला कर हुक्म दिया—इसी वक्त लाला चिरंजीलाल

के यहाँ से हर तरह का पशमीना मँगा कर हमारा परमीनाखाना नीचे से ऊपर तक भर दिया जाय। हुक्म की देर थी। लालाजी की दूकान से पशमीना मँगा कर कोठा भर दिया गया। बीस लाख की कीमत का पशमीना कोठे में समाया। दाम चुका दिये गये। जब बेगम को पशमीना दिखाया गया और हजरत ने बेगम से फरमाया कि अब यह सब तुम्हारा है, जो मन चाहे करो। कुदसिया महल भी एक ही उदार बेगम थीं। उसने उसी समय वह सब पशमीना नौकर-नौकरानियों में लुटा कर कोठा खाली कर दिया। इस किस्से के बयान का मतलब यह है कि उस पशमीने की बिक्री में लालाजी को चौगुना फायदा हुआ था।'

'चौगुना फायदा किस तरह हुआ था?' मिरजा ने पूछा।

'पशमीने का मूल्य बीस लाख रुपया लालाजी को शाही खजाने से प्राप्त हुआ था। उसमें चार-पाँच लाख पशमीने के दाम थे बाकी मुनाफा, दूकानदारी की कमाई थी।'

मिरजा जोर से हँस पड़े। फिर बोले—'दूकानदारी क्या थी खासी लूट थी। अच्छा जमाना था वह।'

'मिरजा साहब, बादशाहों को इसी प्रकार लूटा जाता था। अगर इस तरह न लूटा जाता तो आज, जो हम बेशुमार दौलत पर कब्जा किए बैठे हैं और मौज की जिन्दगी गुजार रहे हैं किस तरह गुजारते?'

'मान गया आप का कहना।'

'अब आगे सुनिए।' जमालुद्दौला ने इतमीनान से कहा—'लालाजी के रहने का पुश्तैनी मकान मोहल्ला गोलागंज में था। काफी गुंजाइश का था। पाँच-छह कमरे लम्बा-चौड़ा आँगन, रसोईघर, गुसलखाना वगैरा सभी कुछ था। लालाजी अपने पिता-माता के इकलौते बेटे थे। मेरे दादा का स्वर्गवास हो चुका था। मौजूदा समय में कुल तीन प्राणी घर में थे—मेरी बूढ़ी दादी, माँ और पिताजी। दादी की अवस्था साठ और सत्तर के बीच में थी। किन्तु स्वास्थ्य अच्छा था। शरीर से पुष्ट थीं। उनका रंग बहुत गोरा था और सिर के बाल दूध के फेन की तरह सफेद और कोमल थे। आँखें तेजस्वी तथा मुख पर दृढ़ता और गम्भीरता के चिन्ह झलकते थे। नियम-धर्म तथा पूजा-आराधना की बड़ी पक्की थीं। बारहो मास चार बजे सबेरे उठ कर स्नान करके सूर्य-उदय होने तक भगवान श्रीकृष्ण की सेवा-आराधना में लीन रहती थीं। घर में भविष्य के उजाले का अभाव था। घर के दीपक को जगाते रहने वाला कोई बाल-गोपाल नहीं था। लालाजी की आयु पैंतालीस वर्ष को पहुँच चुकी थी। माताजी भी चालीस वर्ष को छूने के लिए दौड़ रहीं थी। लेकिन सन्तान का मुख देखने को नहीं मिला था। घर में किसी बालक के न होने का अभाव सबसे अधिक मेरी दादी को खटकता था। यों तो माँ भी उदास रहती थीं। पर अपने अन्तस की पीड़ा को किसी से कहती नहीं थी। नहा-धोकर जब ठाकुरद्वारे में भगवान की झाँकी के सामने पहुँचती थीं तो बहुत देर तक चरणों में माथा टेके बैठी रहती थीं। शायद

उसी समय उन्हें जो कुछ अपनी वेदना के बारे में कहना होता था मौन भाषा में कह लिया करती थीं। सम्भव है लालाजी को भी सन्तान का अभाव खटकता रहा हो और अवश्य खटकता रहा होगा। लेकिन वे पुरुष थे। धैर्य से काम लेना उनका काम था। और उनके लिए सबसे बड़ा सब्र-संतोष दूकानदारी थी। उसी में वे अपने दुख-दर्द को भूले रहते थे।

'लेकिन दादी इस दुख से घुली जा रही थीं। आगे यह वंश ठप्प हो जायगा··· घर में जो ये आपर धन-दौलत भरी रखी है, इसका सुख-भोग कौन करेगा···आगे क्या होगा? मिरजा साहब, दादी के मन की कुरेदन और हाथ-पैर मारने की बातें पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्र में मैंने अनेक बार अपनी माँ के मुँह से सुनी थी। माँ कहती थीं—दादी को हर समय यही धुन, यही चिन्ता सवार रहती थी कि किस यत्न से घर का यह सूनापन दूर हो। किसके आशीर्वाद से बहूरानी की गोदी में हँसता, किलकारियाँ भरता बालक दिखाई दे। उनका हाथ पकड़ने वाला तो कोई था नहीं। अपनी कामनापूर्ति के लिए हर समय तिजोरियाँ खोले रहती थीं। आशा के एक धुँधले से संकेत पर सोने-चाँदी ये टुकड़े बरसा दिया करती थीं। मोहल्ले-पड़ोस के जिस किसी ने कोई उपाय-तदबीर बताई दादी उसके उपकार से भर गई। रुपयों से उसका दामन भर दिया। दादी के इस भोले और बावलेपन को देख कर अकसर लोग उन्हें लूटते रहते थे।...'

मिरजा बोल उठे—'भोलापन या बावलापन नहीं कहा जा सकता। दुनिया में उम्मीद बहुत अजीब हुआ करती है। वही इंसान को भोला और बावला बना दिया करती है।'

'खैर, आगे सुनिए? उस वक्त लखनऊ में जादू-टोना, जंतर-मंतर और जिन्नात की वरकतों का बड़ा जोर-शोर और चर्चाएँ थीं। लोगों के अंध-विश्वास का कुछ ठिकाना न था। साधारण लोग तो साधारण ही थे बादशाह तक इस यकीन से बँधे हुए थे।···आप जानते हों या न जानते हों, मोहल्ला अमीनाबाद में जो पार्क बनाया गया है और उसके करीब से जो सड़क निकाली गई है, उस सड़क से किनारे एक बहुत पुरानी मसजिद है जो जिन्नो की मसजिद के नाम से मशहूर है। मेरी दादी के जमाने में भी वह मसजिद मौजूद थी और तब भी जिन्नों की मसजिद के नाम से ही पुकारी जाती थी। मसहूर था कि नौचन्दी जुमेरात के दिन जिन्नों के बादशाह उस मसजिद में तशरीफ लाते हैं। जो उम्मीदवार अपनी उम्मीद-मुराद लेकर उस दिन मसजिद में पहुँचता है और चढ़ावा-नजरें पेश करके मन्नतें-मुरादें माँगता है, जिन्नों के बादशाह खुश होकर उसकी मुराद पूरी किसा करते हैं। और यह सब एक फकीर साहब के जरिए हुआ करता है। किसी पड़ोसी ने दादी से इसका जिक्र कर दिया। फिर क्या था। दादी पागल हो गईं। दस-पन्द्रह हजार रुपया की सौगाद नकद और दीगर सामान लेकर दादी मसजिद में पहुँच गईं। मसजिद में एक सफेद वालों और लम्बी दाढ़ी वाले फकीर साहब काला कम्बल ओढ़े बैठे तस्बीह के दाने गिन रहे थे। दो-तीन चेले-चाँटी इधर-उधर हाथ बाँधे बैठे हुए थे। दादी ने फकीर साहब के कदम लिए,

चढ़ावा-चढ़ाया और नजरें पेश कीं। दादी के लिए गोया वह फकीर साहब ही जिन्नों के बादशाह थे। फकीर साहब ने मुराद पूरी होने के लिए दुआ की और जाने किधर से एक लाल मूँगे का दाना निकाल कर दादी के हाथ में रखते हुए कहा—शाहे जिन्न की यह बरकत है। इसे एक धागे में डाल कर अपनी बहू को पहना देगा। खुदा चाहेगा तो उसकी गोद भर जायेगी। वह सारी सौगात और नजर उनके गुर्गों ने हथिया ली। दादी खुश-खुश घर लौटीं और उम्मीद-आशाओं के दिन गिनने लगीं। मगर कुछ भी न हुआ। वह सारी ठग विद्या ही साबित हुई।'

मिरजा जफर हुसेन बोले—'राह चलते वह जिन्नों वाली मसजिद तो मैंने भी देखी है। और लोगों की जबानी यह भी सुना है कि इस मसजिद में जिन्न रहते हैं। लेकिन हकीकत क्या है इसका मुझे पता नहीं है।'

'मुझसे सुनिये।' जमालुद्दौला ने कहा—'उस मसजिद की सारी हकीकत एक बार मुझे मेरे पड़ोसी नवाब जाफर अली खाँ ने सुनाई थी। वह तो एक ऐतिहासिक मसजिद है और उसका इतिहास यह है—अवध के सूबेदार नवाब सआदत खाँ की एक बेगम खुदीजा खानम थीं। अमीनाबाद की उस जमीन को जहाँ पर आज पार्क नजर आ रहा है पसंद करके वहाँ एक बाग लगवाया और मसजिद तामीर कराना शुरू की। खानम की कारपरदाज एक पंडिताइन थीं। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उसी पंडिताइन के जरिए मसजिद तामीर हो रही थी। अभी मसजिद बन कर खड़ी नहीं हुई थी कि बेगम की मृत्यु हो गई और उनकी वसीयत के अनुसार वे उसी बाग में दफन की गईं। पूरी तरह से बन कर खड़ी हो जाने के बाद वह मसजिद पंडिताइन की मसजिद के नाम से मशहूर हुई और बाद में जिन्नों की मसजिद कहलाने लगी। खुदीजा खानम की कब्र पर पहले एक मकबरा भी बना हुआ था, मगर बाद में उसकी सूरत मौजूद न रही। सिर्फ आठ पहलू का बुनियादी चबूतरा बाकी रह गया। जिसे आज आम लोग शहीद मर्द की कब्र कहते हैं, चढ़ावे चढ़ा कर मुरादें भी माँगते हैं। बादशाह अमजद अली शाह ने वह सारी जमीन और बाग वगैरा अपने वजीरेआजम नवाब अमीनुद्दौला को बख्श दी थी। जिन्होंने वहाँ अमीनाबाद मोहल्ला आबाद किया था।'

'आज जनाब ने यह अच्छी वाकफियत कराई।' मिरजा ने कहा—'ऐसी तवारीखी बातें सुनने का मैं बहुत मुश्ताक रहा करता हूँ।'

'खैर, अब सिलसिले की बात सुनिए।' जमालुद्दौला ने कहा—'मेरी दादी ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी, बराबर प्रयत्नशील बनी रहीं। एक पंडित ने दादी को सलाह दी—कि श्रीमद्भागवत का पाठ सात दिन में समाप्त कराया जाय। भागवत पुराण का विधि-पूर्वक पाठ हो और दम्पति श्रद्धापूर्वक उसे सुनें। अवश्य मनोरथ पूर्ण होगा। पंडित की सलाह दादी के गले उतर गई। सप्ताह-पाठ की तैय्यारी शुरू कर दीं। मेरे लालजी को दादी का यह कार्य अखर सा रहा था। सात दिन तक घर में बैठ कर भागवत का पाठ सुनना और दूकान न जाना उनके लिए बहुत बड़ा जब्र था।

मगर दादी के काम का विरोध करना, उनकी आज्ञा को न मानना लालाजी के बूते की बात न थी। आखिर विधिपूर्वक भागवत का पाठ हुआ। लालाजी तथा माताजी ने बैठ कर सुना। इस कार्य में बीस-पच्चीस हजार की रकम भी खर्च हुई और नतीजा कुछ भी न निकला। घर में उजाले की ज्योति न जगी।

'राधा-कुंड में एक बैरागी महात्मा कहीं से आकर ठहरे हुए थे। बड़े तपस्वी, शिव जी के भक्त और चमत्कारी कहे जाते थे। गले में काले विषैले साँपों को लपेटे और बड़ी-बड़ी काली बिच्छुओं की माला धारण किए रहते थे। केवल गाय का पाव भर दूध उनका भोजन बताया जाता था। लोगों का कहना था कि पूरे ३० दिन धरती के गर्भ में समाधिस्थ रह कर अभी बाहर आकर सब का कल्याण कर रहे हैं। जन-कल्याण ही उनका उद्देश्य है। जो व्यक्ति जिस कामना को लेकर उनके पास जाता है उसकी इच्छा पूर्ण होती है। दादी के कानों में उन तपस्वी महात्मा की भनक पड़ गई। सब कुछ भूल कर उनके चरणों पर जा गिरीं। महात्मा जी ने अदेश दिया-अयोध्या, मथुरा और वृन्दावन की तीर्थ-यात्रा करो। दादी ने महात्मा के आदेश को गाँठ में बाँध लिया। और दस-पाँच दिन बाद योजना बना कर मेरी माता जी को साथ लेकर तीर्थस्थानों का पुण्य लूटने चल पड़ीं। पूरे डेढ़ महीने बाद वापस लौटीं। लेकिन फिर भी आशा की कोई किरण न फूटी। अन्त में दादी हताश होकर बैठ गईं। समझ लिया कि भाग्य का लिखा कोई नहीं बदल सकता। जब भाग्य में वंश-बेल को आगे बढ़ना नहीं लिखा तो दौड़-भाग, यत्न-तदबीर व्यर्थ है। विधि का विधान अटल है। दिन आगे बढ़ने लगे।

'मिरजा साहब, ईश्वर की लीला विचित्र है। उसके भेदों को मनुष्य नहीं समझ सकता। खुदा कब, क्या और किस बहाने से करना चाहता है समझ से बाहर है। आन की आन में वह राई को पर्वत बना कर दिखा सकता है और पर्वत का वजूद मिटा सकता है।

'एक दिन एक पड़ोसिन आकर मेरी माँ से मिली। उन्हें हमारे घर का सब मालूम था। दादी की दौड़-भाग और मायूसी का पूरा पता था। अतः उन्होंने भूति के तौर पर माँ से कहा, 'बहिनजी, मेरा एक परामर्श स्वीकर करो। अपने मन की उदासी और घर का सूनापन दूर करने के लिए जाति-बिरादरी के किसी अच्छे बालक को अपनी गोद में बैठा लो। उसे अपना बना लेने से तुम्हारे मन की उदासी भी दूर हो जायेगी। घर हरा-भरा नजर आने लगेगा और लालाजी का नाम भी जिन्दा रहेगा।' पड़ोसिन का परामर्श किसी अंश तक माता जी को पसंद आया। उन्होंने अवसर पाकर उसका जिक्र दादी से किया। दादी ने अपनी मायूसी के साथ उसका इतना ही जवाब दिया—'जानती तो हो, इसके लिए मैंने क्या नहीं किया। लेकिन कहीं से भी सफलता नहीं मिली। ईश्वर ने तुम्हारी कोख से पैदा करके जब अपना नहीं बनाया, तो जाति-बिरादरी के किसी लड़के को गोद लेकर क्या अपना बनाया जा सकेगा! भाग्य में लिखे अक्षर कैसे मिटाये मिट सकते है?'

'माँ को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने लालाजी से भी वही बात कही-दोहराई। लेकिन लालाजी ने भी कोई स्पष्ट उत्तर न दिया। हाँ, हूँ, करके टाल दिया। बात आई-गई हो गई। माँ मुख से तो मौन ही बनी रहतीं लेकिन उनका अन्तस बराबर आँसू बहाता रहता था। अब आगे खुदा का करिशमा देखिए। उसके घर बैठे मुराद भेज दी।

'चिल्ला जाड़ों के दिन थे। लखनऊ में हड्डी कँपाने वाली सरदी पड़ रही थी। सूर्य अस्त होते ही ठण्डी हवा के झोंके आने लगते और चिराग जलते-जलते वह ठण्डक फट पड़ती कि त्राहि-त्राहि मच जाती थी। संध्या का अंधकार फैलते ही शहर की सड़कें सूनी हो जातीं। किस्मत का मारा ही कोई आता-जाता दिखाई देता था। लोग घरों के दरवाजे बन्द करके दहकते हुए कोयलों की भरी अंगीठियाँ लेकर बैठ जाते या लिहाफों में लिपट जाते थे। खाना-पीना जो कुछ भी था उसी आग के सहारे और रजाइयों के सहारे होता रहता था।

'रात का पहला पहर शुरु होते ही मेरी दादी और माँ ने गरम पानी से हाथ, पैर, मुँह धोए, साफ-सुथरे कपड़े बदले और ठाकुरद्वारे में पहुँच गईं। लालाजी दूकान में थे। उनका घर लौटना तो कहीं पहर रात के बाद हुआ करता था। दादी और माँ ने मिल कर कृष्ण भगवान की संध्या आरती उतारी, पूजन आदि किया, सिर झुकाए माँ ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना के रूप में भजन गाया—

माधव अब तो टेर सुनो,
टेरत बीत गये निसि-वासर, व्यापत दुःख घनो।
वेद पुराण शास्त्र सब गावत प्रभू के श्रवण बड़े,
दीन दुखित की टेर सुनन को रहत सदैव खड़े।

'भजन समाप्त करके माँ तथा दादी ने भगवान का चरणामृत लिया और पुनः मूर्ति के आगे हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाए। उसके बाद दादी ने मँजीरे हाथ में संभाले और कीर्तन करने के लिए संभल कर बैठ गईं। तभी मकान के बाहर सदर द्वार पर कुछ आहट सी हुई और एक आवाज सुनाई दी····'एक गक्कड़ का आटा दे—एक बालक ले।'

'आवाज सुन कर मेरी माताजी चौंक पड़ीं और उठ कर खड़ी हो गईं।

'दादी ने पूछा—'क्यों कहाँ जाती हो? कीर्तन नहीं करोगी?'

'कीर्तन करूँगी!' माँ ने कहा—'क्या आपने बाहर आवाज नहीं सुनी। कोई भूख का मारा एक गक्कड़ का आटा माँग रहा है। उसे दे आऊँ।'

'वही आवाज पुनः सुनाई दी।

'दादी बोलीं—'अरे बैठो, भगवान का कीर्तन करो। ऐसे भिखारी माँगने वाले आवाज लगाया ही करते हैं। पागल न बनो। एक गक्कड़ के आटे के बदले कोई एक बालक देगा? किसमें ऐसी शक्ति है? करम की रेखायें ये भिखारी-मंगन नहीं मिटा सकते।

'आवाज पुनः गूँजी ।

'माँ उत्सुकता के साथ बोलीं—'इस अंधेरी ठण्ड-भरी रात में बेचारा आशा लगाए खड़ा है । उसे पाव भर आटा दे देने में क्या हर्ज है ।'

'मैं आटा देने को मना नहीं करती ।' दादी ने कहा — 'तुम, एक पाव नहीं एक मन आटा उसे दे आओ । कौन तुम्हारा हाथ पकड़ता है । मैं तो तुम्हारे मन के भ्रम को दूर करने की बात कह रही हूँ । तुमने देखा है—मैंने किन-किन कुओं में बाँस नहीं डाले । कौन-सा उपाय बाकी छोड़ा है । मन्दिर-मसजिद में जाकर माथा रगड़ा है । साधू-महात्माओं और मुल्ला-फकीरों के कदम चूमे हैं । चढ़ावे-चढ़ाए हैं, धन लुटाया है । मगर कहीं से कुछ प्राप्त हुआ ?'

'आवाज फिर सुनाई दी ।

'माँ ठाकुर-द्वारे से झपट कर भंडार में गईं । आटा लिया और एक हाथ में दीपक लेकर द्वार पर पहुँच गई । दीपक को आले में रख कर दरवाजा खोला । एक दुबता-पतला, किंतु तेजवान भिखारी चिथड़े में लिपटा खड़ा काँप रहा था । उसके हाथ में एक मिट्टी का बर्तन था । माँ को देख कर वह बोला—'जय हो धर्मात्मा, तुमने जैसे मेरी टेर सुनी है उसी तरह भगवान तुम्हारी टेर सुनेगा ।' और उसने अपने हाथ का पात्र आगे बढ़ा दिया । माँ ने उसमें आटा डाल दिया । उसका पात्र आटे से मुँहा-मुँह भर गया ।

'भिखारी ने जाने कहाँ से गुलाब का एक ताजा, सुन्दर बड़ा सा फूल निकाल कर कहा—'धर्मात्मा आँचल फैलाओ ।' माँ ने सहज भाव से आँचल फैला दिया । उसने वह फूल माँ के आँचल में डाल कर कहा—'देवी ! जैसे तुमने आटे से मेरा पात्र भर दिया है उसी तरह श्रीकृष्ण भगवान तुम्हारी गोद भर देंगे । तुम्हारे गर्भ से एक महान सुन्दर और दीर्घजीवी बालक जन्म लेगा । यह मेरा नहीं, भगवान का आशीर्वाद है ।' इसके बाद वह भिखारी काली रात के उस अंधेरे में जाने कहाँ विलीन हो गया । माँ एक क्षण द्वार पर खड़ी आँखें फैला उसे देखती रहीं, लेकिन कहीं उसकी छाया भी न दिखाई दी । अन्त में माँ ने दीपक उठाया, द्वार बन्द किया । और घर के अन्दर आ गईं ।

'दादी अब भी ठाकुरद्वारे में भगवान की झाँकी के सामने जमी बैठीं कीर्तन शुरू करने के लिए माँ की प्रतीक्षा कर रही थीं । माँ ने लौट कर दादी को उस भिखारी का वरदान सुना कर गुलाब का वह ताजा फूल दिखाया । फूल से सुगन्ध निकल रही थी । ठाकुरद्वारा महकने लगा था ।

'दादी उस फूल को एक क्षण आश्चर्य भरी दृष्टि से देखती रहीं । फिर बोलीं—'ठीक है, इस फूल को जतन के साथ अपने पास रख लो । शायद वह भिखारी भगवान श्रीकृष्ण का आर्शीवाद ही देने-सुनाने आया हो । उन्होंने तुम्हारी टेर सुन ली हो ।'

'माँ ने उस फूल को एक डिबिया में बन्द करके झाँकी में मूर्ति के चरणों के

नीचे रख दिया। फिर दादी के बराबर बैठ कर कीर्तन करने लगीं।•बड़ी श्रद्धा और भरोसे के साथ यह भजन गूँज उठा—'

'घड़ी ने ग्यारह बजाये। जमालुद्दौला बोले--'लीजिए मिरजा साहब, ग्यारह बज गया और अभी मेरा जन्म भी नहीं हुआ।'

'इंशाअल्ला, कल आप पैदा हो जायँगे। और लालाजी के दरवाजे पर शहनाई बजने लगेगी।' मिरजाफर हुसैन ने उठते हुए कहा।

'यह आपने किस तरह समझ लिया कि आगे इस दुनिया में मेरा वजूद होकर ही रहेगा।' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—।

'कहानी और बयान का पैराया कह रहा है। आपकी पैदायश के जरिए जमा हो गये हैं। गैब से आवाजें आ रही हैं।' और वह तस्लीम करके चले गये।

तीन

'मिरजा शैदा साहब, आज मेरा जन्म दिन है।' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—'आज के बयान में, मैं अपनी अकेली उदास जिन्दगी को लेकर इस दुनिया में पदार्पण करूँगा।'

'जी हाँ, यही तो मैंने कल अर्ज किया था। फरमाइए।' मिरजा शैदा ने भी मुस्करा कर कहा।

'अच्छा तो सुनिए, वह भिखारी जो उस अंधेरी जाड़ों-भरी रात में मेरे घर के दरवाजे पर आटा माँगने आया था, हकीकत में वह ईश्वर का कोई दूत ही था। भगवान का भेजा हुआ सन्देश, मेरी माँ को सुनाने आया था। उसके आर्शीवाद से कुछ ही दिनों बाद मेरी माँ गर्भवती हो गईं। दादी की आँखों के आगे खुशियाँ बरस पड़ीं। वे फूली नहीं समाती थीं। उनके हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति और अधिक अनुराग बढ़ गया। उनकी पूजा-आराधना बड़े दत्तचित्त से करतीं। आरती उतार कर माथा टेक देतीं और देर तक टेके रहती थीं।

माँ के प्रति दादी का स्नेह, लाड़-दुलार पहले की अपेक्षा चौगुना बढ़ गया था। माँ को घर का कोई काम नहीं करने देती थीं। यदि भूले-भटके मेरी माँ किसी हलके-फुलके काम में हाथ लगा देतीं, तो दादी फौरन वहाँ पहुँच जातीं। काम को अपने हाथों में लेकर कहतीं—'बहू तुमसे सौ बार कहा कि तुम किसी काम में हाथ न लगाया करो। काम-काज की कौन कहे, तुम्हें तो एक सींक भी इधर से उठा कर उधर रखने की जरूरत नहीं है। मगर तुम मेरा कहना ही नहीं मानतीं। घर का काम-काज करने के लिए बहुत लोग हैं। नौकरानियाँ हैं, मैं मौजूद हूँ। तुम्हें कोई काम करने की क्या जरूरत है! तुम तो पलंग पर लेट कर आराम किया करो। पास में रामायण, सुखसागर रख लो, उनमें लिखी भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण के जन्म की कथाएँ पढ़ा करो। उन्होंने ही आशा की ज्योति जगाई है। अब उन्हीं की दया, कृपा से तुम्हारी गोद भरी दिखाई देगी। मेरी आँखों के आगे दीप जल उठेंगे। भगवान वह दिन-घड़ी लावे कि मेरे घर के दरवाजे पर शहनाई बजे, बधाइयाँ गाई जाँय।'

'उँगलियों पर दिन गिनते-गिनते गर्भ के दिन पूरे हुए। नवाँ महीना बीतने लगा। दादी ने जच्चाघर की व्यवस्था आरम्भ कर दी। शुभ मुहूर्त आ गया। बुधवार के दिन उधर पूर्व में सूर्य की किरणें चमकीं, इधर कुछ ही समय की प्रसव पीड़ा के बाद माँ ने मुझे जन्म दिया। दादी ने ठाकुरद्वारे की कोठरी में पहुँच कर भगवान श्रीकृष्ण की झाँकी के आगे माथा टेक दिया।

'घर-बाहर धूम मच गई। बाहर द्वार पर शहनाई बज रही थी। बधाइयाँ गाई जा रही थीं। दादी का तन मन नाच रहा था। फूली-फूली फिर रही थीं। झोली में रुपयों-मुहरों की खिचड़ी लिए दान-दक्षिणा बाँट रही थीं। उत्साह-उदारता का अन्त नहीं था। उधर लालाजी के इष्ट मित्र और पड़ोसी उन्हें घेरे बैठे थे। जलसों-दावतों की योजनाएँ बन रही थीं। जो जैसा परामर्श देता था लालाजी बिना किसी झिझक के स्वीकार कर रहे थे। घर में धन-दौलत की कमी न थी। उसे खर्च करने का एक यही शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। अतः उनका हृदय उत्साह से भरा हुआ था। एक के बदले हजार खर्च करने के लिए तैय्यार थे।

'मित्र मंडली की सलाह थी कि महोत्सव के अवसर पर बादशाह सलामत को दावत देकर उन्हें अपने घर बुलाया जाय। आज तक लखनऊ के किसी रईस-अमीर ने उन्हें अपने घर पर नहीं बुलाया। इसकी वजह यह थी कि बादशाह के स्वागत-सत्कार का खर्च बरदाश्त करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। और यहाँ खर्च की कोई चिन्ता नहीं थी। फिर क्यों न प्रतिष्ठा के साथ उत्सव को सफल बनाया जाय! यह शुभ अवसर लखनऊ के लिए एक यादगार बन कर रह जायगा। लालाजी ने मित्रों की सलाह सहर्ष मान ली।

'लखनऊ के शाही तख्त पर बादशाह नसीरुद्दीन हैदर रौनक फरमा रहे थे। उनकी मसनद-नशीनी का पहला साल चल रहा था। ऐन जवानी में, पच्चीस वर्ष की उम्र में हजरत ने तख्त-व-ताज संभाला था। मिजाज में ऐश-पसंदी और नजर रंगीन थी। मौत्मिदद्दौला आगामीर वजीर-आजम थे। लालाजी की वजीर-आजम से काफी जान-पहचान थी। उनके अलावा बादशाह सलामत के एक बहुत नजदीकी दरबारी राजा मेवाराम से भी लालाजी का याराना था। राजा मेवाराम बादशाह सलामत के मुँहलगे दरबारियों में थे। अतः लालाजी अपने अभिप्राय को लेकर पहले वजीर-आजम से मिले और अपना इरादा जाहिर किया। वजीर-आजम नवाब आगामीर ने लालाजी के हौसले की तारीफ की। वजीर-आजम लालाजी की हैसियत से वाकिफ थे। जानते थे कि ये लखनऊ के पुश्तैनी व्यापारी हैं। इनके घर में पुरानी और नई करोड़ों रुपये की सम्पत्ति मौजूद है। बादशाह सलामत का स्वागत-सत्कार अच्छी तरह कर सकते हैं। फिर भी उन्होंने कहा—'लखनऊ में यह पहला मौका है कि बादशाह सलामत को दावत देकर अपने घर बुलाया जा रहा है। हजरत दावत को मंजूर फरमाते हैं या नहीं, इस बारे में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। आप राजा मेवाराम से मिलिए और उन्हें अपने साथ ले जाकर हजरत को दावत दीजिए। मेरा ख्याल है कि राजा मेवाराम की सिफारिश से बादशाह सलामत जरूर आप को हौसला अफजाई फरमायेंगे।'

'राजा मेवाराम तो लालाजी के पुराने दोस्त थे। अकसर उनसे मिलते-बैठते रहते थे। इसलिए लालाजी बिना किसी झिझक-संकोच के राजा की हवेली पर पहुँचे और अपना विचार प्रकट किया। राजा मेवाराम ने भी उनके हौसले को

सराहा, मगर उसके साथ यह भी कहा, 'इस काम में बनियाई न चलेगी। दिल खोल कर पैसा खर्च करना पड़ेगा। बादशाह सलामत को दावत देकर अपने घर बुलाना कोई मामूली बात नहीं है। उनके स्वागत-सत्कार में कोई कोर-कसर बाकी न रहे। चाहे एक के बजाय आप को लाख खर्च करना पड़े, लेकिन हजरत की शान में फर्क न आने पाये।'

'इसके बाद राजा मेवाराम के साथ लालाजी बादशाह सलामत की खिदमत में पहुँचे। एक सौ पाँच अशरफी नजर पेश की और दावत अर्ज की। यों तो बादशाह नसीरुद्दीन हैदर पहले से लालाजी के नाम से वाकिफ थे। शाही महलों में कपड़ों का जितना खर्च था, वह लालाजी की दूकान से आता था। लखनऊ में उनकी दूकान, नाम और मान मर्यादा में मशहूर थी। राजा मेवाराम ने और भी नमक-मिर्च लगा कर दावत मंजूर फरमाई जाने की सिफारिश की। बादशाह सलामत ने बखुशी दावत मंजूर कर ली। उसके साथ इसकी भी चेतावनी दे दी कि हम पूरी शान-शौकत और जलूस के साथ आएँगे। हमारा पूरा दरबार हमारे साथ होगा।'

'मिरजा शैदा साहब, लालाजी का पुश्तैनी मकान गोलागंज में उस जगह पर था, जहाँ पर आज बादशाह वाजिदअली शाह की एक बेगम नवाब सुलतान-जहाँमहल का इमामबाड़ा मौजूद है।...'

मिरजा ने बीच में टोका—'और यह गुलफ़ाम मंजिल? क्या ये पुश्तैनी इमारत नहीं है?'

'जी नहीं, गुलफ़ाम मंजिल तो मैंने अपने जमाने में तामीर कराई थी। गोलागंज का वह पुराना पुश्तैनी मकान बेच कर इस नई इमारत में आ गया था, गुलफ़ाम मंजिल को तामीर कराने की एक खास वजह भी थी...'

'क्या वजह थी?'

'उसे फिर किसी मौके पर अर्ज करूँगा। अभी तो आप मेरे जन्मोत्सव का हाल सुनिए। जश्न-जलसे का दिन आया। धूम-धाम का ठिकाना न था। दरवाजे पर शहनाई और अंग्रेजी बाजा बज रहा था। अंग्रेजी बाजा जिसे बैंड कहा जाता था लखनऊ की रेजीडेन्टी में था। बीस-पच्चीस आदमी मिल कर बैंड बजाते थे। तरह-तरह के बाजे उन सब के हाथों में रहते थे, जिनसे भाँति-भाँति की सुरीली आवाजें निकालती थीं। लालाजी के एक मित्र मुंशी शब्बन लाल थे। उनकी रेजीडेन्टी में पहुँच थी। अंग्रेज अफसरों से मुलाकात और मिलना-जुलना था। इसलिए मुंशी शब्बन लाल की कोशिश से वह अंग्रेजी बाजा किराए पर मिल गया था। एक दिन का किराया पाँच हजार रुपया था। बजाने वालों की इनामे-इकरामें उसके अलावा थीं। गरज बाजों की धुन से कान पड़ी आवाज नहीं सुनाई देती थी। भीतर औरतों का जमघट था। ढोलकें बज रही थीं, मंजीरे ठनक रहे थे और बधाईयाँ गाई जा रहीं थी।

'लालाजी के इष्ट-मित्र, हाली-मोहाली अपने-अपने जिम्मों का काम-काज लिए दौड़े-दौड़े फिर रहे थे। सब को एक ही चिन्ता थी कि किसी बात में किसी तरह की हेठी न होने पाए। ऐसा न हो कि बाद में किसी कमी की तरफ उँगली उठा कर लोग हँसी उड़ाएँ और सारा किया-कराया मिट्टी हो जाय। लालाजी ने तिजोरियाँ खोल दी थीं और सब से पुकार कर कह दिया था, 'खर्चे की कोई परवाह नहीं। एक के बदले सौ और हजार खर्च किए जायें। लेकिन बात ऊँची रहे।' जमालुद्दौला रुक गये। फिर संभल कर बोले—'मिरजा शैदा साहब, लालाजी के उत्साह-उदारता का इस वक्त जिक्र करते हुए मुझे एक बात याद आ गई।'

'क्या, फरमाइए ?' मिरजा ने कहा।

'जब मैं उन्नीस-बीस वर्ष का था और दूकान में बैठा करता था। एक दिन यों ही मैंने पुराने बही-खातों को उठा लिया और देखने लगा। एक बही में मेरे जन्मोत्सव के खर्चे का तफसील के साथ लेखा-जोखा लिखा हुआ था। बादशाह सलामत की दावत वगैरा सब का पूरा ब्योरा था। कहने का मतलब यह है कि उस महोत्सव में लालाजी ने तीन लाख, साठ हजार, सात सौ पच्चीस रुपया खर्च किया था।'

'बड़े फराख-दिल थे आप के लालाजी !' मिरजा ने कहा।

'फराख-दिली की बात यों थी कि घर में तिजोरियों पर तिजोरियाँ भरी रखी थीं। कभी कुछ खर्च करने का उन्हें मौका कहाँ मिला था। वैसे लालाजी दूकानदार ही थे। दाँत से पैसा दबाते थे। लेकिन मेरी माँ कहती थीं कि उस समारोह के अवसर पर लालाजी के हृदय में ऐसा उछाह और उदारता भर गई थी कि धन-दौलत की उनके सामने कोई हकीकत ही नहीं थी। कहते थे—'किस दिन के लिए हैं। भगवान ने खर्च करने का अवसर दिया है तो क्यों न खर्च किया जाय।'

जमालुद्दौला ने तकिए का सहारा ले लिया। जरा देर चुप रहे फिर संभल कर बोले—'अच्छा साहब, बादशाह नसीरुद्दीन हैदर बड़े ठाठ शान-व-शौकत और धूम-धाम के साथ लालाजी के घर पर तशरीफ लाए। हमारे घर के द्वार पर लम्बा-चौड़ा मैदान था। वह सारा मैदान सजावट से भरपूर था। शामियाने खड़े थे। पर्दे और झालरें लटक रही थीं। झाड़-फानूस अपनी-अपनी जगह पर मौजूद थे। फर्श पर चाँदनी खिंची थी। रंगीन ईरानी कालीनों पर चमचमाती मसनदें और गाव-तकिए लगे हुए थे। बादशाह सलामत के बैठने के लिए विशेष स्थान पर विशेष सजावट के साथ मसनद लगाई गई थी। बादशाह सलामत जिस शान से तशरीफ लाए थे उसका जिक्र एक बार अपनी जवानी में पड़ोस में रहने वाले नवाब जाफर अली खाँ की जबान से सुना था। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर गंगा-यमुनी, यानी सोने-चाँदी के नक्शदार पत्तरों से मढ़े हुए तामजान पर सवार थे। रंडियों के चार झुंड, एक-एक झुंड में पच्चीस-पच्चीस रंडी तामजान को घेरे हुए थीं। उन रंडियों के साज-सिंगार का बयान नहीं किया जा सकता। एक झुंड की पच्चीस रंडियाँ एक तरह और एक ही रंग की पोशाकें पहने हुए थीं। जिनकी चमक-दमक पर नजर नहीं

ठहरती थी। चारों झुंड की पोशाकों के लाल, पीले, हरे और बैंगनी, चार रंग थे। सभी कंघी-चोटी से चुस्त और नाज-अन्दाज की जीती-जागती तस्वीरें। इन रूप की धनी, यौवन की मदमाती परियों के साथ चलने की एक वजह भी थी। हजरत नसीरुद्दीन हैदर उन सौन्दर्य की जिन्दा मूर्तियों को साथ लिए बिना महल से बाहर नहीं निकालते थे। उनके नाज-नखरों और मुस्कानों भरे चेहरों को देख कर ही उन्हें आगे बढ़ने की शक्ति मिलती थी। हजरत की उठती जवानी, तबियत की रंगीनी और हुकूमत के यही तो चोचले थे।

'तामजान के आगे अंग्रेजी बाजा बजता हुआ चल रहा था। बाजा बजाने वाले सभी जवान लखनऊ के कलाकार थे, लेकिन उनका अफसर अंग्रेज था, जो बैंड-मास्टर कहलाता था। बाजे वालों के पीछे नकीब, चौबदार और बरकन्दाज वगैरा थे। सब की पोशाकें जर्क-वर्क और हाथों में सोने-चाँदा की छड़ियाँ थीं। तामजान के पीछे दरबारी, मुसाहब जौर दूसरे अमीर-रईस थे। मुसाहबों में तीन-चार अंग्रेज भी शामिल थे। उनके पीछे शाही जनानखाने की कुछ बाँदियाँ-महरियाँ सिरों पर बड़े-थालों में कुछ सौगात संभाले हुए थीं। इस ठाठ से बादशाह सलामत तशरीफ लाये थे।

'लालाजी ने अपने इष्ट मित्रों के साथ आगे बढ़ कर हजरत का स्वागत् किया। हजरत सलामत मसनदनशीन हुए। दूसरे सभी मेहमानों को भी यथा-स्थान बैठाया गया। साथ आई हुई सुन्दरियाँ भी बादशाह सलामत की मसनद के दाएँ-बाएँ जम गईं। बादशाह सलामत की तरफ से करीब ढाई तीन लाख का लिवाजमा बच्चे और उसकी माँ के लिए आया था जिसमें अमूल्य जड़ाऊ जेवरात और पोशाकें थीं और लालाजी के लिए चौदह कपड़ों का खिलअत था।

'आदर, सत्कार, खातिर-तवाजा के बाद रंग बरसना शुरू हुआ। तबले, पखावजों पर थापे पड़ने लगीं'। घुंघरुओं की झंकारें गूंज उठीं। भाड़ों और बहुरूपियों ने अपने-अपने करतबों की धूम मचा दी। मिरजा साहब, वह जश्न-जलसा देखने के लिए सारा लखनऊ लालाजी के घर-द्वार पर उमड़ आया था। लोगों ने लखनऊ में ऐसा जश्न-जलसा कभी नहीं देखा था।

लालाजी के इशारे पर नवजात शिशु को लाकर बादशाह सलामत को दिखाया गया। मेरा रूप-सौन्दर्य देख कर बादशाह सलामत चकित रह गये। जिस किसी ने निगाह भर कर देखा आश्चर्य में पड़ गया। कानाफूसियाँ होने लगीं। कोई कहता, साक्षात काम देव का अवतार है। कोई कहता, किस यक्ष-गंधर्व ने आकर लालाजी के यहाँ जन्म लिया। कोई कहता, इनसान की शकल में किसी परीजाद ने जन्म लिया है। गरज जितने मुँह थे उतने ही तरह की उपमाएँ दी जा रही थीं।

'मिरजा शैदा साहब, यह सब मैं आप को कानों सुनी बातें सुना रहा हूँ। हाँ इतना जरूर है कि इस बयान में झूठ की गुंजायश नहीं है। एक बार मैंने अपनी माँ की जबान से भी यही सब सुना था। खैर, अब आगे का जिक्र सुनिए। लालाजी के

एक परम मित्र मुंशी छन्नूलाल सक्सेना कायस्थ थे। उर्दू फारसी के महान पंडित और ऊँचे दर्जे के शायर थे। 'तरब' उनका उपनाम था। पीछे उन्होंने हिन्दू धर्म छोड़ कर इस्लाम धर्म कबूल कर लिया था। धर्म के अनुसार अपना नाम भी बदल कर गुलाम रसूल रखा और शायरी का उपनाम भी 'तरब' की जगह 'दिलगीर' रख लिया था और मियाँ दिलगीर कहलाने लगे थे। इमाम हसन-हुसैन पर अपना विश्वास जमा कर उनकी तारीफ तजकरे को लेकर मर्सिया कहना ध्येय बना लिया था और इस फन के उस्ताद हो गये थे। आपने इस लखनऊ के मर्सिया कहने वाले शायर मीर अनीस और मिरजा दबीर का नाम सुना होगा। उनमें मिरजा सलामत अली 'दबीर' मियाँ दिलगीर के ही शार्गिद थे।'

मिरजा शैदा जल्दी से बोल उठे—'जी हाँ, मीर अनीस और मिरजा दबीर का नाम मैंने सुना है। उनके मर्सिए भी पढ़े हैं। दोनों की अच्छी जोड़ थी। कहते भी बहुत अच्छा थे। मियाँ दिलगीर का भी नाम सुना है। उनके बारे में एक बार एक बुजुर्ग ने एक शेर भी सुनाया था।'

'क्या शेर सुनाया था?' जमालुद्दौला ने कहा—'अगर याद हो तो पढ़िए।'

'जी; वह शेर यह था—

दिलगीर मियाँ मर्सिया-गो आशिके इमाम'
जिनको था फकत आले नबी की मदह से काम।'

'अच्छा और सही कहा है। किसका शेर है यह?'

'यह मुझे नहीं मालूम।''' मियाँ दिलगीर पहले छन्नूलाल 'तरब' थे, यह बात मुझे आज ही मालूम हुई।'

'जी हाँ, वह छन्नूलाल 'तरब' ही थे। इस मौके पर तरब साहब का जिक्र इसीलिए मेरी जबान पर आ गया''' और नवाब साहब रुक कर किसी ख्याल से उलझ गये। कुछ देर हो गई।

मिरजा ने उत्सुकता से कहा—'जनाब किस ख्याल में डूब गये? वह बात तो अधूरी ही रह गई।'

जमालुद्दौला संभल कर बोले—'मिरजा साहब, इस नापायदार दुनिया में मेरा वजूद लखनऊ के लोगों के लिए आश्चर्य भरा तमाशा बन गया था। लोगों ने अपनी आँखों ऐसा सुन्दर रुपवान बच्चा नहीं देखा था। माँ बता रही थीं कि सबेरे से पहर रात गये तक मुझे देखने के लिए लखनऊ के मर्द-औरतों का ताँता बँधा रहता था। मेरे सौन्दर्य को देख कर लोगों की आँखों को ठण्डक प्राप्त होती थी। बड़े-बूढ़ों के आर्शीवाद गूंज जाते थे। दुआओं के लिए हाथ उठ जाया करते थे। मेरी दादी क्षण पर क्षण राई-नोन उतारा करती थीं।

खैर, जब मैं बादशाह सलामत के मुलाहजे के लिए लाया गया तब तरब साहब ने भी मुझे देखा। मेरे रूप सौन्दर्य को देख कर वह इतने प्रभावित हुए कि वहीं बैठे-बैठे एक लम्बी नज्म लिख कर महफिल में पढ़ कर सुनाई। बादशाह

सलामत को तरब साहब की वह नज्म बहुत पसंद आई। सभी लोगों ने मुक्त-कंठ से उसकी तारीफ की थी। लालाजी ने तरब साहब की उस कविता को सुन्दर अक्षरों में लिखा कर तथा चौखटे-शीशे में सजा कर घर के एक कमरे में यादगार की तरह लटका रखा था। होश संभालने और पढ़ने-समझने लायक हो जाने पर मैंने भी उस नज्म को अनेक बार पढ़ा था। अर्से तक वह हमारे यहाँ सुरक्षित रही। फिर जिन्दगी के दूसरे बहावों के साथ जाने कहाँ बह गई।

'अगर तरब साहब की वह नज्म जनाब के जहन में हो तो सुनाइए।' मिरजा ने कहा।

'मिरजा साहब उस जवानी के आलम में तो वह पूरी नज्म मेरी जबान पर थी। अक्सर अपने दोस्तों को सुनाया करता था। इक्कीस शेरों की नज्म थी। मगर अब वह बिलकुल ही भूल गई। सिर्फ उसके बीच के दो-तीन शेर याद में है।'

'उन्हीं दो-तीन शेरों को सुना दीजिए। मेरी तसल्ली के लिए वही काफी होंगे।'

'बेहतर है सुनिए—

'अदा हो शुक्र तेरा किस जबान से यारब,
निहाल कर दिया हुस्न-व-जमाल दिखलाकर।
सुनी थी यूसुफे कनआं की हुस्न जेबाई,
मगर कहानियों में रह गई वह शरमा कर,
जिसे हो हुस्ने मुजस्सिम का देखना मंजूर,
चिरंजीलाल का नौजाद देख ले आकर।'

'वाह, नमूने के ये तीन शेर ही कमाल के हैं। पूरी नज्म में तो खुदा जाने क्या जौहर भरे रहे होंगे।' मिरजा ने कहा—'तरब साहब ने एक ही काफिये में नज्म लिखी थी। अच्छी तबीयत पाई थी।'

'अजी मिरजा साहब, उन्होंने अपनी उस नज्म में मेरा पूरा नक्शा खींच दिया था। एक-एक अंग का वर्णन करके सौन्दर्य का साक्षात रूप सिद्ध कर दिया था। नज्म क्या थी एक खूबसूरत रंगीन तस्वीर थी।···खैर तरब साहब की नज्म सुनने के बाद बादशाह सलामत अपने महलों को तशरीफ ले गये। लेकिन जलसा बराबर उसी तरह चलता रहा। नाच-गाना और खेल-तमाशे उसी तरह चलते रहे। दूसरे दिन सुबह दिन चढ़ जाने के बाद जश्न समाप्त हुआ।'

इसके बाद नवाब साहब तकिए से टिके कुछ देर तक खामोश बैठे रहे, फिर संभल कर कहा—'मिरजा साहब, मेरे उस शिशु जीवन के सिलसिले की एक छोटी-सी कहानी भी सुन लीजिए। इस कहानी को एक बार माँ ने बड़े भरोसे के साथ मुझे सुनाया था। कहती थीं—'लखनऊ के मोहल्ले सआदतगंज में खैरातन नाम की एक बुढ़िया रहती थी। उसकी उम्र कोई सत्तर-पचहत्तर वर्ष की थी। मगर चलने-फिरने में मजबूत थी। आँखें, कान और दिल-दिमाग भी सही-सलामत थे। खैरातन बुआ बड़ी

पाक दामन, रोजा-नमाज की पक्की पाबन्द। बड़े संयम नियम के साथ जीवन व्यतीत करने वाली थी। इसके अलावा पढ़ी-लिखी, इल्म नजूम की बहुत बड़ी ज्ञाता थी। किसी के चेहरे पर नजर डाल कर उसके भाग्य की रेखाओं को पढ़ लेना उसका विशेष गुण था। इसलिए लोग उसकी बहुत इज्जत किया करते थे। लेकिन ख़ैरातन बुआ बहुत कम लोगों से मिलती थी। मनमौजी थी। बुलाने से किसी के घर नहीं जाती थी। मौज आ जाती तो बिना बुलाये बे जान-पहचान वाले के यहाँ भी पहुँच जाया करती थी। इसी प्रकार यदि कोई उससे अपनी किस्मत का लिखा पूछता तो वह मौन धारण कर लेती थी और जी में आ जाता तो सब खोल कर रख देती थी। उसका बयान किया एक-एक अक्षर सही होता था। कभी किसी से न कुछ चाहती न माँगती थी। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की सौतेली माँ नवाब बादशाह बेगम ख़ैरातन बुआ की मुरीद थीं। उसके गुणों पर मुग्ध थीं। गुजर-बसर के लिए सौ रुपया महीना बाँधे हुए थीं। ख़ैरातन बुआ का विशेष कोई खर्च भी नहीं था। एक वक्त केवल आधा पाव भुनी सूजी, पाव भर दूध में घोल कर और थोड़ी सी शकर मिला कर पी लिया करती थी। बेगम के सौ रुपयों में से एक चौथाई अपने खाने-पीने में खर्च करके बाकी सब गरीब मोहताजों को ख़ैरात कर दिया करती थी।

'ख़ैरातन बुआ को लड़कों से अधिक प्रेम था। जब कभी वह घर से बाहर निकल कर शाही महलों या किसी दूसरे के घर जाने का इरादा करती थीं, तो कुछ छुहारे, बादाम, किशमिस और मखाने अपने आँचल के छोर में अवश्य बाँध लिया करती थी। उसे देखते ही लड़के दौड़ पड़ते। रास्ता रोक कर खड़े हो जाते। कोई उसकी लाठी पकड़ लेता, कोई पैर पकड़ता और सबकी एक आवाज सुनाई देती—'ख़ैरातन बुआ सलाम, ख़ैरातन बुआ सलाम।' बुआ आँचल की गाँठ खोल कर सबको छुहारे-बादाम वगैर देकर कहती—'चलो हो गया सलाम। अब जाओ खेलो-कूदो।' लड़के प्रसन्न होकर रास्ता छोड़ देते और ख़ैरातन बुआ अपनी राह चल पड़ती थी।

'ख़ैरातन बुआ की मौज कभी-कभी उसे गोलागंज भी घसीट लाया करती थी। हमारे पड़ोस में जो नवाब जाफर अलीखाँ रहते थे उनकी वृद्धा माँ से ख़ैरातन का मेल-जोल था। आकर घन्टे दो घन्टे बैठ कर बड़े ज्ञान की बातें किया करती थी। दोनों की एक ही उम्र थी, इसलिए अच्छी घुटती थी। मेरी दादी ने ख़ैरातन बुआ को उन्हीं नवाब साहब के यहाँ देखा था और उनकी माँ के बताने से उसकी विशेषताओं से वाकिफ हुई थीं।

'अब एक दिन की घटना सुनिए। सबेरे का समय और जाड़ों के आखिरी दिन थे। एक पहर दिन चढ़ा होगा। आँगन में धूप फैल रही थी। मेरी माँ मुझे गोद में लिए आँचल से ढाँके दालान में बैठी दूध पिला रही थी। उस समय मेरी आयु का दसवाँ महीना चल रहा था। दादी दूसरी दालान में बैठी कुछ सीना सी रही थी। तभी ख़ैरातन बुआ लाठी टेकती हुई आँगन में आकर खड़ी हो गई और इधर-उधर निगाह घुमाने लगी। 'दादी ने देखा और अपना काम छोड़ कर उसके पास पहुँचीं। हाथ पकड़ कर अपने पास दरी पर बैठा लिया।'

'इत्तमीनान से बैठ कर खैरातन बुआ ने दादी से पूछा—'जमालुद्दौला कहाँ है ?'

'कौन जमालुद्दौला ?' दादी ने अनभिज्ञता के भाव से कहा —'यहाँ तो कोई जमालुद्दौला नहीं रहते। शायद तुम घर भूल गई हो। तुम्हारे वे जमालुद्दौला किसी दूसरे मकान-हवेली में रहते होंगे।'

'ऐ, क्या मैं होश में नही हूँ या मुझे आँखों से दिखाई नहीं देता जो मैं मकान भूल जाऊँगी ? क्या यह लाला चिरंजीलाल का घर नहीं है ?' खैरातन ने कहा।

'उनका घर तो यही है।'

'और तुम चिरंजीलाल की कौन हो ?'

'मैं उनकी माँ हूँ। वह हमारे बेटे हैं ?'

'तुम्हारी बहू कहाँ हैं ?'

'वह क्या सामने दालान में बैठी हैं।'

'खैरातन ने माँ की तरफ नजर उठा कर देखा। फिर दादी की तरफ मुड़ कर कहा—'तुम्हारे पोता पैदा हुआ है न ?'

'हाँ, तुम्हारी दुआ है।' दादी ने कहा।

'वही तो है जमालुद्दौला। कहाँ है वह ? लाओ जरा उसे देखूँ। उसका क्याफा पढ़ूँ। कल रात में मैंने उसे ख्वाब में देखा था। उसी को देखने के लिए सुबू-सुबू भागी चली आई हूँ।'

'दादी ने पुकार कर माँ की तरफ देखा। दोनों की नजरें मिलीं। और नजरों-नजरों में तय हो गया कि बच्चे को खैरातन की गोद में दे देना बुरा नहीं है। बच्चे को दुआएँ ही मिलेगी। माँ ने बच्चे को लाकर खैरातन बुआ की गोद में दे दिया। खैरातन के मुख पर प्रसन्नता दौड़ पड़ी। सिर पर हाथ फेरा, माथा चूमा और बलाएँ लीं—'ऐ, यूसुफे सानी, हुस्न-व-जमाल के मालिक ! तुम्हारा ये रूप ही तो एक दिन तुम्हे जमालुद्दौला बनायेगा। फिर गौर से चेहरे को देखा। और दादी की तरफ मुड़ कर कहा—'ऐ, बड़ी उम्र है तुम्हारे पोते की। इसकी किस्मत में नवाबी लिखी है।··· लेकिन उसमें दीन-ईमान का कुछ कलंक शामिल है···इसकी जिन्दगी में करवटें बहुत हैं···फिर भी इसका खुदा मददगार है।' उसने एक बार फिर बच्चे को चूमा-चाटा, फिर माँ की गोद में देते हुए कहा—'परियाँ इसे बहुत चाहेंगी। मगर उनका चाहना इसके हक में बेहतर ही होगा। खुदा हाफिज।'

'दादी ने पाँच अशर्फी लाकर नजर की। खैरातन मँह बना कर बोली—'ऐ, यह क्या ? मुझे इनकी न लालच है न जरूरत। मेरे लिए ये अशर्फियाँ मिट्टी की हैं। रखो उधर।' और खैरातन बुआ ने लाठी उठाई, टेकती हुई बाहर चली गई।

'खैरातन बुआ का पढ़ा और बताया हुआ क्याफा दादी और माँ के कुछ समझ में आया कुछ नहीं भी आया। रात में जब लालाजी दूकान से वापस आए। तो दादी ने खैरातन बुआ का सारा किस्सा उन्हें सुनाया। लालाजी ने जवाब में सिर्फ इतना कहा—'उसकी बातें वही जाने।'

चार

'मिरजा जफर हुसैन साहब, अभी तक मैंने आप को अपने जन्म और उसी सिलसिले की वे बातें सुनाईं जिन्हें मैंने होश-हवास संभालने पर अपनी दादी, माँ, लालाजी और पड़ोस के दूसरे लोगों की जबानी समय-समय पर सुनी थीं। सुनी हुई और देखी हुई बातों में जो फर्क हुआ करता है उसे आप जानते होंगे ? कहने का मतलब यह है कि मेरे इस बयान में भी वह अन्तर माना जा सकता है ?...'

मिरजा बीच में बड़े इतमीनान के साथ बोल उठे—'आप का फरमाना बजा है। लेकिन मेरे लिए तो आपका बयान पत्थर की लकीर की तरह है। मैं तो उसका हर्फ-हर्फ सही समझ रहा हूँ। शक-शुभा की कहीं गुंजायश नजर नहीं आती।'

'असल में मेरी आपबीती कहानी अब शुरू होती है।' जमालुद्दौला ने कहा—'मेरी जिन्दगी ने पहली करवट बदली थी। मेरी उम्र तेरह-चौदह वर्ष की हो चुकी थी और उसके साथ कुछ घर का, कुछ बाहर का वातावरण भी बदल चुका था। घर में ये उलट-फेर हुआ था कि मेरी दादी का स्वर्गवास हो चुका था। माँ पचास पार कर चुकी थीं और लालाजी साठ छू रहे थे। लेकिन लालाजी की दूकान और दूकानदारी उसी तरह चमक रही थी। उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ा था।

'घर के बाहर का फर्क यह था कि लखनऊ की बादशाहत को दो धक्के लग चुके थे। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर को ऐन जवानी में जहर खिला कर खतम कर दिया गया था...'

मिरजा ने फिर बीच में अपना सवाल पेश कर दिया—'वह किस तरह ?'

'इस बारे में कुछ अर्ज नहीं कर सकता।' उन्होंने कहा—'क्यों कि उस वक्त मैं बहुत छोटा यानी पाँच-छह वर्ष का ही था। उनके मरने और तख्त नशीनी के सिल-सिले में एक हंगामा उठ खड़ा होने का जिक्र एक बार नौ-दस वर्ष की उम्र में एक बूढ़े पड़ोसी की जबान से कहानी के तौर पर सुना था। जो इस वक्त कुछ याद नहीं आ रहा। आप चाहें तो लखनऊ के बादशाहों की किसी तवारीख में उस उलट-फेर का मुलाहजा फरमा सकते हैं। खैर, नसीरुद्दीन हैदर के बाद लखनऊ के तख्त पर मोहम्मदअली शाह बैठे। वह बहुत बूढ़े थे। पाँच वर्ष ही हुकूमत करके खुदागंज में जाकर आबाद हो गये। उनके बाद उनके लड़के अमजदअली शाह तख्त नशीन हुए और उनके बड़े बेटे वाजिदअली शाह वलीअहद के पद पर आसीन हुए। इसी जमाने में मेरी जिंदगी ने पहली करवट बदली थी।

'अमजदअली शाह की बादशाहत कोई बादशाहत न थी। एक तरह से मौलवी मुल्लाओं और खुदापारस्तों का जमाना था। लखनऊ का पिछला राग-रंग समाप्त हो

गया था। मेरे लालाजी अकसर कहा करते थे कि यह जमाना बैठ कर माला जपने का है। लेकिन वलीअहद बहादुर की रंगीन तबियत की धूम थी और लोग कहा करते थे कि जब वलीअहद लखनऊ, के तख्त पर कदम रखेंगे तो पिछला जमाना फिर लौट आएगा। लखनऊ में फिर से रंग बरसने लगेगा। और किसी अंश तक लोगों का यह कहना सच भी साबित हुआ।' तकिए का सहारा लेकर जरा देर खामोश रहे फिर संभल कर बोले—'अच्छा तो मिरजा शैदा साहब, पन्द्रह वर्ष की उम्र को पहुँचते-पहुँचते मेरी शिक्षा खतम हो गई थी, वह जमाना फारसी-उर्दू का था। लखनऊ में आम तौर पर लड़कों की तालीम उर्दू-फारसी से शुरू हुआ करती थी। मुसलमान और कायस्थ तो ईरानी-फारसी के कीड़े थे। बड़ी-बड़ी प्रामाणिक गहरे विचारों और ख्यालों की किताबें लिखते हर गली कूचे में दो-चार शायर मौजूद थे। मुशायरों की धूम रहती। गजलें लिखी और पढ़ी जातीं। आतिश और नासिर की उस्तादी का डंका बज रहा था। दोनों उस्तादों के सैकड़ों शागिद थे जो एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए उधार खाये बैठे रहते थे। जबान की रंगीनी और बोली का तो यह हाल था कि लखनऊ के कुंजड़े-कसाई और घसियारे तक लच्छेदार उर्दू बोलते थे। शाही दफ्तरों में कुल काम-काज उर्दू में होता था। लखनऊ की रेजीडेन्सी में जमे हुए अंग्रेज रेजीडेन्ट के दफ्तर तक में उर्दू-फारसी का बोलबाला था।

'हिन्दी भाषा सिर्फ पंडितों-ब्राह्मणों और महाजनों के यहाँ चलती थी। वही पढ़ते-सीखते थे। कारण यह था कि महाजनों, सेठ-साहूकारों और दूकानदारों के बही-खाते, लेखा- जोखा हिन्दी में ही लिखा-पढ़ा जाता था। हमारे लालाजी की दूकान में द्वारकानाथ मुनीम थे। वह हिन्दी के अच्छे जानकार और सुलेखक थे। लालाजी हिन्दी उर्दू दोनों भाषाएँ जानते थे। मगर कामचलाऊ। मेरी माँ भी हिन्दी पढ़ी थीं। मैंने उन्हें कुछ लिखते तो कभी नहीं देखा, लेकिन पढ़ते रोज देखा करता था। नहा-धोकर जब वह श्रीकृष्ण की झाँकी के सामने पहुँचती थीं और पूजा आराधना किया करती तो उस समय सुखसागर, प्रेमसागर जो भागवत पुराण के हिन्दी अनुवाद कहे जाते थे, उनका पाठ करना कभी नहीं भूलती थीं। घन्टे-आधा घन्टे जम कर पढ़ा करती थीं। सूरदास के जाने कितने भजन उनको जबानी याद थे। अकसर संध्या आरती के समय गाया करती थीं। और मुझे भी गाना सिखाती थीं। यही कारण था कि मेरी तालीम की शुरुआत हिन्दी भाषा से हुई थी। मैं चार वर्ष का था जब माँ ने हिन्दी की बारहखड़ी मुझे सिखा पढ़ा दी थी। कायदे के साथ छः वर्ष की उम्र में मुझे पढ़ने के लिए बैठाया गया था। हमारे मकान के ठीक सामने सड़क उस पार बेनी प्रसाद बाजपेई का मकान था। बाजपेई जी हिन्दी के अच्छे विद्वान और कवि थे। वही मेरे गुरु बने थे। उनका छोटा लड़का दुर्गाप्रसाद और मैं साथ-साथ पढ़ा करते थे। दुर्गाप्रसाद मुझसे एक साल बड़ा था।'

जमालुद्दौला ने नौकर को आवाज दी। एक गिलास पानी तलब किया। कुछ ही क्षणों में नौकर कायदे से थाल में गिलास रख कर और रूमाल से ढाँक कर आब-

खासा ले आया। उन्होंने पानी पी कर पान की एक गिलौरी मुँह में रखी। कुछ देर उसका मजा लिया। फिर उगालदान में उसे उगल कर रुमाल से मुँह पोंछा और इत-मीनान के साथ मिरजा जफर हुसैन की तरफ देख कर बोले—'अच्छा तो मिरजा साहब, चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र को पहुँचने तक मेरी पढ़ाई खतम हो चुकी थी। मैं हिन्दी का पंडित तो नहीं बना था लेकिन काम-काज और मतलब के लायक काफी हिन्दी सीख चुका था। माँ की वह पाठ्य-पुस्तकें—सुखसागर, प्रेमसागर धड़ाके से पढ़ता-समझता था। सूरदास के अनेक पद मुझे याद हो गये थे। उन्हें अकसर मैं आरती के समय गाया करता था। मेरा गला गाने योग्य और लोचदार था। पद सुन कर माँ बहुत खुश हुआ करती थी। हाँ, इस मौके पर एक बात आपको बतलाना मैं भूल गया। क्या कहूँ मिरजा साहब, बुढ़ापे की याददाश्त ही तो है। वह भूली हुई बात यह है कि हिन्दी की पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ मैंने कुछ टूटी-फूटी उर्दू भी सीख-पढ़ ली थी। हमारे पड़ोस में जो नवाब जाफर अली खाँ रहते थे उनके एक छोटे साहब-जादे राहत अली खाँ से मेरा याराना था। राहत अली को शुरू से उर्दू-फारसी की तालीम दी गई थी। मुझसे दो ढाई साल बड़ा भी था। उसकी सोहबत में मैंने कुछ उर्दू का ज्ञान पैदा किया। वहीं एक दूसरा शौक मुझमें पैदा हो गया।

'माँ-बाप का लाड़ला बेटा था। न कोई छेड़ने वाला, न आँख दिखाने वाला। जिस शौक को चाहूँ अपनाऊँ और जिस बहाव में चाहूँ बहा करूँ। लालाजी दूकान में रहते थे और माँ घर के अन्दर। मैं बाहर रह कर जो चाहूँ करता रहूँ। राहत अली को सितार बजाने और ठुमरी गाने का शौक पैदा हुआ। नवाब का बेटा था। उसके शौक को कौन रोक सकता था। बल्कि बढ़ावा ही मिला। बड़े नवाब साहब यानी जाफर अली खाँ को जब इस बात का पता चला तो उसी दिन एक खूबसूरत सितार आ गया और हैदर अली कव्वाल सिखाने के लिए मुकर्रर हो गया। ठुमरियाँ गाई-बजाई जानें लगीं। महफिल जमने लगी। शायद आपने कदर-पिया का नाम सुना हो····'

'माफ कीजिएगा, मुझे कदर-पिया की कोई वाकफियत नहीं है। आप ही फरमाएँ वह कौन थे?' मिरजा ने कहा।

'कदर-पिया' नवाब वजीर मिरजा वालाकदर का उपनाम यानी तखल्लुस था। वजीर मिरजा, कैवानजाह नवाब मोहम्मद अलीखाँ के साहबजादे और बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की एक बेगम मलिका जमानिया के पोते थे। कदर-पिया हिन्दी भाषा के माहिर थे। अकसर ठुमरियाँ लिखा करते थे और उस जमाने में महफिलों में उनकी ठुमरियाँ खूब गाई जाती थीं। राहत अली की महफिलों में भी उन्हीं की ठुमरियाँ गाई जानें लगीं। आप जानते हैं कि सोहबत का रंग फौरन जम जाता है। चाहे वह अच्छी सोहबत हो या बुरी। गरज मैं भी सितार बजाने और ठुमरियाँ गाने लगा। मेरा गला लोचदार था। लोगों को बहुत पसंद आने लगा। आगे चल कर मैंने भी

सितार खरीद लिया। घर में बैठ कर बजाने-गाने लगा। और राहतअली से भी एक कदम आगे बढ़ गया ....'

'वह किस तरह ?' मिरजा ने छेड़ा।

'अभ्यास से मेरी सितारनवाजी और ठुमरियों की अलाप ने मोहल्ले में धूम मचा रखी थी। राहतअली खाँ की महफिल का रंग फीका पड़ने लगा था। यार दोस्त हर समय सुनने के ख्वास्तगार रहते थे। एक दिन रामशंकर निगम नामी एक दोस्त की मौजूदगी में मैंने सितार बजा कर एक ठुमरी गाई—'पिया बिन कैसे कटें रतियाँ।' सुन कर वह झूम-झूम गया। फिर गम्भीर होकर बोला—'जीवनलाल, मैंने इस ठुमरी को बड़े मुन्नेखाँ के मुँह से एक महफिल में सुना था। संगीत के ख्याल से इस वक्त तुमने वही ठुमरी गाकर कमाल कर दिखाया है। बड़े मुन्नेखाँ तुम्हारे पीछे खड़े नजर आ रहे हैं। सिर्फ बताने की कमी है। अगर कहीं तुमने बताते हुए ठुमरी को गाया होता तो चौगुना लुत्फ आता। मेरी मानो, तुम बताना और सीख लो। सोने में खुशबू पैदा हो जायगी।'

'मजाक करते हो, रामशंकर ?' मैंने कहा—'बताना रंडियों का काम है।'

'रंडियाँ बताना क्या जानें ? वह तो सिर्फ हाथों या आँखों के इशारे करना जानती हैं। बहुत हुआ तो घूँघट उठा कर नजरें लड़ाना जानती हैं। बताना कत्थक जानते हैं। जो चीज गाई जाती है उसका रूप आँखों के आगे खड़ा करके दिखा देते हैं।' उसने कहा।

'तो क्या मैं कत्थक या पेशेवर गाने वाला हूँ। जो गा-बता कर लोगों को रिझाया करूँगा। मैं तो अपने शौक को पूरा करता हूँ।'

'तुम्हारा शौक अभी पूरा कहाँ है ? उसमें बताने की कमी तो मौजूद है।' रामशंकर बोला—'फिर शौक के लिए किसी गुण-हुनर को हासिल कर लेने में क्या बुराई है। गाने और बताने का जोड़ा है। एक के बगैर दूसरा लंगड़ा मालूम होता है। मैं तुमसे यह नहीं कहना कि तुम सरे बाजार गाते-बताते फिरो।'

'मेरे दिल में रामशंकर की सलाह जम गई। पूछा—'किससे सीखा जाय ? लखनऊ में कौन बताने का उस्ताद है ?'

'वह बोला—'यह मैं बता सकता हूँ। बताने के उस्ताद लखनऊ के मशहूर कत्थक, दुर्गाप्रसाद और ठाकुर प्रसाद हैं। बिन्दादीन और कालिकादीन दुर्गा प्रसाद के लड़के हैं। वह दोनों भी गाना-बताना सीख कर होशियार हो रहे हैं।' फिर बड़े आग्रह के साथ कहा—'जीवन तुम्हें मेरा कहना मानना पड़ेगा। तुम उन कलाकारों से भाव प्रदर्शन की कला अवश्य प्राप्त कर लो।'

'मिरजा साहब, मेरे गाने-बजाने के शौक में बताने का शौक जबरदस्ती शामिल हो गया। मैंने दुर्गा प्रसाद के घर का अता-पता मालूम किया और उनका शागिर्द बन कर गाने और बताने की कला सीख ली। घर में जब अकेला हुआ करता तो बड़े आईने के सामने बैठ कर गाया-बताया करता और खुद मुग्ध हो जाया करता था।'

'आप उस हुनर को भूले तो न होंगे ?' मिरजा ने थोड़ा मुस्करा कर कहा—'अब भी उसका इजहार कर सकते होंगे ।'

जमालुद्दौला भी मुस्करा कर बोले—'अरे, अब इस बुढ़ापे में क्या गाऊँ बताऊँगा । यह सब उम्र के साथ हुआ करता है ।···खैर आगे का जिक्र सुनिए । अब वह जमाना आ गया था जब मेरी जवानी की उठान अंगड़ाइयाँ ले रही थी और मेरे हुस्न-व-जमाल में चार चाँद लग रहे थे । नजर-बद से बचाने के लिए मेरी माँ ने किसी मौलवी-मुल्ला से बनवा कर एक तावीज जबरदस्ती मेरे गले में पहना रखी थी । आप से क्या अर्ज करूँ, मेरी जवानी की वह उठान लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा कर देती थी । जिस किसी की निगाह मुझ पर पड़ती, टकटकी बाँध कर रह जाता था । लखनऊ के शाही घराने के शाहजादे मेरी सुन्दरता के आगे झक मारते थे । उस वक्त काशीराम एक शाही चित्रकार थे । लालाजी की उनसे काफी जान-पहचान थी । अक्सर हमारे यहाँ आया करते थे । उन्होंने मेरी एक रंगीन तस्वीर अपनी कलम से तैयार करके दी थी । उस तस्वीर को देखने से मेरी वह जवानी बोलने और बातें करने लग जाती है।···'

'मिरजा जफर हुसैन उत्सुकता से बोल उठे—'अगर जनाब, मुनासिब समझें तो इस नाचीज को वह तस्वीर दिखला दें । यों तो इस वक्त, इस उम्र में भी आप का हुस्न-व-जमाल कुछ कम नहीं नजर आता, मगर उस शबाब का आलम कितने गजब का था ? बन्दा भी उस पर एक निगाह डाल ले ।'

'अरे मिरजा साहब, अब वह तस्वीर मेरे कब्जे में कहाँ है ?'

'क्यों, क्या उस तरब साहब की नज्म की तरह वह भी खो गई ?'

'खो तो नहीं गई । उन्होंने थोड़ा मुस्करा कर कहा—'उस पर वहीदन ने कब्जा कर रखा है । जबरदस्ती अपने घर उठा ले गई है । कहती है कि मैं तुम्हारे दीदार के बगैर जिन्दा नहीं रह सकती । जब तक घर में रहती हूँ, यहाँ नहीं आती, उस तस्वीर को देख कर ही दिल को ढाढ़स बँधाए रहती हूँ । अब बोलिए, उसकी इस मोहब्बत को कैसे ठुकराया जाय ?'

मिरजा मुस्करा कर बोले, 'वहीदन भी आपको खूब मिल गई है ।'

जमालुद्दौला जरा देर चुप रहे फिर बोले—'अच्छा जनाब, तो अब मेरी उम्र-बीस-इक्कीस साल को पहुँच गई थी । उसके साथ तबियत में कुछ-कुछ आवारगी भी पैदा हो गई थी । दिन में खाना खाकर जो निकलता तो चिराग जलाने पर ही घर वापस आता था । सारे दिन लखनऊ शहर का चक्कर लगाता रहता । हर मोहल्ले और गली-कूचे में कोई न कोई मेरा दोस्त मौजूद था । पहुँच कर किसी के साथ गंजीफा खेलता तो किसी के यहाँ जम कर सितार बजाता और ठुमरियाँ गाता । दोस्तों को मेरी सोहबत बहुत पसन्द थी । मेरे एक दोस्त नवाबजादे सुलतानअली खाँ थे । गोलागंज में परली तरफ रहते थे । मुझसे एक साल बड़े थे । बाप के अकेले लाड़ले बेटे थे । माँ का इन्तकाल हो चुका था । घर में काफी दौलत मौजूद थी । अनाप-

शनाप खर्च किया करते थे। कोई हाथ पकड़ने वाला न था। उनके वालिद नवाब साहब बादशाह अमजदअली शाह के दरबारी-मुसाहब थे। ज्यादातर दरबार में ही हाजिर रहा करते थे। घर में सुलतान मियाँ गुलछर्रे उड़ाया करते थे। एक दिन का जिक्र है, उन्होंने एक रंडी को मुजरे के लिए बुलाया था। मगर अभी तक वह आई न थी। इन्तजार हो रहा था। मेरे पहुँचने के कुछ देर बाद वह आई। जहूरन नाम था। पास ही कहीं रहती थी। उसकी उम्र अठारह-उन्नीस साल की थी। रंग कुंदन की तरह दमक रहा था। नाक नक्शे भी चौकस ही थे। अतलस का पाजामा और उस पर सुर्ख रंग की पेश्वाज पहने थी। बड़े नाज-अन्दाज और नखरों के साथ मुस्कराती हुई आकर सुलतान मियाँ के सामने बैठ गई। अभी तक उसके साजिन्दे नहीं आये थे।

इसलिए मुजरा शुरु न हो सका। चुहलबाजी होने लगी। मैं सुलतान की बाँई तरफ तकिए का सहारा लिए चुपचाप बैठा था। मगर जहूरन बार-बार मेरी तरफ देख रही थी। मैं नजरें नीची किए था। इसलिए एक बार भी नजर से नजर न टकरा सकी। आखिर जहूरन चुप न रह सकी। सुलतान की चुहलबाजी को छोड़ कर वह मेरी तरफ मुखातिब हो कर बोली—'अजी साहब ? आप क्यों मुझसे नाराज हैं ? क्यों मुझे तड़पा रहे हैं ? आप के तीर तो मेरे कलेजे के पार हो रहे हैं और आप ऐसे बेदर्द हैं कि खामोश नीची नजरें किए बैठे है। अपने तीरों को निकालने की जरा भी कोशिश नहीं करते ! ये बेरुखी तो अच्छी नहीं है।'

मैंने उसके कहने का कोई जवाब न दिया। उसी तरह खामोश बैठा रहा। जहूरन अदा के साथ बोली—'आप के नजदीक किसी के इश्क की क्या यही कदर है ? अच्छा यही बता दीजिए कि आप रहते कहाँ हैं। दौलतखाना किस मोहल्ले में है ? क्योंकि बीमार तो दवा चाहेगा ही।'

सुलतान ने कहा—'इसी गोलागंज में तो रहते हैं ये। लाला चिरंजीलाल के साहबजादे हैं। जीवनलाल इनका नाम है।'

'मगर इन्होंने तो आज मेरे जीवन को लूट लिया।' जहूरन ने एक लम्बी साँस खींच कर कहा।'

मिरजा जफर हुसैन बोल उठे—'मालूम होता है, उसे आप से इश्क हो गया था ?'

'जो कुछ भी हो, इसे मैं नहीं जानता।' जमालुद्दौला ने कहा—'जहूरन की यह छेड़-छाड़ मुझे पसंद नहीं आ रही थी। और शाम भी हो रही थी, इसलिए एकदम मैं उठ खड़ा हुआ और चलने के लिए तैयार हो गया। सुलतान ने बहुत रोका मगर मैं न रुका। कमरे से बाहर हो गया। जहूरन ललचाई नजरों से मुझे ताक रही थी।'

'तब तो जनाब वाकई बड़े बेदर्द साबित हुए।' जफर हुसैन ने मुस्करा कर कहा।

'अब उसके दूसरे दिन का वाकया सुनिए। सुबह का वक्त था। मैं अपने कमरे में अकेला बैठा सूरदास का भजन याद कर रहा था। लालाजी नाश्ता करके

दूकान जा चुके थे। माँ किसी काम को हाथों में लिए अँगनाई की दालान में बैठी थीं। तभी जहूरन की माँ मेरे घर का पता पूछती हुई जाकर अँगनाई में खड़ी हो गई। माँ ने उसे देखा और अपना काम छोड़ कर उसके पास आ गईं। उसका परिचय पूछना ही चाहती थीं कि जहूरन की माँ ने पूछा—'ऐ बीबी, लाला चिरंजीलाल का मकान यही है न ?'

'हाँ', माँ ने कहा।

'और जीवनलाल आप ही के साहबजादे हैं ?'

'हाँ, वह मेरा ही पुत्र है। क्यों ?' माँ ने कुछ आश्चर्य से उसके चेहरे पर नजर जमा दी।

जहूरन की माँ बोली—'ऐ मेरी लड़की तड़प रही है। रात भर सोई नहीं। आपके वह साहबजादे कहाँ हैं ?'

'तुम कौन हो ? कहाँ रहती हो और क्यों तुम्हारी लड़की तड़प रही है, जरा हमारी इस उलझन को तो सुलझाओ ?' माँ ने कहा।

'ऐ मैं एक पेशेवर कसवी हूँ। यहीं गोलागंज के उस छोर पर रहती हूँ। जहूरन मेरी इकलौती लड़की है। खुदा ने उसे नाचना-गाना सिखला कर जवानी के दिन दिखाए हैं। लेकिन कल उसने कहीं तुम्हारे साहबजादे को देख कर आँखों में भर लिया है। चोट खा गई है। उनकी फिराक में तड़प रही है। इसलिए मैं भागी चली आई हूँ कि आपके बेटे जरा चल कर उसे ढाढ़स बँधा दें। वरना उसकी जिन्दगी खराब हो जायगी।'

'माँ बड़े असमंजस में पड़ गईं कि क्या जवाब दूँ ? फिर उसे टालने के विचार से कहा--'अभी तो वह घर में नहीं है। तुम जाओ, अपनी लड़की को समझाओ-बहलाओ। जब वह घर आयगा तो समझूँगी क्या मामला है।' अगरचे माँ को मालूम था कि मैं अपने कमरे में हूँ। लेकिन उन्होंने उसे टालने के लिए ऐसा कह दिया।

'जहूरन की माँ जाते हुए बोली—'समझना क्या है। इश्क मोहब्बत की बात है। साहबजादे को हमारे घर भेज देना। हमारा मकान अजीमुल्ला कुमैदान के मकान की बाँईं तरफ है। मुहल्ले के सभी लोग जानते हैं।' और वह चली गई।

माँ ने उस वक्त मुझसे कुछ नहीं कहा। अपने काम में जुट गईं। लेकिन मैंने अपने कमरे में बैठे-बैठे उन दोनों की बात-चीत सुन ली थी। रात में जब लालाजी दूकान से घर आए तो माँ ने उनको सारी वारदात सुना कर कहा कि कल से जीवन को आप अपने साथ दूकान ले जाया करें। उसे दूकान में बैठना और कुछ काम-काज सिखाएँ। बीस बरस का हो गया है, कब दूकान में बैठना सीखेगा ? बाद में दूकान तो उसी को संभालनी पड़ेगी। इसके साथ एक बात और करें। अब उसके पैरों में घर-गृहस्थी की बेड़ी डालने की भी फिक्र करें। कोई अच्छी लड़की मिल जाय तो उसका ब्याह भी कर दें।' दूसरे दिन से मैं पिता जी के साथ दूकान जाकर वहाँ बैठने लगा। मेरी उस आवारगी का रास्ता एकदम बन्द हो गया।'

'और जहूरन के इश्क का क्या हुआ ?' मिरजा ने पूछा ।

'खुदा जाने उसका क्या हुआ । उस दिन के बाद न मैंने कभी उसे देखा और न कभी किसी से उसकी पूछ-ताछ की । खैर दूकान में बैठना भी मेरी जिन्दगी की एक करवट थी । वहाँ मुझे कोई चक्की तो पीसनी नहीं पड़ती थी । नौकर-चाकर मौजूद थे जो कपड़े उठाते-धरते थे । बही-खाता लिखने और लेखा-जोखा करने के लिए मुनीम जी मौजूद थे । ग्राहकों से लालाजी निपटते रहते थे । मैं आराम से बैठा हुआ तमाशा देखा करता था । फिर मेरी दूकान पर छोटे टुटपुंजिये ग्राहक तो आते न थे । बँधे हुए ग्राहक थे, जो शाही महलों से लेकर शाही खानदान के नवाब रईस थे । वही लोग अपना खास आदमी भेज कर कपड़े मँगवा लिया करते थे । या कभी किसी बेगम की तलब पर नौकर के सिर पर कपड़ों का बोझ रखा कर लालाजी खुद साथ चले जाया करते थे ।'

तभी वहीदन आकर खड़ी हो गई । नवाब और मिरजा दोनों की निगाहें, उसकी तरफ उठ गईं । नवाब ने वहीदन से पूछा—'बीबी, आज तुम बेवक्त कैसे आ गई ?'

वहीदन जरा गर्दन में लोच देकर मुस्कराते हुए बोली—'ऐ, आप भूल गए, कल आपने कहा था न, कि रज्जब की नौचंदी को जयारत के लिए दरगाह चलेंगे । नौचंदी आज ही तो है ।'

'तो क्या इस वक्त दरगाह चला जायगा ? दरगाह चलने का वादा तो शाम का था । अभी तो हम दस्तरख्वान पर भी नहीं बैठे ?'

'तब दस्तरख्वान पर बैठने के लिए चलिए न ?' वहीदन ने कहा—'मैंने भी तो अभी खाना नहीं खाया । पेट में चूहे कूद रहे है ।' और वह हँस पड़ी ।

'अच्छा भई ? चलो दस्तरख्वान पर बैठें । वक्त भी हो गया है ।' नवाब साहब ने कहा ।

मिरजा शैदा ने उत्सुकता भरी नजर वहीदन के चेहरे पर डाल कर कहा—'बीबी वहीदन ? इस वक्त तुम अच्छी आ गईं । हमें आज मालूम हुआ है कि नवाब साहब की उठती जवानी की एक कल्मी बहुत खूबसूरत रंगीन तस्वीर तुम्हारे कब्जे में है । हम उसे देखने के मुश्ताक हो रहे हैं । किसी दिन उसे लाकर हमें दिखलाइए । हम तुम्हारे बहुत मशकूर होंगे ।'

वहीदन मुस्करा कर बोली—'बहलाती है दिल अपना अकेले में वहीदन, सीने से लगाकर वही तस्वीर हमेशा ।' फिर जरा गम्भीर होकर बोली—'मिरजा शैदा साहब ! नवाब की वह तस्वीर मेरी तनहाई की साथिन है । नवाब से दूर रहने पर वही मेरे दिल को तसल्ली देती है । वह पल भर के लिए भी अपनी जगह से नहीं हट सकती । आप अगर उसे मुलाहजा फरमाने के मुश्ताक हैं, तो किसी वक्त मेरे कोठे पर आकर देख लीजिए ।'

'बेहतर है ?' मिरजा ने कहा—'किसी दिन हाजिर हूँगा ।'

पाँच

दूसरे दिन की बैठक में—

जमालुद्दौला बोले—'मिरजा साहब, अब आप मेरे दूकान पर बैठने का एक लतीफा सुनिए। उस दिन लालाजी की तबियत कुछ नासाज थी। आप जानते हैं बुढ़ापे में इन्सान की तबियत काँटे की तोल हो जाती है। हवा के जरा से झोंके से काँटे के पलड़े इधर के उधर हो जाया करते हैं। उनकी भी तबियत का यही हाल था। और उस दिन वह दूकान नहीं आए थे। दूकान पर मैं बैठा था। मुनीम जी भी मौजूद थे। तभी नवाब ताजमहल का एक खास आदमी दूकान पर आकर बोला—'बेगम साहब ने पशमीना खरीदना चाहा है। हर किस्म का पशमीना लेकर महल में पहुँच जाइए।'

'मिरजा साहब, नवाब ताजमहल बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की एक बेगम थीं। निहायत खूबसूरत...'

'नवाब साहब, बीच में छेड़ने की गुस्ताखी माफ कीजिएगा।' मिरजा ने कहा, 'इस वक्त जनाब ने जो बेगम ताजमहल साहिबा का नाम लिया तो मैं अर्ज करने के लिए मजबूर हो गया। उनके कुछ हालात की मुझे बहुत दिनों से तलाश थी। इसलिए इल्तजा है कि जरा तफसील से बेगम साहिबा का हाल बयाम कर दीजिए। यानी वह कौन थीं, किस तरह बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के निकाह में आईं, क्या रंग रहा और आखिर में उनका क्या हश्र हुआ?'

'मेरी कहानी से तो नवाब ताजमहल का थोड़ा ही ताल्लुक है। मगर आप चाह रहे हैं इसलिए उसके बारे में अपनी जानकारी बयान करता हूँ।' नवाब ने कहा—'भज्जू नाम की एक रंडी हसनपुर-बंधवा की रहने वाली शहर लखनऊ में रहती थी। हुस्न-व-जमाल से मालामाल थी। उसकी एक लड़की थी जिसका नाम हुसैनी था। वह सौन्दर्य में अपनी माँ को सौ कदम पीछे धकेल रही थी। बिलकुल परी-सूरत थी। इसके अलावा गाने-नाचने में भी अपना जोड़ नहीं रखती थी। लखनऊ में उसके रूप-लावण्य की धूम मची हुई थी। बल्कि यों समझ लीजिए कि हुसैनी शमा थी और सारा लखनऊ, 'परवाना' बन कर उसके सौन्दर्य की आग में जल-बुझ रहा था। हुसैनी अकसर रईस नवाबों के यहाँ होने वाले शादी-ब्याह के जलसों में नाचने-गाने और मुजरा करने के लिए जाया करती थी। उसकी उम्र चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी। हजरत नसीरुद्दीन हैदर उसी साल लखनऊ के शाही तख्त पर बैठे थे। यानी सन १८२७ ईस्वी का जमाना था।' फिर जरा रुक कर बोले—'मिरजा साहब, यह सब कानों का सुना हुआ जिक्र है। खैर साहब, तो किसी जलसे में नसीरुद्दीन

हैदर की निगाह हुसैनी पर पड़ गई, । हजरत ने दिल फेंक तबियत पाई थी । देखते ही उस पर हजार जान से फिदा हो गये । चैन न पड़ी । दूसरे ही दिन बुला कर उससे निकाह पढ़ लिया । और खुर्शीद महल का खिताब अता फरमाया । इसके बाद एक दिन मौज में आकर अपने सर का ताज खुर्शीद महल को पहना दिया और नवाब ताजमहल का खिताब अता फरमाया । इसके अलावा एक करोड़ रुपया नकद और एक करोड़ के जेवर जवाहरात भी दिए । यह थीं बेगम नवाब ताजमहल ।'

जफर हुसैन बोले—'यह भी तो फरमाइए कि बाद में उनका क्या हश्र हुआ ?'

'वह भी सुन लीजिए ।' जमालुद्दौला ने कहा—'बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की मौत ऐन जवानी में जहर-खुरानी से हुई । उनके बाद उनके चचा मोहम्मदअली शाह बादशाह हुए । उनके बाद उनके लड़के अमजदअली शाह तख्तनशीन हुए । उनके मरने पर वाजिदअली शाह लखनऊ के सिंहासन पर असीन हुए । इस रद्दो-बदल में कुल दस वर्ष का समय गुजरा था । नसीरुद्दीन हैदर ने ताजमहल का छः हजार रुपया माहवार गुजारा मुकर्रिर किया था, जो उन्हें लखनऊ के रेजीडेन्ट के जरिये मिलता चला आ रहा था और वैसे भी उनके पास दौलत की कमी न थी । बड़े ठाठ और मौज से रहती थीं । नसीरुद्दीन से उनके कोई औलाद न हुई थी । लेकिन हजरत वाजिदअली शाह के जमाने में नवाब ताजमहल ने पेट के पाँव निकाले और बदचलनी पर उतर आईं ।'

मिरजा ने हैरत-भरे लहजे से टोका—'अरे, वह किस तरह ?'

'सुने जाइए, अर्ज तो कर रहा हूँ ।' नवाब ने कहा—'उनके पेट से एक लड़की ने पैदा होकर उनका भांड़ा फोड़ दिया । यह लड़की मीर कल्ब हुसैन से पैदा हुई थी जो बेग़म के एक नौकर और आशना थे । बड़ा शोर-गुल मचा । वह लड़की तो दस-पाँच दिन बाद मर गई या मार डाली गई, इसकी मुझे खबर नहीं । मगर मीर कल्ब हुसैन पकड़े गये और फिरोजुद्दौला नाजिर महलात शाही ने मीर साहब को काफी जलील किया था, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है । बादशाह के हुक्म से नवाब ताजमहल के यहाँ पहरे भी बैठा दिए थे । निगरानी भी की जाती थी । कोई बाहरी आदमी उनके महलों में आने-जाने नहीं पाता था ।

लेकिन नवाब ताजमहल और मीर कल्ब हुसैन एक दूसरे के ऐसे आशिक और मतवाले हो रहे थे कि सरकारी निगरानी और देख-रेख होने पर भी चोरी-छिपे मिल-भेंट लिया करते थे । यह सब वाज़िदअली शाह की शुरू हुकूमत का जिक्र है । जब वाजिदअली शाह की हुकूमत खतम हो गई और लखनऊ में अंग्रेजों की हुकूमत जमी तो उन दोनों ने खुल खेलने की तरकीब ढूंढ़ निकाली । पहले ताजमहल जयारत का बहाना करके ईराक जाने के लिए अपनी सारी दौलत बाँध-बटोर कर लखनऊ से रवाना हुईं । फिर मीर कल्ब हुसैन भी लखनऊ छोड़ कर उनके पास पहुँच गए । और दोनों जिन्दगी भर वहीं रहे । लखनऊ वापस नहीं लौटे ।' इतना कह कर नवाब ने तकिए का सहारा ले लिया ।

'शुक्रिया ।' मिरजा ने धीरे से कहा ।

'अब मेरी कहानी से नवाब ताजमहल का जो संबन्ध है उसे सुनिए । उन्होंने पशमीना तलब फरमाया था । यह मैं आपको बता ही चुका हूँ । लालाजी के न होने पर एक तरह से मुनीमजी ही दूकान के जिम्मेदार रहते थे । इसलिए मुनीमजी ने हर तरह का पशमीना बँधवा कर नौकर के सिर पर रखवा दिया और मुझसे कहा कि तुम साथ जाकर दिखला आओ । जो बेगम साहिबा पसन्द करेंगी, ले लेंगी । मुनीम जी लालाजी की उम्र के ही थे । उनका कहना मैं कैसे टालता । फिर दूकानदारी की भी बात थी । यही सब सोच कर मैं चुपचाप नौकर के साथ चल पड़ा ।

'उनकी ड्योढ़ी पर पहुँच कर दरबान से खबर कराई । अन्दर से एक महलदारनी आकर पशमीना की गठरी उठा ले गई और फिर उलटे पाँव लौट कर मुझसे बोली—'अन्दर चलो, तुमको बेगम साहिबा अपने सामने बुला रही हैं । उसके साथ मैं अन्दर चल पड़ा । मेरा नौकर बाहर ड्योढ़ी पर ही बैठा रहा । मिरजा साहब आप समझ रहे होंगे । यह जिक्र बादशाह अमजदअली शाह के समय का है । दो वर्ष पहले वह लखनऊ के सिंहासन पर आसीन हो चुके थे । बेगम साहब खूबसूरत तख्त पर मसनद तकिए का सहारा लिए बैठी थीं । सामने एक कुर्सी और तिपाई पड़ी थी । उन्होंने मुझे कुर्सी पर बैठ जाने का इशारा किया । मैं बैठ गया । तिपाई पर पशमीना की गठरी खुली हुई रखी थी । मैंने देखा, बेगम साहब का सौन्दर्य बिखरा जा रहा था । उस समय उनकी उम्र शायद तीस-इकतीस की रही होगी । ऐन जवानी का आलम था । मेरे चेहरे पर नजर जमाए हुए अलपक दृष्टि से मेरे रूप को निहारती हुई वह जरा देर खामोश रहीं । फिर पूछा—'तुम लाला चिरंजीलाल के लड़के हो ?'

'मैंने धीरे से कहा—'जी हाँ ।'

'बहुत खूबसूरत हो । तुमने यह खूबसूरती कहाँ से लूट ली है ! लखनऊ में तो ऐसी खूबसूरती हमने पहली बार देखी है ।'

'मैं कुछ नहीं बोला । अदब के साथ नीची निगाह किए बैठा रहा ।

'फिर पूछा—'क्या करते हो ?'

'मैंने धीरे से नज़र उठा कर कहा—'लालाजी के साथ दूकान पर बैठता हूँ ।'

'उन्होंने पुनः मेरे चेहरे पर नजर जमा दी । फिर मुस्करा कर कहा—'हम तुम्हारेपश मीने के साथ तुम्हें भी खरीदना चाहते हैं ।'

'मैं उनके इस कहने का मतलब न समझ सका । खामोश बैठा रहा ।

'तुम्हारे इस पशमीनों की क्या कीमत है ? कितने दाम का है यह ?'

'यह तो मुझे मालूम नहीं है । क्योंकि मैं कुछ ही दिनों से दूकान पर बैठने लगा हूँ । लालाजी ही इसकी सही कीमत 'अर्ज कर सकते हैं ।'

'खैर उन्होंने मुस्करा कर कहा—'तुम अपनी कीमत तो बता सकते हो ? तुम्हारी क्या कीमत है ? क्या देकर हम तुम्हें खरीद सकते हैं ?'

'मै फिर भी चुप था । बेगम मेरे चेहरे पर नजरें जमाए हुए बात-बात पर हँस पड़ती थीं ।

'वह बोलीं—'तुम चुप क्यों हो ?' फिर उसी मुस्कान-भरी नशीली आँखों को चमका कर पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'जीवनलाल ।'

'बहुत खूब, अच्छा जानते हो हम किसलिए और क्यों तुम्हें खरीदना चाहते है ?'

'मैं क्या जानूं और क्या अर्ज करूँ ?'

'बहुत भोले हो जीवनलाल ?' उन्होंने एक अजीब लहजे से कहा ।

'कमरे में सिर्फ बेगम और मैं ही था । उन्होंने एक नौकरानी को आवाज देकर बुलाया । उसके आ जाने पर कहा—'जीवनलाल का मुँह मीठा करो ।'

'नौकरानी भाग कर गई और तरह-तरह की मिठाईयाँ एक खुशनुमा थाल में सजा कर ले आई और कायदे से एक तिपाई पर मेरे सामने रख दी । और कमरे से बाहर हो गई ।

'बेगम बोलीं—'जीवनलाल ? पहले मुँह मीठा करो, फिर अपनी कीमत कहना ।'

'मैं झिझक रहा था । मगर मजबूर होकर और फिर इस ख्याल से कि ये बादशाह की बेगम हैं । कहीं नाराज हो जायेंगी तो हमारी दूकान से कपड़े खरीदना बन्द कर देंगी । दूसरे यह भी विचार उठ रहा था कि लालाजी से शिकायत न करें कि तुम्हारा लड़का निहायत बदतमीज है ? इसलिए मैंने मिठाई के दो-एक टुकड़े मुँह में रखे । पानी पिया और रूमाल से मुँह साफ करके चुप-हो रहा । पानों भरी तश्तरी बेगम के तख्त पर रखी थी । बेगम ने एक गिलौरी अपने हाथ में लेकर कहा—'लो, पान खाओ ।'

'मैं सहज-भाव से पान लेने के लिए उनके तख्त के पास पहुँचा और हाथ बढ़ाया । उन्होंने बजाय हाथ में देने के अपने हाथ से गिलौरी मेरे मुँह में दे कर कहा—'जानते हो जीवनलाल ? ये गिलौरी तुम्हारी खरीदारी का बयाना है ।' और वह खिलखिला कर हँस पड़ीं ।

'मैं उनके पास से हट कर अपनी जगह आकर बैठ गया ।

'ताजमहल बोलीं—'जीवन, तुम्हारी ये झिझक-शरम तुम्हारी खूबसूरती में चार चाँद लगा रही है । जब तुम हमारे साथ हँसो-खिलखिलाओगे, तो खुदा जाने क्या गजब होगा ?'

'मैं घबड़ा-सा गया था । किसी तरह उनसे पीछा छुड़ाने की राहें ढूंढ़ रहा था । मगर वह बात पर बात बढ़ाए जा रहीं थीं । आखिर मैंने अर्ज किया—'हुजूर अब मुझे इजाजत दें । दूकान खाली पड़ी होगी, क्योंकि आज लालाजी की तबियत कुछ नासाज थी । वह दूकान पर नहीं आये थे ।'

'हमारे सामने से भागने का यह अच्छा बहाना पेश कर दिया है । खैर, पशमीना यहीं रखा रहने दो । हमने अभी उसे गौर से देखा भी नहीं है । दूसरे ही

पशमीने ने हमें अपनी जानिब खींच लिया था। कल इसी वक्त आकर इस पशमीने की कीमत ले जाना। हम इन्तजार करेंगे।'

'मैं सलाम करके चलने लगा तो उन्होंने कहा—'जीवनलाल हमारी गिलौरी का ऐवज तुम्हें चुकाना पड़ेगा और उसे कल आकर चुकाना।' और हँस पड़ीं।

'मैं बाहर आया। नौकर बैठा मेरा इन्तजार कर रहा था। उसे लेकर दूकान पर आया। मुनीमजी ने पूछा—'पशमीने का क्या हुआ ?' मैंने उनसे कह दिया कि बेगम साहिबा ने पसन्द करके कल जवाब देने को कहा है।'

'रात में जब दूकान से लौटा तो मैंने लालाजी को सिर्फ इतना ही बताया कि नवाब ताजमहल ने कुछ पशमीना तलब किया था। मैं ले गया था। उन्होंने वह सब रख लिया है। कल उसका फैसला करने को कहा है।'

'लालाजी बोले—'ठीक है। कल मैं उनके महलों में जाकर समझ लूँगा।'

'दूसरे दिन जब लालाजी बेगम की खिदमत में हाजिर हुए तो उन्होंने पशमीने की कुल कीमत साठ हजार रुपया लालाजी को थमा कर कहा, 'हम कुछ और खरीदना चाहते हैं। उसे तुम्हारे लड़के जीवनलाल के जरिए ही खरीदेंगे। उसे हमारे पास भेज देना।'

'लालाजी दूकानदार आदमी थे। बिक्री और मुनाफे की लालच में पड़ कर उन्होंने कई बार मुझसे बेगम के पास आने को कहा। मुझे जाना मंजूर न था, इसलिए एक दिन बात खतम कर दी। कह दिया कि मैं उनके पास गया था। लालाजी चुप हो रहे।'

मिरजा जफर हुसैन मुस्करा कर बोले—'आप ने नवाब ताजमहल की उस मोहब्बत भरी गिलौरी की कुछ कदर न की। उनके साथ बड़ा जुल्म—सितम किया।'

'आप जो चाहें समझें और कहें। लेकिन मैं सच कह रहा हूँ। उस वक्त नवाब ताजमहल की वह लगावट भरी बातें मुझे जरा भी पसंद नहीं आ रही थीं। अदब कायदे का ख्याल था। उनकी और अपनी हैसियत सामने थी। फिर एक बात और थी। उनकी उम्र मुझसे काफी ज्यादा थी। माँ की तरह न सही, मगर बड़ी बहिन की तरह तो मालूम ही होती थीं।'

'और ज़हूरन ?' मिरजा ने कहा—'उसे आपने क्यों तड़पता छोड़ दिया ?'

'उसका भी कुछ ऐसा ही मामला था। उस वक्त तो मेरी उम्र और भी कम थी, तबियत में कुछ आवारगी जरूर आ गई थी। लेकिन उसकी हद यार-दोस्तों से मिलने-बैठने तक ही थी। इश्क क्या बला होती है मुझे इसकी कोई खबर न थी। बाप-माँ का डर भी दिल में जमा बैठा था।' फिर दो क्षण खामोश रह कर कहा—'मिरजा शैदा इश्क-व-मोहब्बत कोई ऐसी चीज नहीं कि राह चलते मुफ्त में और बेमेहनत खरीद ली जाय। सच्चे इश्क और मोहब्बत के लिए हजारों पापड़ बेलने पड़ते हैं। पहाड़ों से सर टकराना पड़ता है। दर्द-व-गम सहते-सहते कलेजा मुँह को आने लग जाता है। तब कहीं दो दिल मिल कर शीर-व-शकर की सूरत में नजर आते हैं और

उसमें मिठास पैदा होती है। नवाब ताजमहल और जहूरन में वह बात कहाँ थी। उनमें तो वही रंडीपना मौजूद था। रंडियों के इश्क-व-मोहब्बत का क्या कहना है —'खुदा महफूज रखे इस बला से।' उनकी मोहब्बत-लगावट तो मजबूत जालों के फँदे हुआ करती हैं। उसमें भोले-भाले आदमी को फँसाने के लिए सैकड़ों तरह के फरेब उनकी मुठ्ठी में बन्द रहते हैं। हँसना, रोना, मरना, जीना सभी कुछ उन्हें आता है। सचाई की तो कहीं बू-बास नजर नहीं आती।'

'इसके मानी ये हैं कि जनाब को अपनी जिन्दगी में किसी से इश्क हुआ ही नहीं।' मिरजा ने कहा।

'हुआ क्यों हैनहीं।' जमालुद्दौला ने कहा—'हर इन्सान की जिन्दगी में कभी न कभी और किसी न किसी सूरत में इश्क-का उबाल पैदा हुआ करता है। मेरे भी दिल में वह उबाल पैदा हुआ था।'

'तब उसे फरमाइए न?' मिरजा ने कहा।

'अभी नहीं।' उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा—'उसका जिक्र अपनी जगह और मौके पर आयेगा।'

छः

'मिरजा जफर हुसैन साहब ! मेरे उस होश-हवास और उठती जवानी के दिनों में लखनऊ के तख्ते-शाही पर अमजदअली शाह तशरीफ रख रहे थे ।' जमालुद्दौला ने कहा—'यह तो मैं आपको शायद बता ही चुका हूँ कि अमजदअली शाह बड़े मजहबी आदमी थे । सलतनत का सारा कारोबार मौलवी-मुल्लाओं के हाथों में था । बादशाह सलामत ने अपने जिम्मे सिर्फ दो ही काम लिए थे । एक कुरान-शरीफ का पाठ करना और दूसरा तस्वीह फेर कर अल्ला-अल्ला जपना । इस्लाम-मजहब, नाच-गाने और खेल-तमाशों का विरोधी था, इसलिए उनके नजदीक उनकी कोई पूछ न थी । लेकिन उनके सुपुत्र वलीअहद बहादुर मिरजा वाजिदअली खाँ उस कमी को पूरा कर रहे थे । उन्हें बचपन से नाच-गाने का शौक था । वलीअहद के पद पर आसीन होकर उन्होंने नृत्य-संगीत को ऊँचा उठा देने का इरादा ही नहीं कर लिया था बल्कि कसम सी खा ली थी । सारे लखनऊ के नौजवान और रंगीन तबियत वाले उन्हीं के बहाव में बह रहे थे ।'

मिरजा शैदा ने छेड़ा—'सुना है कि उन्होंने कोई परीखाना भी कायम किया था ?'

'जी हाँ, सुनते जाइए । मैं अर्ज तो कर रहा हूँ ।' जमालुद्दौला ने कहा—'उन्होंने लखनऊ की हसीन, जवानी को उछालने वाली, कोकिल-कंठी और नाचने-गाने में बेजोड़ औरतों को नौकर रख कर एक खुशनुमा, लम्बी-चौड़ी सुसज्जित इमारत में एक परीखाना कायम किया था । ज्यादातर वह सभी औरतें लखनऊ की पेशेवर तवायफों, कसबियों और डोमनियों की छोकरियाँ ही थीं । परीखाने में वे सब परियाँ कहलाती थीं । उनके नाम भी बहुत खूबसूरत रखे गये थे—जैसे माशूकपरी, वजीर-परी, माहरूखपरी, हूरपरी, दिलरुबापरी, सरफराजपरी और सुलेमानपरी आदि । परीखाने में रहते हुए इन परियों को केवल दो ही काम थे, नाचने-गाने की तालीम लेकर उस कला की ऊँचाई तक पहुँचना और हँसी, गुदगुदी, मज़ाक, कहकहों तथा अपने नाज-नखरों से वलीअहद बहादुर का दिल अपनी मुट्ठियों में बन्द करना ।

'वलीअहद के मशगलों-चोचलों का न कोई शुमार था न कोई हद्द । एक के बाद दूसरा शुरू हो जाता था ।

'मिरजा साहब, वह जमाना कुछ और ही था । हिन्दुओं को श्रीकृष्ण से बड़ी मोहब्बत थी और खास तौर पर अवध-लखनऊ का हिन्दू समाज तो उनके प्रेम में डूबा हुआ था । उनकी बाल-लीलाएँ जैसे गोपियों के साथ खेलना, नाचना, गाना, बंशी बजाना, उन्हें राह चलते छेड़ना, उनके साथ अठखेलियाँ करना वगैरा लोगों को बहुत

प्रिय था। लखनऊ के मुसलमान हिन्दुओं के कन्धे से कन्धा मिला कर चला करते थे और खासतौर पर वे मुसलमान जिन्हें नाच-गाने से प्रेम-लगाव था उन्हें तो श्रीकृष्ण से एक तरह का हार्दिक प्रेम था। उनकी रचनाओं, उनके गीतों का विषय कृष्ण-राधिका का इश्क-प्रेम और लीलाएँ ही हुआ करता था। नवाब मिरजा वजीर यानी कदरपिया की ठुमरियों का विषय कृष्ण-राधा और गोपियों की छेड़-छाड़ ही हुआ करता था। उनकी ठुमरियाँ लखनऊ के बड़े-बड़े गवैये गाते और बताते थे।

'वलीअहद मिरजा वाजिदअली श्रीकृष्ण की लीलाओं से बहुत प्रभावित थे। अतः उस समय के उनके मशगले, खेल-तमाशे भी उन्हीं के रंग में रंगे हुए थे। इसकी एक वजह और भी थी। वलीअहद की पैदायश के समय लखनऊ के ज्योतिषियों ने उनकी जन्मकुंडली की रचना-गणना करते हुए बताया था कि इस बच्चे के भाग्य में फकीरी लिखी है। जन्मचक्र के ग्रहों में उसका योग मौजूद है। किन्तु ज्योतिष-विद्या में क्रूर यानी मनहूस ग्रहों से बचने के उपाय भी मौजूद हैं। अगर यह बालक प्रतिवर्ष अपनी वर्ष-गाँठ के दिन योगी बना दिया जाया करेगा तो ग्रहों की यह मनहूसियत दूर रहेगी। उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।' जमालुद्दौला ने जरा रुक कर कहा—'जफर हुसैन साहब, यह मैंने कानों सुनी बात अर्ज की है क्योंकि वलीअहद की पैदाइश तो मेरी पैदाइश से बहुत पहले ही हो चुकी थी। इस जिक्र को मैंने बहुत बाद में अपने पड़ोसी नवाब जाफरअली खाँ की जबान से सुना था।'

मिरजा जफर हुसैन ने पूछा —'तब क्या वाजिदअली शाह अपनी सालगिरह के मौके पर जोगी बना करते थे?'

'जी हाँ,' नवाब ने कहा—'उन्हें वलीअहदी के जमाने में योगी बनते तो मैंने अपनी आँखों से देखा था। उन्होंने उस रसम को पूरा करने को एक जलसे-तमाशे की सूरत दे रखी थी।'

'वह किस तरह?' मिरजा ने कहा—'लगे हाथों जरा उसे भी बयान कर दीजिए?'

'सुनिए,' नवाब ने कहा—'उनकी सालगिरह के दिन बहुत बड़ा जश्न मनाया जाता था। उसी वक्त से जाने-आलम अपने बचपन से इस रसम को अदा करते चले आ रहे थे। बाद में यानी उनकी बादशाहत के जमानेमें जब कैसरबाग बन-सज कर तैय्यार हो गया तो सालगिरह के दिन बाग में एक मेला लगता था। उसी बाग में हजरत योगी और बेगमें योगिनें बना करती थीं। इस जश्न को एक बार मैंने अपनी आँखों से देखा था।' फिर जरा मुस्करा कर कहा—'शैदा साहब, इस वक्त उस दृश्य की याद करता हूँ तो आँखों के आगे एक तस्वीर सी आ जाती है। एक छतनारे सायेदार दरख्त के नीचे संगमरमर के चबूतरे पर जाने-आलम योगी बने बैठे हैं। शरीर में मोतियों की भस्म लिपटी हुई है। जुलफों को ऊपर की तरफ समेट कर जूड़ा बाँधा गया है, जिसमें ताजे मोंगरे के फूलों का गजरा लिपटा है। बगल में दाहनी तरफ कमंडल और चिमटा रखा हुआ है। गेहुएँ रंग का रेशमी उलगा है। उनकी बाँई

बगल में नवाब सिकन्दरमहल योगिन बनी बैठी हैं। उनके भी ऐसे ही ठाठ हैं। दूसरी बेगमात की भीड़ भी सामने मौजूद है।'

मिरजा ने टोका—'ये नवाब सिकन्दरमहल कौन थीं ?'

'उम्दा खानम नाम की एक कस्बी थी, सिकन्दरमहल उसी की छोकरी थीं। उस वक्त उनका नाम शायद उमराव था। उम्दा खानम वाली मशहूर थीं। एक जलसे में वलीअहद ने अपनी उँगली से अंगूठी उतार कर उनकी उँगली में पहनाई थी। सूरत नजरों पर चढ़ गई थी। इसलिए मोहम्मद हुसैन दयातुद्दौला ने जोड़-तोड़ लगा कर परीखाने में ला बैठाया था और सिकन्दरपरी बन गई थी। बाद में सिकन्दर महल का खिताब पाकर हरम में पहुँच गई थीं। लखनऊ में आज जो सिकन्दर बाग मौजूद है, जाने-आलम ने पाँच लाख रूपयों की लागत से उन्हीं के लिए तैयार कराया था।

'खैर, कैसरबाग के उस मेले-जलसे और योगी-योगिन के तमाशे में एक मौका ऐसा आता था कि योगी जी आँखों से ओझल हो जाते थे। और बेगमान उन्हें ढूंढती-खोजती फिरती थीं। उनके मिल जाने पर तो जाने-आलम की जय के नारे लगा कर खुशी के जोश में नाचने-गाने लग जाती थी। वह समाँ बयान से बाहर है।

'कहने का मतलब यह कि कृष्ण की रासलीला से प्रभावित होकर ही वली-अहद ने अपने जश्न-जलसों की बुनियाद डाल कर इमारत खड़ी की थी। उन्होंने राधिका-कृष्ण की प्रेम-कथा को कुछ फेर-फार के साथ लिख कर एक नाटक तैय्यार किया था जो नाच-गाने से भरा था और 'रहस का खेल' कहा जाता था। रहस के इस खेल में पात्र के रूप में परीखाने की परियाँ शरीक होती थीं और सखियाँ कहलती थीं। वलीअहद खुद कृष्ण बनते थे।

'लखनऊ में वलीअहद के रहस के खेल की धूम थी। गली-कूचों में उसकी चर्चाएँ सुनी जाती थीं। मैंने भी अपनी दूकान पर बैठे-बैठे चर्चाएँ सुनीं। जवानी की शुरूआत थी। बेफिकरी का जमाना था। उस पर गाने-बजाने का शौक। दिल मचल उठा। वलीअहद का रहस का खेल देखने के लिए तबियत तड़पने लगी। लेकिन रहस का खेल लखनऊ के आम लोग नहीं देख सकते थे। सिर्फ शाही खानदादान के लोग और वह लोग जो आमंत्रित किए जाते थे, वहाँ पहुँच कर उसको देख कर आनन्द लूट सकते थे। मैं वहाँ किस तरह पहुँच सकता हूँ। यही फिक्र हर समय मेरे सिर पर सवार रहती थी।

'रहस का खेल दूसरी बार होने वाला था। इसलिए वलीअहद को पहली बार के तमाशे में जो कमी बगैरा नजर आई थी उन सबको दूर करके इस बार अपने इस शौक की सींक खड़ी कर देना चाहते थे। महीनों से बड़े जोर-शोर की तैय्यारियाँ हो रहीं थीं। पहली बार यह खेल महलों के अन्दर खेला गया था। इस बार रहस के खेल के लिए एक अलग इमारत तैय्यार कराई गई थी और उसका नाम रहस मंजिल रखा गया था। पहली बार के खेल में माहरुखपरी कन्हैया और सुलतानपरी राधा बनी थीं। बाकी परियाँ राधा की सखियाँ बनी थीं। सुना जा रहा था कि इस बार खुद वलीअहमद बहादुर कृष्ण बनेंगे। राधा और सखीयाँ वही रहेंगी।

'जनानी पोशाकें तैय्यार हो रहीं थीं। सेरों सच्चे माल-मसालों की खपत हो रही थी। उनके दूकानदार एक के दस लेकर माला-माल हो रहे थे। पहली बार के खेल में तीन लाख रुपया खर्च हुआ था। लेकिन इस बार का कोई हिसाब न था। लोग दसगुने खर्चे का अन्दाजा लगा रहे थे। जैसे-जैसे खेल की तारीख नजदीक चली आ रही थी, मेरी हविस बढ़ती चली जा रही थी। रहस देखने की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी और मैं निराश सा हो रहा था। लेकिन वलीअहद के दरबार के एक खास शख्स मीर मेंहदी के जरिए रहस का खेल मुझे देखने को मिल गया। तमाशे की रात को उन्होंने मुझे अपने साथ ले जाकर रहस मंजिल में ऐसी जगह पर बैठा दिया जहाँ मुझे न कोई रोकने-टोकने वाला था, न छेड़-छाड़ करने वाला और उस स्थान से मैं तमाशे को अच्छी तरह से देख सकता था।

'मिरजा साहब, उस रहस के खेल-तमाशे को इस समय में पूरी तफसील के साथ तो बयान नहीं कर सकता, क्योंकि एक तो बहुत अर्से का जिक्र है, दूसरे अगर विस्तारपूर्वक उसका बयान किया जाय तो एक किताब तैयार हो जायगी और उसकी यहाँ जरूरत नहीं है। इसलिए संक्षेप में आपके सामने उस खेल का एक खाका खींच रहा हूँ।

'रहस के उस खेल में जितने भी पात्र थे सभी बोल-चाल की ब्रजभाषा में बातें करते थे। सिर्फ एक अवसर पर राधा और कन्हैया अपने प्रेम-मोहब्बत को हिन्दी दोहों में जाहिर करते थे। आगे वह दोनों भी उसी ब्रज की बोली में बातें करते थे। उस रहस में पात्रों-का काम, हाव-भाव प्रदर्शन तथा नाज-अन्दाज देखते ही बनता था। उनका खुशामद करना, पानी भरना, दही बिलोना और मक्खन निकालना आदि सभी कुछ संगीत के ताल-सुर के साथ सच्चे तौर-तरीके से होता था। कोई नहीं कह सकता था कि यह तमाशा है। ऐसा मालूम होता था कि मानो जो कुछ हो रहा है, सच और स्वाभाविक है। मौके-मौके पर नृत्य-संगीत का भी समा बँध रहा था। नृत्य के अनेक रूप और किस्में थीं। मैंने कभी किसी से उनके नाम भी नहीं सुने थे। आँखों से देखना तो दूर की बात थी। उनके कुछ नाम इस प्रकार थे—सूर्यमुखी-नयनसुख-ताज मुबारक और नैय्या आदि। इस वक्त मुझे याद नहीं आरहे, पूरे छत्तीस तरह के नाच थे। नैय्या नृत्य की क्या तारीफ करूँ। देख कर हैरत में आ गया था। दस-बारह सखियों ने मिल कर नाव का नकशा बताया और उस पर राधा-कन्हैया को बैठा या छम-छम की धुन गूंज उठी। नृत्य और संगीत के साथ धीरे-धीरे डोंगी आगे बढ़ती जा रही थी।'

जमालुद्दौला तकिए का सहारा लेकर कुछ देर खामोश रहे। फिर संभल कर बोले—'मिरजा साहब ! वलीअहद के दिल-बहलाव के मशगले दिन-प्रति-दिन बढ़ते चले जा रहे थे और अखनऊ में एक के वाद एक नई बहार आ रही थी। नये-नये फूल खिल रहे थे। लखनऊ के जिस नौजवान युवक को देखो वलीअहद के दरबार में पहुँचने और उनके सम्पर्क में आने के लिए लालायित रहा करता था। मेरी भी

तबियत भुरभुराती थी और दूकान में बैठने से जी घबराता था। लेकिन मजबूर हो रोजाना जाकर दूकान पर बैठना पड़ता था।'

कुछ देर खामोशी का वातावरण रहा। फिर जफर हुसैन ने पूछा—'नवाब साहब, वह जो आपकी वालिदा ने लालाजी से आपके पैरों में घर-गृहस्थी यानी शादी की बेड़ियाँ डाल देने को कहा था, उसका क्या हुआ ? आप की शादी हुई या नहीं ?'

'उसकी भी एक छोटी सी पुरलुत्फ दास्तान है।' नवाब ने कहा।

'सुनाइए ?' मिरजा ने कहा—'उस पुरलुत्फ दास्तान को सुनने को तो मैं मुश्ताक हूँ।'

'आज ही सुनना चाहते हैं ?'

मिरजा ने नजर उठा कर घड़ी की तरफ देखा, फिर उनकी तरफ देख कर कहा—'अभी तो जनाबवाला को दस्तरख्वान पर बैठने के लिए काफी देर है।'

'दस्तरख्वान पर बैठने की जल्दी तो नहीं है। वहीदन आ रही होगी।...'

'वहीदन के आने का वक्त तो तीसरा पहर है न ?'

'जी हाँ,' नवाब ने कहा—'वैसे तो वह तीसरे पहर ही आया करती है, लेकिन आज अभी आ रही होगी। उसे लेकर मुझे अपने एक पुराने दोस्त नवाब सुलतान अली खाँ के यहाँ जाना है। और वहीं दस्तरख्वान पर भी बैठना है।'

'नवाब सुल्तान अली खाँ कौन हैं ? मिरजा ने कहा—'वह तो नहीं जिनके घर पर जहूरन आप पर कुर्बान हुई थीं ? और···'

'जी, वही हैं ?' जमालुद्दौला ने जहूरन की बात आगे न बढ़ने देकर कहा—'वैसे तो मैं इस गुलफ़ाम मंज़िल से कभी बाहर कदम नहीं रखता। लेकिन सुलतान अली खाँ मेरे पुराने मिलने वाले हैं। खुद आकर दावत दे गये हैं और वहीदन को भी साथ लाने का इसरार कर गये हैं।'

मिरजा ने थोड़ा मुस्करा कर कहा—'आपकी बीवी वहीदन से वह वाकिफ होंगे ?'

'मिरजा जफर हुसैन साहब ! जब मैं आपको अपनी जिन्दगी का पूरा किस्सा सुना रहा हूँ तो छोटी-बड़ी भली-बुरी हर एक वारदात ज्यों-का-त्यों आपके सामने रख रहा हूँ। एक वहीदन की कहानी से क्या छिपाव है। सुनिए अपनी उठती जवानी के शुरू जमाने में वहीदन और सुलतान अली खाँ के ऐन शवाब के वक्त दोनों में राह रसम पैदा हो गई थी। दोनों शीर-शक्कर थे। हर वक्त वहीदन उनके बगल में बैठी उनके दिल को गुदगुदाती हँसाती रहती थी। मुझे इसका कोई पता न था। दूकान में बैठने के वक्त मैं सुल्तान अली खाँ के घर नहीं पहुँच पाता था। वह खुद मुझसे मिलने के लिए मेरे घर आ जाया करते थे। या कभी सरे राह मुलाकात हो जाया करती थी। लेकिन घराना उसी तरह कायम था। जब भी मैं और वह मिला करते थे तो घन्टों गुजर जाते थे और बातें खतम नहीं होती थीं। अब सुनिए, न मैंने वहीदन को

कभी देखा था और न उसने मुझे। जान-पहचान तो बहुत दूर की बात थी। इस बीच मेरी जिन्दगी कई करवटें बदल चुकी थी। जिनका जिक्र आप आगे मेरी जबानी सुनेंगे। यह उस जमाने की बात है जब भगदड़ के बाद फिर लखनऊ में आकर आवाद हुआ था। मेरी उम्र शायद चालीस की या उससे एक दो साल ज्यादा था। मैं किसी काम से सुलतान अली खाँ के कूचे में गया था। सोचा, चलो सुलतान अली खाँ से भी मिल लूँ। और उनके घर जा पहुँचा। दीवानखाने में सुलतान अली खाँ और वहीदन मौजूद थे। सुलतान की जवानी भी ढल चुकी थी, वह भी मेरी ही उम्र के थे या मुझ से कुछ बड़े रहे हों। वहीदन की उम्र हम दोनों से कम थी। शायद तीस पैंतीस की रही होगी। खैर मैं सुलतान से मिला। कुछ देर बातें की और इजाजत लेकर अपनी इस गुलफ़ाम मंजिल में आ गया।…'

मिरजा ने पूछा—'वहीदन वहीं रही ?'

'जी हाँ ?' नवाब ने कहा। 'दूसरे दिन वहीदन गुलफ़ाम मंजिल में आकर मुझसे चिपट गई और मेरी आशिके जार बन गई। खुदा की ही मर्जी थी कि मैं उसके इश्क को न ठुकरा सका।'

'वहीदन ने सुलतान अली खाँ से आँख चुरा ली या उनसे भी लगी लिपटी रही।'

'अरे जनाब, उस दिन से उसने कभी सुलतान की तरफ मुँह फेर कर देखना कैसा, उनका नाम तक भूल गई।'

'और सुलतान अली खाँ भी वहीदन को भूल गये ?'

'सुलतान अली खाँ तो आशिक मिजाज आदमी थे। उनके लिए सैकड़ों वहीदनें मौजूद थीं। वहीदन और मेरे संबंध को जानते हुए उन्होंने मुझसे कोई शिकायत नहीं की। कभी वहीदन का नाम भी जवान पर नहीं लाए। एक जमाने के बाद आज यह पहला मौका है कि वह दावत देकर वहीदन को साथ लाने को कह गये हैं। कह नहीं सकता इसमें क्या राज है।'

'वहीदन उनके यहाँ जाने को राजी है ?'

'खुद अपने दिल से नहीं। मेरे जोर देने से।'

तभी वहीदन आ गई। उसने रंगीन, कीमती पोशाक पहन रखी थी। बनाव सिंगार भी बहुत आकर्षक था।'

मिरजा ने उस पर निगाह डाली और मुस्कराते हुए कहा—'बीबी आज तो तुम कमाल कर रही हो ?'

वहीदन बोली—'मिरजा शैदा, मैं कमाल नहीं कर रही, नवाब कमाल कर रहे हैं।' फिर नवाब की तरफ तिर्छी नजरें डाल कर बोली—'आप जानते हैं मिरजा साहब ? ये मेरे माशूक हैं और मैं इनकी आशिके-जार। माशूक के हुक्म की तामील

आशिक के सर आँखों पर होती है। वही मेरा हाल है। मैं तो जिसे गैर समझ कर छोड़ चुकी, छोड़ चुकी। लेकिन आज मेरा माशूक अपने साथ उस गैर के घर ले जाना चाहता है तो क्या करूँ।'

मिरजा कुछ नहीं बोले।

वहीदन ने जमालुद्दौला से कहा—'अब उठिए, चलिए।'

'कपड़े भी बदलने दोगी या इसी सूरत से चल पड़ूँ।' नवाब ने उठते हुए कहा। तुम तो बन-संवर के आ गई। लेकिन मैं तो अभी···।'

वहीदन बोल उठी—'चलिए अन्दर। आपको मैं अपनी पसंद के मुताबिक सजा दूँ।'

सात

दीवानखाने में आकर बैठते ही मिरजा जफर हुसेन ने जमालुद्दौला के सामने सवाल पेश कर दिया—'फरमाइए, कल सुलतान अली खाँ के यहाँ कैसी गुज़री ? बीवी वहीदन का क्या हाल रहा ?'

'बीबी वहीदन कोई मामूली औरत है ?' नवाब ने कहा—'लाखों में एक है बड़ी बनी हुई रकम है। इस उम्र में भी उसमें वह काँट-छाँट, वह नाज-अन्दाज और नखरे-फिकरे मौजूद हैं जो किसी जवान रंडी में न पाए जाएँगे। पहुँचते ही सुलतान अली खाँ के गले से लिपट गई और वह छल-बल दिखाने लगी, ऐसे दाँव-पेंच लगाने लगी कि सुलतान अली खाँ चारों खाने चित नजर आ रहे थे। ठण्डी साँस भर रही थी, आँसू पोंछ रही थी और कलेजा थाम रही थी। इस पर सिफत यह थी कि सुलतान की नजर बचा कर मेरी तरफ देख कर मुस्करा भी देती थी। सुलतान अली खाँ जो बड़े सख्त-दिल और हेकड़ी वाले बने हुए थे, सब भूल कर उसके कदमों पर लोटने लगे। लेकिन वाह री वहीदन, चलते समय वह पैंतरा बदला, वह उलटी लात मारी कि सुलतान अली खाँ मुँह ताकते रह गए। जबान से एक हर्फ भी न कह सके और वहीदन ने एक बार भी पीछे फिर कर न देखा।'

'समझ गया, आपसे वहीदन का इश्क सच्चा है।' मिरजा ने कहा, 'जो कुछ भी हो ?' नवाब ने कहा—'हम तो दिल बहलाव के लिए उसे पाले हुए हैं। यहाँ आकर वह हमारी उदासी दूर कर दिया करती है।'

हस्ब-मामूल नाश्ता वगैरा से निपट कर जमालुद्दौला संभल कर बैठ गए। बोले—'अच्छा जनाब, अब मेरे पैरों में शादी की बेड़ियाँ पहनाई जाने की कहानी सुनिए। जब मैं रोजाना लालाजी के साथ जाकर दूकान पर बैठने लगा और आवारगी का नशा किसी हद तक उतर गया। तब मेरी माँ ने संतोष की साँस ली। मगर खामोश न बैठीं। लालाजी के पीछे पड़ गईं। जब भी मौका पातीं, मेरी शादी करने की बातें छेड़ देतीं। कहतीं, अब यही एक काम करने को बाकी रह गया है। जिन्दगी का क्या ठिकाना है, जाने किस दिन, किस घड़ी साँस रुक जाय, आँखें बन्द हो जाँय और मन की लालसा मन ही में रह जाय। जीवन की बहू घर में आकर बैठ जाय, मैं सब कुछ उसे सौंप दूँ, फिर चिन्ता नहीं, चाहे जिस दिन मर जाऊँ। लालाजी मजे में आकर कहते, 'अरे तुमसे तो मैं ज्यादा बूढ़ा हूँ। तुम क्यों पहले अपने मरने की सोचती हो।' लेकिन रोज की इस कुरेदन का लालाजी पर प्रभाव पड़ा। वह इधर-उधर किसी अच्छी लड़की की तलाश में नजर दौड़ाने लगे। अपने यार-दोस्तों, मिलने वालों से यही इच्छा प्रकट करने लगे। लेकिन अभी तक कोई सूरत नहीं बनी थी।

एक दिन दूकान पर मैं बैठा हुआ था। मुनीमजी बही-खाता लिख रहे थे। लालाजी न थे। तभी एक सज्जन दूकान पर आए। मैं उन्हें नहीं जानता था। लेकिन मुनीमजी जानते-पहचानते थे। क्योंकि मुनीमजी ने उनका स्वागत करके कहा, 'आइए लाला मुन्नीलाल जी ?'

'मुन्नीलाल इतमीनान के साथ दूकान पर बैठ गए और पूछा—'लाला चिरंजीलाल कहाँ हैं ?'

'कहीं यहीं बाजार में किसी काम से गए हुए हैं, अभी आते हैं।' मुनीमजी ने कहा ।

मुन्नीलाल ने नजर उठा कर मेरी तरफ देखा। जब नजर भर गई तो मुनीमजी की तरह मुड़ कर पूछा—'ये कौन हैं ?'

'लाला चिरंजीलाल के सुपुत्र जीवनलाल हैं।'

'तभी लालाजी दूकान पर आ गए। लालाजी भी मुन्नीलाल को अच्छी तरह जानते थे। आते ही उन्होंने उनका हाथ पकड़ कर बड़ी इज्जत के साथ गद्दी पर बैठाया और पूछा—'आज आप कैसे इधर निकल आए ?'

'यों ही, नखास बाजार में कुछ काम था ? सोचा, आपसे भी भेंट करता चलूँ।' मुन्नीलाल ने कहा।

'बड़ी कृपा की।' लालाजी ने कहा—'बहुत दिनों से मलिका किशवर साहिबा की सरकार में मेरी दूकान से पशमीना वगैरा नहीं गया। क्या आपकी मेहरबानी मुझ पर कुछ कम हो गई है ?'

'अरे नहीं—' मुन्नीलाल ने कहा—'बात ये है कि आजकल मलिका किशवर बहादुर के ताजिए कुछ ठंडे से हो रहे हैं। बादशाह सलामत हजरत अमजदअली शाह से तना-तनी चल रही है। इस वजह से सरकार के सभी राग-रंग फीके पड़ रहे हैं।'

'ऐसा क्यों ?' लालाजी ने आश्चर्य से कहा—'इस तना-तनी की क्या वजह है ?'

'वाह चिरंजीलाल जी ?' उन्होंने मुस्करा कर कहा—'सारा लखनऊ जानता है। गली-कूचों में चर्चाएँ हो रही हैं और आप मुझसे वजह पूछ रहे हैं ?'

'हम दूकानदार, धन्धे-पैसे वाले आदमी ठहरे। हमें शाही महलों की क्या खबर कि वहाँ क्या हो रहा है। सारा दिन अपने धन्धे में लगे रहते हैं। पहर रात गये घर जाकर सो रहे। हमारी दुनिया तो इतनी ही है।'

'मामला यह है चिरंजीलालजी, कि बादशाह सलामत ने एक कुँजड़े की लड़की पर फिदा होकर और उसके साथ मुता की रसम पूरी करके हरम में दाखिल कर लिया है। यही सौतिया डाह चल रही है। मलिका का रंग फीका पड़ रहा है।'

'मगर बादशाह अमजदअली शाह तो बड़े मजहबी, माला जपने वाले और दिन-रात कुरान पढ़ने वाले थे। उम्र भी इस काम के लायक नहीं थी। यह उन्होंने क्या किया ?'

'हाथी के दाँत दिखाने के दूसरे होते हैं, खाने के दूसरे ?' और वह हँस पड़े।

लाला मुन्नीलाल ने एक बार मुझे उचटती नजर से देखा। फिर लालाजी की तरफ नजर घुमा कर कहा—'इस वक्त आपसे एक अपने मतलब-गरज की बात कहना चाहता हूँ।'

'कहिए ?' लालाजी ने मीठे स्वर लहजे से कहा—'मेरे लायक जो काम हो निस्संकोच कहिए।'

'आप हमकौम हैं। लखनऊ के खत्री समाज में आपकी मान्यता है। अगर आपकी नजर में कोई अच्छा लड़का हो तो मुझे बताइएगा। मुझे अपनी एक छोटी बहिन की शादी के लिए एक लड़के की तलाश है।'

'लालाजी मुस्करा कर बोले—'भाई साहब, यह संसारी माया-जाल है। हर आदमी के पीछे घर-गृहस्थी की झंझट लगी रहती है। आपकी तरह मुझे भी जीवन के लिए एक अच्छी व सुशील और सुन्दर लड़की की तलाश है। इस वक्त यह अच्छी चर्चा चल निकली। आप मेरा ध्यान रखिएगा और मैं आपका। एक दूसरे की मदद और सहायता से दोनों निपट जाएँ। संसारी आदमियों के काम इसी तरह चला करते हैं।'

'इसके बाद मुन्नीलाल और लालाजी दूकान से उठ कर बातें करते हुए नखास बाजार के दूसरे छोर की तरफ चले गए। उनके जाने के बाद मैंने मुनीमजी से लाला मुन्नीलाल का परिचय प्राप्त किया।

'मुनीमजी ने बताया कि लाला मुन्नीलाल जाति के खत्री और लखनऊ के पुराने बाशिन्दे हैं। इनके दादा लाला रंगलाल बादशाह गाजीउद्दीन हैदर के जमाने में उनके वजीरे-आजम मोतमिद्दौला आगा मीर के मुँशी थे। मुन्नीलाल के बाप लाला-चमनलाल भी नसीरुद्दीन हैदर के समय मुंशी दफ्तर थे। मुन्नीलाल नवाब मलिका किशवर बहादुर की सरकार में मुंशी हैं। मलिका की इन पर बड़ी मेहरबानी रहती है। घर में पुरानी बाप-दादा की तो जायदाद थी ही। मुन्नीलाल ने मलिका किशवर की सरकार से भी अच्छी हैसियत बना ली है। हमारे मुहल्ले सआदतगंज में इनकी आलीशान हवेली खड़ी है।'

नवाब जमालुद्दौला कुछ देर खामोश रहे फिर आगे कहा—'मिरजा साहब, मैं लाला मुन्नीलाल की नजरों में चढ़ गया था। उन्हें जो अपनी छोटी बहिन की शादी के लिए लड़के की तलाश थी, वह पूरी हो गई थी। मुझे देख कर वह लुभा से गए थे। दो-चार दिन के बाद उनके यार-दोस्त लालाजी के पास शादी का पैगाम लाने लग गए। मेरे लालाजी बहुत सीधे स्वभाव के आदमी थे। धोखा, दगा-फरेब वह जानते ही न थे कि क्या होता है। उन्हें मेरे ब्याह की चिन्ता तो हो ही रही थी। माँ रोजाना कोंचती रहती थीं। इसलिए उन्होंने हामी क्या भरी पूरी मंजूरी दे दी। मेरी माँ की खुशियों का ठिकाना न रहा। बहू को जल्द-से-जल्द लाकर घर में बैठा लेने के लिए उतावली हो उठीं। भगवान की झाँकी के सामने जाकर कामना पूर्ण की प्रार्थना करने लग गईं।

'इसी बीच में लाला मुन्नीलाल ने दावत देकर लालाजी को और मुझको अपने घर बुलाया। हम दोनों उनके घर पहुँचे। बड़े ठाठ की दावत खिलाई गई। दावत खाकर लालाजी तो अपने घर को चल पड़े, लेकिन मुन्नीलाल ने कुछ देर के लिए मुझे रोक रखा। उस वक्त तो मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्यों रोक लिया गया हूँ। लेकिन बाद में समझ गया था। वह जमाना आज का जमाना न था। आज के जमाने की तरह शादी-ब्याह के पहले लड़की ला कर लड़के के सामने नहीं खड़ी कर दी जाती थी। उस जमाने में लड़के या उसके सम्बन्धियों को ब्याह के पहले लड़की की छाया भी देखनी मुश्किल थी। मगर लाला मुन्नीलाल के घर पर लुका-छिपा कर मुझे लड़की दिखा देने का प्रबन्ध किया गया था। जहाँ पर मैं बैठा था वह एक खुली हुई हवादार बारहदरी सी थी। मेरे दाहिनी बगल से लगी हुई एक खिड़की थी जो अन्दर के कमरे की तरफ खुलती थी। खिड़की खुली हुई थी। बाहर की तरफ उस पर बरायनाम बहुत बारीक जालीदार पर्दा पड़ा हुआ था। उस पर्दे पर नजर जमाने से अन्दर के कमरे की पूरी कैफियत नजर आ जाती थी। अभी तक मैंने एक बार भी उस पर्दे पर निगाह नहीं डाली थी। पहले मेरे पास लाला मुन्नीलाल बैठे हुए थे। अब वह उठ कर कहीं चले गये थे और मैं वहाँ पर अकेला ही था। तभी सितार के तारों की झनझनाहट उस खिड़की वाले कमरे में गूँज उठी। उस झंकार ने मुझे खिड़की के पर्दे पर निगाह जमा कर अन्दर का नजारा देखने के लिए मजबूर कर दिया। मैंने देखा कि कालीन पर बैठी हुई एक चन्द्रबदनी सितार के पर्दों पर अपनी कोमल उँगलियाँ दौड़ा रही हैं। उसका रुख मेरी तरफ को कुछ तिरछा था, फिर भी सभी कुछ नजर आ रहा था। वह हुस्न-व-जमाल की जीती जागती तस्वीर मालूम पड़ रही थी। रंग निहायत गोरा-चिट्टा। नाक-नक्शा मानो विधाता ने बड़ी फुरसत के वक्त अपने हाथों से बनाया था। बड़ी-बड़ी आम की फाँकों जैसी आँखें, लम्बी बरौनियाँ। लगता था मानो उसकी आँखों में मोती कूट कर भर दिए गए हैं। हाथ-पैर बहुत सुडौल, साँचे में ढले हुए। भरे-भरे बाजू, गोल कलाइयाँ। किस-किस अंग की तारीफ करूँ। उस वक्त वह रूपमती जो रंगीन कपड़े पहने हुए थी, लगता था कि वह सब उसी के लिए उचित है। उस वक्त वह स्वर्ग की अप्सरा सितार बजाने में ऐसी लीन हो रही थी कि जरा भी इधर-उधर नजर न घुमाती थी। और मैं सकते में डूबा हुआ परदे पर नजर जमाए उसे देख रहा था। उम्र उसकी शायद तेरह-चौदह साल की थी। कानों में बुन्दे, नाक में कील और हाथों में चार-चार चूड़ियों के सिवा और कोई जेवर नहीं था। शायद उसे सादगी पसन्द थी।'

मिरजा ने शेर अर्ज किया—

'है जवानी खुद जवानी का सिंगार,
सादगी जेवर है इस सिन के लिए।'

'हो सकता है यही बात रही हो।' नवाब ने धीरे से कहा।

'तब उसे देख कर पहलू में दिल तड़प उठा होगा।' मिरजा ने चुटकी भरी।

'तड़प तो नहीं उठा था, लेकिन गुदगुदी जरूर पैदा हो गई थी।'

'खैर, आगे चलिए।' मिरजा ने कहा।

जमालुद्दौला बोले—'एक झंकार के साथ सितार बन्द हो गया और वह परी जमाल उस कमरे से जाने कहाँ गायब हो गई। तभी लाला मुन्नीलाल मेरे पास आ गए। चूँकि पर्दे का खेल खतम हो चुका था। अब वहाँ मेरे लिए कोई मशगला या दिलचस्पी न थी। मैंने उनसे चलने की इजाजत माँगी। उन्होंने खुशी के साथ रुखसत किया और मैं अपने घर आ गया।'

मिरजा ने फिर छेड़ा—'नवाब साहब, आप वाकई बहुत खुशकिस्मत थे कि इस तरह की परी पैकर हुस्न की देवी के साथ आपकी शादी हो रही थी।'

नवाब कुछ गम्भीर होकर बोले—'मिरजा शैदा साहब, सच कहता हूँ, उसका जैसा रूप मैंने कभी अपनी आँखों से नहीं देखा था। दोस्तों की जबानी नवाब ताज महल के हुस्न की तारीफ सुनी थी। लेकिन उन्हें मैं अपनी आँखों से देख चुका था। उनका सौन्दर्य उस रूप की देवी के आगे कोई हकीकत नहीं रखता था। मेरी नजर के लिए ताजमहल के सौन्दर्य में कोई भी आकर्षण नहीं था।'

'और उस परी पैकर में कैसी कशिश थी?'

'बहुत बड़ी कशिश थी। खैर मेरे लालाजी पहले ही घर आ चुके थे। माँ को दावत का हाल और मेरा वहाँ रोक लिया जाना बता कर अपना ख्याल जाहिर कर चुके थे। उनका ख्याल यह था कि शायद लुका-छिपा कर लड़के को लड़की दिखावेंगे। इसलिए जब मैं घर वापस आया, माँ ने मेरे मुँह से वहाँ की पूरी दास्तान सुननी चाही और घुमा-फिरा कर कई तरह के सवाल किए। उनके हर सवाल का मतलब यही था कि मैंने लड़की को अपनी आँखों से देखा और पसन्द कर लिया है। लेकिन मैंने उनके हर प्रश्न का जवाब गोल-मोल और चेहरे पर पूर्ण प्रसन्नता लाकर दिया। वह समझ गईं कि इसने जरूर लड़की को देख कर पसंद कर लिया है, तभी इतना खुश है। उस दिन के बाद से घर में धूम मच गई। शादी की तैय्यारियाँ शुरू हो गईं। मोहल्ले-पड़ोस में खबर फैल गई। मेरे यार दोस्त मुझे छेड़ने, हँसाने, और गुदगुदाने लगे। शादी की तारीख कुछ लम्बी थी। इसलिए सब काम धीरे-धीरे और इतमिनान के साथ हो रहा था। लालाजी मेरी शादी के मौके पर बादशाह सलामत को दावत देने और घर बुलाने के बारे में अपने मिलने वालों से सलाह-मशविरा कर रहे थे। और मेरा अजब हाल था।'

'क्यों? जनाब भी कोई शीराजा बाँध रहे थे?' मिरजा ने कहा।

जमालुद्दौला ने जरा गम्भीर मुद्रा बना कर कहा—'ऐसा ही समझ लीजिए।' फिर एक क्षण की खामोशी के बाद बोले—'मिरजा साहब, झूठ बोलना मेरे नजदीक बहुत बड़ा गुनाह है। फिर जब मैं आपको अपनी जबान से अपनी सरगुजश्त सुना रहा हूँ, ऐसी सूरत में कुछ छिपा कर रख लेना गलत है। जिस दिन-घड़ी से मैंने उस हसीना को देखा था, हर वक्त उसकी तस्वीर मेरी आँखों के सामने मौजूद रहती

थी। दूकान पर बैठा हूँ या घर पर अपने कमरे में हूँ, उसी का ध्यान, उसी की हुलिया, सरापा दिमाग में चक्कर काटता था। शादी की लम्बी तारीख मेरे दिल में काँटे की तरह चुभ रही थी। मैं चाहता था कि आज ही शादी की सायत आ जाय और दुनियादारी की यह रसम पूरी होकर वह सौन्दर्यमयी देवी घर आकर, मेरे बगल में बैठ जाय। हम दोनों शीर-शकर होकर एक दूसरे का दिल सहलाने-हँसाने लग जाँय। खुशियों का सागर आँखों के सामने लहराने लग जाय। लेकिन---कम्बख्त वह तारीख थी कि काला पहाड़, नजदीक आने का नाम ही नहीं ले रही थी और मैं रात-दिन उसे उँगलियों पर गिनते-गिनते थका जा रहा था। अगरचे मेरी माँ को भी शादी की जल्दी थी। वह भी चाहती थीं कि आज ही बहू घर में आकर धूम मचा दे। मेरी अभिलाषाएँ उनके आगे बिखर जाँय और जो कुछ मेरे मन में है मैं उसे कर दिखाऊँ। अपनी उमंगों-उत्साहों का इजहार दिल-खोल कर करलूँ। मगर पंडितों के पचड़ों से मजबूर थीं। दिल को मसोस-मसोस कर प्रतीक्षा कर रही थीं।

'अब एक दिन की वारदात सुनिए। मैं अपने कमरे में था। लालाजी बाहर की दालान में बैठे नाश्ता कर रहे थे। माँ उनके पास बैठीं थीं। नाश्ता से निपट कर लालाजी को दूकान जाना था। लालाजी और माँ में बातें चल रही थीं। मैं अपने कमरे में बैठा सुन रहा था।'

लालाजी ने माँ से कहा—'आज दूकान के मुनीमजी लाला द्वारकानाथ की घरवाली तुमसे मिलने आएँगी।'

'क्यों ? उनका कोई काम है मुझसे ?' माँ ने सहज भाव से कहा।

'उनका तो कोई काम नहीं है। हमारा ही उनसे मतलब है।'

'हमारा-तुम्हारा उनसे कैसा क्या मतलब है ?' माँ ने कहा—'थोड़ा खोल कर कहिए। आपकी बात हमारी समझ में नहीं आ रही।'

'बात यों है कि हमारे मुनीमजी भी मोहल्ला सआदतगंज में रहते हैं। जीवन को होने वाली ससुराल लाला मुन्नीलाल की हवेली भी सआदतगंज में है। कल शादी के लेखे-जोखे के सिलसिले में बातें करते हुए हमने मुनीमजी से लाला मुन्नीलाल की छोटी बहिन जिससे जीवन की शादी होने वाली है, उसके बारे में कुछ जानना चाहा था, यानी उसका कैसा रूप-रंग और स्वभाव आदि कैसा है...'

'अरे, लड़की के रूप- सौन्दर्य का तो एक तरह से पूरा बोध हो चुका है।' माँ ने कहा।

'खैर, यह ठीक है। लेकिन अगर कुछ और जानकारी प्राप्त हो जाय तो क्या हर्ज है ? पूछने पर मुनीमजी ने कहा कि मैं खुद तो इतना ही जानता हूँ कि लाला मुन्नीलाल हमारे मोहल्ले में रहते हैं और नवाब मलिका किशवर की सरकार में मुलाजिम हैं। इसके आगे उनके विषय में मुझे स्वयं कुछ नहीं मालूम। उनके घर में कौन-कौन है इसका भी मुझे ठीक पता नहीं। हाँ, मेरी धर्मपत्नी उनके घर-द्वार तथा स्त्री-पुरुषों के विषय में अवश्य बहुत कुछ जानकारी रखती होंगी। क्योंकि

मेरे एक रिश्तेदार का मकान मुन्नीलाल की हवेली से मिला हुआ है। मेरे उन संबंधी तथा लाला मुन्नीलाल का एक प्रकार से धरोवा सा है। आपस में औरतों का आना-जाना होता रहता है। मेरी पत्नी भी उन संबंधी के यहाँ दूसरे-तीसरे जाती रहती हैं, इसलिए वह मुन्नीलाल के परिवार से अच्छी तरह वाकिफ होंगी। अतः मैं कल किसी समय अपनी घरवाली को आपके यहाँ भेज दूंगा। जीवनलाल की माताजी उससे सब जान-समझ लेंगी।' लालाजी एक सांस में कह गए।

'समझ गई ?' माँ ने कहा—'यह तो और भी अच्छा है। उनसे विस्तार के साथ हर एक बात मालूम हो जायगी।'

लालाजी नाश्ते से निपट कर दूकान जाने लगे तो माँ ने कहा—'गुलाबराय जौहरी को ताकीद करा दीजिएगा कि जीवन की दुलहिन के लिए जो जड़ाऊ गहने उन्हें तैय्यार कराने के लिए दिए गए हैं, जरा निगाह रख कर तैय्यार करायेंगे। ऐसा न हो कि नगीनों की आब में फर्क हो जाय।'

'इसके बाद लालाजी दूकान चले गए। मैं उस दिन उनके साथ नहीं गया।'

'मैं समझ रहा हूँ कि आप क्यों नहीं गए थे ?' मिरजा ने मुस्करा कर कहा।

'क्या समझ रहे हैं ? फरमाइए ?'

'आप मुनीमजी की घर वाली की जबान से अपनी होने वाली बीवी की तारीफ सुनना चाहते थे।'

जमालुद्दौला हँस पड़े, बोले—'वाह मिरजा साहब, आप खूब तह में पहुँचे। वाकई यही बात थी।'

'यह तो बहुत मामूली सी बात थी। हर कोई समझ सकता था।'

'लालाजी के जाने के बाद माँ तो किसी काम में जुट गई थीं, लेकिन मुझे चैन नहीं थी। मुनीमजी की घरवाली के इन्तजार में भीतर-बाहर की जमीन नाप रहा था। वह कब आएँ और मैं कब उनकी जबान से उस अप्सरा के बारे में कुछ और सुन-समझ सकूँ। यही धुन मेरे सर पर सवार थी। पूरा एक घन्टा गुजर गया। मेरी तबियत ऊब सी उठी। तभी बाहर मकान के सदर दरवाजे पर कुछ आहट सी हुई। मैं लपक कर दरवाजे पर पहुँच गया। एक डोली दो कहारों के कंधों से उतर कर जमीन पर आयी थी। डोली से मुनीमजी की घरवाली बाहर आकर खड़ी हुईं। अगरचे मैंने कभी उन्हें देखा नहीं था मगर समझ गया कि वही हैं। उन्होंने मेरी तरफ आँख उठा कर देखा। उसके जवाब में मैंने केवल दोनों हाथ जोड़ दिए। मुँह से कुछ नहीं कहा। कहारों ने उनसे पूछा—कितनी देर बाद डोली लावेंगे ? इसका जवाब सुनना छोड़ कर माँ को उनके आने की खबर देने के लिए मैं अन्दर की तरफ चल पड़ा। माँ को खबर दी और अपने कमरे में जाकर बैठ गया। मुनीमजी की पत्नी अन्दर आईं। वह अधेड़ उम्र की सभ्य महिला थीं। मुनीमजी जाति के अग्रवाल थे। बहुत सज्जन सीधे-सादे, और ईमानदार थे। लेखा-जोखा में कभी एक कौड़ी का फर्क नहीं पड़ने पाता था। मुनीमी का पेशा पुश्तों से चला आता था, इसलिए लालाजी उन

पर पूरा विश्वास रखते थे और दूकान का सारा भार एक तरह से मुनीमजी के ही सिर पर था।

'मेरे कमरे के आगे वाली दालान में द्वार से कुछ दाहिनी तरफ को एक बड़ा सा तख्ता पड़ा था। उस पर दरी बिछी रहती थी। माँ ने मुनीमजी की पत्नी का आगे बढ़ कर स्वागत किया, फिर एक सुन्दर कालीन ला कर तख्ते पर बिछा दिया। उन्हें बैठाया और आप भी बैठ गईं। बातें शुरू हुईं। अपने कमरे के अन्दर बैठे-बैठे उनकी बातें सुनने के लिए मैं सचेत हो गया।

'माँ बोली—आज सबेरे से ही हम आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।'

'अरे हम तो बहुत पहले आ गये होते। डोली कहार देर से आए।' मुनीमिन ने कहा 'गो आपके मुनीमजी ने कहारों से कल शाम को ही कह रखा था और पेशगी मजूरी चुका कर मोहल्ला मकान का पूरा पता बता दिया था, मगर लखनऊ के मजूर-कहार ही तो ठहरे। इस वक्त लाकर पहुँचाया।' फिर धीरे से कहा—'यहाँ से सआदतगंज कुछ दूर भी तो है।'

'एक क्षण चुप रहने के बाद माँ ने कहा—'आपके लड़के जीवनलाल की शादी हो रही है।'

'हाँ, हमें कल आपके मुनीमजी ने बताया था और यह भी कहा था कि कल लालाजी के यहाँ जाकर मिल-भेंट आना। लेकिन उन्होंने आगे और कुछ नहीं बताया था। कहाँ हो रही है शादी ?'

'यहीं लखनऊ में। तुम्हारे सआदतगंज में उसकी ससुराल बन रही है।'

'किसके यहाँ ?'

'लाला मुन्नीलाल खत्री के यहाँ। तुम तो शायद उनको जानती होगी ?'

'शायद की कौन सी बात है। हम लाला मुन्नीलाल को अच्छी तरह जानते हैं। वही हैं न ? जो मलिका किशवर की सरकार में मुंशी हैं ?'

'हाँ, वही लाला मुन्नीलाल हैं।'

'वह तो हमारे एक रिश्तेदार के बगल में रहते हैं। हमारे उन रिश्तेदार से उनका बड़ा घरोबा है। मर्द-औरतें सभी एक दूसरे के यहाँ आते-जाते, मिलते-बैठते हैं। हम अकसर अपने उन रिश्तेदार के यहाँ आया-जाया करते हैं और उनके साथ कई बार लालाजी के यहाँ भी आ-जा चुके हैं उनके यहाँ किसके साथ आपके बेटे जीवनलाल का ब्याह हो रहा है ?'

'लाला मुन्नीलाल को छोटी बहिन से।'

'मुनीमजी की पत्नी चुप रह गईं। जब उनकी चुप्पी को कुछ देर हो गई तो माँ ने उनसे कहा—'तुम चुप क्यों रह गई ? तुमने तो उनकी बहिन को अपनी आँखों से देखा होगा ? जीवन के लायक है न ?'

'उनकी बहिन तो आपके लायक नहीं है।' मुनीमिन ने धीरे से कहा।

'धीरे क्यों बोल रही हो मुनीमिन ?' माँ ने कहा—'जो बात हो साफ-साफ कहो। तुम तो हमारी अपनी हो। जीवन तुम्हारा ही तो लड़का है।'

'कहाँ खरा सोना और खोटा ताँबा, लोहा।' मुनीमिन ने मुँह बिगाड़ कर कहा। फिर माँ की नजर से नजर मिला कर कहा—'ललाइनजी, लाला मुन्नीलाल की वह बहिन आपकी बहू बनने योग्य बिलकुल नहीं है। तुम्हारे शाहजादे जैसे जीवन लाल की जिन्दगी बेकार हो जाएगी। इसके साथ ही तुम्हार खरा चोखा खानदान भी खोटा हो जायगा।'

'क्यों ? उस लड़की में ऐसे क्या दोष हैं ?'

'क्या बतायें, एक तो वह शकल-सूरत की अच्छी नहीं है। सियाही लिए गेहुंवाँ रंग है, चेहरे पर चेचक के दाग हैं। बाँस की तरह लम्बी-ऊँची है। जीवन उसे कभी पसंद न करेगा। देखते ही दूर भागेगा। जीवन साथिन तो जोड़ की होनी चाहिए। तभी जिन्दगी का सुख प्राप्त होता है।'

'लेकिन बहिन ?' माँ ने कहा—'उन्होंने दावत देकर एक दिन जीवन को अपने घर बुलाया था और शायद लुका-छिपा कर या जिस तरीके से हो अपनी बहिन को जीवन को दिखाया था। उस दिन से जीवन बहुत खुश है। मैंने उससे पूछा तो उसने हँस कर अपने चेहरे पर प्रसन्नता ही प्रकट की थी, विरोध में एक शब्द भी नहीं बोला था। इससे मालूम होता है कि उनकी बहिन बहुत सुन्दर है और जीवन को पसंद है।'

'हम इस बारे में क्या कहें। हमने तो लाला मुन्नीलाल की बहिन को एक बार नहीं बीसों बार देखा है। वह तो बहुत कुरूप है और फिर वह लाला मुन्नीलाल की सगी बहिन भी तो नहीं है।'

'और कौन है ?' माँ ने आश्चर्य से कहा।

'बहिन जी, वह तो एक कस्बी की लड़की है। मुन्नीलाल के बाप लाला चमनलाल ने एक कस्बी को घर बैठा लिया था। उससे वह लड़की पैदा हुई थी। बाद में कस्बी मर गई। लाला चमनलाल ने लड़की को पाल-पोस कर बड़ा किया। कुछ दिन पीछे वह भी मर गए और वह लड़की मुन्नीलाल जी की मुँहबोली बहिन बन गई। यह किस्सा हमें एक दिन हमारे उन संबंधी की बूढ़ी माँ ने बताया था।'

मेरी माँ जरा देर आश्चर्य और उथल-पुथल के सागर में डूबी हुई खामोश बैठी रहीं। फिर मुनीमिन की तरफ नजर उठा कर कहा—'तो क्या लाला मुन्नीलाल ने छल-कपट से काम लिया था ? किसी और लावण्यमयी लड़की को जीवन को दिखा दिया था ?'

'अरे लालाइनजी दुनिया बड़े छल-कपट की है। किसी के दिल का भेद पाना बड़ा कठिन है।' फिर एक क्षण चुप रहने के बाद कहा—'मुझे तो ऐसा आभास होता है कि शायद नवाब इफ्तखारुद्दौला की लड़की को उन्होंने आपके लड़के की नजरों के सामने बैठा दिया था। इफ्तखारुद्दौला लाला के मित्र हैं। घर से घर मिला है और उनकी वह नवाबजादी हुस्नआरा बेगम अक्सर लाला के यहाँ जाया करती है। इतनी सुन्दर है, ऐसा रूप-रंग, नाक-नकशा पाया है कि उसे देख कर सहज में कोई रीझ सकता है। चौदह-पन्द्रह-वर्ष की है। अंग-अंग से आभा बिखरी पड़ती है। सितार

बजाने में बड़ी निपुण है। एक बार हमने उसका सितार बजाना सुना था। पानी ऐसा बरसाती है।'

'माँ बहुत उदास स्वर से बोलीं—'तब तो हमारे सब हौसले ठण्डे से होते मालूम पड़ते हैं। हमारी आशा पर ओस सी पड़ रही है। बना बनाया खेल बिगड़ गया और जीवन की शादी खटाई में पड़ रही है।'

'लालाइन जी, हम आपसे यह नहीं कहते कि आप शादी न करें।' आपने हमसे साफ कहने को कहा, इसलिए हमने अपना कर्तव्य समझ कर जो कुछ अपनी आँखों से देखा और कानों मे सुना था आपके सामने रख दिया। फिर गम्भीर होकर कहा—'आप केवल हमारे कहने पर विश्वास करके लड़के का ब्याह ठप्प न कर दें। दूसरों से भी पता ले लें। अच्छी तरह ठोक बजा लें, तब आगे-पीछे कदम रखें। शादी-ब्याह एक दिन के लिए नहीं हुआ करता। ऐसा न हो कि पीछे पछताना ही हाथ लगे।'

'माँ पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा था। चुप बैठी थीं।'

'तभी बाहर द्वार पर डोली आ गई। कहारों ने आवाज लगाई और मुनीमिन माँ से बिदा लेकर डोली पर जा बैठीं।'

'मिरजा साहब! यह सारा किस्सा सुन कर मेरे नगाड़े उलटे हो गए। दिल की तमाम खुशियाँ हवा के एक झोंके में जाने कहाँ गायब हो गईं। अब मेरे दिल-दिमाग में सिर्फ एक ही धुन सवार थी?' नवाब ने कहा।

'क्या?' ज़फर हुसैन ने नजर उठा कर पूछा।

'मुझे यह फिक्र दामनगीर हो गई कि वह नवाब इफ्तखारुद्दौला कौन हैं? उनकी उस नवाबजादी हुस्नआरा बेगम को दोबारा किस तरह अपनी आँखों से देखूं।'

'गोया, आपके दिल में हुस्नआरा बेगम के लिए इश्क पैदा हो गया।'

'बिला शक?' जमालुद्दौला ने ज़ोरदार लहजे से कहा।

'और शादी का क्या हुआ? हुई या नहीं?'

'वह कांय कांय, टांय टांय तो दूसरे दिन खतम हो गई।' जमालुद्दौला ने कहा—'रात में जब लालाजी दूकान से घर आए। माँ ने मुनीमिन की बताई एक-एक बात उनसे दोहरा दी। लालाजी ने दूसरे दिन अपने दो-तीन विश्वासी मित्रों को पूरी हकीकत मालूम करने के लिए सआदत गंज भेजा और उन लोगों ने लौट कर मुनीमिन के एक-एक हर्फ की तस्दीक की। फिर क्या था, लालाजी ने उसी दिन मुन्नीलाल को टका सा जवाब दे दिया। शादी की बात एक झटके से टूट गई।'

आठ

'मिरजा 'शैदा' साहब ? आज एक शर्त है ।' जमालुद्दौला ने कहा ।

'फरमाइए ?' मिरजा जफर हुसैन 'शैदा' ने कहा ।

'पहले आप आज अपनी कोई ताजा गजल सुना दें । उसके बाद मैं अपनी कहानी शुरू करूँगा । बहुत अर्से से आपकी कोई गजल नहीं सुनी । इस वक्त सुनने के लिए तबीयत मचल रही है ।'

'बेहतर है ।' मिरजा ने कहा—'आपके हुक्म की तामील करता हूँ । कल मिरजा गालिब की जमीन पर काफिया बदल कर एक लम्बी गजल कही थी, उसी को सुनाता हूँ । लेकिन वह कागज जिस पर गजल लिखी थी यहाँ मेरे पास मौजूद नहीं है । जो शेर याद हैं उन्हीं को अर्ज करता हूँ । गजल का मतला यानी पहला शेर है—

मेरे दिल में ऐ गुलेंतर जो तेरा कयाम होता,
तो फिजा का एक ये भी रंगीं मुकाम होता ।

'वाह, कमाल का मतला फरमाया है ।' नवाब ने कहा ।

'तस्लीम, दूसरा शेर अर्ज है :—

न नकाब रुख से हटती, न नजर नजर से लड़ती,
न वह बेनयाम होते न ये कत्ले-आम होता ।'

'बहुत खूब । कत्ले-आम की वजह बड़े कमाल की है ।'

'आगे का शेर है:—

मेरी बेकसी पै तुमको जो जरा भी तर्स आता,
तो तुम्हीं कहो के जीना मुझे क्यों हराम होता ।'

'बहुत अच्छा बनाया है । लाजवाब शेर निकाले हैं ।' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—'मालूम होता है उस वक्त आपकी तबियत काफी जोश पर थी ।'

'और सुनिए :—

वह संवर के आ रहे हैं कहता है झूठ कासिद,
मेरी सांस लौट आती जो ये सच पयाम होता ।

'वाह वाह, बिलकुल गालिब का रंग है ।' फिर पूछा, 'आप किसके शागिर्द हैं मिरजा साहब ?'

'आपने आफताउद्दौला 'कलक' का नाम सुना होगा ।' मिरजा ने कहा—'वही मेरे उस्ताद थे । मगर उनकी आखिरी उम्र थी जब मैं शागिर्द बना था ।

इसलिए पूरा फायदा न उठा सका। कुछ दिनों बाद उनका इन्तकाल हो गया था।'

'मैं कलक साहब को अच्छी तरह जानता हूँ। बादशाह वाजिदअली शाह के मुसाहब थे। और वह खुद मीर अली औसत 'रश्क' के शागिर्द थे।'

'जी हाँ,' मिरजा ने कहा—'और हजरत 'रश्क' नासिख के शागिर्द थे।'

'इसके मानी यह कि आपका खानदान-उस्तादी नासिख से मिलता है।'

खैर, आगे के शेर फरमाइए।'

'क्या अर्ज करूँ, गजल तो बहुत लम्बी कही है। शायद पन्द्रह शेर की है। जो शेर याद आ जाता है वही सुना देता हूँ।' फिर जरा सोच कर कहा—'एक शेर है—

शबे हिज्र की मुसीबत न गुजरती शौक ऐ दिल,
जो ख्याल उनका तुझसे कहीं हम कलाम होता।'

'अच्छा ख्याल है।'

'इसके बाद का शेर है :—

मेरी जान सच बताना कि तुम्हें पसंद आता,
अगर इस तरह ही तुमसे कोई बेलगाम होता।'

'यह शेर भी मिरजा गालिब के रंग में डूबा है। और आपने बेलगाम के काफिए को बहुत अच्छे ढंग से निबाहा है।'

'आगे के और कोई शेर याद नहीं आ रहे, इसलिए मकता यानी आखिरी शेर सुन लीजिए :—

'शैदा' से कोई पूछे, साकी के कोतह दिल को,
कि खनक कहाँ से होती जो भरा यह जाम होता।'

'वाह खूब जाम को खनकाया है! अच्छा इजहार है।' जमालुद्दौला ने कहा—'बड़ी जोरदार और धूम-धाम की गजल कही है।'

'तस्लीम,' मिरजा ने हाथ उठा दिया।

'मिरजा शैदा साहब, एक जमाना था जब आपके उस्ताद आफताद्दौला कलक और मैं गिला-बैठा करते थे। वह अपनी गजलें सुनाया करते थे। उनकी सुनाई हुई एक गजल का पहला शेर मुझे इस वक्त याद आ रहा है—

अदा से देख लो जाता रहे गिला दिल का'
बस इक निगाह पे ठहरा है फैसला दिल का।'

'जी हाँ, यह शेर उनकी बहुत मशहूर गज़ल का है।'

'उन्होंने एक मसनवी और एक वासोख्त भी लिखा था। दोनों की एक-एक नकलें मुझे दी थीं। चूँकि उर्दू से मेरा लगाव बनिस्वत हिन्दी के बहुत कम था, इसलिए वह दोनों किताबें जानें कहाँ खो गईं।'

इसके बाद कुछ देर तक खामोशी का वातावरण रहा। जमालुद्दौला तकिए का सहारा लिए बैठे कुछ सोचते रहे। फिर संभल कर बैठ गये और मिरजा जफर हुसैन की तरफ देख कर कहा—'अच्छा मिरजा साहब, अब मेरी कहानी सुनिए? एक

झटके के साथ मेरी शादी का सिलसिला टूट चुका था। चर्चाएँ खतम हो गई थीं। और सरदस्त मेरी शादी से निपट जाने का कोई सिलसिला नजर नहीं आ रहा था। इसलिए मेरे लालाजी एक तरह से चुप होकर बैठ गये थे। लेकिन मेरी शादी उचट जाने से माँ बहुत दुःखी थीं। उनका दिल टूट सा गया था। नतीजा यह हुआ कि वह बीमार पड़ गईं।'

'और आपका क्या हाल था ?' मिरजा ने छेड़ा।

'मेरा हाल मत पूछिए। सीने पर साँप लोट रहे थे। जिस सूरत को मैंने अपनी आँखों से देख कर और जिसे लाला मुन्नीलाल की बहिन समझ कर अपने हृदय पट पर नक्श कर लिया था उसे पाने और उसके साथ शादी रचाने के लिए पागल हो रहा था। लेकिन वह परी जमाल जाने किसकी हकाफ में छिपी बैठी थी। मुनीम जी की घरवाली के बयान से इस बात का तो यकीन हो गया था कि वह लाला मुन्नीलाल की बहिन नहीं थी। लेकिन वह कौन थी। इसकी सच्ची गवाही देने वाला कोई न था। मुनीमजी की पत्नी ने जो अता-पता दिया था वह उनका एक ख्याल और अनुमान ही था क्योंकि उनके कहने में शायद का शब्द जुड़ा हुआ था। उस पर विश्वास कैसे किया जा सकता था।

'मैं लालाजी के साथ रोजाना दूकान जरूर जाता था लेकिन चित्त ठिकाने पर न था। जब भी उसकी याद आ जाती-बेकरार सा हो जाया करता। किसी काम में मन नहीं लगता था। एक जिनून सा सवार था।'

'लाला मुन्नीलाल की बहिन की कहीं शादी हुई या वह भी किसी झमेले में पड़ गई ?' मिरजा ने पूछा।

'अरे मुन्नीलाल की तो दुनिया ही उलट गई। इधर हमारे लालाजी ने शादी से इनकार किया उधर उन पर आसमान फट फड़ा। बादशाह अमजद अली शाह और मलिका किशवर में तना-तनी तो चल ही रही थी। लालाजी, मलिका के मुंशी थे। बादशाह सलामत को किसी बात पर शक हो गया कि ये मलिका को उभारते हैं। हजरत के वजीरे आजम नवाब अमीनुद्दौला ने बादशाह के शक-शुभा को और भी पुख्ता कर दिया। दूसरे दिन लाला मुन्नीलाल गिरफ्तार करके लोहे के सीखचों वाले अस्तबल में कैद कर दिए गए। इज्जतदार आदमी थे। इस बेइज्जती को बरदाश्त न कर सके। कैद में पड़ने के तीसरे दिन न जाने किस तरह अपना खात्मा कर लिया। दुनिया से ही उठ गये।'

'उफ, बड़ा गजब हुआ ?' मिरजा ने धीरे से कहा ! 'सिर्फ एक शक-शुभा पर उनकी जान गयी।,

'उस वक्त लखनऊ की बादशाहत में ऐसा ही हुआ करता था। यह कोई नई बात न थी।'

मिरजा जफर हुसेन चुप रह कर किसी ख्याल में डूब गए। जमालुद्दौला भी कुछ देर तक खामोश बैठे रहे। फिर संभल कर बोले—'मिरजा साहब, अब आगे का किस्सा सुनिए ?'

'हाँ, फरमाइए।' मिरजा ने अपने ख्याल को छोड़ कर कहा।

'एक दिन दूकान पर लालाजी और मैं दोनों मौजूद थे। सुबह का वक्त था। करीब एक डेढ़ पहर दिन चढ़ चुका था। तभी दूकान पर दारोगा मोहम्मद हुसैन-मोतमिद अली खाँ आया। आप जानते हैं यह कौन शख्स था?'

'मैं क्या जानूँ, आप ही बताइए?' मिरजा ने धीरे से कहा।

'मोतमिद अली खाँ वली अहद बहादुर का खास राजदार और उनके खजाने का दारोगा था। बाद में वह दयानतुद्दौला के खिताब से भी सम्मानित हो गया था। आपको याद होगा, मैं बता चुका हूँ कि वलीअहद बहादुर ने एक परीखाने की स्थापना की थी और उसमें ढेर सारी परियों को जमा किया था। उन परियों को इधर-उधर से लाकर परीखाने में बैठा देने में दारोगा मोतमिद अली खाँ का बहुत बड़ा हाथ था। इस वजह से वलीअहद की उस पर खास नवाजिश थी। परीखाने का प्रबंध परियों के साज-सिंगार आदि का सारा इन्तजाम शुरू-शुरू में वलीअहद ने अपनी निकाही बेगम नवाब खासमहल के हाथ में दे रखा था। मगर जब सौतिया डाह बीच में आ गई और परियों के बनाव-सिंगार, ऐश-आराम में अड़ंगे पड़ने लगे तो वह प्रबंध खास महल के हाथ से छीन कर वलीअहद ने दारोगा मोतमिद अली खाँ के हाथ में दे दिया था। दारोगा अपने प्रबंध की सींक खड़ी करके दिखा देना चाहता था। परियों का बनाव सिंगार दिन-दूना रात-चौगुना चमका देना उसका ध्येय था। उसी सिलसिले में वह हमारी दूकान पर आया था। आकर उसने लालाजी से कहा—'लालाजी, परीखाने की परियों की पोशाकों के लिए रंगीन कीमती कपड़ों और पश्मीने की जरूरत है। इसलिए हर तरह के कपड़े उनको पसंद कराने के लिए ले चलिए।'

'लालाजी के चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ पड़ी। कपड़ों की बिक्री और मुनाफे की बात थी। हजारों लाखों के बारे-न्यारे होने थे। इसलिए उन्होंने शीघ्र ही दूकान से कपड़े निकलवा कर गठरियाँ बँधवाई और नौकरों के सिरों पर रखवा कर मुझसे कहा—'जीवन, तुम साथ चले जाओ। जो कपड़े पसंद किए जायें उन्हें वहीं छोड़ देना। हिसाब-किताब, लेखा-जोखा बाद में होता रहेगा।'

'मैं चुपचाप मोतमिद अली खाँ के साथ चल पड़ा। नौकर कपड़ों का बोझ सिर पर रखे लिए मेरे पीछे थे।

'परीखाने के द्वार पर तुर्की औरतों का पहरा था। कोई भी बाहरी आदमी अन्दर नही जा सकता था। बड़े कड़े नियम थे। इसलिए नौकरों सहित मैं द्वार पर रोक लिया गया। दारोगा अन्दर चला गया। कुछ देर बाद तीन-चार नौजवान औरतें अंदर से आई, कपड़ों के गट्ठर बगलों में दबाए और मुझे भी अपने साथ अन्दर ले गईं। मेरे चारों नौकर बाहर दरवाजे पर ही रह गये।'

अन्दर पहुँच कर मैंने परीखाने की सजावट को अपनी आँखों से देखा और भौंचक्का सा होकर रह गया। जिस तरफ नजर उठाता वहीं अटक कर रह जाती थी। इस वक्त परीखाने की सजावट वगैरा को बयान करना बहुत बड़ी दास्तान

होगी । इसलिए उसे छोड़कर वही अर्ज करता हूँ जिसका कि मेरी कहानी से ताल्लुक है । परीखाने की सामने वाली खुली दालान में एक खुशनुमा तख्त पर ईरानी रंगीन बेल-बूटेदार कालीन बिछी थी और उस पर मसनद तकिया लगा हुआ था । वलीअहद बहादुर मसनद पर तशरीफ रख रहे थे । चारों तरफ परियों की भीड़ जमा थी ।

'वलीअहद के सामने पहुँच कर मैंने उन्हें अदब कायदे से सलाम किया । परियों की आँखें मेरे चेहरे पर गड़ गईं । उनके होठों पर मुस्कानें नाच रही थीं । मैं नीची निगाह किए खड़ा था ।

'वलीअहद ने मुझसे पूछा—'तुम लाला चिरंजीलाल के लड़के हो ?'

'जी, हुजूर ।' मैंने धीरे से जवाब दिया ।

'बहुत खूबसूरत हो । गजब का हुस्न-व-जमाल पाया है ।' फिर अपनी दाहिनी तरफ तखत से लगी खड़ी एक परी की तरफ देखकर कहा—'क्यों माशूकपरी ? है न यह लड़का बहुत खूबसूरत ?'

'माशूकपरी मुस्कराती हुई बोली—'बिलकुल परीजादा है हुजूर ?'

'क्या नाम है तुम्हारा ?' वलीअहद ने मुझसे पूछा ।

'जीवनलाल ?' मैंने अर्ज किया ।

'नाम भी बहुत खूबसूरत है ?' एक दूसरी परी बोली, 'मगर काफिर है ।'

'उस परी की तरफ देख कर वलीअहद ने कहा—'सुलतानपरी ? क्या तुम्हें मालूम नहीं है । माशूक सभी काफिर हुआ करते हैं ।' और वह जोर से हँस पड़े । परियों ने उनका साथ दिया और दालान में हँसी भर गई ।

'हँसी खतम होते ही माशूकपरी वलीअहद की नजर से नजर मिला कर बोली—'साहबेआलम, याद रखिए, माशूक का हुस्न कभी काफिर नहीं हुआ करता, दिल भले ही काफिर हो ।'

'वलीअहद मुस्करा कर बोले—'हकीकत है माशूकपरी । हम समझ रहे हैं ।'

'इसके बाद कपड़े मुलाहजा फरमाए जाने लगे । एक परी जिसकी उम्र करीब मेरी ही उम्र के बराबर थी । मेरे नजदीक खड़ी हुई पशमीने का एक थान देख रही थी और बार-बार नजर घुमा-फिरा कर मेरे चहरे की तरफ देख लेती थी । एक बार मेरी उसकी नजर मिल गई । मेरा दिल धड़क उठा । उस परी की शकल-सूरत रंग वगैरा बहुत कुछ उसी से मिलता था जो मेरी आँखों में समाई हुई थी और जिसे मैंने लाला मुन्नीलाल के यहाँ देखा था । पहले तो ख्याल उठा कि क्या यह वही है । अपने इस शक को दूर करने के लिए लुका-छिपा कर मैंने उसे गौर से देखा । बहुत कुछ फर्क नजर आया और वह फर्क खास तौर पर यह था कि परी का चेहरा गोल-किताबी था, आँखें भी कुछ छोटी थीं ।

'जिस कदर कपड़े मैं मुलाहजा कराने को ले गया था, सब पसन्द आ गए । परियों ने अपने-अपने पसन्द के कपड़े अपने कब्जे में कर लिए । वलीअहद ने मुझसे कुल कपड़ों की कीमत जाननी चाही । लेकिन मैंने अर्ज कर दिया कि इन कपड़ों का

सही दाम मेरे लालाजी ही बता सकेंगे। वलीअहद ने दारोगा मोतमिद अली को हुक्म दिया कि तुम लाला की दूकान पर जाकर पूछ-ताछ करके कपड़ों की कीमत अदा कर आना।

'इसके बाद वलीअहद ने मुझसे पूछा—'तुम क्या किया करते हो?'

'लालाजी के साथ दूकान पर बैठता हूँ।' मैंने अर्ज किया।

'कोई और मशगला शमल नहीं है?'

'उनके इस सवाल को मैं न समझ सका, इसलिए चुप खड़ा रह गया।'

'माशूकपरी ने मेरे चेहरे पर नजर जमा कर कहा 'हुजूर, साहबे आलम वलीअहद बहादुर के सवाल का मतलब यह है कि तुम अपने इस लाजवाब हुस्न-जमाल के साथ कुछ गाने-बजाने का शौक भी रखते हो?'

'जी, सितार बजा लेता हूँ और ठुमरी गा-बता लेता हूँ।' सहसा मेरे मुँह से निकल गया।

'तब तो तुम्हारे हुस्न में खशबू भी मौजूद है।' वलीअहद ने कहा—'परीखाने में जब भी कपड़ों की जरूरत हो और तुम्हारी दूकान से तलब किए जायँ, लेकर आया करना।'

'इसके बाद मैं सलाम करके परीखाने के बाहर हुआ और नौकरों को साथ लेकर दूकान वापस आ गया। दूसरे दिन दारोगा मोतमिद अली खाँ ने दूकान पर आकर कपड़ों का लेखा-जोखा करके एक लाख पाँच हजार रुपयों का भुगतान कर दिया।'

'इसके बाद हर दसवें-पाँचवें दिन परीखाने का कोई न कोई मुलाजिम दूकान पर आकर कपड़ों की तलवी-खरीदारी का हुकुम सुनाता और मुझे उसके साथ कपड़े लेकर परीखाना में पहुँचना पड़ना। कपड़ों की पसंदगी और खरीदारी का तो एक बहाना था। मेरे पहुँचते ही सभी परियाँ आकर मुझसे चिपट जाती थीं। मुझे कभी किसी परी के, कभी किसी परी के कमरे के अन्दर जाकर बैठना पड़ता। परीखाने की सभी परियाँ वहीं आकर जमा हो जातीं और हँसती-हँसाती। कभी सितार लाकर मेरे सामने रख दिया जाता और बजाने का हुक्म सुनाया जाता मैं उनके हुक्म की तामील करता। सितार की झंकार सुन कर वे सब झूम-झूम कर बेखुद सी हो जाया करती थीं। उस मदहोशी में मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर उँगलियों को चूम लेतीं और मेरी सितार-नवाजी की तारीफ करती थीं। किसी दिन कदरपिया की ठुमरी गाने की फरमायश करतीं। मैं गाकर सुनाता। वे सब पत्थर की मूर्ति बनी बैठी सुना करतीं। किसी दिन उनकी हविस और आगे बढ़ जाती थी।'

'वह किस तरह?' मिरजा ने छेड़ा।

'कोई परी अपना रंगीन दुपट्टा मेरे सिर पर डाल देती और ठुमरी के बोलों को बता-समझा कर गाने का हुक्म होता। मिरजा साहब, मुझे परियों की यह चुहल-बाजी बुरी नहीं मालूम होती थी। बल्कि उसमें अपनी इज्जत अफजाई ख्याल करता था, कद्रदानी समझता था। इसलिए मैं ठुमरी के बोलों को इस तरह बताता-समझाता

कि उनके आगे उसका रूप खड़ा हो जाता था। कभी-कभी वली अहमद बहादुर भी इस महफिल में आकर शरीक हो जाया करते थे और मेरे ठुमरी गाने-बजाने की दिल से तारीफ किया करते थे। इस सिलसिले से मुझे यह फायदा हुआ कि मेरे दिल में जो एक कसक हर समय मौजूद रहा करती थी, वह कुछ कम हो गई। वह रूप की देवी जो मेरी आँखों के आगे हर वक्त खड़ी रहती थी, जिसे अपना बना लेने के लिए मैं उदास बना रहता था, उसे अब भूल सा गया था। यायों समझ लजिए कि परियों ने भुला दिया था।

'मिरजा जफर हुसैन साहब ! मैं आपको बता चुका हूँ कि मेरी उस शादी की चर्चा खतम होते ही मेरी माँ बीमार पड़ गई थीं। उनके अरमानों-हौसलों ने उन्हें चारपाई पर लिटा दिया था।'

'जरा रुकिए, मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।' मिरजा ने कहा।

'पूछिए ?'

'मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपकी उस शादी का सिलसिला खतम हो जाने के बाद आपके लालाजी क्यों ठण्डे पड़ गये थे। क्या लखनऊ में उन्हें कोई दूसरी लड़की नहीं मिल रही थी जिसे वह घर लाकर आपकी माँ की गोद में बैठा देते। यह तो वह भी जानते-समझते रहे होंगे कि आप की वालिदा माजिदा ने आपकी उस शादी का सिलसिला टूट जाने से ही चारपाई पकड़ ली है।'

'ऐसा नहीं था मिरजा शैदा साहब ?' जमालुद्दौला ने जरा गम्भीर होकर कहा—'मेरे लालाजी माँ की बीमारी का कारण अच्छी तरह जानते-समझते थे। इसलिए उन्होंने इधर-उधर नजर दौड़ाना और डोरे डालना शुरू कर दिया था। नखास बाजार में दूसरे छोर पर जौहरियों की दूकानें थी। उन्हीं में एक लाला अमरनाथ खत्री की सोने-चाँदी और जवाहरात की दूकान थी। हमारी दूकान की तरह उनकी भी दूकान लखनऊ में ऊँची और मशहूर थी। लाला अमरनाथ के रहने का मकान हजरतगंज में था। खानदानी थे। उन्हें भी अपनी लड़की के लिए अच्छे घर-घराने के सुन्दर लड़के की जरूरत थी। उनकी लड़की भी बहुत खूबसूरत थी। जैसे ही मेरी उस शादी का सिलसिला टूटा और लाला अमरनाथ को मालूम हुआ उन्होंने सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश शुरू कर दी थी। हमारे लालाजी तो तैय्यार बैठे ही थे। मूँह-माँगी मुराद मिल गई। सब कुछ समझ-बूझ लेने के बाद एक दिन शगुन-सगाई भी हो गई। मेरी माँ की टूटी हुई कमर जुड़ सी गई। उठ कर चारपाई पर बैठ गईं। लेकिन मेरी किस्मत में वह ब्याह होना लिखा ही न था। शगुन-सगाई होने के चौथे दिन लाला अमरनाथ की वह लड़की हैजा की बीमारी में पड़ कर कजा कर गई और वह भी किस्सा खतम हो गया।'

'हाय गजब ?' मिरजा ने धीरे से कहा फिर नवाब जमालुद्दौला की नजर से नजर मिला कर कहा—'इससे मालूम होता है कि वाकई आप शादी के मामले में मनहूस थे।'

'सच बात है ।' जमालुद्दौला ने गम्भीर मुखमुद्रा से कहा—'मैं खुद ऐसा महसूस करता हूँ । खैर, साहब । मेरी माँ के दिल पर यह दूसरी चोट लगी और इस बार जो वह पलंग पर लेटीं तो फिर न उठीं । लालाजी ने बहुतेरे हाथ-पैर मारे हकीमों और वैद्यों की भीड़ जमा की, रुपयों की थैलियाँ खोल दीं, लेकिन मेरी माँ को कोई भी न बचा सका और एक दिन वह हमेशा के लिए आँखें बन्द कर के चार कंधों पर उठ गईं ।

'मेरी माँ की मौत दस जनवरी सन् १८४७ को हुई थी । और तेरह फरवरी को सारे लखनऊ में कुहराम मच गया । बादशाह अमजदअली शाह भी दुनिया से कूच कर गए । लेकिन उनके मरने का दुःख लखनऊ वालों के दिल में गहराई न पकड़ सका । उसी रात में वलीअहद बहादुर लखनऊ के सिंहासन पर आसीन हो गये और सुलताने-आलम बादशाह वाजिदअली शाह मशहूर हुए । उनके तख्त-नशीन होते ही लखनऊ के रंग बदल गये । अमजदअली शाह के वक्त की वह मनहूसियत एकदम रंगरेलियों में बदल गई । घर-घर में रंग बरसने लगा । तबले पर थापें पड़ने लगीं और घुँघरुओं की छमाछम सुनाई पड़ने लगी ।

'परीखाने में जिस कदर परियाँ थीं सभी शाही हरमसरा में दाखिल होकर नवाब के खिताब लकब के साथ महल और बेगम कहलाने लग गईं ।'

'तब आपका वह परीखाने में जाकर परियों के साथ दिल बहलाने का सिलसिला भी टूट गया होगा ?' मिरजा ने पूछा ।

'जी हाँ, उस वक्त तो टूट ही गया था ?'

'क्या बाद में फिर जुड़ गया ?'

'जी हाँ, मगर एक दूसरे नकशे के साथ ।'

'अच्छा मिरजा ने जरा मुस्करा कर कहा,'यह तो बताइए कि परीखाने के दिल-बहलाव और गाने-बताने के सिलसिले में किसी परी से आपकी आँख भी लड़ी, उससे इश्क भी पैदा हुआ ?'

'जी नहीं ।' नवाब ने गम्भीरतापूर्वक कहा । 'इसमें दो अड़ंगे पड़े हुए थे । पहला अड़ंगा यह था कि मेरे दिल में शाही अदब और मर्तबे का ख्याल जमा हुआ था । परीखाने की सभी परियाँ वलीअहद से ताल्लुक रखती थीं । उनके दिलबस्तगी की सूरतें थी । इसलिए उनमें से किसी से भी इश्क व मोहब्बत का इजहार करना मैं गुनाह समझता था । दूसरा अड़ंगा इससे भी जबर्दश्त था । मेरे दिल में तो एक दूसरी ही परी घुसी बैठी थी । जिसे मैं परीखाने की तमाम परियों से हसीन समझ रहा था । उसके आगे किसी दूसरे का हुस्न मेरी नजर में कोई हकीकत नहीं रखता था ।'

नौ

आज सबेरे से ही आकाश बादलों से भरा था। काली घटाएँ छा रही थीं। बादल गरज रहे थे। बिजलियाँ चमक रही थीं। ऐसा मालूम हो रहा था कि शायद इस जोर-शोर की वर्षा होने वाली है कि जल-थल एक दिखाई देगा। लेकिन अभी तक एक बूँद भी जमीन पर नहीं आई थी। केवल मौसम ही भयानक हो रहा था।

नवाब जमालुद्दौला रोज की तरह अपने दीवानखाने में मसनद पर जमे बैठे थे। मिरजा जफर हुसैन के आने का इन्तजार था। उन्हें आज जहाँ से अपनी कहानी शुरू करनी थी उसे मन में संजो कर आगे का एक खाका भी खींच लिया था। लेकिन मिरजा फिर भी नहीं आये थे। उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

घड़ी ने आठ बजाए। जमालुद्दौला चौंक से पड़े। निगाह उठा कर सदर दरवाजे की तरफ देखा और हताश हो गये। आज मिरजा क्यों नहीं आये? रह-रह कर यही ख्याल सता रहा था। फिर भी उन्हें मिरजा के आने का विश्वास था। नाश्ते का वक्त हो चुका था। अतः, नौकर ने नाश्ता लाकर उनके सामने सजा दिया। नवाब की निगाह एक बार पुनः सदर दरवाजे तक जाकर लौट आई। मिरजा के आने की आशा टूट सी गई। मजबूर होकर अकेले ही नाशते से फारिग हुए। पान खाया और बड़े तकिए का सहारा लेकर पेचवान का मजा लेने लगे। दिमाग में मिरजा की गैरहाजिरी चक्कर काट रही थी। विचारों ने दौड़ आरम्भ की···आज मिरजा क्यों नहीं आये···क्या उनको मेरी कहानी पसंद नहीं आई···मुमकिन है पसंद न आई हो···उनके उपन्यास के योग्य न हो···तब पहले ही कह देना था···संकोच की कौन सी बात थी···कुछ हद तक सही भी हो सकता है···किसी उपन्यास के लिए रोचक सामग्री होना चाहिए···मेरी रूखी-सूखी कहानी भला कौन पढ़ेगा···इससे पाठकों को क्या दिलचस्पी हो सकती है···लेकिन मालूम तो यही होता था कि उन्हें मेरी कहानी बहुत पसंद आ रही है···बड़े शौक से सुनते थे···मसौदा भी तैय्यार करने जाते थे··· अगर उनके मतलब की कहानी न होती तो क्यों इतनी तकलीफ उठाते···शायद कोई जरूरी काम आ गया हो···घर-गृहस्थी वाले आदमी ठहरे। एक न एक काम पीछे लगा ही रहता है···गप लड़ाना, किस्से कहानियाँ कहना-सुनना तो फुरसत का काम हुआ करता है···मेरी तरह वह ठलुवा नहीं हैं···यहाँ तो अकेली जिन्दगी और समय व्यतीत करने की बात है···उनका वक्त तो बहुत कीमती होगा···मुमकिन है कुछ तबियत नासाज हो गई हो···इनसान की तबीयत बिगड़ते क्या देर लगती है···आज का मौसम भी तो बहुत वाहियात है···सुबह से घटाएँ छाई है···गरज घुमड़ और बिजलियो

की चमक-दमक हिला रही है···ऐसे भयानक समय में कौन घर से बाहर निकल सकता है ! नवाब ने पेचवान का एक लम्बा कश लेकर सदर दरवाजे पर निगाह डाली। एक क्षण तक उधर देखते और धुवाँ फूँकते रहे। फिर करीम नौकर को आवाज देकर बुलाया। वह आकर सामने खड़ा हो गया।

नवाब ने एक क्षण मौन रहने के बाद पूछा—'बाहर बारिश हो रही है ?'

'हजूर, बारिश तो नहीं हो रही। सिर्फ बादलों का अंधेरा छाया है।' करीम ने कहा।

'तुम जानते हो मिरजा जफर हुसैन कहाँ रहते हैं ? मिरजा जफर हुसैन वही हैं जो रोजाना इस वक्त आकर हमारे पास बैठा करते हैं। शायद यहीं कहीं पड़ोस में रहते हैं ?'

'जी हजूर', करीम ने इतमीनान से कहा—'मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। तोप दरवाजे से कुछ आगे चलने पर जो एक तिराहा मिलता है, उसकी बाँई सड़क पर बीस-पच्चीस कदम आगे उनका मकान है और उनके मकान की सबसे बड़ी पहचान यह है कि मकान के आगे पीपल का एक बहुत पुराना दरख्त है। उसके नीचे पनवाड़ी की एक दूकान भी है।'

'जा कर जरा खबर तो ले। आज मिरजा यहाँ क्यों नहीं आए ?···जरा भाग कर जाना-आना।'

करीम गया और कुछ देर बाद वापस आकर बोला—'हजूर मिरजा तो घर में नहीं थे। अन्दर से एक लड़की ने बाहर आकर बताया कि आज मिरजा साहब बड़े सबेरे ही घर से निकल कर हजरतगंज की तरफ गये हुए हैं। शायद उधर कोई जरूरी काम था।'

'ठीक है, जाओ अपना काम देखो।'

नवाब जमालुद्दौला तकिए से टिक गये। सोचने लगे—अब मेरा यह वक्त कैसे कटे,···मेरी मनहूसियत किस तरह दूर हो···कोई और नहीं; कोई दूसरा बात करने को नहीं···अकेला जीवन बड़ी मुसीबत का सामना है···अगर बीवी वहीदन इस वक्त आ गई होती तो कुछ दिलबस्तगी रहती···लेकिन उसके आने का समय तो तीसरा पहर है, उसी वक्त आयेगी···तब यह काला पहाड़ सा वक्त किस प्रकार गुजारूँ··· क्या करीम को भेज कर बीबी वहीदन को बुलाऊँ···लेकिन मौसम का तूफान भी तो बहुत बड़ी बला है···कम्बख्त यह भी मेरे साथ दुश्मनी निबाह रहा है···ऐसे खौफ-नाक वक्त में वहीदन भी क्यों आयगी।···

सदर दरवाजे की तरफ किसी के पैरों की आहट मालूम हुई। नवाब की निगाह उधर को उठ गई। बीवी वहीदन ने दीवानखाने में प्रवेश किया। नवाब का चेहरा खिल गया। रौनक दौड़ पड़ी। होंठ मुस्कानों से भर गये। वहीदन का हाथ पकड़ कर मसनद पर बैठा लिया। बोले—'बीबी वहीदन, तुम्हारी बहुत बड़ी उम्र है। हम अभी तुम्हें याद ही कर रहे थे कि तुम आकर मौजूद हो गईं।'

वहीदन छूटते ही बोली—'ऐ, मैं हरगिज बहुत बड़ी उम्र नहीं चाहती।'

'क्यों ?' नवाब ने कुछ हैरत-भरी नजर उसके चेहरे पर डाली।

'क्या रखा है बहुत बड़ी उम्र में।' वहीदन ने उपेक्षा के भाव से कहा—'यह दुनिया जिन्दा रहने के लायक नहीं है। यहाँ मरने में ही मजा आता है। कब्र में पर फैला कर सोने में जो लुत्फ है वह इस दुनिया की भीड़-भाड़ और चीख पुकार में कहाँ है। यहाँ तो दिन-रात रोना ही रोना है। कब्र में न कोई शोर न गुल। आराम के साथ पड़े-पड़े हश्र तक खर्राटे भरना है। वहाँ कोई छेड़ने-जगाने वाला नहीं। सोचिए कैसी मौज है वहाँ !'

'अरे, इस रंगीन दुनिया से ऐसी उपेक्षा क्यों'…?

'आपके लिए रंगीन है यह दुनिया।'

'और तुम्हारे लिए ?'

'कहती तो हूँ कि मेरे लिए रंगीन कब्र का कोना है। इसीलिए जल्द मर जाना चाहती हूँ।'

'अरे, ऐसा न कहो बीवी ?' नवाब ने उदास लहजे से कहा। तुम मर जाओगी तो हम क्या करेंगे। हमारा दिल कौन गुदगुदायेगी !'

'कोई नहीं, जरूरत क्या है दिल गुदगुदाने-सहलाने की ?'

'वाह, तुम्हारे बगैर हम किस तरह जिन्दा रहेंगे ?'

'जिन्दा रहने की जरूरत क्या है ? आप भी मेरे साथ पैर फैला कर कब्र में सोइएगा।'

'ऐसा क्यों ?'

'इसलिए कि मैं आपकी आशिक हूँ और आप मेरे माशूक हैं। आशिक-माशूक दोनों गले लिपटे हुए सोएँगे और कयामत के दिन जाग कर अल्ला मियाँ के सामने खड़े हो जायँगे। मैं एक आशिक की हैसियत से अपनी वफाओं का इजहार करूँगी और आप माशूक की हैसियत से अपने जुल्म-सितम की माफी माँगिएगा।' फिर मुस्करा कर कहा—'कैसा लुत्फ आयेगा उस वक्त ! जरा ख्याल में लाइए उस तमाशे को।'

और वहीदन जमालुद्दौला के गले से लिपट गई। दोनों की हँसी-खुशी से दीवानखाना भर गया।

सावधान होकर वहीदन ने पूछा—'अच्छा, अब यह बताइए कि आप इस वक्त क्यों मुझे याद कर रहे थे ?'

'यह भी कोई पूछने की बात है ? तुम्हारी याद तो हर वक्त हमारे दिल में मौजूद रहती है। अकेले में तो तुम हमेशा हमारे पास होती हो। सुना नहीं है :—

तुम मेरे पास होते हो गोया,
जब कोई दूसरा नहीं होता।'

'और मेरी सुनो।' वहीदन ने कहा—

'पाँव में गर्दिशे-पुकार बनी रहती है,
बैठने देती नहीं घर में मुझे याद देरी।'

फिर नवाब का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा, 'नवाब साहब, आज एक राज की बात पूछती हूँ। सच बताना ?'

'पूछो ?' नवाब ने नजर मिला कर कहा।

'आपने कभी नशे की तरंग का मजा उठाया है ?'

'कैसी नशे की तरंग ? अभी हम तुम्हारी बात समझ नहीं सके।'

'आपने कभी शराब पी है ?'

'नहीं ?'

'क्यों ? बादशाह वाजिदअली शाह के मुसाहब्र बन कर और उनकी सोहबत में रह कर लालपरी को मुँह नहीं लगाया था ?

'जाने-आलम शराब नहीं पीते थे। उनको इस चीज से सख्त नफरत थी।'

'मगर उनके चाचा बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के बारे में तो सुना जाता है कि वह बोतलें पर बोतलें खाली करते रहते थे। विलायती शराब उन्हें बहुत पसन्द थी।'

'रही होगी।' नवाब ने उपेक्षा के भाव से कहा—'मुझे उनका किस्सा मालूम नहीं है। मैं तो सिर्फ अपने जाने-आलम की तबियत से वाकिफ हूँ।'

'तो आपके जाने-आलम को किसी भी नशे का शौक नहीं था ?'

'नहीं।'

'चरस, मदक, गाँजा, भंग और अफीम वगैरा दुनिया के सभी नशों से उनको नफरत थी ?'

'वाकई नफरत थी। होली के त्यौहार पर जब कि आम तौर पर लोग शराब पिया करते हैं। हजरत शराब नहीं बिकने देते थे। एक बार की होली और शराब की कुर्की का किस्सा तो हमारे सामने का है। हम उस वक्त उनके पास बैठे हुए थे।'

'वह क्या किस्सा है ?' वहीदन ने कहा—'जरा फरमाइए।'

'होली का त्योहार था। लखनऊ में बादशाह के हुक्म से शराब की दूकानें बन्द थीं। शराब न मिलने से कन्यस्थों का त्यौहार फीका पड़ गया, महफिलों में उदासी छा गई। आखिर बड़े-बड़े इज्जतदार कायस्थों की एक भीड़ बादशाह के सरिश्तेदार मुंशी शंकर दयाल 'फरहत' के यहाँ जमा हुई। शराब खुलासा कराने की तदबीरें सोची जाने लगीं। अन्त में फरहत साहब ने अर्जी के तौर पर कागज पर दो शेर लिखे और उस पर सारी भीड़ के दस्तखत कराए। शंकरदयाल ने वह कागज लाकर वाजिद अली शाह के सामने रखा। मैं उस समय हजरत के पास बैठा था। उन्होंने ढ़पा। कागज पर ये दो शेर लिखे थे :—

कुर्क मय अय्याम होली में कहो क्या कीजिए,
जी में आता है कि इस सूरत में कंठी लीजिए।
गर तमाशा कायस्थों का देखना मंजूर हो,
शाह दो दिन के लिए मय की इजाजत दीजिए।

जाने-आलम मुस्कराए। फिर कलमदान मँगा कर अपने हुक्म के तौर पर उसी कागज पर ये दो शेर लिख दिए :—

गर इजाजत चाहते हैं खौफ इतना कीजिए,
साथ ही भर-भर किसी बदमस्त को मत दीजिए।
नशा में आकर किसी के घर कहीं वह घुस पड़े,
नालशी से मत खराबी सर पे अपने लीजिए।

और दो दिन के लिए शराब की बिक्री का हुक्म जारी हो गया था।'

वहीदन हँस पड़ी। फिर बोली, 'आपने यह लतीफा तो मजेदार सुनाया लेकिन मेरा कहता है कि वाजिदअली शाह नशे में जरूर मस्त रहते थे। वह शराब, भंग, चरस, मदक के शौकीन भले ही न रहे हों, मगर एक खास नशे में चौबीसो घंटे मस्त रहते थे।'

'वह खास नशा कौन सा है? जरा उसका नाम तो लो?' नवाब ने कहा।

'उनका वह खास नशा औरतों की हुस्नपरस्ती और इश्कबाजी था।' फिर थोड़ा मुस्करा कहा—'कहिए, इसे आप कबूल करते हैं या नहीं?'

जमालुद्दौला मुस्करा कर बोले—'इसे तो मजबूर होकर कबूल करना पड़ेगा। उनका यह व्यसन किसी तरह भी छिपाया नहीं जा सकता।'

हसनू ने अन्दर से दीवानखाने में आकर कहा—'हुजूर वक्त हो चुका है दस्तरख्वान लगाया जाय?'

नवाब के बोलने के पहले वहीदन बोल उठी—'हाँ, लगाया जाय। मुझे जोर की भूख लग रही है।' फिर नवाब का हाथ पकड़ कर कहा—'उठिए चलिए। दस्तर-ख्वान पर बैठा जाय।'

दीवानखाने से अन्दर के कमरे में जाकर जमालुद्दौला और बीवी वहीदन एक साथ दस्तरख्वान पर बैठे। बड़े इतमीनान के साथ खाना खाया। वहाँ से नवाब सीधे आरामगाह में पहुँच गये। पलंग बिछा हुआ था। नवाब पलंग पर बड़े तकिए का सहारा लेकर अधलेटे से हो गये। वहीदन भी पाँयते की तरफ आराम से बैठ गई। हसनू ने पान की गिलौरियाँ लेकर पेश कीं। नवाब ने एक गिलौरी लेकर अपने मुँह में रखी और दूसरी गिलौरी लेकर मुस्कराते हुए अपने हाथ से बीवी वहीदन के मुँह में रख दी। वहीदन ने मुस्करा कर तस्लीम के लिए हाथ उठा दिया। पेचवान भी आ गया। मुँह के पान का मजा लेकर नवाब साहब पेचवान के कश लेने लगे।

जरा देर बाद जमालुद्दौला ने बीवी वहीदन की नजर से नजर मिला कर कहा—'बीवी यह तो बताओ। आज तुम बेवक्त क्यों आ गई! वैसे तुम्हारे आने का समय तो तीसरा पहर था। क्या कोई खास वजह थी?'

'क्या? मेरा बेवक्त आ जाना आपको नागवार गुजरा है?' वहीदन ने कुछ रूखे स्वर से कहा, 'अगर ऐसा है तो लीजिए मैं चली जाती हूँ।' और वह उठने लगी।

नवाब ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'ऐ, बैठो, जाती क्यों हो ?'

'नहीं, छोड़िए मेरा हाथ। जब आप को मेरी सूरत पसंद नहीं, मेरा आना नागवार गुजरा है, तो क्यों बैठूँ ?'

'तुम्हें मेरे सिर की कसम है।' नवाब ने उसे पकड़ कर बैठाते हुए कहा—'जरी सी बात पर इतनी गरम हो गई। एकदम जाने के लिए उठ खड़ी हुई। जरा ठण्डी होकर सोचो। हमने ऐसी कौन सी बात कही थी। सिर्फ एक मामूली सवाल किया था कि आज तुम बेवक्त कैसे आ गई। इसमें नाराज होने की कौन सी बात थी ?'

'छोड़िए ये बनावटी, मुँह मीठी बातें।' वहीदन ने तिरछी नजर से देखते हुए कहा—'आज आपके दिल का पता चल गया। हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं खाने के और। आप मुँह के मीठे और दिल के······।' फिर धीरे से कहा—'माशूकों का दिल पत्थर का होता है।'

'तुम फिजूल दिल दुखाने वाली बातें कर रही हो। तुम तो हमारी इस जिन्दगी का सहारा हो। तुम्हारा आना भला हमें नागवार मालूम हो सकता है ? कभी स्वप्न में भी ऐसा ख्याल न करना। तुम आ जाती हो तो हमारी उदासी दूर हो जाती है। दिल बहल जाता है। वरना तुम जानती हो कि हम इस गुलफाम मंजिल में अकेले अपनी मनहूसित लिए बैठे रहते हैं।···अगर तुम बेवजह इस तरह नाराज हुआ करोगी, रूठ कर हमारे दिल पर चोटें करोगी तो वह दिन दूर नहीं कि हम···।' नवाब साहब आगे कुछ न कह कर कातर दृष्टि से वहीदन को देखने लगे।

वहीदन दिलो-जान से जमालुद्दौला पर फिदा थी। उसका अन्तस नवाब के लिए आइने की तरह साफ, बिला गर्द-गुबार का था। वह कभी और किसी तरह भी उनका दिल दुखाना नहीं चाहती थी। इस समय की छेड़-छाड़, कड़ुवी-तीखी बातें वहीदन की केवल एक शोखी और अपने माशूक के हृदय पर गहरा अधिकार प्राप्त कर लेने का बहाना था। वह अपनी शोखियों और नाज-नखरों से ही नवाब का दिल गुद-गुदाना चाहती थी। उसे नवाब की गुजरी हुई जिन्दगी का पूरा पता था। जानती थी कि वह लाला जीवनलाल से नवाब गुलफाम अली खाँ बने हैं। इस वजह से वह नवाब को लाला तथा काफिर कह कर अपने प्रेम का परिचय दिया करती थी। इस समय भी वहीदन अपने उसी प्रेमावेश के बहाव में बह रही थी।

जमालुद्दौला की मनुहारें सुन कर वहीदन बोली—'अरे लाला, मुझसे न बनो। मै तुम्हारी इन चिकनी-चुपड़ी बातों को खूब समझती हूँ।···क्या कहूँ। मौला ने मुझे माशूक तो बहुत बाँका और निराला दिया। लेकिन उसका दिल पत्थर का बना दिया जो कभी नहीं पसीजता। उस फौलाद के दिल में मेरी मोहब्बत की कोई कदर नहीं है।'

'बीवी, पहले मेरे दिल को अपने हाथों से टटोल कर तो देखो, वह पत्थर

फौलाद का है या रेशम से भी अधिक किसी नरम चीज का। उसके बाद अपनी राय कायम करना।'

वहीदन गर्दन में जरा लोच देकर और अपनी आँखों का जादू नवाब की तरफ उछाल कर बोली—'अरे काफिर, बस चुपके हो रहो। 'अपने दिल की तारीफ न करो, मेरे दिल की कहो। इस भयानक मौसम में काली घटाओं को चीरती हुई मैं अपने घर से भागी चली आई, उसकी कदर नहीं, ऊपर से यह तोहमत है कि बेवक्त क्यों आ गईं—

काफिर तुझे दिल देकर मैंने तो ये जाना है,
जीने की तमन्ना में मरने का बहाना है।'

'अरे बीवी, क्यों हमें बेमौत मारे डालती हो ?' कह कर जमालुद्दौला ने वहीदन को पकड़ कर छाती से लगा लिया। दोनों शीर-शकर हो गये। दोनों ओर की प्रेम-प्यार भरी बौछारों ने एक दूसरे को भिगो दिया।

सावधान बैठ कर वहीदन बोली—'अच्छा अब सुनो। आज मेरे बेवक्त आने की वजह यह है—कल रात में जो यहाँ से चल कर घर पहुँची, काफी वक्त हो गया था। बिस्तर पर लेट गई लेकिन निगोड़ी नींद जाने कहाँ गुम हो गई थी। बहुत देर तब आखें बंद किए करवटें बदलती रही, फिर भी नींद क्या आलस तक महसूस न हुई। सिरहाने कंवल जल रहा था। नौकर-नौकरानियाँ नीचे की मंजिल में सो रहे थे। मैंने एक बार फिर सोने की कोशिश की मगर बेसुध रही। जी में आया कोई किताब पढ़ूँ। उठ कर अल्मारी खोली। पहले ही जो किताब हाथ लगी, उसी को लेकर पलंग पर लेट गई। अब जो गौर से देखा तो वह कोई खास किताब नहीं थी। एक मोटी सी कापी थी उसमें मेरे ही कलम की लिखी गजलें, ठुमरियाँ, दादरा, होलियाँ, सावन और दूसरे गाने थे। कभी जवानी के आलम में अपना शौक पूरा करने के लिए मैंने वह संग्रह तैय्यार किया था। खैर वरक उलटे। दो चार गजलें पढ़ीं। कुछ ठुमरियाँ पढ़ कर गुनगुनाईं फिर वरक उलटते हुए एक मेघ-मलार पर नजर जमी। पढ़ा, बहुत अच्छा मालूम हुआ, उसे गाने की कोशिश की पर गा नहीं सकी। उसकी धुन मेरी समझ में नहीं आ रही थी। लेकिन मुझे वह गीत बहुत पसंद था। सोचा, कल इसे नवाब साहब के हाथों में देकर उनकी जबान से लय-धुन के साथ सुनूँगी। इसके बाद आलस आई, पलकें झुकीं और मैं स्वप्नों के देश में पहुँच गई। सुबह जाग कर पहला काम यह किया कि उस मेघ-मलार के गीत को कागज के एक टुकड़े में लिख कर आँचल में बाँध लिया। और उस गीत को आपकी जबान से सुनने की आरजू लेकर बेवक्त ही इधर भागी चली आई।'

'देखें, वह मेघ-मलार का गीत कैसा है ?' नवाब ने कहा।

वहीदन ने बड़ी तत्परता के साथ आँचल की गाँठ खोल कर गीत लिखा कागज नवाब के हाथ में दे दिया। जमालुद्दौला ने उसे पढ़ा, फिर वहीदन को लौटाते हुए कहा—'गीत तो बहुत सुन्दर और राग-रागिनी से लबालब है। मेघ राग की

लय-धुन में गाया जा सकता है। यदि संगीत का कोई अच्छा-कुशल ज्ञाता हो तो इसे गाकर राग का प्रभाव भी दिखला सकता है।'

'तब मुझे क्यों वापस दे रहे हैं?'

'और क्या करें?' नवाब ने कहा—'इसे संजो कर अपने पास रख लो। अच्छी चीज है। कभी मौज और मौसम में गाना।'

'आप इस मेघ-मलार को गाकर सुनाइए। सावन का महीना भी है और आज आकाश पर काली-काली घटाएँ भी छाई हैं। बड़ा मजा रहेगा।···फिर इसी मेघ-मलार को सुनने के लिए मैं बेवक्त भागी चली आई हूँ।'

'अरे बीवी, अब हमारे दिन गाने-बजाने के हैं? अब तो हम एक तरह से मुर्दा हो रहे हैं।'

वहीदन ने उनके गले में हाथ डाल कर कहा—'उई, मेरे माशूक! यह कैसा कलमा जवान से निकाल रहे हैं। मुर्दा हों मेरे लाला के दुश्मन। अगर मेरा माशूक अपने को मुर्दा समझेगा तो ये निगोड़ी वहीदन, उसकी आशिकेजार किस तरह जिन्दा रहेगी?'

बाहर बादलों की गड़गडाहट और बिजली की चमक, कड़कड़ाहट हो रही थी। नवाब ने मुस्करा कर वहीदन से कहा—'बीवी, तुम अपना दुपट्टा उतार कर छिपा लो। जल्दी करो, बिजली फिर कड़कड़ा रही है। ऐसा न हो कि कमरे में घुस आए।'

'मेरे दुपट्टे और बिजली से क्या निस्बत है?' वहीदन ने कहा।

'तुम्हारे दुपट्टे में बिजली टँकी हुई है।'

'फिर वही बेतुकी बात!' वहीदन ने आँखें नचा कर कहा—'मेरे दुपट्टे की बिजली और आसमान की बिजली का क्या रिश्ता है?'

'ऐ, क्या सुना नहीं है—दुपट्टा देख के बिजली गिरेगी बिजली पर।'

'अच्छा यह बात है।' वहीदन ने हँस कर कहा—'मेरे एक दुपट्टे की बिजली से आप इतना डरते हैं। मेरे तो अंग-अंग में सैकड़ों हजारों बिजलियाँ मौजूद हैं। कहिए तो अभी दो चार गिरा कर दिखा दूँ।'

'अरे रहने दो बीवी। मुझ गरीब बूढ़े को जिन्दा रहने दो। तुम्हारी एक तिर्छी नजर की बिजली ही हमें परेशान कर देती है।' फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'अब हमारी एक बात सुनो। आज का मौसम ख़तरनाक है। बादलों की गरज-घुमड़ ऊधम मचाए हुए है। अंधेरा छा रहा है। इसलिए आज तुम अपने घर न जाना। यहीं सो जाना।'

'ऐ, मैं अपने माशूक को छोड़ कर तो खुदा के घर भी नहीं जाऊँगी।' फिर थोड़ा मुस्करा कर कहा—'लेकिन आप बात उड़ाना और चमका देना खूब जानते हैं।'

'हमने कौन सी बात उड़ा दी? क्या चकमा दिया?'

'वह मेघ-मलार गाने वाली बात को किस खुबसूरती से दबा दिया। चलिए अब गाना शुरू कीजिए।'

नवाब संजीदा होकर बोले—'बीवी, जरा मेरी उम्र और बुढ़ापे पर तो नजर डालो। इसमें मेघ-मलार गाया जा सकता है ? गलेबाजी की जा सकती है ?'

'मैं आपके ये बहाने समझती हूँ। कलाकार के जौहर बुढ़ापे में ही रंग लाते हैं। आप पुराने उस्ताद हैं। कौन नहीं ज़ानता कि कभी लाला जीवनलाल गाने-बताने में अपना जोड़ नहीं रखते थे।'

'अरे वह जवानी के दिन और उसकी उमंगें थीं। अब तो हम बूढ़े हैं। दिल में न कोई बलबला है न उमंग है। अब तो हमें माफ करो।'

'अच्छा जाने दो।' और वह तिर्छी होकर बैठ गई। मुँह भी फुला लिया। नजर भी फेर ली।

'यही तो तुममें बहुत बड़ा ऐब है।' नवाब ने कहा—'मुकर कर हमारे कलेजे में छूरियाँ चलाने लग जाती हो। सीधे होकर बैठो।' और उन्होंने उसे पकड़ कर सीधे बैठाना चाहा।

'ऊँ हुँ, मुझसे मत बोलिए।' वहीदन ने उनके हाथ झटक दिए।

'बड़ा जालिम दिल है तुम्हारा। मगर हमारी जिन्दगी तो तुम्हारी ही खुशी से है। अगर तुम्हें हमारा मजाक उड़ाना ही मंजूर है, तो वही सही।···अब तो सीधी होकर बैठो।'

वहीदन सीधी होकर बैठ गई और मुस्कराते हुए बोली—'मियाँ, अब जुर्माना भी चुकाना पड़ेगा।'

'वह कैसा ?'

'वह ऐसा कि इतने नखरों-बहानों के बाद आप गाने के लिए तैयार हुए हैं। इसलिए जुर्माने में मेघ-मलार के बाद एक ठुमरी भी हाव-भाव बता कर गानी पड़ेगी।'

'हाय गजब !' नवाब ने कहा—'खैर, दिया सर ओखली में जब, तो फिर मूसल का डर क्या है ? किसी तरह तुम्हें राजी तो रखना है।'

दिन का चौथा पहर चल रहा था। संध्या अभी काफी दूर थी। लेकिन वातावरण के कारण कमरे में अंधेरा महसूस होने लगा था। अतः वहीदन ने करीम को बुला कर दो सफेद कंवल रोशन करा लिए। कमरा जगमगा उठा।

नवाब जमालुद्दौला संभल कर बैठ गये। गीत वाला कागज हाथ में लेकर उस पर नजर जमाई। वहीदन उनके सामने बैठी थी। नवाब को मलार गाने के लिए तैय्यार देख कर बोली, 'ऐ, क्या दीवानखाने से आपका सितार मँगाऊँ ? सितार के तारों की झंकार के साथ मलार गाइएगा ?'

'अरे नहीं, नवाब ने उसकी तरफ निगाह उठा कर कहा—'सितार में तो अब मनो धूल चढ़ रही होगी। शायद तार भी टूट गये होंगे। एक जमाने से न उस पर निगाह डाली और न छुआ। उसका शौक तो हुश्नआरा के साथ खतम हो गया था।

संगीत भी उसी समय से भूल गया था। तब से आज यह पहला दिन है कि हम कुछ गाने के लिए मुँह खोल रहे हैं। वह भी तुम्हारी जिद और तुम्हारा दिल रखने के लिए।'

जमालुद्दौला ने मेघ-मलार गाना शुरू किया—'सावन घन गरजत घूम-घूम-सीतल जल बरसत झूम-झूम।' नवाब के मधुर कंठ से निकल कर गीत की लय-धुन ने समाँ बाँध दिया। राग के प्रभाव से बाहर वर्षा प्रारम्भ हो गई। लगभग आधे घन्टे तक गाकर उन्होंने गीत समाप्त कर दिया। वहीदन अभी तक बेहोशी के आलम में बैठी झूम रही थी। संगीत समाप्त होते ही चैतन्य हो गई।

नवाब ने वहीदन की नजर से नजर मिला कर कहा—'सुन लिया मलार? तुम्हारी जिद पूरी हो गई?'

वहीदन मुस्करा कर बोली, 'अभी कहाँ पूरी हुई। अभी जुर्माना चुकाना तो बाकी है। लगे हाथों उसे भी चुका दीजिए। कदर पिया की कोई अच्छी ठुमरी शुरू कीजिए।'

'भई, तुम्हारी अदालत और तुम्हारा इन्साफ बहुत खरा चौख है। बिना जुर्माना चुकाए छुटकारा नहीं मिल सकता। लो, ठुमरी भी सुन लो।'

वहीदन ने अपना दुपट्टा उतार कर नवाब को उढ़ा दिया। और मुस्करा कर बोली—'हाँ, अब शुरू कीजिए।'

नवाब ने कहा—'यह क्या हरकत है। हमें दुपट्टा उढ़ा कर दुलहिन क्यों बना दिया?'

'बिना दुपट्टा ओढ़े, दुलहिन बने, ठुमरी कैसे गाई जायेगी? ठुमरी के बोलों को गाने-बताने, भाव प्रदर्शन का मजा तो घूँघट खींचने-उठाने और आँखें चमकाने में ही आयेगा।'

'अच्छा भई, यह भी सही।' धीरे से कहा।

नवाब ने घूँघट आँचल वगैरा संभाल कर कदर पिया की प्रसिद्ध ठुमरी शुरू की—'बारे बलम फुलगेंदवा न मारो, लगत करेजवा में चोट।'

उन्होंने ठुमरी के एक-एक बोल को गाकर अपने अंगों के लोच-मोड़, घूँघट की खींचा-तानी और आँखों के चमत्कारों के साथ ऐसे हाव-भाव दिखाए कि रागिनी रूपमान दिखाई देने लगी। बीवी वहीदन पर सन्नाटा सा छा गया। घन्टे-पौन घन्टे तक अलाप चलती रही। जैसे ही ठुमरी की लय-धुन बन्द हुई, वहीदन झपट कर नवाब के गले से लिपट गई।

दस

'कल आप गैरहाजिर रहे । इन्तजार करते-करते थक गया ।' जैसे ही मिरजा-जफर हुसैन ने दीवानखाने में कदम रखा, जमालुद्दौला ने कहा ।

'माफी का ख्वास्तगार हूँ ।' मिरजा ने बैठ कर कहा ।

'बात यों है मिरजा साहब ? इधर सुबह का वक्त आपके साथ बड़े मजे में गुजर जाता है । जरा भी तनहाई महसूस नहीं होती । वह तो गनीमत यह हुई कि उसी वक्त वहीदन आ गई और हँसी-मजाक में वक्त गुजर गया ।' फिर जरा रुक कर कहा—'आपके न आने से मेरे दिल में यह ख्याल पैदा हुआ था कि शायद आपको मेरी दास्तान पसंद नहीं आ रही । इसलिए आपने बेकार की बातों में अपना कीमती वक्त बरबाद करना मुनासिब नहीं समझा ।'

'खुदा खैर करे, आपका ऐसा ख्याल फरमाना तो मेरे हक में जहरे—कातिल था ।' मिरजा ने हैरत के साथ कहा ।

'सच कहता हूँ मिरजा जफर हुसैन साहब, किसी लिहाज-संकोच की जरूरत नहीं है ।' जमालुद्दौला ने जरा गम्भीर होकर कहा—'अगर मेरी कहानी में आपको लुत्फ न आ रहा हो, एक बकवास मालूम होती हो, तो छोड़िए इसे । कोई दूसरा जिक्र-मशगला शुरू किया जाय ।'

'किसी भी दूसरे जिक्र या मशगले को शुरू करने की जरूरत नहीं है । आप की यह कहानी तो इस कदर दिलचस्प और पुरलुत्फ है कि मेरा एक भी तारीखी नावेल का मजमून, उसकी दास्तान इस कहानी का पासंगा नहीं है । जब इस कहानी को लेकर मेरा नावेल 'गुलफाम मंजिल' के नाम से छप कर बाजार में आएगा, धूम मच जायेगी । नाजरीन और शौकीन पढ़ने के लिए दीवाने नजर आएँगे ।'

जमालुद्दौला कुछ नहीं बोले ।

मिरजा ने फिर कहा—'ऐसी दिलकश और मजेदार कहानी लोगों ने कभी अपने कानों से न सुनी होगी । फिर जिसका एक-एक हर्फ सच और वाकया की सूरत है । जिसे खुद वह सुना रहा है जिस पर गुजरी है । ऐसी हालत में जनाब से मेरी यही इल्तजा है कि जैसे भी हो इसे इख्तताम को पहुँचाया जाय । अधूरा हरगिज न छोड़ा जाय । मैं आपका बहुत-बहुत शुक्रगुजार रहूँगा ।'

'चाहता तो मैं भी यही हूँ कि कहानी को अन्त तक पहुँचा दूँ । लेकिन कहानी कुछ लम्बी सी है ।'

'कोई हर्ज नहीं है । आप आराम के साथ फरमाते जाइए । आगे बन्दा एक दिन भी गैरहाजिर न होगा । पक्का वादा करता हूँ ।'

जमालुद्दौला संभल कर बैठ गए। बोले—'अच्छा सुनिए। तख्त-नशीन होकर वाजिदअली शाह दो नामों से पुकारे जाने लगे थे। दरबारियों, मुसाहिबों और लखनऊ के आम लोगों में उनका लकब सुलताने-आलम था और अन्दर जनानखाने में बेगमात के जमघट में वह जाने-आलम कहलाते थे। उन्हें भी अपना जाने-आलम नाम बहुत पसंद था। क्योंकि वह उनकी बेगमों के मुँह से मोहब्बत और प्यार में डूबा हुआ निकलता था। सुलताने-आलम नाम में वह लुफ्त कहाँ था। उसमें तो सलतनत का बोझ, जिम्मेदारी, दरबारियों-मुसाहिबों का मतलब और खुशामद की गन्ध भरी रहती थी।' फिर साँस लेकर कहा—'मिरजा साहब यहाँ मैं आपको यह बता दूँ तो बेहतर होगा कि मेरी जिन्दगी का सम्बन्ध जाने-आलम से ज्यादा और सुलताने-आलम से कम, बल्कि बरायनाम रहा है।

'खैर जाने-आलम २६ वर्ष की उम्र, ऐन जवानी के आलम में लखनऊ के तख्त-व-ताज के मालिक बने थे। वलीअहदी के जमाने के जो राग-रंग, मशगले और व्यसन, अच्छे-बुरे जैसे भी थे, वह सब उनमें मौजूद थे। बल्कि यों समझ लीलिए कि उन सभी व्यसनों को खुल-खेलने का अब मौका मिला था। बाप की हुकूमत, दबाव और अपनी हुकूमत आजादी में जो फर्क हुआ करता है, उसे आप अच्छी तरह समझते होंगे। इसलिए जाने-आलम की रंगीन तबियत में अब चार चाँद लग गये थे। वली-अहदी के समय में जो राग-रंग अधूरे रह गए थे, वह अब पूर्णता को पहुँचना शुरू हो गए थे। वलीअहदी के जमाने में उनके जो यार-गार मुसाहिब और मुलाजिम थे, अब उनकी किसमतों का सितारा आसमान पर चमक उठा था। नवाब अमीनुद्दौला इम-दाद हुसैन खाँ बाप के जमाने से वजारत के ओहदे पर जमे चले आ रहे थे। बूढ़े, दुनिया देखे हुए और अपने काम में चुस्त थे, मगर राग-रंगों से रूखे-सूखे थे। फिर जोड़ भी नहीं मिल रही थी। बादशाह जवानी की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था और वजीर बुढ़ापे का जीना उतर रहा था। इसलिए नवाब अमीनुद्दौला को अपने घर बैठा कर वजारत का ओहदा अलीनकी खाँ को बख्स दिया गया और खिलअत के साथ उन्हें मदारुद्दौला का खिताब भी अता हुआ। बादशाह और वजीर दोनों के दिल मिल गए। बल्कि दोनों एक ही साँचे में ढल गए थे। पुराने सोहबती होने के कारण अच्छी चूल बैठ गई थी।

मिरजा जफर हुसैन ने छेड़ा—'नवाब साहब, सुना है कि मदारुद्दौला नवाब अलीनकी खाँ वाजिदअली शाह के ससुर भी थे?'

'जी हाँ,' जमालुद्दौला ने कहा—'लेकिन वजीर बनने के बाद नवाब अलीनकी खाँ ससुर बने थे।'

'वह, क्यों? और किस तरह?'

'वजीरे-आजम अलीनकी खाँ साहब बहुत होशियार और कैंड़े के आदमी थे। अपनी गोटी बैठाने-पकाने में उनका जोड़ नहीं था। आप इसे जिस अर्थ में समझना चाहें समझ लें। उन्होंने अपनी वजारत का पाया मजबूत रहने के लिए आगे चल कर अपनी

एक लड़की जिसका नाम रौनकआरा था जाने-आलम को ब्याह दी थी। ससुर-दामाद का रिश्ता जोड़ लिया था। जाने-आलम ने उनकी लड़की को मलिकए-अवध नवाब अख्तर महल का खिताब अता फरमाया था।'

'लेकिन नवाब साहब ?' मिरजा ने हैरत भरे लहजे से कहा—'सुनने में आता है कि लखनऊ की सल्तनत का खात्मा नवाब अलीनकी खाँ की वजह से ही हुआ था वह अंग्रेजों से मिल गए थे।'

'सच बात है ?' जमालुद्दौला ने कहा—'अंग्रेजों ने वजीरे-आजम अलीनकी खाँ को बड़े-बड़े सब्ज-बाग दिखा रखे थे। लालच बुरी बला है। नवाब मदारुद्दौला को भी लालच ने जकड़ लिया था। अपने दामाद और लड़की की तबाही का उन्होंने जरा भी ख्याल नहीं किया। हर तरह से अंग्रेजों का साथ देकर लखनऊ पर कब्जा करा दिया था।' फिर जरा ठहर कर कहा—'अलीनकी खाँ की कितनी बड़ी साजिश थी। अपने हुक्म से शाही फौज को बेहथियार कर दिया था। तोपें चर्ख से उतरवा कर जमीन पर डलवा दी थीं। मेगजीन में जिस कदर बारूद गोला था, जमीन के अन्दर बन्द करा दिया था। यहाँ तक कि पहरे के जो सिपाही थे उनके हाथों में बन्दूकों के बदले में बाँस की लाठियाँ थीं।'

'उन्होंने हजरत वाजिदअली शाह के साथ बहुत बड़ी दगा की।' मिरजा ने धीरे से कहा।

'मगर वाह रे वाजिदअली शाह !' जमालुद्दौला ने कहा—'कितनी नेक तबियत और कोमल हृदय पाया था। सब जानने और समझने पर भी अलीनकी खाँ से एक हर्फ भी नहीं कहा था। बल्कि अपनी तवाही की हालत में भी बराबर उन्हें अपनाए रहे थे।'

'सुलताने-आलम की बादशाहत के साथ नवाब अलीनकी खाँ की साजिशों-शरारतों और मुसाहिबों की जालसाजियों के बहुत से किस्से लखनऊ में सुने जाते हैं। आपने तो वे सब आँखों देखे और कानों सुनें होंगे।'

'मिरजा साहब, छोड़िए इस जिक्र को।' जमायुद्दौला ने सँजीदा होकर कहा, 'मेरी कहानी के सुलतान-आलम की बादशाहत, हुकूमत, वजीर तथा दरबारियों की साजिशों दगावाजियों और फिरँगीयों का लखनऊ की सलतनत को अपने पेट में रख लेने से कोई संबंध नहीं है। मेरी कहानी, मेरी जिन्दगी की करवट जाने-आलम की जिन्दादिली, मिजाज की रंगीनी, तमाशों और उनकी-फराखदिली से तालुक रखती है। आप उसी को गौर से सुनिए।'

'फरमाइए।' मिरजा जफर हुसैन संभल कर बैठ गए।

जमालुद्दौला एक क्षण की खामोशी के बाद बोले—'मैं आपको बता चुका हूँ कि वलीअहदी के जितने भी चोंचले और व्यसन थे, बादशाह बन जाने पर भी उसी तरह जाने-आलम से लगे लिपटे थे। वलीअहदी के समय उन्होंने रहस का खेल तैय्यार

करके रहस मंजिल में उसे खेला था जिसका जिक्र कुछ विस्तार के साथ आप को सुना चुका हूँ। अब जाने-आलम ने अपनी लिखी तीन मसनवियों यानी पद्यमय कहानियों, दरिदाय तश्शुक, अफसानए-इश्क और बह्र उलफत के खेल तैय्यार किए। इन तीनों खेलों की तैय्यारी और साज-व-सामान जुटाने में जाने-आलम ने दिल खोल कर रुपया खर्च किया। हिसाब लाखों से बढ़ कर एक करोड़ ते आगे बढ़ गया। जिस किसी ने अखनी आँखों से इन खेल-तमाशों को देखा दाँतों तले उँगली दबा कर रह गया।

'लखनऊ में उस वक्त एक शायर सय्यद आगाहसन थे। 'अमानत' उनका उपनाम था। मियाँ दिलगीर के शागिर्द थे। लखनऊ में वह आमतौर पर 'उस्ताद' के नाम से प्रसिद्ध थे।'

'अमानत, उस दौर के वाकई बहुत अच्छे शायर थे।' मिरजा ने कहा—'मैंने उनका कलाम पढ़ा है। उनके दो लड़के बलागत और फसाहत भी अच्छे शायर हुए। बलागत का तो इन्तकाल हो चुका है; लेकिन अब्बास हसन फसाहत अभी मौजूद हैं। मेरे करमफरमाओं में है।'

'मैं उन्हें नहीं जानता। अच्छा तो अमानत ने जाने-आलम की उन तीनों मसनवियों के खेल-तमाशों को देखा था। उनकी भी तबियत भुर्भुरा उठी। रहस के तौर पर कोई जलसा लिखने का इरादा किया। उनके एक शागिर्द हाजी मिरजा आबिदअली 'इबादत' ने उनके इरादे को जान कर उसे पक्का किया और कलम उनके हाथ में दे दी। घर में बैठे-बैठे अमानत ने एक महीने के अन्दर जलसा लिख डाला। जाने-आलम की मसनवियों में सही तौर पर नाच-गाने की कमी थी। मशनवी के शेर ही नाच-गाकर पढ़े जाते थे। हाँ, किस्सा लम्बा था। उसमें दृश्यों की भरमार थी और खूबी यह थी कि जो दृश्य आँखों के सामने लाया जाता था वह बिल्कुल असल मालूम होता था। अमानत ने जो जलसा लिख कर तैय्यार किया उसमें कहानी तो बहुत मुख्तसर सी थी लेकिन सारा खेल नाच-गानों से भरा था। उसमें चौबोला, ठुमरी, दादरा, होलियाँ और गजलें भरी पड़ी थीं। सभी गाने संगीत के ताल-सुर के साथ तैय्यार किए गये थे और बड़े दिलकश थे। उसकी कहानी एक परी और एक शाहजादे की प्रेम कथा थी। अमानत ने उस जलसे का नाम 'इन्दर सभा' रखा था....'

मिरजा जफर हुसैन चौंक से पड़े बोले—'अच्छा, आप अमानत की लिखी हुई इन्दरसभा का जिक्र कर रहे हैं। वह तो वाकई बहुत दिलचस्प खेल है। मेरे पास उसकी एक जिल्द मौजूद है। मैंने कई बार उसे पढ़ा है। उसमें हजरत अमानत ने वाकई कमाल कर दिखाया है। बड़ी पुरलुत्फ ठुमरियाँ, होलियाँ और गजलें लिखी हैं।'

'अमानत की उस इन्दर सभा की धूम मच गई। गली-कूचों में इन्दर सभा की गजलें और ठुमरियाँ गाई जाने लगीं। राह चलते किसी की जबान से सुनाई देता—

सभा में दोस्तों पुखराज परी आती है,
परीजमालो की सरताज परी आती है।

जवाब में कोई दूसरा पुकार उठता—

बैठी थी मैं काफ़ में जोड़ा पहने लाल,
यहाँ बुलाकर आपने बढ़ा दिया इकबाल ।

कोई तीसरा गाने लग जाता—

पा लागूँ कर जोरी, श्याम मोसे खेलो न होरी ।

चौथा अलमस्त भला कब चूकने वाला था । लय-धुन के साथ कहता—

घर से याँ कौन खुदा के लिए लाया मुझको,
किस सितमगर ने सोते से जगाया मुझको ।

'गरम हवा की लहरों पर सवार होकर अमानत की उस इन्दर सभा की चीजें शाही हरमसरा में उतर पड़ीं । वहाँ परीखाने की परियाँ जो अब बेगमात महलान की हुलिया बनाए बैठी थीं इन्दर सभा के गाने सुन कर एकदम फड़क उठीं । परीखाने में रहते हुए तो वे सब रात दिन एक तरह से नृत्य-संगीत में डूबी रहती थीं । हरम में दाखिल हो जाने के बाद से थोड़ा बहुत शाही अदब कायदे और इज्जत मर्तबे का ख्याल उनके दिलों में पैदा हो गया था । लेकिन उनके दिलों में वही जिन्दादिली मौजूद थी । अपने जाने-आलम के गले लिपट कर वे सब कुछ भूल जाया करती थीं और उनके सम्पर्क में जाने-आलम भी अपने को भूल जाया करते थे । नये-नये चोंचलों का समां बँध जाता था ।

'इन्दर सभा की वह धुनें और चीजें बेगमात को बहुत पसंद आईं । वे सभी पूरी किताब पढ़ने-देखने के लिए तड़प उठीं । आखिर किताब आ गई । एक-एक बेगम ने उसका वरक-वरक चाट लिया । उन्हें वह जलसा बेहद पसंद आया । चाहने लगीं कि इस जलसे का प्रदर्शन रहस की तरह ही किया जाय ।'

एक क्षणकी खामोशी के बाद जमालुद्दौला ने आगे कहा—'मिरजा साहब, अगरचे परीखाने को उजाड़ कर वहाँ की परियाँ शाही हरम में सात पर्दों के अन्दर जा छिपी थीं, लेकिन वे मुझे भूली न थीं । जब-तब पश्मीने की खरीदारी के बहाने से मुझे अपने पास बुला लिया करती थीं । हरम के अन्दर जाने-आने में मुझे किसी तरह की रोक-टोक या छेड़-छाड़ का सामना नहीं करना पड़ता था । जाने-आलम ने इजाजत दे रखी थी । फिर वह भी तो किसी कदर मुझे चाहते थे ।

'अब एक दिन की कथा सुनिए । परियों यानी बेगमों ने पशमीना तलब करके मुझे बुलाया था । हर किसिम का पशमीना लेकर मैं शाही हरम में पहुँचा । हस्ब-मामूल बेगमों ने आकर मुझे घेर लिया । फिर नवाब माशूकमहल ने मुझे अपने साथ ले जाकर अपने महल मैं बैठाया । दूसरी बेगमें भी वहाँ आकर जम गईं । उन दिनों बेगमों को अमानत की इन्दर सभा की धुन सवार थी । शीघ्र ही माशूकमहल ने इन्द्रर सभा की किताब उठा कर मेरे सामने रख दी और उसे खोल कर एक गजल की तरफ इशारा करके उसे गाने का हुक्म दिया । उस गजल का पहला शेर यह था—

रफ्तार की चलन से गजब दिल लुभा लिए,
छोटी सी सिन में यार बड़े तुम हो चालिए।

मैंने गजल गा कर उन्हें सुनाई। बेगमें झूम-झूम गई। नवाब माशूकमहल मुस्करा कर बोलीं—'वाकई इस छोटी सी सिन में तुम बड़े चाल-बाज हो?' और एक जोर दार ठहाका कमरे में गूँज गया।

तभी जाने-आलम वहाँ आकर नशिस्त पर बैठ गए। बेगमात हड़बड़ा कर कायदे से हो गईं। मैंने खड़े होकर उनके आगे सर झुकाया और सलाम किया। उन्होंने बैठ जाने का इशारा किया। मैं एक तरफ अदब के साथ नीची निगाह करके बैठ गया।'

'उस वक्त आप की क्या उम्र थी?' मिरजा ने पूछा।

'सही तो नहीं बता सकता। शायद उन्नीस-बीस साल की रही होगी। क्यों?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछ लिया।'

'जाने आलम ने बेगमात पर एक निगाह डाली फिर मशूकमहल की तरफ मुड़ कर कहा—'यहाँ इस वक्त खामोशी क्यों छाई है? खामोशी से तो हमें सख्त नफरत है। हम तो बुलबुलों की चहक सुनने के आदी हैं।'

'माशूकमहल ने अमानत की वह इन्दर सभा उठा कर उनके हाथ में दे दी और कहा—'जाने-आलम जरा इसे मुलाहजा फरमाएँ।'

'यह क्या है?' उन्होंने धीरे से कहा और किताब को खोल कर पढ़ने लगे। जैसे-जैसे जाने-आलम उस किताब को पढ़ते जाते थे, उनके चेहरे पर रौनक और होठों पर मुस्कान दौड़ती नजर आ रही थी। कभी-कभी वह किसी वरक को पलटना रोक कर किसी ठुमरी वगैरा को गुनगुनाने भी लग जाते थे। कुछ देर में उन्होंने पूरी इन्दर सभा पढ़ डाली और माशूकमहल की तरफ देख कर कहा—'अमानत ने ये जलसा बहुत खूब लिखा है। हमने उनके इस इन्दर सभा की तारीफ तो सुनी थी लेकिन अभी तक हमारी नजर से नहीं गुजरी थी।'

'जाने-आलम! इसका जलसा तैय्यार कराएँ! बड़ा लुत्फ रहेगा।' माशूक-महल ने अर्ज किया।

'उनके चुप होते ही दिलदारमहल बोल उठीं—याकई इसके जलसे में बड़ा मजा आयेगा। सारा जलसा नाच-गाने से भरा हुआ है।'

'क्या पिछले जलसों में नाच-गाने नहीं थे?' जाने-आलम ने पूछा।

'थे क्यों नहीं, बहुत काफी थे?' मगर उनका ढंग कुछ और था। इसके गीत कुछ दूसरे हैं।'

'तब तुम लोगों की तबियत जलसों से नहीं भरी?'

'हुजूर?' माशूकमहल ने मुस्करा कहा—'नाच-गानों और खेल-तमाशों से किसकी तबियत भरा करती है? नाचसे-गाने की ही तो हम लोगों की जिन्दगी है और फिर आपको पाकर। अब भी हमारे हौसले पूरे न पड़े तो बड़े अफसोस की बात है।'

'अच्छा भाई, इस वक्त तो हम सैर के लिए जा रहे हैं। लौट कर अमानत की इस इन्दर सभा को इतमीनान के साथ पढ़ेंगे, संगीत के उस्तादों को बुला कर इस बारे में मशविरा करेंगे। इसके बाद इस जलसे को कायदे के साथ तैय्यार किए जाने की बात सोची जायगी।' जाने-आलम उठ कर वहाँ से चले गये।

'शाम का वक्त करीब चला आ रहा था। जाने-आलम ने तख्तनशीन होने के बाद एक नया मशगला इख्तियार कर रखा था। शाम के वक्त लखनऊ की सैर के लिए निकला करते थे। साथ में मोसाहिब, बरकन्दाज और सवार वगैरा होते थे। उनके आगे चाँदी के पत्रों से मढ़ी हुई काठ की दो सन्दूकें चला करती थीं। उनमें ताले लटके रहते थे। ऊपर की तरफ एफ लम्बा सूराख था। फरियादी अपनी फरि-याद लिख कर सन्दूकों में डाल देते थे। सैर से लौटने के बाद सुलताने-आलम सन्दूकों को खुलवा कर लोगों की पुकार के कागज मुलाहजा फरमा कर मुनासिब हुक्म दिया करते थे। उनका यह मशगला लोगों को बहुत पसंद था। सुलताने-आलम ने उसका नाम रखा था 'मशगलए नौ शेरवानी।'

'बहुत अच्छा मशगला था।' मिरजा ने कहा—'अपनी रिआया की पुकार सुनने के लिए बादशाह ने यह बहुत खूब तरीका ढूंढ निकाला था।'

'लेकिन वह बहुत दिनों चल न सका और बन्द हो गया।'

'क्यों ?'

'क्यों का क्या जवाब दूं ?' जमालुद्दौला ने कहा—'बहुत वजहें थीं। उन वजहों को बयान करना फिजूल है क्योंकि उन बातों से मेरी कहानी का कोई लगाव नहीं है। मैं तो अपनी कहानी से लिपटी हुई बातें ही सुनाना चाहता हूँ।'

'बेहतर है।' मिरजा ने मुस्करा कर कहा—'जनाब अपनी कहानी को पकड़े रहें।'

'जाने-आलम के वहाँ से चले जाने के बाद बेगमों ने फिर मुझे अपने रास्ते पर घसीटना शुरू किया। सितार ला कर हाथ में दे दिया। दुपट्टा भी उढ़ा दिया और इस तरह से मुझे सितार के साथ ठुमरी गाने-बताने के लिए मजबूर कर दिया। कह-कहो-ठहाकों की धूम मचा दी। बमुश्किल तमाम चिराग जल उठने पर मैं हरमसरा से बाहर निकल पाया।'

ग्यारह

'मिरजा साहब, बेगमें शान्त बैठने वाली न थीं।'

जमालुद्दौला ने कहा—'शाही हरम में रह कर उन्हें चक्की तो चलानी नहीं पड़ती थी। ऐश-आराम करना, कहकहे लगाना और गुलछर्रे उड़ाना ही उनका काम था। जितनी भी थीं सभी जात की रंडियाँ, पतुरियाँ, कसबियाँ, और डोमनियाँ थीं। नाचने-गाने के वातावरण में पली थीं। इसलिए शाही हरम का रूखा-सूखा जीवन उन्हें कैसे पसंद आ सकता था! जब तक परीखाने में थीं, दिन-रात नृत्य-संगीत में डूबी रहती थीं। राग-रंग और खेल-तमाशों में उनकी जिन्दगी फूल की तरह खिली रहती थी। शाही हरम आखिर शाही हरम ही तो था। पर्दे की पाबन्दी, अदब-कायदे की पाबन्दी और मर्तबे का ख्याल उनके दिलों को तड़पा देता था। यहाँ भी वे सब वही परीखाने का वातावरण चाहती थीं। अगरचे जाने-आलम भी उसी माहौल को पसंद करते थे। नाच-गाना, खेल, जलसे-तमाशे और हँसी-मजाक से उनका भी खमीर बना था। परीखाने की स्थापना उसी खमीर की एक जीती-जागती तस्वीर थी। उन्हें रूखी-सूखी जिन्दगी से नफरत थी। दिल में वही जोश, वही उमंगें मौजूद थीं। लेकिन उन्हें अवध सलतनत का बादशाह बने अभी पूरा एक वर्ष भी तो नहीं हुआ था। वही वली अहदी का राग-रंग, वही औरतों का हुजूम, वही खेल-तमाशे हाथ में लिए रहना एक धक्का सा देता था। लोग क्या कहेंगे? बादशाहत तो दूसरी ही चीज है। देश अंग्रेजों के कब्जे में है। लखनऊ में अंग्रेज रेजीडेन्ट जमा हुआ है। लखनऊ के बादशाह एक अर्से से उनके हाथ की कठपुतली बने हुए हैं। पुतली का धागा अंग्रेजों के हाथ में है। वह जैसा नचाना चाहें बादशाह को नाचना पड़ता है। ये सब ख्याल जाने-आलम के दिल में पैदा होते थे और वह चौंक भी पड़ते थे। लेकिन बेगमात का जादू, उनके नाज-नखरें और हाव-भावों के वार भी तो बड़े गहरे हुआ करते हैं। उनके जमघट में पहुँच कर, नजर से नजर लड़ते ही जाने-आलम के दिल में पैदा होने वाले ख्याल जाने कहाँ गायब हो जाते थे और वह बेगमों के हाथों की उँगलियों पर नाचने लग जाते थे।

'इस सारी बकवास का मतलब यह है कि बेगमात ने जाने-आलम को कोंच-कोंच कर इन्दर सभा का खेल तैय्यार करने के लिए राजी कर लिया। एक सुबह को हरमसरा का नाजिर वशीरुद्दौला ख्वाजासरा दूकान पर आकर मुझे अपने साथ शाही हरम में ले गया। वहाँ नबाब माशूकमहल के कमरे में बेगमात जमा थीं। जाने-आलम उनके बीच में नशिस्त पर बैठे हुए थे। हाथ में वही इन्दर सभा की पोथी थी। पात्रों का चुनाव दरपेश था।

'मैंने वहाँ पहुँच कर कायदे से उनको फर्शी सलाम किया। सलाम लेकर उन्होंने बैठने का इशारा किया और मैं एक ओर बैठ गया।

'इन्दर सभा के खेल में पात्रों की ज्यादा भीड़ न थी। राजा इन्द्र, चार परियाँ, एक शाहज़ादा, दो-चार देव और दो-चार नौकर-चाकर और कुछ सभासद थे।

'जाने-आलम ने मुस्कराते हुए बेगमात की तरफ मुखातिब होकर कहा—'भई राजा इन्द्र तो हम खुद बनेंगे। बाकी तुम लोगों का हिस्सा है।'

'और दूसरा कौन बन सकता है', माशूक महल ने कहा—'हमें राजा इन्द्र के आगे सिर झुकाना पड़ेगा। किसी गैर के आगे हम सिर कैसे झुका सकती हैं। इसलिए हर सूरत में जाने-आलम को ही राजा इन्द्र बनना पड़ेगा।'

'खैर, राजा इन्द्र का मसला हल हो गया।' जाने-आलम ने कहा—'अब शुरू से चलो। बोलो, पुखराज परी का रूप कौन बेगम साहिबा भरेंगी?'

'हुजूर की तजबीज फरमाएँ। जाने-आलम की पसन्द और चुनाव हमारे सिर आँखों पर होगी।' माशूकमहल ने कहा।

'जाने-आलम जरा देर खामोश बैठे बेगमों के चेहरों पर नजर जमाते और हटाते रहे। फिर सुलतानजहाँ बेगम के चेहरे पर नजर रोक कर कहा—'नवाब सुलतानजहाँ साहिबा, पुखराज परी के लिए हमारी निगाह तुमको पसन्द करती है। तुम्हीं को उसका रूप भरना पड़ेगा।'

'सुलतानजहाँ महल ने मुस्करा कर कहा—'हुजूर की पसन्द के आगे बन्दी सर झुकाती है। तैय्यार है लेकिन एक अर्ज है?'

'क्या?' जाने-आलम ने पूछा।

'पुखराज परी का साज-व-सामान, पोशाक और जेवरात वगैरा हीरा-मोतियों से गुँथी-जुड़ीं होनी चाहिए। उनकी कीमत लाखों की हो। पुखराज परी ने कहा है न?—

'मैं लाख दो लाख की परवाह नहीं करती, कारूं का खजाना अजी इनआम है मेरा।'

'हाँ-हाँ' जाने-आलम ने कहा।,'तुम्हारी सजावट में कोई भी कोर-कसर बाकी न रहेगी।'

मिरजा जफर हुसैन ने जमालुद्दौला से कहा—'ये नवाब सुलतानजहाँ महल कौन थीं? अगर मुनासिब समझा जाय तो हर एक बेगम के जिक्र के साथ मुख्तसर तरीके पर उनके हालात से भी वाकिफ कराते जाइए। मुझे उनकी कुछ जानकारी भी हासिल हो जायगी।'

'बेगमात की कैफियत पहले तो मुझे भी कुछ नहीं मालूम थी। सिर्फ इतना ही जानता था कि ये सब रंडियों-कसबियों की छोकरियाँ हैं। मगर बाद में उनके पूरे हालात से वाकिफ हो गया था। नवाब सुलतानजहाँ महल इसी लखनऊ में रहने वाली दिलबर नाम की तवायफ की छोटी बहिन थीं। घर का नाम हैदरी था। दिलबर नाचने-गाने में बेजोड़ थी। वलीअहदी के जमाने में जाने-आलम की महफिलों में अक्सर

शरीक हुआ करती थी। हैदरी उस वक्त ग्यारह साल की थी, मगर नाच-गाने से वाकिफ थी। दिलवर ने एक दिन हैदरी को अपने साथ लाकर बतौर नजर के वली-अहद के सामने पेश कर दिया। पसन्द करके दिलवर की नजर स्वीकार कर ली गई। सुलतानपरी नाम रखा गया। परीखाना खतम करके अब परियों को नवाब के साथ बेगम और महल का खिताब अता फरमा कर हरम में दाखिल किया गया। सुलतान-परी भी नवाब सुलतानजहाँ महल के नाम से मशहूर हुई।'

'क्या इन्हीं नवाब सुलतानजहाँ महल ने आपका गोलागंज वाला पुश्तैनी मकान खरीद कर वहाँ अपना इमामबाड़ा बनवाया था ?'

'जी हाँ, मगर वह बहुत पीछे की बात है।' जमालुद्दौला ने आगे कहा—'पुखराजपरी का चुनाव हो जाने के बाद नीलमपरी की बारी आई और जाने-आलम ने दिलदारमहल को नीलमपरी बनने के लिए चुन लिया। नवाब दिलदार महल भी एक कसबी की लड़की थीं। अपनी उठती जवानी में परीखाने में आकर दाखिल हो गई थीं। उन्होंने बहुत मीठा गला पाया था। उनका गाना सुन कर लोग मोह जाते थे। नाचती भी अच्छा थीं।

'नीलमपरी के बाद लालपरी का चुनाव सामने आया। इधर-उधर भटकती हुई जाने-आलम की नजर नवाब सरदार महल के चेहरे पर रुक गई। उनका रंग सुर्ख-व-सफेद था। आँखें बड़ी-बड़ी और नाक-नकशा आकर्षक था। फरमाया—'नवाब सरदार महल साहिबा, तुम तो जैसे खुदा के यहाँ से लालपरी बन कर आई हो। हम बेकार में परेशान हो रहे थे।'

'जाने-आलम जो कुछ फरमाएँ, वजा है। पसंद लोंडी के सिर आँखों पर है।' नवाब सरदार महल ने कहा।

'नवाब सरदार महल भी एक रंडी की लड़की थीं। ग्यारह साल की उम्र में परीखाने में दाखिल होकर सरदार परी बन गई थीं और नाच-गाने की शिक्षा पाकर बेजोड़ हो गई थीं। पैरों में घुंघरू बाँध कर जिस वक्त नाचती थीं जमीन-आसमान हिलता नजर आने लगता था। गला भी बहुत सुरीला था। ठुमरी, गजल और खास तौर पर होलियाँ गाने में उसका मुकाबला कोई भी परी नहीं कर पाती थी। जाने-आलम उससे होलियाँ अक्सर सुना करते थे।'

मिरजा जाफर हुसैन ने जिज्ञासा प्रकट की—'जमालुद्दौला साहब, आपके बयान से जाहिर होता है कि सुलताने-आलम वाजिदअली शाह की करीब सभी बेगमात और महल साहिबात रंडियां या उनकी लड़कियाँ थीं, मगर हजरत ने उनके नाम बड़े जोरदार रख छोड़े थे। नामों के लिहाज से तो वे सब शरीफों और ख़ानदानी मर्तबे वाले रईस नवाबों की लड़कियाँ कही जा सकती थीं।'

जमालुद्दौला जोर से हँस पड़े। फिर सावधान होकर बोले—'मिरजा साहब अभी आपने उनके खिताब नहीं सुने। जाने-आलम ने उन्हें ऐसे-ऐसे खिताबात अता

फरमा रखे थे कि हिन्दुस्तान की किसी भी बादशाहत में किसी भी बादशाह की मन-कूहा बेगम को वह खिताब नसीब न हुए होंगे।'

'जरा फरमाइए ? क्या कैसे खिताबात थे ?'

'अब इस वक्त मुझे हर एक बेगम का नाम और खिताब तो याद नहीं हैं। जाने-आलम की हरमसरा बेगमात से खचाखच भरी हुई थी। जो चन्द नाम-खिताब जेहन में हैं और सरे-मुँह याद आ रहे हैं, सुनाये देता हूँ। परीखाने को उजाड़ कर उन्होंने जब परियों को शाही हरम और सात पर्दों के अन्दर बैठाया था तो एक जश्ने-माहताबी किया था। यानी चौदहवीं के चाँद की चमक-दमक और दूधिया चाँदनी में शाहमंजिल की खुली छत पर बेगमात को जमा करके खिताबात अता फरमा कर उनकी इज्जत को ऊँचा उठा दिया था। अब उनके खिताबात सुनिए—

'माशूका खास को मलिकए माहे आलम-माशूका खास हजरत सुलतान आलम, नवाब सल्तनत महल साहिबा का खिताब अता हुआ था।

'शहिंशाह बेगम को मुशफिकए जहानी हुस्न आरा, तिरछीजान नवाब शहिंशाह महल साहिबा।

'सरफराज बेगम को आशिक़ए खास अंजुमन अफरोज नवाब सरफराज महल साहिब।'

'दिलदार बेगम को महबूबए खास, जाने आशिक नुमा, नवाब दिलदार महल साहिबा।'

'सरदार बेगम को शफीकतुल जमानी, बाँकी जान, महलका नवाब सरदार महल साहिबा।

'सुलतान परी को नवाब सुलतान जहाँ महल साहिबा।

'सिकन्दर बेगम को हबीबए सुलतान, मुकर्रुल जमां, नवाब सिकन्दर महल साहिबा।

'माशूक परी को-मलिकए-मुल्क, ताजुन्निसा नवाब माशूक महल साहिबा।

'महक परी को इफ्तखा रूलनिसा खानम, नवाब हजरत महल साहिबा।

'आगे मुझे याद नहीं आ रहे—'जमालुद्दौला ने कहा—'इन चन्द नामों, अलकाबों और खिताबों को सुन कर अन्दाजा लगाइए और कहिए कि क्या कोई कह सकता है कि ये रंडियाँ या उनकी छोकरियाँ थीं।'

'हरगिज नहीं,' मिरजा ने इतमीनान भरे लहजे से कहा। 'खैर अब आप उस चुनाव का बयान कीजिए। इन्दर सभा के जलसे की तीन परियाँ यानी पुखराज परी, नीलम परी और लाल परी तो चुन ली गई थीं। बाकी किरदारों का सेहरा किस-किस के सर पर बाँधा गया ?'

'जी,' जमालुद्दौला ने कहा—'जाने-आलम होठों में मुस्कान लिए खामोश बैठे माशूक महल की तरफ देख रहे थे।

'मशूक महल बोली—'हुजूर खामोश क्यों हो रहे हैं, अभी तो खास-खास चुनाव बाकी पड़े हुए हैं। इन्दर सभा जलसे की जो कुछ भी कहानी है वह सब्जपरी से शुरू होती है। चुन ली जाने वाली तीन परियाँ तो सिर्फ राजा इन्द्र को अपना नाच दिखाना और गाना सुनाना ही फर्ज समझेंगी। कहानी को तो सब्जपरी ही शुरू करेगी, उसका चुनाव भी कीजिए।'

'सब्जपरी को तो हम सबसे पहले चुन चुके हैं।' जाने-आलम ने मुस्करा कर कहा।

'सबसे पहले चुन चुके हैं?' माशूक महल ने हैरत भरे लहजे से दोहराया।

'हाँ,' उन्होंने कहा।

'तब वह कौन है? साफ तौर पर उसका नाम लीजिए। सब्जपरी कौन बनेगी?'

'सब्जपरी बनेंगी नवाब मशूकमहल साहिबा।'

'दूसरी बेगमें तालियाँ बजा कर हँस पड़ीं। माशूक महल खामोश थीं।

'क्यों? क्या तुम्हें हमारा यह चुनाव पसंद नहीं है?' जाने-आलम ने कहा।

'पसंद-नापसंद की कौन सी बात है। हुजूर का चुनाव सर आँखों पर है।' मशूक महल ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'सुना जाता है कि नवाब माशूक महल वाजिदअली शाह की चहेती बेगम थीं। हजरत की उन पर खास मेहरबानी रहती थी।' मिरजा ने कहा।

'सच बात है?' जमालुद्दौला ने कहा—'बनिसबत और महलात के जाने-आलम माशूक-महल को ज्यादा चहते थे।'

'क्या वह भी कोई तवायफ थी?'

'और कौन हो सकती थीं। जहानी डोमनी की लड़की थीं। प्यारी नाम था। ऐन जवानी के दिनों में मोहम्मद हुसैन और इमामिन की कोशिशों ने उन्हें घर से लाकर परीखाने में बैठा दिया था। उनके हुस्न-व-जमाल को देख कर जाने-आलम ने अपना माशूक समझ लिया और माशूकपरी नाम अता फरमाया था। खैर, सब्जपरी का मसला तै कर के जाने-आलम फिर खामोश हो गये। कुछ देर हो गई।

माशूक महल ने कहा—'हुजूर अब लगे हाथों शाहजादा गुलफ़ाम का भी फैसला हो जाना चाहिए। इन्दर सभा के जससे का गुलफाम तो एक खास जुज़ है।'

जाने-आलम ने उनकी तरफ निगाह उठा कर कहा—'हमारी नजर को उसी उसी की तलाश है। मगर…'

'पसोपेश किस बात का है?' माशूक महल ने कहा—'सभी बेगमात आपके सामने बैठी हुई हैं। रहस के जलसे में माहरुख कन्हैया बनाई गई थीं। उसी तरह गुलफाम के लिए भी किसी को पसंद कर लीजिए। परेशान होने की जरूरत क्या है।'

'एक खामोशी के बाद जाने-आलम ने कहा—माशूक महल साहबा इस जलसे को जहूर में लाने के लिए हसारा कुछ दूसरा ख्याल है।'

'क्या ख्याल है हुजूर का ?'

'हम चाहते हैं कि इस जलसे में औरतों का रूप औरतें और मर्द का रूप मर्द भरें। तभी लुत्फ आएगा। इसीलिए हमने खुद को राजा इन्द्र के लिए चुना है। ऐसी सूरत में गुलफाम भी कोई नौ-उम्र परीज़ाद की सूरत होना चाहिए।' फिर मुस्करा कर कहा—'सब्ज़परी गुलफाम पर आशिक हुई थी, आदमीज़ाद के हुस्न-व-जमाल ने उस पर अपना जादू चढ़ाया था। तुम सब्ज़परी बन रही हो, इसलिए गुलफाम का चुनाव तुम्हीं करो। तुमको ही तो उससे निपटना-चिपटना पड़ेगा ?'

'हाय गज़ब, हुजूर तो अभी से मज़ाक करने लगे। आगे खुदा जाने कैसी गुज़रे। माफ फरमाइए, हम सब्ज़परी नहीं बनेंगी। उसके लिए किसी दूसरे को पसंद फरमा लीजिए।' और माशूक महल हँसने लगीं।

'जो चुनाव एक बार हो चुका वह पलटा नहीं जा सकता।' जाने-आलम ने दृढ़ स्वर से कहा। फिर मुस्करा कर बोले, 'सब्जपरी के जौहर तो नवाब माशूक महल साहब ही दिखलाएँगी।'

'हुजूर हमारी एक अर्ज कुबूल फरमाएँ ?' माशूक महल ने कहा।

'क्या ?'

'साल गिरह के मौके पर जब जाने-आलम जोगी बनते हैं तो जोगिन बनने का फख्र नवाब सिकन्दर महल साहिबा को हासिल हुआ करता है। वह जोगिन के भेष में लाजवाब भी नजर आया करती हैं। इस जलसे में भी सब्जपरी को गुलफाम को गले लगाने के लिए जोगिन बनना पड़ेगा। इसलिए जाने-आलम से हमारी अर्ज है कि सब्ज-परी के लिए नवाब सिकन्दर महल साहिबा को सब्जपरी के लिए पसंद फरमा लिया जाए।'

'नवाब सिकन्दर महल जाने-आलम के करीब ही बैठी हुई थी। माशूक महल की बात खतम होते ही जाने-आलम को कोंच कर बोलीं—'देखा हुजूर, नवाब माशूक महल साहब किस मजे से अपनी बला दूसरे के सर पर डाल रही हैं।' फिर धीरे से कहा—'हम तो अपने जाने-आलम की जोगिन हैं। किसी गुलफाम के लिए जोगिन कैसे बन सकती हैं ?'

'जाने-आलम कुछ संजीदा होकर बोले—'अच्छा, मजाक खतम हो गया। अब मतलब पर आकर आप लोग गुलफाम की तजबीज पेश कीजिए।'

'एक दो क्षण सन्नाटे में गुजर गये। उसके बाद नवाब सुलतान जहाँ महल ने कहा—'जाने-आलम, अगर बन्दी की गुस्ताखी माफ फरमाएँ, तो कुछ अर्ज करूँ ?'

'हाँ, कहो ?' उन्होंने उनकी तरफ नजर घुमा कर कहा।

'हुजूर की ख्वाहिश है कि इस जलसे में मर्द का स्वाँग मर्द ही भरे। जलसे में खास तौर पर दो ही मर्द हैं। एक राजा इन्द्र और दूसरा शाहजादा गुलफाम। राजा इन्द्र की शकल में हुजूर मौजूद हैं। गुलफाम की तलाश है। उसके साथ नौ-उम्र और

खूबसूरत होने की भी शर्त है। इसलिए इस जलसे में जीवनलाल को क्यों न शरीक कर लिया जाय। गुलफाम का मसला आसानी से हल हो जायगा।'

'जाने-आलम चौंक से पड़े।' जमालुद्दौला ने कहा—'उन्होंने मेरे चेहरे पर निगाह डाली।' फिर सुलतानजहाँ महल की तरफ देख कर कहा—'वाह, नवाब सुलतान जहाँ महल साहब ? इस वक्त तुमने कमाल की इसलाह दी। गुलफाम बनने के लिए जीवनलाल से बढ़ कर और कोई नहीं। चिराग के नीचे अंधेरा वाली मसल हो गई। गुलफ़ाम इसी जमघे में मौजूद है और हम इधर-उधर तलाशते फिर रहे हैं।' फिर माशूक महल की नजर से नजर मिला कर कहा—'क्यों नवाब माशूकमहल साहब ? यह कैसा चुनाव है ?'

'बहुत खूब है।' उन्होंने कहा।

'जाने-आलम ? जीवनलाल में नौ-उम्री और हुस्न-व-जमाल की खूबी के साथ दूसरी खूबियाँ भी मौजूद हैं। गाते-बताते भी गजब का हैं।' सुलतानजहाँ महल ने कहा।

'हमें मालूम है।' फिर माशूक महल से कहा—'क्यों साहब ? अब तो तुम गुलफ़ाम के लिए जोगिन बनोगी ?'

'हुज़ूर जिसके लिए बनाएँगे क्यों न बनेंगी। जाने-आलम की खुशी ही हमारी खुशी है।

'बड़ा लुत्फ आयेगा ?' जाने-आलम ने मुस्करा कर कहा—'जिस वक्त लालमहल पर अपने तख्त से उतर कर सब्जपरी, पलंग पर सोते हुए गुलफ़ाम के मुँह पर मुँह रख कर प्यार करेगी—

'माशूक महल मुस्करा कर बोल उठीं—'रहने दीजिए। आप तो अभी से चुटकियाँ भरने लग गए ?'

'क्यों ? अपनी अदाएँ, नाज-अन्दाज और प्यार-मोहब्बत दिखला कर जलसे को तुम कामयाब नहीं बनाओगी ?'

'यह कौन कहता है कि हम जलसे को कामयाब नहीं बनाएँगी। मौके पर हुज़ूर मुलाहजा फरमाएँगे कि हमने क्या किया। अभी हम क्या अर्ज करें।'

'अब जाने-आलम ने मेरी तरफ रुख किया बोले—'क्यों जीवनलाल ? तुमको जलसे की शिरकत और गुलफ़ाम का रूप भरना मंजूर है न ?'

'मिरजा जफर हुसैन साहब ?' जमालुद्दौला ने कहा, 'मैं वलीअहदी के जमाने में जाने-आलम के रहस के खेल को देख चुका था और उससे प्रभावित भी हो चुका था। उनके सम्पर्क में आने के लिए लालायित रहा करता था। अगरचे परीखाने में आने-जाने से उनसे कुछ जान-पहचान हो गई थी, लेकिन कोई ऐसा मौका अभी तक हाथ नहीं आया था कि उनसे खुल कर बात कर सकूँ। इस मौके को मैंने गनीमत समझ लिया और अपने दिल की प्यास बुझाने के लिए तैय्यार हो गया।

'मैने उनके सवाल का जवाब प्रसन्न मुख से दिया—'हुजूर बसरोचश्म मंजूर है। इस इज्जत-अफजाई का मैं किस मुँह से शुक्रिया अदा करूँ ?'

'जलसे में तुम्हें दिल खोल कर गाने-बताने का इजहार करना पड़ेगा।' उन्होंने कहा।

'जी हुजूर, अपनी तरफ से कोई कमी न पैदा होने दूँगा।'

'बहुत खूब, हम यही चाहते हैं।'

'इसके बाद जाने-आलम ने दो और चुनाव किए। काले देव के लिए फीरोजुद्दौला ख्वाजासरा को और लाल देव के लिए रेहाँ ख्वाजासरा को चुना। और वह वहाँ से चले गये।

'जाने-आलम के जाने के बाद बेगमों ने मुझे घेर लिया। 'शाहजादा गुलफाम जिन्दाबाद,' के नारे लगा कर हँसी-मजाक और ठहाकों का समां बाँध दिया। बड़ी मुश्किल में उन सबसे छुटकारा पाकर मैं हरम से बाहर निकल पाया।

'घर की राह पर चलते हुए मेरा मन खुशियों से भरा, विचारों के ऊँचे-ऊँचे गुम्बदों कंगूरो पर रंगीन पताकाएँ-सी फहरा रहा था···जाने-आलम तथा बेगमों का सम्पर्क जिन्दगी की बहुत सुखद करवट है···बादशाह तथा शाही जनानखाने की बेगमों के साथ अभिनय करने का सौभाग्य पूर्व-जन्म के संस्कारों का फल कहा जा सकता है···शाही खानदान तथा लखनऊ के नवाबों-रईसों के एक से एक सुन्दर रूपवान शाहजादे मौजूद हैं। गुलफाम के अभिनय के लिए चुने जा सकते थे···उनके सामने एक साधारण से दूकानदार के लड़के की क्या हैसियत थी···यह उज्जवल भविष्य का सन्देश है। ऐसे सुखद जीने पर चढ़ कर ही मैं जीवन की अपूर्व मंजिल पर पहुँच सकता हूँ।'

बारह

'दूसरे दिन से इन्दर सभा के खेल की तैय्यारियाँ शुरू हो गईं। सबसे पहले हर एक पात्र को उसके गीत-गाने, शेर, वगैरा जो कुछ भी था कागजों पर लिखा कर याद करने के लिए दिए गए। खेल में वार्ता का कहीं नाम न था। जो कुछ कहना, बातें करना, रोना-गाना वगैरा था सब शेरों में था। जब हरएक पात्र को अपना बयान अच्छी तरह याद हो गया तब तबला, सारंगी, पाखबज, सितार के ताल-सुर और राग-रागिनियों के साथ उनका अभ्यास शुरू हुआ। संगीत के उस्ताद जो पहले परीखाने में परियों को संगीत की तालीम देने के लिए नौकर रखे गए थे और अब जाने-आलम के मुसाहब थे, बुलाए गए। जाने-आलम ने उन्हें सब को तालीम देकर और खेल को बाकायदा तैय्यार करने का हुक्म दिया। संगीत के इन उस्तादों में गुलाम रजा खाँ, घम्मन खाँ, नत्थू खाँ, छज्जू खाँ और साबित अली खास थे। रोजाना तीन घन्टे अभ्यास में सर्फ होते थे। जाने-आलम उस वक्त मौजूद रहते थे। जिसमें जो कमी पाते उसे खुद गा-बता कर दूर किया करते थे।

'मिरजा जाफर हुसैन साहब, जलसे के इस अभ्यास और संगीत की तालीम लेने के लिए मुझे रोजाना, बिलानागा शाही महलों में पहुँचना पड़ता था। इसलिए अब मेरा दूकान पर जाना-बैठना एक तरह से बन्द हो गया था। शाही महलों से संगीत की तालीम लेकर लौटता तो घर में अपने कमरे में अकेला बैठ कर उसका अभ्यास किया करता। दो-चार दिन तो लालाजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन जब उन्होंने रोज ही मेरा यह हाल देखा तो एक दिन मुझसे पूछा,'क्या तुम्हारे मिजाज में फिर से आवारगी पैदा हो गई है ?' मैंने निस्संकोच होकर इन्दर सभा के जलसे की तैय्यारी और शाही हुक्म से उसमें भाग लेने का सारा किस्सा सुना दिया। लालाजी को काठ-सा मार गया। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। शाही मशगले का विरोध करना, उसमें शरीक होने से रोकना, मना करना, उनके साहस और हिम्मत से बाहर था। सिवा चुप रहने के उनके पास इसका कोई उत्तर न था।

उधर जाने-आलम जलसे की तैय्यारी में दिल खोल कर और हाथ झाड़ कर जुटे हुए थे। किस काम में कितना रुपया खर्च हो रहा है इसकी उनको जरा भी फिक्र न थी। फिक्र सिर्फ एक यही थी कि जलसा पूरी तरह सफल हो, किसी तरह की कोई कमी न रहे।

'साज-सामान को जुटाने, तैय्यार कराने का काम जाने-आलम ने दयानतुद्दौला मोतमिद अली खाँ के हाथ में दे रखा था, चारों परियों की पोशाकें और उनके दोनों कंधों पर के पंख ही बीस लाख रुपयों में तैय्यार हुए थे। पुखराज परी की

पोशाक सच्चे सलमा-सितारे और मसाल जड़ी जरी जवुँफ्त के काम वाली थी। इस तरह की तैय्यार हुई थी कि उस पर नजर नहीं ठहरती थी। आँखों में चकाचौंध पैदा हो जाती थी।

'नीलम परी की पोशाक नीले रंग की थी। सच्चे-पक्के काम के साथ नीलम जिमुर्रद आदि नगों से गुँथी थी। इसी तरह लाल परी का साज व सिंगार लाल रंग का था। सारी पोशाक में बड़े मानिक और सुर्ख रंग के सितारे जड़े हुए थे। लालिमा ही लालिमा दिखाई देती थी। सब्जपरी की पोशाक का क्या बयान किया जाय। इन्दर सभा के तमाशे की नायिका तो सब्जपरी ही थी। उसकी सारी पोशाक हरे रंग में डूबी हुई थी। उस पर नजर पड़ते ही आँखों में ठन्डक और दिल में तरावट पैदा हो जाती थी। परियों के दोनों कंधों पर जमने वाले पंख भी उनकी पोशाक से मिलते-जुलते थे। सच्चे नगों की चमक-दमक से आँखें झपक जाती थीं।'

'परियों के जेवरात बिलकुल सच्चे और अंग-अंग को सजा-सँवार कर उभारने वाले थे। सिर के जेवरों में ताबीज, झूमर, छपका, चाँद-सूरज, सरपेंच, तुर्रा, टीका और मोतियों की लड़ियाँ मुख्य थीं। कानों की सजावट के लिए बिजलियाँ, बुन्दे, बाली, पत्ता, अन्ती, पत्ती, किरन, झुमका, बाला, बालों की मछलियाँ, झाला और बड़े-बड़े मोती थे। नाक के लिए नथ, सोने-हीरे की कीलें और बुलाकें थीं। गले के जेवरों में जंजीर, हैकाल, धुकधुकीं, तौक, बध्धी, चम्पाकली, और नौलखाहार विशेष थे। हाथों की सजावट के लिए बाजूबन्द, नवरतन, जोशन, बजुल्ला, कंगन, पहुँची, पटरियाँ, जहाँगीरी, आरसी, छल्ले, हुसैनबन्द, अलीबन्द, शौकबन्द, हाथपोश और चूड़ियाँ थीं। इसी तरह पैरों के भी जेवरात थे। जिनमें बिछुवे, अनोटे, छल्ले, कड़े, गुलछड़े, घुंघरू, छागल, पाजेब, पायल और पापोश थे।

'इसी तरह पोशाकों की भी तफसील थी। उनमें पाजामा, दुपटा, ओढ़नी, कुर्ती, मरहम, अंगिया, अंगिया का बंगला, अंगियों की कटोरियाँ, अंगिया का छाट, अंगिया का थर, इजारबन्द वगैरा वगैरा थे।'

जमालुद्दौला ने जरा रुकने के बाद कहा—'मिरजा साहब, इस मौके पर मुझे उसी सिलसिले का एक छोटा सा लतीफा याद आ रहा है।'

'फरमाइए ?' मिरजा ने उत्सुकता भरे लहजे से कहा—'मौके का लतीफा सुदने के लिए तो मैं उधार खाये बैठा रहता हूँ।'

जमालुद्दौला बोले—'वाकया यों है कि जिस दिन की रात में तमाशे का प्रदर्शन होना था, उसी दिन की शाम को जाने-आलम ने बशीरुद्दौला के हाथों नवाब माशूक महल के हाथों की सजावट के लिए एक जोड़ा बहुत लाजवाब जड़ाऊ बेश कीमती पहुँची और उसके साथ कागज का मुड़ा हुआ एक टुकड़ा भेजा। उस वक्त मैं बेगम के पास मौजूद था। तमाशे के संबंध की कुछ बातें चल रही थीं। माशूक महल ने पहुँची लेकर मुड़े हुए उस कागज के टुकड़े को खोला, पढ़ा। उसमें ये शेर लिखा था—

तेरे दस्ते हिनाई को जो पहुँची हमने भेजी है,
अगर पहुँची जो पहुँची है तो लिख भेजो कि पहुँची है ।'

'नवाब माशूक महल पढ़ने के बाद खिलखिला कर हँस पड़ी । शेर मुझे सुनाया और फिर कलमदान मँगवा कर जवाब में एक शेर लिख कर जाने-आलम के पास भेज दिया। उनका वह जवाबी शेर यह था —

जो पहुँची तुमने भेजी है मेरे हाथों में पहुँची है,
बहुत मरगूब पहुँची है वड़े मौके पै पहुँची है ।'

'बहुत खूब' कह कर मिरजा हँस पड़े। फिर सावधान होकर कहा, 'जवाब-बा सवाब रहा ।'

जमालुद्दौला बोले—'अच्छा साहब, शाहजादा गुलफ़ाम की पोशाक जाने-आलम ने अपनी पसंद के अनुसार तैय्यार कराई थी । गुलफ़ाम के ठाट और साज-व-सजावट के बारे में कुछ अर्ज करता बहुत कठिन है । मेरा ख्याल है कि शायद मुल्क की किसी भी सलतनत और किसी बादशाह के शाहजादे को ऐसी पोशाक, ऐसे जेवर और ऐसी आरायश, सजावट नसीब न हुई होगी। राजा इन्द्र यानी जाने-आलम ने अपने लिए कोई नयी पोशाक वगैरा तैय्यार नहीं कराई थी । उनका कहना था कि हम वैसे ही किस राजा इन्द्र से कम हैं। हमारी रोजमर्रा की पोशाक और आरास्तगी की काफी है। हमें देख कर कौन कह सकता है कि हम राज इन्द्र नहीं है। वाकई जाने-आलम का यह कहना हर्फ ब हर्फ सही था । अपने वक्त के वह राजा इन्द्र ही थे। इसके अलावा बहुत सा दूसरा आरायशी साज-सामान, जैसे तख्त, पलंग, सिंहासन वगैरा-वगैरा लाखों रुपयों की लागत से तैयार हुआ था ।

'तमाशे की तारीख नजदीक आ रही थी लेकिन एक चीज की कमी अभी तक पूरी नहीं हुई थी। उसकी फिक्र जाने-आलम को हर वक्त परेशान किए रहती थी। इन्दर सभा के तमाशे में सब्जपरी ने शाहजादा गुलफाम पर आशिक होकर सोते में उसे अपनी उँगली का छल्ला पहनाया था। उस छल्ले में अमूल्य हरे रंग का जवाहर-जड़ा हुआ था। ऐसा अमूल्य हरे नग वाला छल्ला कहीं दस्तवाव नहीं हो रहा था। गो जानेआलम और बेगमात की अँगुलियों में सैकड़ों कीमती छल्ले मौजूद थे, लेकिन किसी में भी हरे रंग का जवाहर मौजूद न था। जाने आलम ने लखनऊ-हर एक जौहरी की दूकानों में तलाश कराया, लेकिन वैसा नगदार छल्ला किसी के यहाँ न मिला। उनकी चिन्ता बढ़ गई। यही ख्याल हो रहा था कि लाखों रुपया खर्च करके हमने सब सामान तो अपनी पसंद के मुताविक जमा कर लिया, एक जरा सा छल्ला हमारे हौसले को गड्ढे में डाल रहा है। इसी सिलसिले में एक दिन उन्होंने मिफताहुद्दौला नवाब महमूद अली खाँ को अपने पास बुलाया। मिफताहुद्दौला शाही खजांची थे। उनका खानदान बहुत पुराना था। उनके बुजुर्ग लखनऊ की सल्तनत को कायम करने वाले नवाब मंसूर अलीखाँ सफदर जंग के वक्त से नवाबी-खजाने के मालिक होते

चले आए थे और इस वक्त भी शाही खजाने की कुंजियाँ नवाब मिफताहुद्दौला के पास ही रहती थीं।

'जाने-आलम ने कहा—'मिफताहुद्दौला साहब ? शाही खजाने में कुछ जवाहरात और जेवरात भी इस वक्त मौजूद हैं या पिछले बादशाहों नवाबों ने सब खतम कर दिए ? हमने अपने बुजुर्गों और खास तौर पर अम्मी हुजूर नवाब मालिका किश्वर बहादुर की जबान से एक बार सुना था कि अवध सल्तनत के जन्मदाता नवाब सफदर जंग साहब दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह रंगीले के शाही खजाने से ढेरों जवाहरात और जेबरात अपने कब्जे में करके लखनऊ ले आए थे और उन्हें अपने खाजाने में महफूज करके रख दिया था ?'

'जहाँपनाह का फरमाना हर्फ ब हर्फ सही है।' मिफताहुद्दौला ने कहा, 'लेकिन यह भी एक हकीकत है कि पिछले बादशाहों ने, खास तौर पर बादशाह गाजीउद्दीन हैदर और नसीरुद्दीन हैंदर ने शाही खजाने को खोखला भी कर दिया है।'

'तब इस वक्त शाही खजाने में जवाहरत-जेवरात के नाम पे कुछ भी नहीं है। वहाँ क्या चूहे डंड पेल रहे हैं ?'

'सुलताने-आलम को मालुम होगा कि हमारा खामदान शुरू से इस सल्तनत का खैरख्वाह और वफादार रहा है।' मिफताहुद्दौला ने गर्व के साथ कहा।

'हाँ हाँ हमें मालूम है।' जाने-आलम ने कहा—'तभी न तुम्हारे खानदान के हाथ में शाही सजाने की तालियाँ चली आ रही हैं।'

'हुजूर अर्ग करने का मतलव यह है कि मेरे मौजूदा बुजुर्ग ने जब यह देखा कि बादशाह हजरत गाजीउद्दीन हैदर खुले हाथों खजाने को लुटा रहे हैं, तो उन्होंने उसमें से बेशबहा जवाहरात, कुछ ऐसे जेवरात जिनको नवाब मंशूरअली खाँ दिल्ली के शाही खजाने से उठा लाये थे एक सन्दूकचे में बन्द करश एक पोशीदा जगह में छिपा कर रख दिया था। गाजीउद्दीन हैदर और नशिरुद्दीन हैदर ने दिल खोल कर खर्च किया···।'

'जाने-आलम ने बीच में टोक कर पूछा—'क्या वह संदूकचा अब भी मौजूद है ?''

'जी हाँ, लेकिन......' मिफताहुद्दौला चुप रह गए।

'क्यों ? आप चुप क्यों रह गए ! जो बात हो कहिए।'

'सुलताने-आलम, फ़िदबी की अर्ज यह है कि वह संदूकची किसी को दिखायी या दी नहीं जा सकती क्योंकि उस संदूकची में हज़रत इमाम-हुसैन की कसम के साथ मेरे बुजुर्गों की यह हिदायत लिखी हुई रखी है कि यह संदूकची किसी को दिखाई या दी न जाय। यह अवध सलतनत की बहुत बड़ी जायदाद है और मुश्किल वक्त पर हुक्मरा के काम आने वाली है। इसलिए उस हिदायत की पावन्दी कमतरीन के लिए निहायत जरुरी है।'

'ठीक है। हम बहुत खुश हैं कि आप के दिल में उस हिदायत की पावन्दी का पूरा ख्याल है। ईमानदारी वफादारी के यही मानी हैं।' फिर जरा रुक कर कहा—'हम न वह संदूकची देखना चाहते हैं न लेना चाहते हैं। हम उसमें रखे जेवरात से उँगलो का एक ऐसा छल्ला चाहते हैं जिसमें खास तौर पर कोई हरे रंग का जवाहर जड़ा हो।'

'जहाँपनाह, संदूकचे में कीमती जवाहर जड़े हुए ढ़ेरों छल्ले मौजूद हैं। हरे रंग के जवाहर का भी हो सकता है। सही तौर पर कल अर्ज करुँगा। बल्कि अगर मिल जायगा तो लेता भी अऊँगा।'

'इसके बाद मिफताहुद्दौला चले गए। सुलताने-आलम को चैन कहाँ थी। दूसरे दिन, पहर दिन चढ़ने के बाद उन्होंने मिफताहुद्दौला को तलब फरमाया। उन्होंने आकर एक छल्ला जिसमें हरे रंग का जवाहर जड़ा हुआ था, सुलताने-आलम के हाथ में दे दिया। उसे पाते ही जाने-आलम का चेहरा खिल उठा। मुस्करा कर मिफताहुद्दौला से कहा, 'यही छल्ला हमे दरकार था। इसे पाकर हमारी बहुत बड़ी परेशानी दूर हो गई।'

'मिफताहुद्दौला बोले—'सुलताने-आलम, इसी तरह इजरत जन्नत मकां ने भी एकबार दो-चार नगदार अंगूठियाँ देख कर पसन्द करनी चाही थी। उन्हें खुद के लिए जरूरत न थी, मलिका किश्वर बहादुर को चाहिए थी। मैंने चार छल्ले ले जाकर मुलाहजा कराये थे जिनमें नीले, गुलाबी, हरे और फीरोजी रंग के नग जड़े हुए थे। ये हरे रंग का जवाहर वाला छल्ला भी उन्हीं में था। मलिका किश्वर बहादुर ने गुलाबी रंग के नग वाला छल्ला पसन्द करके रख लिया था। बाकी तीनों छल्ले वापस रख दिए थे। आज ये हरे रंग वाला हुजूर के काम आ गया।' फिर जरा रुकने के बाद कहा—'जहाँपनाह! छल्लो में जड़े हुए जवाहर कुछ ऐसे हैं जिनकी कीमत आँकना बहुत मुश्किल है। हजरत जन्नतमकां ने लखनऊ के जौहरियों को दिखा कर कीमत जाननी चाही थी। लेकिन कोई भी जौहरी नहीं बता सका था।'

जमालुद्दौला जरा देर खामोश रहे फिर बोले—'मिरजा साहब, उस हरे नग के छल्ले ने जाने-आलम की परेशाही तो दूर कर दी, मगर आगे चल कर उसकी बदौलत मैं बहुत बड़ी मुसीबत में पड़ गया था।'

'किस तरह?' मिरजा ने पूछा।

'अभी नहीं, आगे सुनिएगा?' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—'जरा तमाशा तो शुरू होने दीजिए। मुझे अपनी उँगली में उस छल्ले को पहन तो लेने दीजिए।'

'बेहतर है।' मिरजा शैदा ने भी थोड़ा मुस्करा कर कहा—'तमाशा ही शुरू कीजिए।'

जमालुद्दौला संभल कर बैठ गये, बोले—'अच्छा जनाब, तमाशे की रात शुरू हुई। उसी रहस मंजिल में जिसमें रहस का जलसा दिखलाया गया था, इस खेल का

भी रंग-मंच तैय्यार किया गया था। शाही खान्दान के लोगों, दरबारियों और मुसाहिबों से रहस मंजिल खचाखच भरी हुई थी। लखनऊ के आम बाशिन्दों में से वही कुछ लोग रहस मंजिल के अन्दर दाखिल हो सके थे जो शाही घराने के लोगों और दरबारियों-मुसाहबों से लिपटे हुए थे। रोशनी का वह इन्तजाम था कि अगर कहीं जमीन-फर्श पर चींटी चल रही हो तो साफ नजर आ सकती थी। दर्शकों के लिए फर्श, कालीन और मसनद-तकियों का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। एक तरफ चिलमनों के भीतर शाही जनानखानें की बेगमों और शाही परिवार की स्त्रियों के बैठने और तमाशा देखने का प्रबन्ध था। जाने-आलम की माँ नवाब मलिका किश्वर बहादुर भी आकर जमी बैठी थीं। मेरे पड़ोसी नवाब जाकिरअली खाँ शाही खानदान के व्यक्ति थे। सपरिवार खेल देखने आए थे। वह अपने साथ हमारे लालाजी को भी घसीट लाए थे। मेहमानों के स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध मदाहुद्दौला नवाब अलीनकी खाँ वजीरे-आजम, अमीरुद्दौला मीर मेहदीं और दयानतुद्दौला मोतमिद अली खाँ के सिपुर्द था।

'खैर, कोई डेढ़ दो घड़ी रात गये तमाशा शुरू हुआ। रंग-मंच का पर्दा खुला और दो-तीन परीजादों ने आकर ताल-सुर और लय-धुन के साथ गाना शुरू किया—

'सभा में दोस्तों इन्दर की आमद-आमद है, परी जमालों के अफसर की आमद-आमद है।'

'दर्शकों में सन्नाटा छा गया। सब पत्थर की मूर्ति बन गये। आँखें रंगमंच पर पर जम गईं। राजा इन्द्र आकर सिंहासन पर बैठ गये। और परियों को बुला कर नाच-गाना शुरू होने का हुक्म दिया। सर्वप्रथम पुखराज परी आकर हाजिर हुई। राजा इन्द्र को अपना परिचय देने के बाद उसने अपनी कला का परिचय देना आरम्भ किया। ठुमरी, गजल, होली आदि गा-बता कर और नृत्य का जौहर दिखा कर राजा इन्द्र को मोह लिया। उसके बाद नीलम परी सभा में आई और अपना परिचय देकर नृत्य-संगीत का समा बाँधा। उसने भी ठुमरी, गजल, होली और दादरा-पटा गाया-बताया। उसके बाद लालपरी ने राजा के सामने आकर सिर झुकाया व बड़े मीठे सुर-धुन के साथ राजा से निवेदन किया :—

'बैठी थी मैं काफ में जोड़ा पहने लाल, यहाँ बुला कर आपने बढ़ा दिया इकबाल। और पहली परियों की तरह उसने भी अनेक राग-रागिनी भरी चीजें गाईं-बताई।

'अब सब्जपरी की बारी आई। वह बड़े नाज-नखरे के साथ सभा में उपस्थित हुई। उसने नृत्य संगीत का वह रूप खड़ा किया, वह समां बाँधा कि राजा इन्द्र झूमते-झूमते तकिए का सहारा लेकर सो गये।'

जमालुद्दौला ने भी तकिए का सहारा लेकर दो क्षण दम लिया। फिर सावधान होकर बैठ गये —'मिरजा साहब, अब खेल की कहानी शुरू हुई। सब्जपरी तख्त खां पर बैठी आसमान के नीचे हवा की लहरों पर उड़ती नजर आई। उसे नीचे

जमीन पर अख्तर नगर यानी लखनऊ में एक लाल महल नजर आया। उस लाल महल की खुली छत पर, पलंग पर हाथ-पैर फैलाए हुए शाहजादा गुलफाम सोता हुआ नजर आया। गुलफाम के हुस्न-व-जमाल का तीर सब्जपरी के कलेजे पर आ लगा। वह उस पर मोहित हो गई। तख्त खाँ नीचे आया। तख्त से उतर कर परी शहजादे के पलंग पर जा बैठी। वह सो रहा था। परी ने उसके मुँह पर मुँह रख कर प्यार किया और अपनी उँगली से हरा नग जड़ा हुआ छल्ला उतार कर गुलफाम की उँगली में पहना दिया और उसका इश्क अपने दिल में लेकर कोहकाफ यानी अपने निवास स्थान पर आ गई। यहाँ उसने कालेदेव को अपना हमराज बना कर शाहजादा गुल-फाम को उठा लाने को कहा। उसका पूरा अता-पता बता कर कहा —

छल्ला मैं दे आई हूँ अपना उसे निशान
सब्ज नगों की आब से तू उसको पहचान।

'कालेदेव ने उसके हुक्म की तामील की। गुलफाम को पलंग सहित उठा लाया।' जमालुद्दौला ने मिरजा की नजर से नजर मिला कर कहा—'मिरजा साहब तमाशे में वे सारे दृश्य और हरकतें इस तरह दिखलाई जा रही थीं कि असलियत में कोई फर्क नहीं मालूम होता था। आँखों के सामने सब हू-ब-हू हो रहा था। देखने वाले बुत बने देख रहे थे। कोई जोर की साँस तक नहीं ले रहा था। सब्जपरी ने गुलफाम को सोते से जगाया। कुछ छेड़-छाड़ के बाद दोनों हिल-मिल गये। बाग की सैर करने लगे और इश्क-व-मोहब्बत के मजे लूटने लगे।

'एक बार राजा इन्द्र ने फिर सब्जपरी को अपने दरबार में तलब फरमाया, क्योंकि उसका नाच-गाना उन्हें बहुत पसंद आया था। परी चलने लगी तो गुलफाम ने भी साथ चलने की जिद की। वह मजबूर हो गई। उसे साथ लाकर उसने बाग में छिपा दिया और राजा के सामने आई। लालदेव ने आकर राजा इन्द्र से सब्जपरी की गति विधि, इश्क-व-मोहब्बत तथा गुलफाम को बाग में छिपा देने की शिकायत की। सुन कर राजा इन्द्र गुस्से से भर गए। उनके हुक्म से शाहजादा गुलफाम सामने लाया गया। राजा ने उसे एक अंधे कुँए में कैद करा दिया और सब्जपरी के पंख नुचवा कर दरबार से निकाल दिया। हुक्म सुना दिया कि यह परी कभी हमारे अखाड़े में कदम रख कर हमारे सामने न आने पाये। सब्जपरी ने गुलफाम को पाने के लिए नया स्वांग भरा। वह जोगिन बनी। वीणा कन्धे पर रखी और राजा इन्द्र के अखाड़े के बाहर एक दरख्त के नीचे बैठ कर गाने लगी। राजा को खबर लगी। उन्होंने जोगिन को अपने सामने बुलाया और उससे नाचने-गाने को कहा। जोगिन ने नाच-गाकर उन्हें अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया। राजा इन्द्र ने जोगिन से मनचाहा इनाम माँगने को कहा। जोगिन ने उनसे मनचाहा इनाम देने की कसम ली और फिर शाहजादा गुलफाम को माँग लिया। राजा इन्द्र अपने कौल-करार की वजह से मजबूर हो गए। और गुलफाम को कैद से छुटकारा देकर सब्जपरी के हवाले कर दिया। और यहीं पर खेल खतम हो गया। रात आधी गुजर चुकी थी। नाटक का

विषय मैंने संक्षेप में कहा है। उसका असली विषय नृत्य-संगीत और भाव प्रदर्शन ही था।

'तमाशे से निपट कर मैंने गुलफाम की पोशाक और जेवर वगैरा जो कुछ भी था नवाब माशूक महल के हवाले किया और रहस मंजिल से अपने घर आ गया। लेकिन सब्जपरी ने जो सब्ज नगीने वाला छल्ला मेरी उँगली में पहनाया था वह अब भी मेरी उँगली में था। उसे उतार कर माशूक महल को देने का मुझे ध्यान ही नहीं रहा था और न उन्होंने मुझसे माँगा ही था।'

तेरह

'तमाशे के दूसरे दिन सुबह उठ कर जब मैं मुँह-हाथ धोने बैठा तब उँगली के छल्ले पर मेरी नजर पड़ी। मैं चौंक पड़ा। ख्याल आया, यह मैंने कैसे गलती की! और जेवर तो उतार कर माशूक महल को सौंप दिए थे। मगर इस छल्ले को अपनी उँगली में पहने ही चला आया था। आखिर यह भी तो एक शाही जेवर था। इसे भी उँगली में से निकाल कर बेगम को सौंप देना चाहिए था। अगरचे उस वक्त मैं न तो उस छल्ले का कोई भेद-भाव जानता था न उसके लिए मेरे दिल में कोई मोह था। मेरे घर में सैकड़ों छल्ले और अँगूठियाँ मौजूद थीं। उन्हें मैं कभी अपनी उँगली में नहीं डालता था। पहनने का शौक ही न था। फिर भी मैंने सोचा कि चल कर इसे बेगम को सौंप दूँ। लेकिन उस वक्त नहीं गया। सोचा शायद रात की जागी हुई बेगम इस वक्त मीठी नींद ले रही होगी। तीसरे पहर के बाद मैं घर से निकल कर शाही महलों की तरफ चल पड़ा।

'मिरजा साहब, उस तमाशे में लोगों को मेरा अभिनय बहुत पसंद आया था। लखनऊ में गुलफ़ाम के गाने और हाव-भावों की धूम सी मच रही थी, जिसकी जवान पर देखो शाहजादा गुलफ़ाम का ही नाम था। मेरा शाही महलों तक पहुँचना मुश्किल हो रहा था।

'नबाव रोशनुद्दौला का नाम तो आपने सुना। नवाब माशूक महल उन्हीं रोशनुद्दौला की कोठी कैसरपसंद में रहती थी। मैं कोठी कैसरपसंद की ड्योढ़ी पर पहुँचा। पहरे वाले से बेगम को खबर कराई। खबर पाते ही माशूक महल ने मुझे अपने पास बुला लिया। उस वक्त बहारुन्निसा उनके पास बैठी हुई थी। दोनों में रात के तमाशे की ही चर्चा चल रही थी। मेरे कान में उसकी कुछ भनक पड़ी। बेगम कह रही थी—वाकई शाहजादा गुलफ़ाम का काम बहुत खूब रहा।'

'बहारुनिसा कौन? क्या यह भी जाने-आलम कोई बेगम थीं?' मिरजा ने पूछा।

"जी नहीं? बहारुन्निसा जाने-आलम की बेगम न थीं। जाने-आलम की मलिका किश्वर बहादुर की एक खास कारपरदाज थीं। मलिका का अपने नौकर नौकरानियों में सबसे ज्यादा विश्वास बहारुन्निसा पर ही था। अपने खजाने की तालियाँ उसके हवाले करके उसका दर्जा भी सबसे ऊँचा उठा दिया था। उसकी हर बात आँख बन्द करके मान लेती थीं। बहारुन्निसा भी बड़ी वफादारी और ईमानदारी के साथ उनकी खिदमत करती थी, मगर उस वक्त बहारुन्निसा मेरी मुसीबत का जरिया साबित हुई।'

'वह किस तरह ?' मिरजा ने टोका ।

'सुनते जाइये । आगे मालूम हो जायेगा । मैंने माशूक मलह के सामने पहुँच कर कायदे से सलाम किया उन्होंने सलाम लेकर मुस्कराते हुए कहा—'गुलफ़ाम तुम्हारी बहुत बड़ी उम्र है । अभी हम बहारुन्निसा से तुम्हारा ही जिक्र कर रहे थे ।' फिर बैठने का इशारा किया और मैं अदब के साथ बैठ गया ।

'हम बहुत खुश हैं ।' उन्होंने प्रसन्न मुख से कहा—'कल तुमने वाकई तौर पर कमाल करके दिखा दिया । उम्मीद से सौ कदम आगे बढ़ गये । सबसे ज्यादा तुम्हारा ही खेल पसंद किया गया ?

'मैं चुप बैठा रहा ।

'उन्होंने फिर कहा—जाने-आलम भी फरमा रहे थे कि इस खेल का सेहरा गुलफाम के ही सिर रहा ।'

'इसके बाद एक क्षण खामोशी रही । फ़िर मैंने अर्ज किया—'हुजूर मुझसे एक गलती हुई उसकी माफी माँगने आया हूँ ।'

'क्या ?' उन्होंने सहज भाव से पूछा ।

'रात में महलों से घर जाते समय मैंने अपने सभी जेवर उतार कर हुजूर के आगे रख दिये थे । लेकिन जो छल्ला आपने मेरी उँगली में पहनाया था उसे मैं पहने हुए ही घर चला गया था । इस वक्त हुजूर को वह छल्ला लौटाने आया हूँ ।' और मैंने अपनी उँगली से वह छल्ला उतार कर उनके हाथ में दिया ।

'वह मुस्करा कर बोलीं—'क्या तुम्हारे कमाल से इस जरा से छल्ले की कीमत ज्यादा है ?'

'बहारुन्निसा ने बेगम के हाथ से छल्ला अपने हाथ में ले लिया और बड़े गौर से उसे घुमा-फिरा कर देखा और उसके तम पर नजर गड़ा कर क्षण भर देखती रह गई फिर बेगम के हाथ में दे दिया ।

'नवाब माशूक महल को उस छल्ले की कोई कैफियत मालूम नहीं थी । वे उसे एक मामूली सोने का छल्ला और उसके हरे नग को साधारण नग समझ रही थीं । उन्होंने उसे मेरी तरफ बढ़ा कर कहा—'लो इसे उँगली में पहन लो । हमने तुम्हें बख्श दिया । रात के खेल की तुम्हारे पास यह निशानी रहेगी ।'

'मैं सलाम करके वहाँ से सीधा अपनी दूकान पर आया । दूकान में मेरे लाला जी और गुलाबराय जौहरी बैठे हुए थे । कुछ बातें चल रहीं थी । मैंने अपनी उँगली से निकाल कर वह छल्ला लाला जी के हाथ में देकर कहा—'पिछली रात रहस मंजिल में जो तमाशा दिखलाया था, उसी की बख्शीश में नवाब माशूक महल ने ये छल्ला मुझे दिया है ।'

'पिता जी ने छल्ले को गौर के देखा और धीरे से बोले—'इसमें जो ये हरे रंग का जवाहर जड़ा हुआ है कुछ पानीदार मालूम होता है ।' फिर गुलाबराय के हाथ में

देकर कहा—'जौहरी जी आप देखिये, इसका जवाहर कैसा क्या है ? आप का काम तो हीरा जवाहरातों को परखना ही है। आपकी परख बिलकुल सच होगी।'

'गुलाबराय ने छल्ले को हाथ में लेकर नग पर आँख गड़ाई और कुछ देर तक उलट-पलट कर उसकी आभा परखते रहे। फिर लाला जी की तरफ नजर घुमा कर बोले—'लाला जी, यह बहुत बेशकीमती है। इस रंग और आभा का जवाहर मैंने पहले नहीं देखा। इसका मूल्य मैं तो क्या लखनऊ का कोई भी जौहरी नहीं बता सकता। ऐसे अमूल्य रत्न जटित छल्ले शाही महलों के सिवा और कहाँ हो सकते हैं ?' और उन्होंने छल्ला लाला जी को वापस कर दिया।

'लाला जी ने उसे मुझे देना चाहा लेकिन मैंने उनसे कहा—'मुझे उँगली में छल्ला पहनने का शौक नहीं है। आप इसे रख लीजिए।' लाला जी ने उसी समय उस छल्ले को दूकान की तिजोरी में सम्हाल कर रख दिया। उस समय उस छल्ले की बात आई गई सी हो गई।

'उधर बहारुन्निसा नवाब माशूक महल के पास से उठ कर सीधे मलिका किश्वर बहादुर के पास गई। बादशाह अमजद अली शाह की मृत्यु के बाद से मलिका किश्वर कुछ विरक्त सी हो गई थीं। दोपहर को दस्तरखान से उठ कर जरा देर आराम करने के बाद कुरान शरीफ का पाठ करने बैठ जाती थीं। और तीसरे पहर के अन्त तक उसमें मशगूल रहतीं। उनका पाठ खतम हो चुका था। मसनद पर इतमीनान से बैठी हुई हुक्के का मजा ले रही थीं। बहारुन्निसा के आते ही उन्होंने नजर घुमा कर पूछा—'ऐ बहार तुम कहाँ गई थीं ?'

'हुजूर, जरा शाही महल की तरफ निकल गई थी।' बहार ने अर्ज किया।

'क्यों ? कुछ काम था ?'

'दोपहर का वह वक्त हुजूर का कुरान शरीफ पढ़ने का था। मुझे भी फुरसत थी। बहुत दिनों से उधर गई भी नहीं थी। इसलिए चली गई। दो तीन बेगमात साहिबान से मिल कर वापस आ गई।'

'हुक्के का कश लेकर और धुआँ फूँक कर मलिका ने पूछा—'शाही महलों की कोई नयी बात है।'

'ऐ हुजूर, शाही महलों में नई बात हुआ ही करती है। रात में जो खेल-तमाशा दिखलाया गया था उसी की चर्चाएँ चल रही थीं।'

'तमाशा तो हमने भी देखा था। बहुत अच्छा था। सुलताने-आलम ने उस खेलको बहुत खूब तैय्यार कराया था। हमें पसंद आया। पहले जो उन्होंने रहस के खेल-रकाशे तैय्यार कराए थे, उनसे यह कहीं बेहतर था।'

'एक क्षण खामोश रहने के बाद बहार ने धीरे से कहा—'उसी तमाशे के सिल-सिले का एक नया दिल और हौसला देखने में आया।'

'क्या ? जरा साफ तौर पर कहो ?' मलिका ने कहा।

'नवाव माशूक महल ने आज एक बखशिश-खैरात करके दिखलाई, जैसी लखनऊ की बादशाहों या शायद किसी बेगम ने न कीं होगी ।'

'हमारी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा । तुम जाने क्या कह रही हो ।' और वह हुक्का पीने लग गईं ।

'बहारुन्निसा एक क्षण चुप रही फिर कहा—'जैसा यह गुलाबी जवाहर जड़ा हुआ बेशकीमती छल्ला हुजूर की उँगली में मौजूद है इसी तरह का एक छल्ला उन्होंने खैरात कर दिया ।'

'मलिका ने अपनी उँगली के छल्ले पर नजर डाली और उसे घुमा कर जवाहर पर नजर जमा कर मुस्कराते हुए कहा—'बहार तुम शायद इस छल्ले से वाकिफ नही हो ? ऐसा छल्ला नवाब माशूक महल को बखशिश में देने के लिए कहाँ मिलेगा । इसका यह गुलाबी जवाहर ऐसा है जिसकी कीमत का अन्दाजा लगाने में बड़े-बड़े जौहरी घबराते हैं ।'

'हुजूर मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं दे सकतीं ।' बहार दृढ़ स्वर से कहा—'उस छल्ले को मैंने अपने हाथ में लेकर देखा था । बिलकुल इसी नमूने और इसी जोड़ का था । उसमें भी ऐसा ही आबदार हरे रंग का जवाहर जड़ा हुआ था ।'

'मलिका हँस पड़ीं । फिर सावधान होकर कहा, 'बनावट मुमकिन है कुछ इसी तरह की रहीं हो, लेकिन जवाहर ऐसा नहीं हो सकता । उसमें कोई हरे रंग का काँच का टुकड़ा या कोई मामूली सा नग जड़ा रहा होगा ।'

'जनाबे आलिया, लौंडी की गुस्ताखी माफ फरमाएँ । हुजूर की खिदमत में रह कर लौंडी में इतनी तमीज, इतनी समझ पैदा हो गई है कि काँच और जवाहर के फर्क को जान समझ सकती है । हुजूर के इस छल्ले में ये गुलाबी रंग का जवाहर जड़ा है उसमें ऐसा ही हरे रंग का कोई कीमती जवाहर जड़ा हुआ था ।'

'मलिका जरा देर चुप रहीं फिर बोलीं—'हैरत की बात है ।' फिर अपने छल्ले को गौर से देख कर कहा—'बहार, यह छल्ला सल्तनत मुगलिया के खजाने का है । पुराने वक्त से ऐसे चार छल्ले लखनऊ के शाही खजाने में मौजूद थे । हजरत जन्नत-मकां के वक्त में वह चारो छल्ले हमारे सामने आए थे । उनमें गुलाबी, नीला, पीला और हरा जवाहर जड़ा था । हमने ये गुलाबी जवाहर वाला छल्ला पसन्द करके अपनी उँगली में पहन लिया था । बाकी तीन छल्ले वापस करके खजाने में रखवा दिए थे ।'

'जैसा कि हुजूर ने फरमाया कि उन चारो छल्लों में एक हरे रंग के जवाहर वाला भी था । तब मेरा ख्याल है कि माशूक महल वाला वह छल्ला, वही हरे रंग के जवाहर वाला था ।' फिर जरा रुक कर कहा—'मलिका हुजूर, क्या यह मुमकिन नहीं हो सकता कि हजरत सुलताने-आलम ने वह तीनों छल्ले खजाने से तलब फरमा कर अपने कब्जे में कर लिए हों और उनसे नवाब माशूकमहल के हाथ में आ गया हो ?'

'सुलताने-आ.लम के लिए कौन सी बात नामुमकिन कही जा सकती है ?' मलिका ने धीरे से कहा। फिर जरा देर खामोश रह कर कहा—'उस तमाशे में यह तो हमने भी देखा था कि सब्जपरी ने अपनी उँगली से एक छल्ला निकाल कर शाहजादे-गुलफाम को पहनाया था। फिर एक मौके पर उसी सब्जपरी की जबान से यह भी सुना था—'छल्ला मैं दे आई हूँ अपना उसे निशान, सब्ज नगों की आब से तू उसको पहचान। ऐसी सूरत में हो सकता है वह हरे नग वाला छल्ला वही शाहीखजाने वाला रहा हो।'

'जरूर वही था।' बहार ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'नवाब माशूकमहल ने किसे वह नायाब चीज बख्श दी ? तुम्हें मालूम है ?'

'जी हाँ, उसी जीवनलाल नामी लड़के को जो गुलफाम बना था।'

'मलिका किश्वर बहादुर जरा देर खामोश बैठी कुछ सोचती रहीं। फिर धीरे से कहा—'इसकी तहकीक करनी चाहिए कि वह छल्ला इसी गुलाबी जवाहर वाले छल्ले के साथ का है।' फिर बहार से पूछा,—'वह जो गुलफाम बना था और जिसे माशूकमहल ने वह छल्ला बख्शा दिया है, किसका लड़का है ? कहाँ रहता है ? इसका तुम्हें कुछ अता-पता है ?'

'हुजूर मुझे तो उसका कुछ अता-पता मालूम नहीं है।' बहार ने कहा—लेकिन दफ्तर वालों में से किसी न किसी को जरूर मालूम होगा। पूछ कर अभी उर्ज करती है।'

'बहार उठ कर दफ्तर की तरफ गई और उलटे पैरों वहाँ से वापस आकर बोली—'हुजूर वह लाला चिरंजीलाल खत्री का लड़का है। नखास बाजार में लाला की कपड़े की बहुत बड़ी दूकान है। दफ्तर के सभी लोग उन्हें जानते-पहचानते हैं।'

'खैर', मलिका ने धीरे से कहा।

'इसके बाद मलिका किश्वर बहादुर वजू करके संध्या की नमाज पढ़ने में मशगूल हो गईं।

'मिरजा जफर हुसैन साहब, दूसरे दिन मेरे सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा।' जमालुद्दौला ने कहा—'सुबह का वक्त था। कोई एक पहर दिन चढ़ चुका था। मैं और मुनीमजी दूकान पर थे। लालाजी कहीं गए हुए थे। तभी नवाब मलिका किश्वर बहादुर का एक नौकर दूकान पर आया और मुझसे बोला—'लाला चिरंजी लाल के लड़के तुम्हीं हो ? तुम्हारा ही नाम जीवनलाल है ?'

'हाँ,' मैंने कहा।

'तुम्हीं तमाशे में गुलफाम बने थे ?'

'इसका भी जवाब मैंने 'हाँ' कह कर दिया। वह बोला—'चलो, तुमको नवाब मलिका किश्वर बहादुर ने छतर मंजिल में अपने सामने तलब फरमाया है।'

'मिरजा साहब, मेरा दिल खुशियों से भर गया। ख्याल ने जमीन-आसमान के कलाबे एक करना शुरू किए। मलिका खेल देखने के लिए उस रात को रहस मंजिल

में तशरीफ लाई थी···उन्हें मेरा करतब पसन्द आया होगा···कल नवाब माशूक महल ने इनाम के तौर पर वह अमूल्य छल्ला वख्शा था···मलिका ने सुना होगा··· आज उन्होंने भी अपनी उदारता दिखानी चाही होगी···इसीलिए तलब फरमाया है।···मलिका को बख़शिश शायद नवाब माशूक महल से कहीं ज्यादा कीमती होगी।

'इस गुनताड़े को लेकर मैं जैसा बैठा था उठ कर मलिका के उस नौकर के साथ छतरमंजिल की तरफ चल पड़ा।

'छतर मांजिल में पहुँचने पर मलिका किश्वर बहादुर ने मुझे अपने सामने बुलाया। पहुँच कर मैंने अदव कायदे के साथ उन्हें सलाम किया। सलाम लेकर उन्होंने मुझसे पूछा—'तुम लाला चिरंजीलाल खत्तरी के लड़के हो?'

'जी, हुजूर ?'

'फिर एक गहरी नजर मेरे चेहरे पर डाल कर धीरे से कहा—'तुम वाकई गुलफाम हो। सुलताने-आलम ने बहुत खूब चुना था।'

'मैं चुप खड़ा था। उन्होंने नजर उठा कर कहा—'उस खेल के ऐवज में माशूक महल ने तुम्हें क्या इनाम दिया है?'

'मेरा दिल फूल रहा रहा था। समझ रहा थाकि इस पूछ-ताछ के बाद नवाब मलिका किश्वर बहादुर अपना कीमती ईनाम मुझे प्रदान करेंगी। इसलिए उसी खुशी के जोश में मैंने अर्ज किया—'तमाशे में सब्जपरी की हैसियत से नवाब माशूक महल साहिबा ने जो कीमती हरे रंग का जवाहर जड़ा हुआ छल्ला मेरी उँगली में पहनाया था, उस रात को मैं गलती से उसे पहने हुए घर चला गया था। कल जब मैं उसे वापस करने की गरज से उनकी खिदमत में हाजिर हुआ और उस छल्ले को उन्हें वापस किया तो उन्होंने उसे वापस न लेकर इनाम के रुप में मुझे बख्श दिया।'

'कहाँ है वह छल्ला? जरा देखें।'

'वह इस वक्त मेरी उँगली मैं मौजूद नहीं है।'

'कहाँ है?'

'हमारे लालाजी की तिजोरी में बन्द है।'

'मलिका कुछ देर के लिए मौन हो गई। मैं देख रहा था कि उनके चेहरे का रंग कुछ दूसरा हो रहा था। बोली—'जब तक वह छल्ला मँगा कर हमारे हाथ में न दोगे, तुम यहाँ से आपने घर वापस नहीं जाने पाओगे।'

'मलिका किश्वर ने उसी वक्त बाहर से अपनी डयोढ़ी के अफसर मंभू मियां को बुलाया। उसके आ जाने पर उनको हुक्म सुनाया—'इस लड़के को अपने पास नजर बन्दरखना, घर न जाने पाए। जब यह अपने घर से नवाब माशूक महल का

बक्शा हुआ बेशवहा हरे नग वाला छल्ला मँगा कर हमारे हाथ में दे दे, तभी छुटकारा पाए। इस मामले की खबर इसके बाप के पास भेज देना।'

'मंभू मिया के साथ मैं ड्योढ़ी में नजरबन्द हो गया। सोच रहा था कि या खुदा यह क्या राज है। लेने के देने पड़ गए। पुरस्कार लेने आया था और नजरबन्द हो गया।'

जमालुद्दौला यह किस्सा सुना कर बोले—'देखा मिरजा जफर हुसैन साहब उस छल्ले ने मेरे सामने कैसी मुसीवत खड़ी कर दी।'

चौदह

'मेरे नजरबन्द हो जाने की खबर पाकर लालाजी चक्कर में पड़ गए।' जमालुद्दौला ने कहा—'उन्हें छल्ले का मोह नहीं था। उसे ले जा कर और मलिका किश्वर के हाथ में देकर तुरन्त मुझे कैद से छुड़ा सकते थे। झमेला शाही घराने का था। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि छल्ला किसे दिया जाय। जिन्होंने बख्शा है उनको, या जो इस वक्त चाह रही हैं उनको। इतना वह ज़रूर समझ गये थे कि वह छल्ला एक गोरख-धंधा है। जिसका राज नवाब मलिका किश्वर बहादुर को मालूम है तभी वह उसे अपने हाथ में लेना चाह रही हैं और जीवन को नज़र-बन्द कर रखा है।

'इस उलझन को सुलझाने के लिए लालजी पड़ोसी नवाब जाफ़िर अली खाँ के पास पहुँचे। क्योंकि वह शाही खानदान से ताल्लुक रखते थे। इज्जतदार थे। पिछले बादशाहों का जमाना देखे हुए थे और ऐसे सैकड़ों शाही हरम के मामलों से वाकिफ थे। दूसरे पड़ोसी होने के नाते हमारे लालाजी के मित्र थे। जब कभी राज-दरबार से संबंधित कोई झंझट पैदा हो जाया करती थी, लालजी उन्हीं से इसलाह लिया करते थे और उनकी इसलाह हमेशा फायदे की हुआ करती थी।

'लालाजी ने शुरु से अखीर तक उन्हें छल्ले का किस्सा सुना कर मेरे नज़र बन्द हो जाने की अपनी चिन्ता उनके आगे रख दी।

'जाफिर अली खाँ ने कहा—'लालजी, ये शाही जनानखाने की दो जबरदस्त ताकतों का मामला है। मलिका किश्वर बहादुर बादशाह सलामत की माँ ही हैं। उनकी ताकत के लिये ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं है। नवाब माशूक महल बादशाह सलमत की चहेती बेगम हैं। उनके आगे शाही जनानखाने की किसी दूसरी बेगम का जिक्र क्या हज़रत की निकाही बेगम नवाब खास महल भी कोई हकीकत नहीं रखतीं। नवाब माशूक महल ने जाने-आलम को अपनी मुट्ठी में बन्द कर रखा है। इसलिए इस मामले में मैं आप को ऐसी इसलाह देना चाहता हूँ कि साँप भी मर जाय और लठी भी न टूटे। छल्ला नवाब माशूक महल ने जीवन को बख्शा था, उसकी बुनियाद वही है। आप वह छल्ला ले जा कर माशूक महल को वापस कर दीजिए। छल्ले की वापसी मामूली बात न होगी। माशूक महल चुप नहीं रहेंगी। और बहुत आसानी से जीवनलाल कैद से छुटकारा पा जाएगा।'

'नवाब जाफिर अली खाँ की इसलाह लाला जी के दिल में जम गई। वह वहाँ से उठ कर दूकान पहुँचे और तिजोरी से वह छल्ला निकाला और जेब में रखा कर कोठी कैसर पसंद का रास्ता पकड़ा।

'कोठी पर पहुँचते ही उन्हें राहत खानम नवाब माशूक महल की खास कनीज मिल गई। लाला जी उसे पहचानते थे और वह भी लाला जी को पहचानती थी। फिर तमाशे के सिलसिले में वह इससे भी वाकिफ हो गई कि जीवनलाल लालाजी का ही बेटा है। लालाजी ने उसके जरिए बेगम के पास खबर भेजी।

'उस वक्त नवाब माशूक महल मसनद पर बैठीं सितार बजा रहीं थीं। राहत ने सामने पहुँच कर अर्ज किया—'हुजूर जीवनलाल के बूढ़े बाप कोठी की ड्योढ़ी पर हाजिर हैं। कुछ अर्ज करना चाहते हैं।'

'कौन ? गुलफ़ाम के बाप, लाला चिरंजीलाल ?'

'जी हुजूर।'

'उन्होंने सितार एक तरफ रख दिया और तकिए का सहारा लेकर आराम से बैठ गईं। कहा—'लालाजी को बुला लो। गुलफ़ाम के बूढ़े बाप से हमारा क्या परदा है !'

'दूसरे क्षण लाला जी नवाब माशूक महल के सामने पहुँच गये। अदब कायदे से सलाम बजाया। उन्होंने समाने कालीन पर बैठने का इशारा किया। लाला कालीन का एक कोना दबा कर बैठ गए

'माशूक महल ने पूछा—'कहिए ? क्या काम है ? गुलफ़ाम कहाँ है ?'

'वह तो नजरबन्द है।' और लालाजी ने जेब से छल्ला निकाल कर उनके सामने मसनद पर रख कहा—मैं इस छल्ले को वापस करने के लिए ही खिदमत में हाजिर हुआ हूँ ?'

'बेगम ने छल्ला हाथ मैं लेकर कहा—'यह छल्ला तो हमने गुलफ़ाम को बख्श दिया था। आप इसे क्यों वापस करने आए हैं ?'

'हुजूर इसी की वजह से जीवनलाल नजर-कैद में है।'

'ऐं' माशूक महल ने हैरत के साथ कहा—'उसे किसने नजरकैद कर रखा है ?

'नवाब मलिका किश्वर बहादुर ने।'

'क्यों ?'

'लालाजी ने सारा किस्सा सुना दिया। नवाब माशूक महल जरा देर खामोश बैठी रहीं। फिर धीरे से कहा—'ठीक है, हम समझ गये।'

'अब हुजूर मालिक हैं। चाहें जीवन को कैद में रखें या छुटकारा दिलाएं।' लालाजी ने नम्रतापूर्वक कहा।

'इस वक्त तो आप जाइए और गुलफाम को आज की रात कैद की तकलीफ उठा लेने दीजिए। इंशाअल्ला कल उसे छुटकारा मिल जायगा।' फिर छल्ले पर नजर डाल कर कहा—इस छल्ले को अभी हमारे पास रहने दीजिए।'

'लालाजी सलाम करके घर लौट आए।

'मिरजा साहब,' जमालुद्दौला ने कहा—'अगरचे वहाँ नजर-कैद में मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं थी। खाने-पीने, बैठने-लेटने-सोने हर एक बात का आराम था। फिर भी कैद का नाम बुरा होता है। न कहीं आ-जा सकता था। न मुझसे

कोई बात करने वाला था। तनहाई और खामोशी में तरह-तरह के ख्याल पैदा होते थे और मैं उस खेल, गुलफाम के अभिनय और उस छल्ले को कोसने लग जाता था। लालाजी क्या कर रहे हैं, इसकी मुझे कोई खबर न थी। लालाजी की दौड़-धूप और नवाब माशूक महल की कोशिशों का हाल तो मुझे छूटकारा पाने के बाद मालूम हुआ था।'

'किस तरह आपको नजर-कैद से छुटकारा मिल सका था?' मिरजा ने पूछा।

'सुनिए।' जमालुद्दौला ने कहा—'उसी शाम को जाने-आलम सैर करके सीधे कोठी कैसर पसन्द में आए। नवाब माशूक महल ने स्वागत किया। और शाही जोड़ा मसनद पर जम गया। जाने-आलम ने मुस्कराते हुए कहा 'नवाब माशूक महल साहब ! हम इस वक्त खास तौर पर तुम्हें मुबारिकबाद देने आए हैं?'

'किस बात की मुबारिकबाद।' बेगम ने धीरे से कहा।

'तुम्हारे काम की?'

'हमने ऐसा कौन सा काम किया है?'

'वाह सब्जपरी और गुलफाम के नामों और उनके खेल की सारे लखनऊ में धूम मची हुई है। तुम दोनों की बात-चीत, नाज-नखरों की गली-गली में नकल उतारी जा रही है। यहाँ तक कि लड़के भी वही खेल खेलते हैं। तुम्हें एक वाकया का जिक्र सुनाते हैं। हम सैर को निकले थे। हमारी बादेबाहारी एक सड़क से आहिस्ता-आहिस्ता गुजर रही थी। सामने एक मसजिद थी। उसके आगे एक छोटा सा मैदान था। मैदान में दस-पाँच लड़के जमा थे। वे सब वही खेल खेल रहे थे। उनमें एक लड़का सब्जपरी और एक गुलफाम बना हुआ था। नकल उतारी जा रही थी। वही शेर पढ़े जा रहे थे। वही नाज-अन्दाज, वही हाव-भाव और प्रेम प्यार का इजहार किया जा रहा था।'

'माशूक महल सिर्फ 'हूँ' कह कर रह गई।

'जाने-आलम ने उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, 'तुम इस वक्त धीरे क्यों बोल रही हो? क्या कुछ तबियत नासाज है?'

'जी नहीं, बिलकुल भली चंगी हूँ।'

'तब हमसे कोई नाराजगी है? या हमारे दिल को दुखाना मंजूर है?'

'हरगिज नहीं।'

'यह भी नहीं, वह भी नहीं।' जाने-आलम ने नजर मिला कर कहा—'फिर क्या बात है?'

'हम हुजूर से अपने एक सवाल का जवाब चाहती हैं। बशर्ते कि आप सही और सच्चा जवाब दें।' बेगम ने कहा।

'क्या सवाल है?'

'यों नहीं।' बेगम ने कहा—'सही जवाब देने का वादा कीजिए।'

'हाँ-हाँ, अपनी समझ के मुताबिक हम सही जवाब देंगे ।' लहजा संजीदा था ।

'सवाल यह है ।' बेगम ने गम्भीर मुखमुद्रा से कहा—'अगर किसी को कुछ बख्श दिया जाय । दान दे दिया जाय या खैरात कर दी जाय, तो वह बख्शी हुई चीज या दान दी हुई चीज वापस ली जा सकती है या नहीं ?'

'हरगिज नहीं ।' उन्होंने दृढ़ स्वर से कहा—'कहीं दिया हुआ दान वापस लिया जाता है । जिसे जो बख्श दिया । उसे फिर वापस लेना कैसा ?'

'बेगम चुप रहीं ।

'जाने-आलम फिर बोले—'सखावत यानी दान के बारे में तो बड़ी-बड़ी दास्तानें मौजूद हैं । पुराने बादशाहों ने तो अपनी सल्तनत दान करके फकीरी इख्तियार कर ली है । अपना शरीर तक दान कर दिया है । क्या हिन्दू क्या मुसलमान, हर एक दीन मजहब में दान बख्शीश और खैरात पर जोर दिया गया है । दान देना, खैरात करना तो बहुत बड़ा सवाब का काम है । खुदा उसका बदला चुकाता है ।' फिर जरा रुक कर कहा—'और बादशाह या उनकी बेगमों का हाथ तो हमेशा खुला हुआ होना चाहिए । अगर बादशाह या उसकी बेगम हाथ ऊँचा नहीं रखेंगे तो क्या कोई फकीर या भिखारी जो खुद दाने-दाने को मोहताज होगा वह खैरात बाँटेगा ? वह किसी को कुछ बख्शेगा ? यह काम बादशाहों और बेगमों के हाथों में ही खुदा ने दिया है । इसलिए उन्हें बादशाह बनाया है कि वह दिल खोलकर दान दें । धन-दौलत होती किसलिए है ? क्या कोई उसे अपने साथ ले जाता है ? सब यहीं पड़ा रहता है । सिर्फ वही साथ जाता है जो हाथ उठा कर किसी को कुछ दे दिया है ।'

'माशूक महल चुप बैठी सुन रही थीं ।

'जरा देर खामोश रहने के बाद जाने-आलम ने नजर उठा कर उनकी तरफ देखा और बोले —'लेकिन नवाब माशूक महल ! एक बात हमारी समझ में नहीं आई । आज इस वक्त तुम्हारे दिल में यह सवाल क्यों पैदा हुआ और तुमने उसका हमसे जवाब क्यों चाहा ?'

'इसकी एक ऐसी वजह है, जो हमारे दिल को झकझोर रही है । हमारा दिल तड़प रहा है ।'

'वह क्या वजह है । जरा हम भी तो सुनें ।'

'बेगम नीची निगाह कर के चुप रह गईं । उनका मुख उदास हो रहा था ।

'भई तुम्हारे चेहरे की यह उदासी हमसे नहीं देखी जा रही । वह दिल को झखझोरने वाली वजह हमें जल्द सुनाओ ताकि हम उसका कुछ इलाज करें । वरना तुम्हारी यह उदासी हमें भी उदास कर देगी ।'

'हजूर, बात यों है । बेगम ने नजर उठा कर कहा—'इन्दर सभा का वह तमाशा और सब्जपरी बनना मेरे गले पड़ गया । वही मेरी उदासी की जड़ है ।'

'यह किस तरह ?'

'यह तो हुजूर को मालूम है कि सब्जपरी की हैसियत से मैंने गुलफाम की उँगली में छल्ला पहनाया था। और वह वही छल्ला था जिसमें कोई हरे रंग का नग जड़ा हुआ था। और हुजूर ने उस काम के लिए ही मुझे दिया था...' और वह चुप रह गई।

'अच्छा फिर ?' जाने-आलम ने कहा—'तब उस छल्ले ने क्या तूफान खड़ा कर दिया।'

'बहुत बड़ा तूफान पैदा कर दिया। उसकी वजह से एक बेगुनाह कैद में पड़ा है।'

'ऐ, उस छल्ले की वजह से कोई कैद में पड़ा है ?' जाने-आलम ने आश्चर्य के साथ कहा। 'भई जल्द साफ-साफ बयान करो। इससे तो हम भी परेशानी में पड़ रहे हैं।'

'तमाशा खतम होने पर गुलफाम उस छल्ले को उगँली में पहने हुए अपने चला गया था। और दूसरे जेवरों के साथ उसे उतार कर देना भूल गया था। मुझे भी उस छल्जे का कोई ख्याल नहीं था। दूसरे दिन गुलफ़ाम को उसकी याद आई तो उसने हमारे सामने हाजिर होकर और छल्ला उँगली से उतार कर हमें लौटा दिया। हमारी नजर में उसके अभिनय के आगे वह छल्ला कोई चीज नहीं था। जी में आया और वह छल्ला मैंने गुलफाम को बख्श दिया।...'

'ठीक है।' जाने-आलम ने इतमीनान से कहा—'गुलभाम से कमाल के आगे दरअसल छल्ले की कोई हकीकत नहीं थी।'

'लेकिन हमारी उम बखशीश की वजह से बेचारा गुलफाम आज कैद की मुसीबत उठा रहा है। उसका बूढ़ा बाप हमारी वह खैरात यानी वह छल्ला हमें वापस दे गया है।' और बेगम ने छल्ला जाने-आलम के आगे रख कर कहा—'लानत है हमारे दान और बखशीश पर। उसने कैसा सवाब कमाया कि एक बेगुनाह को कैद में डाल दिया।' और बेगम के मुख पर उदासी छा गई।

'लेकिन अब तक हमारी समझ में यह नहीं आया कि गुलफाम को किसने कैदी बना रखा है ?'

'आपकी अम्मी हुजूर, नवाब मालिका किश्वर बहादुर ने।'

'क्यों ? उनको गुलफ़ाम से क्या मतलब था ?'

'मेरी बखशीश की जलन-डाह और छल्ले की लालच। इसके सिवा उनका और कौन सा मतलब कहा जा सकता है।'

'आखिर उन्होंने किस गरज-मतलब से गुलफाम को कैद कर रखा है ? यह तो मालूम होना चाहिए।'

'मालिका हुजूर की गरज मतलब वही छल्ला है। उसे वह अपने कब्जे में करना चाहती हैं। इसीलिए उन्होंने गुलफाम को बुला कर छतर मंजिल में नजरबन्द

कर रखा है। जब वह छल्ला मँगा कर उनके हाथ में दे देगा तभी कैद से रिहाई पायेगा।'

'जाने-आलम ने उस छल्ले को हाथ में लेकर घुमा-फिरा कर देखा। फिर जरा देर बाद धीरे से कहा—'मिफताहुद्दौला ने उस दिन हमें बताया था। यह एक तारीखी छल्ला है। जनावे आलिया को इसकी कैफियत मालूम है। उनके पास इसके जोड़ का दूसरा छल्ला भी मौजूद है। इस छल्ले की कीमत का कोई अन्दाजा भी नहीं है। बेशकीमती चीज है।' फिर एक क्षण चुप रह कर कहा—'कुछ भी सही। यह छल्ला सारी दुनिया की दौलत ही क्यों न हो। जब हाथ उठा कर किसी को दे दिया गया, तो उसका है। किसी भी सूरत में उससे वापस नहीं लिया जा सकता ?'

माशूक महल ने बड़े नम्र स्वर लहजे से कहा—'हुजूर इस लौंडी की एक अर्ज कबूल फरमाएँ।'

'क्या ?' उन्होंने उनकी तरफ देख कर कहा।

'इस मनहूस छल्ले को मलिका के हवाले करदें। गुलफाम कैद से छुटकारा पा जाय। हम इस छल्ले के बदले में गुलफाम के साथ कोई दूसरा सलूक कर देंगी।'

'ऐसा नहीं किया जा सकता। यह छल्ला अब गुलफाम को ही दिया जायगा। अम्मी हुजूर को नहीं दिया जा सकता।'

'फिर गुलफाम किस तरह छुटकारा पायेगा ?'

'जाने-आलम ने उसी समय महलात के नाजिर बशीरुद्दौला को तलब किया।

'आजाने पर उससे कहा—'छतर मांजल में जीवनलाल नामी एक लड़का बन्द है। अम्मी हुजूर ने उसे कैद कर रखा है। हमारे हुक्म से उस लड़के को अपने साथ यहाँ ले आये।'

'हुक्म की तामील के लिए बशीरुद्दौला छतर मंजिल को चला गया।

'रात का पहला पहर खतम हो रहा था। दस्तरख्वान बिछ गया और शाही जोड़े ने एक साथ बैठ कर खाना खाया। और मसनद पर बैठकर बशीरुद्दौला के लौटने का इन्तजार करने लगे।

'बेगम ने कहा—'जाने-आलम, हमें रह-रह कर यही ख्याल हो रहा है कि बेचारा गुलफाम किस मुसीबत में पड़ गया। तमाशा उसके लिए अजाब हो गया।'

'जाने-आलम कुछ कहना चाहते थे, तभी बशीरुद्दौला ने आकर अर्ज किया आलीजाह ? जनाबे-आलिया मलिका फिश्वर बहादुर जीवनलाल को रिहाई नहीं दे रहीं। फरमाया है कि जाकर सुलताने-आलम से कह दो कि वह हमारे मामले में न पड़ें।'

'जाने-आलम दो क्षण चुप रहे। फिर बेगम की तरफ नजर उठा कर कहा—'सुबह हम अम्मी हुजूर से मिल कर जीवनलाल को छुटकारा दिला देंगे।'

जमालुद्दौला तकिए का सहारा लेकर जरा देर तक खामोश रहे फिर संभल कर कहा—'मिरजा शैदा साहब, उस रात की नजरबन्दी मेरे लिए कयामत का सामना

थी। गो कोई खास तकलीफ नहीं थी। पलंग पर मुलायम विस्तरों के ऊपर लेटा था। लेकिन आँखों में नींद न थी। तरह-तरह के ख्याल आ-जा रहे थे। और दिल बेचैन हो रहा था। कभी उस तमाशे को कोसता था। कभी-कभी उस छल्ले की मनहूसियत को गालियाँ देता था। कभी सब्जपरी पर झुँझलाता और कभी बेगम की उदारता और बखशीश पर अपना क्रोध ठन्डा करता। फिर अपने लालाजी की तरफ भी ख्याल दौड़ाता। दिल कहता-बुढ़ापे में लालच बढ़ जाती है। घर में तिजोरियाँ भरी रखी हैं। धन-दौलत का कोई हिसाब नहीं है। और मेरे सिवा कोई खर्च करने वाला भी नहीं है। फिर भी उन्हें उस छल्ले का मोह घेरे हुए है। मुझे कैद से छुड़ाने की उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। अगर चिन्ता होती तो खबर पाते ही छल्ला लेकर दौड़े आते और मुझे छुड़ा ले जाते।' फिर सांस लेकर कहा—'मिरजा साहब, वहाँ मुझे क्या पता था कि मेरी नजरबन्दी की खबर पाकर लालाजी के दिल पर कैसी क्या गुजरी है और उन्होंने कहाँ तक दौड़ लगाई है। बेगम और जाने-आलम ने क्या किया है। वशीरुद्दौला के आने की भी मुझे कोई खबर नहीं थी। यह सारा किस्सा तो कैद से छुटकारा पाने के बाद मुझे नवाब माशूक महल से मालूम हुआ था।

'खैर साहब, करवटें बदलते हुए ज्यों-त्यों सुबह हुई। उठा और मुँह-हाथ धो कर बैठा अपनी किसमत को रो रहा था। तभी वहाँ जाने-आलम तशरीफ लाये। लेकिन एक कैदी के लिए आगे बढ़ कर अदब-सलाम बजाना बहुत कठिन ही नहीं असम्भव था। मन मसोस कर बैठा रह गया।

'जाने-आलम बादेबाहारी से उतर कर सीधे अन्दर चले गए। करीब आधे-पौन घन्टे के बाद मंझू मियां बुलाये गये। वह अन्दर गये और उलटे पैरों लौट कर उन्होंने मुझसे कहा—'जीवन लाल, तुम्हारी नजरबन्दी खतम हो गई। अब तुम खुशी के साथ अपने घर जा सकते हो।'

'मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया और घर जाने के लिए तैय्यार हुआ। तभी जाने-आलम अन्दर से बाहर आए। उन्होंने मुस्कराते हुए मेरी तरफ देखा, बोले—'गुलफाम हमारे साथ चलो।' मैं बादेबाहारी के पीछे-पीछे चला। बादेबाहारी छतर मंजिल से आकर कोठी कैसर पंसद के सदर दरवाजे पर रूक गई। जाने-आलम उतर कर अन्दर चले गये। मैं बाहर ही खड़ा रहा। कुछ देर में राहत खानम आकर मुझे अपने साथ अन्दर ले गई। शाही जोड़ा मनसद पर आसीन था। पहुँचते ही नवाब माशूक महल ने मुस्करा कर कहा—'गुलफाम तुम्हें कैद से छुटकारा मिल गया ?' और उन्होंने बैठने का इशारा किया। मैं सामने अदब कायदे से कालीन पर बैठ गया।

'जाने-आलम ने बेगम की तरफ नजर घुमा कर कहा—'माशूक महल, यह कैद नहीं थी।'

बेगम ने कहा—'और क्या था ?'

'यह भी वही इन्दर सभा का तमाशा था। उसमें गुलफाम अंधे कुएँ में कैद

किया गया था और यहाँ छतर मंजिल में नजरबन्द था। मगर अंजाम दोनों खेलों का नेक और खुशियों से भरा रहा।'

'आपने वह छल्ला मालिका हुजूर के हवाले कर दिया?' बेगम ने पूछा।

'वह तो गुलफाम की मिलकियत है। उनके हवाले क्यों किया जाता? बख्शी हुई चीज कहीं वापस ली जाती है?' और उन्होंने छल्ला अपनी उँगली से उतार कर कहा—'तुमने तमाशे में सब्जपरी की हैसियत से गुलफाम को पहनाया था। अब, मलिकाए मुल्क नबाब माशूक महल की हैसियत से जीवनलाल की उँगली में पहना दो।'

'छल्ला लेकर नवाब माशूक महल ने मेरी उँगली में अपने हाथों से पहना दिया। मैंने अदब कायदे से शाही जोड़े के आगे सिर झुका दिया।

'उसके बाद खुश-खुश अपने घर आ गया।'

'तब, वह बेशवहा तारीखी छल्ला आप के पास अब भी मौजूद होगा?' मिरजा जफर हुसैन ने पूछा।

'अरे कहाँ!' जमालुद्दौला ने कहा—'जैसा आया था। वैसा ही चला गया।'

'क्यों क्या हुआ?'

'सत्तावन की गदर में जब लखनऊ के रईसों-नवाबों की हवेलियाँ लूटी गईं, गुलफाम मंजिल भी लूटी गई और उसी लूट में वह छल्ला भी लूट लिया गया।'

पन्द्रह

'अच्छा यह बताइए कि आपके लालाजी ने आगे आप की शादी कहीं रचाई या खामोश होकर बैठे रह गये।' मिरजा जाफर हुसैन ने पूछा।

नवाब जमालुद्दौला बड़े इतमिनान से बोले—'मिरजा साहब, मेरे लालाजी खामोश होकर बैठने वाले आदमी न थे। हर वक्त उनको मेरी शादी से निपट जाने की धुन सवार रहती थी। दो शादियाँ अगरचे उचट चुकी थी फिर भी वह हताश नहीं हुए थे। और कहीं न कहीं ब्याह रचा कर किसी न किसी लड़की को मेरे गले से बाँध देना चाहते थे। मेरी माँ का स्वर्गवास हो ही चुका था। घर में लालाजी और मैं दो ही मर्द प्राणी थे। बिना किसी औरत यानी घर की लक्ष्मी के घर का कोना-कोना सूनेपन से भरा रहता था। जब हम लोग दूकान चले जाते थे, मकान के दरवाजे पर तला लटका रहता था। मालूम होता था कि इसमें कोई रहता ही नहीं। लालाजी ने एक पंडिताइन और एक कहारी को नौकर रख छोड़ा था दोनों सुबह शाम वक्त पर आकर अपना अपना काम-काज करके चली जाया करती थीं। इसलिए लालाजी को यह उठाईगीरी बहुत खटक रही थी। वह पुत्र-बधू को लाकर घर का वह सूनापन दूर करना चाहते थे और इस मतलब के लिए चारो तरफ डोरे डालते रहते थे।

'हमारी बिरादरी के एक लाला कालीचरन खत्तरी मोहल्ला तहसीनगंज में रहते थे। भले आदमी थे। बाद में वह बाद शाह वाजिदअली शाह की बेगम मलिकाए अवध नवाब अख्तर महल की सरकार में मुलाजिम होकर मुख्तार-आम के पद तक पहुँच गये थे और उनकी सरकार से लाखों रुपया कमा कर बहुत वड़ी हैसियत बना ली थी।'

'मआलीखाँ सराय में आजकल एक कालीचरण हाई स्कूल चल रहा है। मेरे एक दोस्त उस स्कूल में सेकन्ड मास्टर हैं। एक बार उन्होंने जिक्र किया था कि उनका स्कूल लाला कालीचरण खत्तरी के वसीयतनामे के मुताबिक जारी किया गया था। इस वक्त आप जित लाला कालीचरण का जिक्र कर रहे हैं, कहीं वही तो नहीं थे?' मिरजा ने पूछा।

'जी हाँ, वही थे। उनके कोई औलाद नहीं थी। बीबी भी मर चुकी थी। घर में लाखों रुपयों की दौलत मौजूद थीं। इस ख्याल से पहले तो उन्हों ने बिरादरी के किसी लड़के को गोद लेने का इरादा किया था। बाद में उस ख्याल को छोड़ किया और अपनी जायदाद का बहुत बड़ा हिस्सा सरकार में जमा करके लखनऊ के सभी

लड़कों को हमेशा के लिए गोद ले लिया। एक वसीयतनामा लिख दिया कि इस रकम से एक स्कूल चलाया जाय। उन्हीं के नाम से मआली खाँ सराय में स्कूल कायम किया गया था जो आज तक उनके नाम को जिन्दा किए हुए है।' फिर जरा संजीदा होकर कहा--'मिरजा साहब, नेक लोगों के नेक कामों से ही दुनिया में उनका नाम जिन्दा रहता है। लाला कालीचरण का नेक काम उन्हें अमर बनाये हुए है।'

'खैर आगे फरमाइए ?'

'हाँ, तो लाला कालीचरण ने हमारे लालाजी का हाथ बँटाया। सच्ची मित्रता के नाते उन्होंने मेरी शादी का एक सिलसिला पैदा किया। उनके एक रिश्तेदार मोहल्ला रुस्तमनगर में रहते थे। रोशनलाल नाम था। नवाब ताजमहल की सरकार में मुलाजिम थे। कोई बहुत बड़ी या हमारे लालाजी के जोड़ की हैसियत तो नहीं रखते थे। हाँ, खाने-पीने से खुश थे। उनकी लड़की रामप्यारी जरूर बहुत खूबसूरत और हसीन थी। उम्र भी मेरी उम्र के करीब थी। लाला कालीचरन ने जोड़-तोड़ लगा कर उस लड़की से मेरी शादी ठहराई और शगुन सगाई भी हो गई।'

'आप को लड़की का हुस्न-व जमाल देखने को मिला या····'

जमानुद्दौला ने मिरजा की बात पूरी न होने दी, बोले—'आपने मजाक शुरू-कर दिया न ? आप की छेड़-छाड़ ही मेरी शादी नहीं होने देती।' और वह हँस पड़े।

'आगे मैं जवान बन्द रखने का वादा करता हूँ। आप पूरे शौक से अपनी खाना आबादी कीजिए। आप की खुशियों में मेरी भी खुशी शामिल है।'

'दोनों तरफ शादी की तैय्यारियाँ शुरू हो गईं। लाला रोशनलाल ने मौका पाकर नवाब ताजमहल से इस मौके पर कुछ मदद चाही। उनकी लड़की रामप्यारी को ताजमहल अच्छी तरह जानती पहचानती थीं। वह अकसर बेगम के पास पहुँचती रहती थी। दोनों बैठ कर दिन-दिन भर चौपड़ का खेल खेला करती थीं।

नवाब ताजमहल ने लाला रोशनलाल से पूछा—'तुम्हारी लड़की रामप्यारी की शादी कहाँ किसके साथ हो रही है ?'

'इसी लखनऊ में लाला चिरंजीलाल के लड़के जीवनलाल के साथ। जिनका कपड़े की बड़ी ऊँची दूकान नखास बाजार में है।' लाला रोशनलाल ने अर्ज किया।

'मिरजा जफर हुसेन साहब, आप को याद होगा कि मेरी जवानी के शुरू दिनों में नवाब ताजमहल ने मुझ पर डोरे डालना और लगावट करके मुझे अपने प्रेम-जाल में फँसाना चाहा था। लेकिन मैं निकल भागा था।'

'जी हाँ, अच्छी तरह याद है।' मिरजा ने कहा—'आप आगे बढ़े चलिए।'

'अपनी उस असफलता का बदला नवाब ताजमहल ने मेरी इस शादी के सिलसिले में चुका लिया। अपने दिल की भड़ास निकाल ली। मेरा नाम सुनते ही उनकी ऐड़ी की आग चोटी तक पहुँच गई। जल-भुन कर रोशनलाल से कहा—'वह लाला चिरंजीलाल का लड़का तो हमारा जाना समझा है। वह तुम्हारी रामप्यारी जैसी सुन्दर, सुघड़ और सर्वगुण सम्पन्न लड़की के योग्य हरगिज नहीं है। जरा खूब-

सूरत है तो क्या हुआ। बाहरी चमक-दमक किस काम की। अन्दर तो उसका दिल फौलाद का बना है। कभी किसी के पिघलाये नहीं पिघल सकता। उसके अन्दर किसी के प्रेम-प्यार की कदर नहीं है। ऐसा रिश्ता जोड़ना किस काम का कि पीछे हाथ मल-मल कर पछताना पड़े। बेचारी रामप्यारी को जन्म भर रोना पड़े। इतने बड़े लखनऊ में क्या तुम्हें और दूसरा लड़का नहीं मिल रहा। वही एक ढूँढ़े मिला है। हजारों एक-एक से बढ़-चढ़ कर लड़के मौजूद होंगे। रामप्यारी के लिए कोई दूसरा अच्छा लड़का तलाश करो। खर्चे की फिक्र मत करना। शादी में जितना भी खर्च होगा, हम सब बर्दाश्त करेंगे। तुम्हें अपने घर से एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ेगी। मेल-मोहब्बत के नाते रामप्यारी हमारी छोटी बहिन है, हम उसकी शादी करेंगे।'

'लाला रोशनलाल की समझ में ताजमहल की कुछ बातें आईं, कुछ नहीं भी आईं। लेकिन यह अच्छी तरह समझ में आ गय ाकि शादी का पूरा खर्च बेगम उठाने को तैय्यार हैं। लालच ने अपना काम किया। रोशनलाल के दिल में बेगम की बात जम गई। वह दूसरे लड़के की तलाश में दौड़ पड़े। आखिर कश्मीरी टोले में लाला केदारनाथ का लड़का काशीनाथ उन्हें मिल गया। खर्चे की कोई फिक्र नहीं थी। बात की बात में शादी पक्की हो गई।

'अब रोशनलाल ने खुले तौर पर मेरी सगाई तोड़ कर शादी की बात खतम कर दी। एक प्रकार से मुझे ठुकरा दिया। बेचारे लाला कालीचरण भी शर्मिन्दा हीकर रह गये।'

'रामप्यारी की शादी हुई ? ताजमहल ने खर्चा उठाया ?' मिरजा ने पूछा।

'बड़ी धूमधाम के साथ रामप्यारी की शादी हुई। ताजमहल ने दो लाख रुपया नकद और एक लाख के जेवरात रामप्यारी को दिए। रोशनलाल ने आधा बचा लिया और आधे में शादी निपटा दी। लेकिन···रामप्यारी का भाग्य खोटा रहा। ससुराल जाकर चार-पाँच महीने बाद उसे गले में फाँसी लगा कर प्राण त्याग देने पड़े।'

'अरे यह क्यों ?' मिरजा ने आश्चर्य से पूछा।

'इसका एक अजीब सा किस्सा है। फिर किसी दिन सुनाऊँगा। अभी आप मेरी मुसीबत का हाल सुनिए। मुझ पर किस बला का पहाड़ फट पड़ा।

'पहली शादी की उचाट ने मेरी माँ की कमर तोड़ दी थी। इस रिश्ते के टूटने से मेरे लाला की कमर टूटी। और कमर क्या टूटी, उनका तो अन्त ही कर दिया। उन्हें अपनी जिन्दगी में यह बहुत बड़ी हार महसूस हुई थी। उनका कहना था कि लाला रोशनलाल ने मेरे लड़के की सगाई नहीं तोड़ी बल्कि मेरे पुश्तैनी नाम, इज्जत और साख-बात को छीन कर मुझे जिन्दगी भर के लिए जिल्लत के गड्ढे में डाल दिया है। मेरे मुँह में वह कालिख पोत दी है कि मैं लखनऊ में किसी को मुँह नहीं दिखा सकता। नतीजा यह हुआ कि लाला जी चारपाई पर लेटे तो फिर न उठ

सकें। पूरे पाँच महीने की बीमारी के बाद एक दिन उन्होंने हमेशा के लिए आँखें बन्द कर लीं। मेरे सिर पर मुसीबतों का पहाड़ फट पड़ा। दुनियाँ अंधेरी नजर आने लगी। रोने और आँसुओं से मुँह धोने के सिवा मुझे और कोई काम न था। मगर मिरजा साहब, यह दुनिया भी अजीब है। एक सूरत पर कभी कायम नहीं रहती। दुख हो या सुख, बराबर तरह-तरह के ख्याल चक्कर लगाते रहते हैं। किसी ने सच ही कहा है :—

आज कुछ और है कल और है परसों कुछ और
तीसरे रोज बदल जाता है हर रंग का तौर ।

'इसलिए मेरा भी तौर बदल गया। पड़ोसियों के कहने-समझाने से दूकान पर जाकर बैठने लगा। लेकिन थोड़े ही दिनों में उस धंधे से मेरा जी ऊब उठा और मैंने चाहा कि दूकान को एकदम खतम कर दूँ। घर में मेरी जिन्दगी भर के लिए खाने को मौजूद है, क्यों दिन रात हाय-हाय करूँ। लेकिन मुनीम जी ने मेरे इस विचार का जी तोड़ कर विरोध किया। ऊँचा-नीचा जैसा उनसे बन पड़ा मुझे समझाया। उनकी इस खैरख्वाही से दूकान तो खतम होने से उस वक्त बच गई लेकिन मैंने बैठना छोड़ कर लाला जी के नाम और मुनीमजी की जिम्मेदारी पर उसे छोड़ दिया। अब मैं अकेला अपने मकान में रहने लगा। कभी कुछ पढ़ता, कभी सितार बजाता और कभी ठुमरियाँ अलापता-गाता। मगर वहाँ सिवा कमरे की दीवारों के मेरे गाने-बजाने की तारीफ करने वाला कोई न था। सूना घर काटने को दौड़ता था। उस एकाकी जीवन से शीघ्र ही जी घबड़ा उठा। आवरगी ने फिर सिर में खुजली पैदा की। कभी नाशता करने के बाद और कभी दोपहर का खाना खाकर, दरवाजे पर ताला लटका कर निकल पड़ता और चिराग जलने के बाद वापस आता था।

'इस आवारगी ने नये-नये दोस्त-अहवाब पैदा कर दिए थे। मोहल्ला वजीरगंज में शाही खान्दान के नवाब मिरजा इम्तियाज अली खाँ रहते थे। उनके नौजवान साहबजादे सरफराज अली खाँ से मेरा याराना बढ़ा और इतना बढ़ा कि पिछले सभी यार-दोस्त पीछे रह गए। सरफराज अली खाँ मेरी ही उम्र के बड़े जिन्दादिल थे। गाना-बजाना, मुजरा, नाच, ताश-गजीफा, चौपड़-शतरंज, किस्सा-कहानी और हँसी-मजाक वगैरह सभी शगलों का लगाव उनकी तबियत से था। मेरे अलावा उनके और भी बहुत से इष्ट मित्र थे। सबेरे से दीवानखाने का दरवाजा खुलता तो जाकर पहर रात के बाद ही बन्द होता था। बराबर यार-दोस्तों का जमघट रहता था और एक के बाद एक मशगले के साथ दिल बहलाव होता रहता था। जितने भी दोस्त-अहवाब जमा होते थे सभी एक दूसरे से बेतकुल्लुफ थे। किसी भी लिहाज, शरम, झिझक, संकोच और अदब कायदे की वहाँ पाबन्दी न थी। हर एक की तबीयत आजाद थी। जो जिसके जी में आता कहता और कर दिखलाता था। मैं भी उन्हीं बेफिक्रों में शामिल हो गया था।

'बड़े नवाब यानी सरफराज अली खाँ के बाप इम्तियाज अली खाँ साहब कभी भूल कर भी बेटे के दीवानखाने की तरफ रुख न करने थे। यहाँ चाहे जिस तरह का रंग बरसे, जिस तरह की अच्छी-बुरी चुहलबाजियाँ हुआ करें, बड़े नवाब से कोई मतलब न था। उनका दीवानखाना अलग दूसरी तरफ था। वहाँ उनके हमउम्र' दोस्त-अहबाब और हाली-मोहाली जमा रहते थे। और पसंद के चर्चे मशगले चलते रहते थे।

'अब एक दिन का जिक्र सुनिए। सरफराज अली खाँ का दीवानखाना गरम था। सभी बेफिकरे जमा थे। मैं भी नाश्ता करने के बाद उनके दीवानखाने में पहुँच गया था और अपनी जगह पर जमा बैठा था। यहाँ यह बता देना जरूरी है कि सरफराज अली खाँ मिलन के शुरू दिन से मुझे गुलफाम ही कह कर पुकारने लगे थे। और उनकी देखा-देखी सभी लोग मुझे गुलफाम ही कहने लगे। मुझे भी अपना यह नाम प्यारा लगता था। अतः वहाँ जीवनलाल का कोई जिक्र न था। खैर, अभी तक शतरंज की बाजी बिछी हुई थी। चालें सोची और चली जा रही थीं। मात पर मात दिए जा रहे थे। मगर इस खेल मे दिमाग पच्ची करने और खामोश बैठे चालें सोचा करने के सिवा कुछ न था।

'इसलिए एक सोहवती खुर्शीद अली खाँ ने शतरंज की बिसात उलट कर कहा—'हटाओ इस खेल को। यह बड़ा मनहूस खेल है। इसमें सन्नाटे के सिवा कुछ नहीं है। जरा भी मजा नहीं आ रहा।'

'तुम्हें किस खेल में मजा आयेगा ?' सरफराज ने उनकी तरफ नजर उठा-कर पूछा।

'कोई ऐसा मशगला होना चाहिए जिसमें दिल बहले। हँसी-मजाक हो, कह-कहे ठहाके ऊँचे हों। शतरंज का खेल तो बूढ़ों, सिन रसीदा लोगों के लिए है कि मनहूस सूरत लिए बैठे चालें सोचा करें। हम नौजवानों और जिन्दादिलों के लिए यह एक दर्दे-सिर है।' खुर्शीद ने कहा।

'हम बताएँ, इस वक्त क्या होना चाहिए।' हसरत अली ने कहा।

'कहो ?' सरफराज ने उसकी तरफ देखा।

'इस वक्त वजीरन का मुजरा होना चाहिए।'

'वजीरन कौन है ?'

'इसी वज़ीरगंज की रहने वाली बन्नो डोमनी की लड़की है। आजकल उसने लखनऊ में धूम मचा रखी है। वह हुस्न-व-जमाल की पुतली तो है ही, बड़े गजब की ठुमरियाँ गाती है। लखनऊ की कोई भी रंडी उसके मुकाबले पर नहीं ठहरती।...

खुर्शीद ने बीच में छेड़ा—'क्या उम्र है उसकी ? हम नौजवानों के बीच में बैठने लायक है ? कोई खूँसट तो नहीं है ?'

'लाहौल विला कूवत' हसरत मुस्करा कर कहा—'तुम्हारा भी क्या सवाल है खुर्शीद ? यहाँ किसी खूँसट का क्या काम है ? वजीरन तो सोलह-सत्तह साल की परी पैकर है। काहे-काफ से चल कर वजीरगंज में आ बैठी है। देखोगे तो हजार जान से

फिदा हो जाओगे। उसके कदमों पर लोटने लग जाओगे। वह क्या कोई ऐसी-वैसी सूरत है? लाखों में एक है।'

'मैं सरफराज अली खाँ की बगल में बैठा था। उन्होंने मेरी तरफ मुड़ कर पूछा—'क्यों गुलफाम? उसको बुला कर ठुमरियाँ सुनी जाँय?'

'मेरे कुछ कहने से पहले हसरत अली खाँ बोल उठे—'आप गुलफाम से क्या पूछ रहे हैं। गुलफाम तो खुद ठुमरियाँ गाने के उस्ताद हैं। इन्हें भला कैसे इनकार हो सकता है। मजे के शगल में किस को मजा लेना नहीं आता।

'तब तुम्हीं जाकर वजीरन को ले आओ।' फिर जरा रुक कर कहा—'आ जायगी, नाज नखरा तो न दिखलायेगी?'

'हसरत अली बड़े तपाक से बोले—

'जाने आने की फकत देर है मेरे साहब,
मुझसे इगमाज करे यार की ऐसी तैसी।'

'दीवानखाने में एक ठहाका गूँज उठा,

'इसके बाद हसरत अली खाँ गये और कुछ देर बाद में अकेले लौट आए।

'सरफराज ने पूछा—'क्यों! क्या हुआ। वजीरन नहीं आई?'

'वह तो बड़े नखरे वाली साबित हुई।'

'किस तरह?'

'एकदम नजाकत दिखाने लगी। आज मेरे सर में तपक सी हो रही है। कहीं जाने को जी नहीं चाहता। आपको अगर मेरे मुजरे का शौक है। कल किसी वक्त आना, चली चलूँगी।'

'खुर्शीद ने कहा—'तुम तो बड़े तीसमारखाँ बन कर गये थे। कान पकड़ कर लाने वाले थे। उसने तुम्हारी शेखी धूल में मिला दी? उलटे तुम्हारे ही कान पकड़ कर ऐंठ दिए।'

'फिर तुम इतनी देर तक कहाँ अटके रहे?' सरफराज ने पूछा।

'जरा मुनिया की दूकान पर पहुँच कर पान खाने लगा था।' हसरत ने कहा।

'वजीरन की दुतकार से घबरा कर मुनिया की खुशामद करने लग गये थे?' खुर्शीद ने चुटकी भरी—'मुनिया ने पान बना कर खिलाया और आप को सारी दुनिया की दौलत मिल गई?'

'जी हाँ,' हसरत ने गर्व के साथ कहा—'मुनिया का पान किस्मतवर को ही नसीब हुआ करता है। आप जैसे सैकड़ों उसकी दूकान पर खड़े मुँह ताका करते हैं?'

'तुम्हीं को मुबारक हो उसका पान!' खुर्शीद ने मुँह बना कर कहा—'मैं तो उसके पान पर कभी थूकता भी नहीं।'

'मैंने हसरत से पूछा—'मुनिया कौन है?'

'आप मुनिया को नहीं जानते?' हसरत ने मेरी तरफ रुख करके कहा।

'मै भला उसे क्या जानूँ ?'

'वाह लाला जीवनलाल जी, लखनऊ में रहते हुए आप वजीरगंज की मुनिया को नहीं जानते। इसके माने ये हैं कि आप कुछ नहीं जानते ?'

'मैं तो आज आपकी जबान से उसका नाम सुन रहा हूँ। उसका कुछ हाल-हवाल हुलिया-नकशा तो बयान कीजिये।'

'हुलिया-नकशा क्या बयान करना है। कभी उस पर नजर जमा कर देखिए, चेहरे पर कैसी चिपक है।' हसरत ने कहा।

'इससे तो कोई मतलब न निकला।' मैंने कहा—'कुछ तफसील से बयान कीजिए।'

'ये क्या बयान करेंगे ?' खुर्शीद ने कहा—'मैं सुनाता हूँ इनकी मुनिया की दास्तान। अकबरी-दरवाजे पर जो कल्लूखाँ की सराय है और उसके फाटक पर रसूलन भटियारी रहती है, मुनिया उसी की लड़की है। नाक-नकशा मामूली, रंग कुछ साँवला-सा सियाही लिए हुए है। उम्र कोई बीस-बाईस साल की है। जवानी जरूर रंग पर है।···यह तो उसका हुलिया है। कैफियत यह है कि जवानी की सीढ़ी पर पैर रखते ही मुनिया ने ऊधम मचाना शुरू कर दिया था। सराय में आकर ठहरने वाले मुसाफिरों से आँखें लड़ाने और इठलाने-हँसने लगी थी। उसकी माँ रसूलन भी कुछ ऐसी ही थी। लड़की कमाती थी और वह गुलछर्रे उड़ाती थी। कुछ दिनों बाद मुनिया संभली। कमाई के पैसे-टके माँ को देना बन्द कर दिये। माँ बेटी में खिचाव पैदा हुआ और धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि लगई झगड़ा और मार-पीट तक होने लगी। मुनिया अपनी जवानी को लेकर निकल भागी। आवारा हो गई। कुछ दिनों तक तो इधर-उधर गश्त लगाती रही। अब वजीरगंज में आकर पान की दूकान लिए बैठी है।'

'क्यों मियाँ हसरत, यही बात है ?' मैंने हसरत से पूछा।

हसरत कुछ झेंपते हुए बोले—'जो कुछ खुर्शीद कहें वही सच है।'

'मैंने खुर्शीद की तरफ रुख करके कहा—'लेकिन आपने मुनिया का जो हुलिया बयान किया है उससे तो वह कोहकाफ की परी नहीं मालूम होती। हसरत क्यों उसकी खूबसूरती से चिपके हुए हैं ? क्यों उसकी खूबसूरती से चिपटे हुए हैं ! क्यों उसकी तारीफ के पुल बाँध रहे हैं ?'

'उसके आशना हैं। आशिक तो हमेशा अपने माशूक की तारीफ किया ही करता है।' खुर्शीद ने कहा।

'लेकिन उसमें कोई विशेष आकर्षण भी तो होना चाहिए। आप कह रहे हैं कि नाक-नकशा मामूली और रंग काला है। भाई हसरत की आँखों को क्या वही पसंद है ?'

सरफराज बोल उठे—'इसका जवाब मुझसे सुनिए। हर चीज, हर इनसान में एक कशिश हुआ करती है और उसी कशिश को हुस्न या सौन्दर्य कहा जाता है। लेकिन उसमें एक भेद की बात भी हुआ करती है। कशिश का कशिश से मेल खाना

जरूरी होता है तभी उसमें आकर्षण पैदा होता है। कोई शकल सूरत मुझे बहुत खूब-सूरत मालूम होती है मगर आप की नजर उसे बदशकल कुरुप समझती है। वजह यही है कि मेरी कशिश और उस सूरत की कशिश आपस में मिल जाती है और आकर्षण पैदा हो जाता है। मुझे वह खुबसूरत नजर आने लग जाती है। आपकी रूचि या कशिश उस शकल से मेल नहीं खाती और आप को कुरूप दिखाई देती है। आम तौर पर इस भेद को अपनी-अपनी पसंद कहा जाता है। मियाँ हसरत का भी यही हाल है। इनकी रूचि और मुनिया की रूचि मिल गई है और उसमें आकर्षण पैदा हो गया है। इन्हें वह सौन्दर्य की देवी और परिस्तान की परी ही नजर आती है।'

'काफी वक्त हो चुका था इसलिए बैठक खतम हो गई। सब लोग अपने-अपने घरों को चल पड़े।

'मिरजा शैदा साहब, वह दिन और रात मुझे बड़ी परेशानी सी रही। कभी मुनिया के आकर्षण और हसरत की पसंद पर गौर करता था। कभी अपनी नजर और सआदतगंज वाली उस सौन्दर्य की देवी के आकर्षण को हाथों में लेकर तौलता था। कुछ ऐमा सिलसिला चल पड़ा था कि उस हसीना की शकल मेरी आँखों के सामने खड़ी दिखाई देती थी। मैं उससे बातें करना चाहता था लेकिन वह चुप थी।'

'तब यों कहिए कि एक अर्से के बाद आपने उस परी पैकर को याद किया था।' मिरजा शैदा ने कहा।

'याद क्या किया, ख्याल ने एक दौड़ लगाई थी और बेसूद सी।'

सोलह

जैसे ही नवाब जमालुद्दौला अपनी कहानी को आगे बढ़ाने के लिए संभल कर बैठे कि मिरज़ा जफ़र हुसैन ने उत्सुकता के साथ कहा—'नवाब साहब, कल आपने फरमाया था कि लाला रोशनलाल की उस लड़की के फाँसी लगा कर मर जाने का किस्सा फिर किसी दिन सुनाँएगे। मेरी तमन्ना है कि उस किस्से को आज ही सुना दें। अभी वह जिक्र ताजा भी है। उसका सिलसिला टूट जाने और आप की कहानी किसी नये मोड़ पर पहुँच जाने से रामप्यारी की फाँसी लग जायेगी। आप की कहानी पर ही ध्यान जमा रहेगा।' उसके मजे के आगे रामप्यारी की आत्महत्या का ज़िक्र बदमज़ा मालूम होगा।' फिर जरा मुस्करा कर कहा—'इस गुस्ताखी की मैं माफी भी चाह रहा हूँ।'

'किसी तरह की माफ़ी चाहने की जरूरत नहीं है मिरजा साहब।' जमालुद्दौला ने कहा—'कोई न कोई जिक्र छेड़ना तो अब रोज का धंधा बन गया है। चाहे वह मेरी कहानी का बयान हो चाहे कोई दूसरा। आज आप अगर रामप्यारी की गाथा सुनने के लिए उत्सुक हैं तो कोई हर्ज नहीं, उसी को सुन लीजिए। मैं आप को बता चुका हूँ कि रामप्यारी के साथ मेरी शादी का सिलसिला टूट जाने की वजह से मेरे लालाजी ग्लानि से इस कदर भर गये थे कि उन्हों ने चारपाई पकड़ ली थी। और चारपाई क्या पकड़ ली थी, अपनी मौत को अमंत्रित कर के बुला लिया था। इलाज चल रहा थी, मगर कोई फायदा नज़र नहीं आ रहा था। वैसे वह होश-हवास में रहते थे। लेकिन चारपाई से उठते नहीं थे।... मिरजा शैदा साहब ? मेरे लालाजी कहने को तो एक कपड़े के दूकानदार 'ही थे। लेकिन इस लखनऊ में उनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रत्येक समाज में उनका आदर था। हिन्दू-मुसलमान उन्हें समान रूप के चाहते थे। उनके बीमार पड़ने की खबर लखनऊ में इस छोर से उस छोर तक पहुँच चुकी थी। अतः सबेरे से पहर रात गये तक उनके इष्ट मित्र तथा मिलने-बैठने वालों का हमारे घर में ताँता लगा रहता था। कभी वह अकेले नहीं रहते थे। मिलने वाले आकर हर तरह से उन्हें ढारस बँधाते थे। सहानुभूति तथा मन बहलाव की बातें करके उनके स्वास्थ सुधारने की चेष्टा किया करते थे। मैं हर समय लालाजी की तीमारदारी में व्यस्त रहकर उनके कमरे में मौजूद रहता था और आने- जाने वालों को बैठाया-उठाया करता था। ऐसे ही दिन बीत रहे थे।

'अब एक दिन का जिक्र सुनिए। पहर दिन चढ़ा होगा। मैं लालाजी को मुँह-हाथ धुला कर और हकीमजी की दी हुई दवा खिला-पिला कर तथा हुक्का ताजा

करके तथा चिलम में लाल दहकते हुए कोयले रख कर पेंचवान की नली उनके हाथ में थमा कर फारिग हुआ था। लालाजी हुक्के के शौकीन थे और इस बीमारी की हालत में भी उसका मजा लेना नहीं छोड़ा था। हकीमों ने हुक्का पीने की इजाजत दे दी थी। हाँ, मुझे यह ताकीद कर दी थी कि जब चिलम गरम करना उस वक्त तम्बाकू में थोड़ी सी पिसी हल्दी और कुछ अजवाइन अवश्य मिला दिया करना। मैं चिलम गरम करते समय उस ताकीद को नहीं भूलता था। इस समय भी मैंने उसका ध्यान रखा था। लालाजी बड़े तकिए का सहारा लिए हुक्का नोश फरमा रहे थे।

'तभी एक वयोवृद्ध सज्जन ने कमरे में प्रवेश किया। मैंने उनका स्वागत करके लालाजी की पलंग के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठाया। आगन्तुक महाशय लालाजी को नमस्कार करके आराम से बैठ गये। लालाजी ने उनके नमस्कार का जवाब देकर कहा—'आइए मुंशीजी, आपने बड़ी कृपा की।' शायद वह लालाजी के कोई जाने-पहचाने मित्र थे। मैंने उन महाशय को पहले कभी नहीं देखा था। उनकी आयु सत्तर-अस्सी के बीच में मालूम होती थी। रंग गोरा था और शरीर इस अवस्था में भी स्वस्थ था। वृद्धावस्था केवल सफेद बालों से मालूम होती थी। उनका चेहरा रोबदार तथा आँखें जमानादीदा थीं। चूँकि लालाजी ने उन्हें मुंशीजी कहा था, इससे मैं यह समझ गया था कि यह महाशय कोई कायस्थ मुंशी है। उस जमाने में आम तौर पर कायस्थ लोग ही मुंशी कहलाया करते थे।

'मुंशीजी और मेरे लालाजी में बातें होने लगीं। एक कोने में तिपाई पर बैठ-कर मैं चुपचाप उन लोगों की बातें सुनने लगा।

'मुंशीजी बोले—'लाला चिरंजीलाल भी, मुझे चार-पाँच दिन पहले मालूम हुआ था कि आप चारपाई पर लेटे हुए हैं। तबियत कुछ अधिक नासाज हो गई है। किसी बदतमीज बीमारी ने आपको दबा रखा है। मैं उसी वक्त मिजाजपुर्सी के लिए हाजिर होने वाला था। लेकिन क्या अर्ज करूँ, मोहल्ले में क्या, मेरे पड़ोस ही में एक ऐसा दर्दनाक वाकया हो गया कि सारे मोहल्ले में सन्नाटा सा छा गया। उसी की वजह से नहीं आ सका था। आज हाजिर हो सका हूँ। कैसी तबियत है?'

'क्या कोई विशेष घटना घट गई थी?' लालाजी ने पूछा।

'जी हाँ, बड़ा अफसोसनाक हादसा था।' मुंशीजी ने कहा—'एक भले घर की नवयौवना बहू गले में फाँसी का फंदा डाल कर लटक गई थी।'

'अरे, किसकी बहू थी?' लालाजी ने कुछ आश्चर्य भरे स्वर से पूछा।'

'मेरे एक पड़ोसी लाला केदारनाथ की बहू थी। चार- छह महीने पहले ही ब्याह कर ससुराल आई थी।' फिर जरा रुक कर कहा, शायद आप उन लाला केदारनाथ को जानते होंगे! आप ही की बिरादरी के हैं। अपने को मुगले आजम अकबर बादशाह के मंत्री राजा टोडरमल का वंशज बतलाते हैं। कहते हैं कि हमारे पूर्वज नवाब मंसूर-अली खाँ सफदरजंग के साथ दिल्ली से आकर लखनऊ में आबाद

हुए थे। हमारा खानदान बहुत पुराना और ऊँचा है। लखनऊ की नवाबी में हमारे पूर्वजों की बड़ी इज्जत रही है।'

'कहते होंगे।' लालाजी ने उपेक्षा के भाव से कहा। फिर हाथ से हुक्के की नली रख कर कहा—'मैं उन्हें नहीं जानता।'

'वह तो अपनी शान के एक ही आदमी हैं। हाँ, यह जरुर है कि वह लखनऊ छोड़ कर कानपुर चले गये थे और एक लम्बे अर्से तक वहाँ रहने के बाद अब फिर आकर लखनऊ में आबाद हुए हैं। शायद इसी वजह से आप उन्हें न जानते होंगे।'

'मैं उन्हें बिलकुल नहीं जानता। न उनके किसी हाल से वाकिफ हूँ।' लाला जी ने उसी लापरवाही के साथ कहा। फिर मुंशीजी के चेहरे पर नजर डाल कर बोले –'मुंशी महताब राय जी, इस लखनऊ में खत्तरी-समाज भरा पड़ा है। दूकानदार से लेकर सरकारी दफतरों तक में लोग मौजूद हैं। किस-किस को पहचाना जाय और किस-किस के हाल चाल की जानकारी रखी जाय। मैं अपने पुराने दो-तीन पुश्तों वाले रिश्तेदारों को ही नहीं जानता। दूसरों के लिए क्या कहूँ। फिर आप जानते हैं कि पुश्तों से मेरे वंश में दूकानदारी का धंधा चला आ रहा है। मैंने भी चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र से दूकान पर बैठना और अपना काम-काज संभालना शुरू कर दिया था। आप खुद समझ सकते हैं कि एक दूकानदार को इतनी फुर्सत कहाँ मिल सकती है कि वह लखनऊ के सभी लोगों से जान-पहचान करता फिरे।'

'लाला केदारनाथ तो विचित्र जीव हैं। और उनके हालाह भी विचित्र हैं।' मुंशी महताब राय ने धीरे से कहा।

'खैर, उनकी बहू फाँसी लगा कर क्यों मर गई? उसकी वजह तो कहिए।' लाला जी ने खाँस कर कहा।

'मुंशी महताब राय बोले—'लाला चिरंजीलाल जी, वह तो एक दुख भरी गाथा है। एक सुन्दर युवती का अपने हाथों अपने प्राण त्याग देना हर देखने-सुनने वाले इनसान के लिए दुख-दर्द का वाइस है। सच कहता हूँ लाला जी। शोर मचने पर मैंने उनके घर में जाकर उस लड़की को गले में फाँसी का फंदा पहने, बेजान लटकते हुए देखा था, मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह पड़ी थी। बड़ा ही दर्दनाक दृश्य था वह।' फिर थोड़ा रुक कर कहा—'लालाजी, उस दुखपूर्ण घटना को पीछे बयान करूँगा। पहले आप लाला केदारनाथ की पूरी कैफियत सुन लिजिए। जिनकी करतूतों की वजह से वह विचित्र घटना घटी है। उनकी कथा बड़ी मनोरंजक भी है।... लेकिन आप की तबियत नासाज है। इस बेकार की बकवास से कहीं आप परेशान न होने लगें। आप स्वस्थ हो जाँय, उस वक्त इतमिनान से सुन लीजिएगा।'

'मुंशी जी, अब मैं क्या स्वास्थ लाभ करूँगा। अब तो अन्त...'

'अरे, आप इतने निराश क्यों हो रहे रहे हैं? बीमारी आती चली जाती है। यह तो हर आदमी के साथ लगा है। दस-पाँच दिन में तनदुरुस्त हो जाइएगा।' मैं आता जाता रहूँगा।'

'आप लोग आ जाते हैं तो दिल बदल जाता है। वरना चारपाई पर पड़े-पड़े तबियत और घबरा जाती है। आप लोगों से कुछ जी बहला रहता है।'

'इसमें क्या शक है, लेकिन हिम्मत रखने और दिल बहलाने से ही बीमारी दूर भागती है। क्या कहूँ, बहुत दूर-दराज पर रहता हूँ। नजदीक रहता होता तो हर वक्त आप के पास जमा बैठा रहता। और जो कुछ मुझसे हो सकता आप की सेवा भी किया करता।'

'अच्छा तो अब उन लाला केदारनाथ जी का पूरा किस्सा बयान कीजिए। मुझे भी इस वक्त वही सुनने की ख्वाहिश हो रही है।' लाला जी ने कहा।

'बेहतर है। अर्ज करता हूँ।' कह कर मुंशी महताबराय संभल कर बैठ गये और बड़े इतमीनान के साथ बोले—'लाला चिरंजीलाल जी, मैं लाला केदारनाथ को उस वक्त से जानता हूँ जब उनके बाप लाला मथुरानाथ जी जिन्दा थे। लाला मथुरा नाथ का पुश्तैनी मकान पंचमहल के करीब में था। लेकिन अपने खुशनुमा जमाने में लाला केदारनाथ ने उस पुराने मकान को-छोड़ कर कशमीरी टोले में नई हवेकी तैय्यार करा ली थी। लाला मथुरानाथ भी आकर उसी में रहने लगे थे। और कुछ दिन बाद वहीं इन्तकाल कर गये थे। उस समय लखनऊ के तख्ते-शाही पर बादशाह नसीरूद्दीन हैदर रौनक अफरोज थे। हाल ही में तख्त व ताज संभाला था। वजीरे-आजम थे नवाब आगामीर। उन्हीं दिनों लाला केदारनाथ ने नवाब बादशाह बेगम की सरकार में मुलाजमत शुरू की थी।' मुंशी जी जरा रूके। फिर लालजी से पूछा—'चिरंजी लाल जी, आप नवाब बादशाह बेगम से तो अच्छी तरह वाकिफ होंगे।'

'अच्छी तरह से क्या वाकिफ हूँ। सिर्फ इतना जानता हूँ कि वह बादशाह गाजीउद्दीन हैदर की निकाही बेगम और बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की माँ थीं।'

'बादशाह बेगम नसीरुद्दीन हैदर की असली नहीं सौतेली माँ थीं। नसीरुद्दीन हैदर की असली माँ तो सुबह दौलत नाम की एक कनीज थी, जो जच्चा खाने में ही कजा कर गई थी। हाँ, बादशाह बेगम ने नसीरुद्दीन हैदर को अपने बेटे की तरह ही पाला-पोसा था। हाँ, आमतौर पर वही सुलेमान शाह नसीरुद्दीन की माँ मशहूर थीं।'

'इस राज का मुझे पता नहीं है और न कभी मैंने शाही घराने की ऐसी भेद वाली बातों की तरफ ध्यान ही दिया। मुझे इन बातों से कभी कोई मतलब भी नहीं रहा। मैं तो अपने बचपन से आज तक की उम्र तक अपनी दूकानदारी में ही मस्त रहा। दूकानदारी ही मेरी दुनिया रही है।' लाला जी ने कहा।

'खैर', मुंशी जी ने आगे कहा—'बादशाह बेगम बड़े दबदबे वाली और ऐंठ-दार बेगम थीं। कभी अपनी बात नीची नहीं होने देती थीं। यही वजह थी कि बाद-शाह गाजीउद्दीन हैदर और बेगम में हमेशा मनमुटाव रहा। दोनों एक दूसरे की सूरत देखने के रवादार नहीं हुए। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के साथ भी बेगम का वही वर्ताव था। माँ-बेटे में काफी ठन गई थी। नवाब-वजीर आगा मीर ने जो यह हाल देखा, वह भी बादशाह बेगम के खिलाफ हो गये और बादशाह को खुश रखने के

लिए हर तरह से बेगम को तंग करने लग गये। बेगम की हरकतों को जानने के लिए उनके महलों के नौकरों को चाँदी के टुकड़ों से तौलने लग गये। बेगम झुक नहीं रहीं थीं और नवाब आगामीर उन्हें अपने कदमों पर झुकाना चाहते थे। नसीरुद्दीन हैदर वजीरे-आजम की पीठ ठोंक रहे थे। तभी लाला केदारनाथ बादशाह बेगम के खास विश्वासी होने के साथ-साथ खींचातानी में सलाहकार भी बने हुए थे। बादशाह बेगम उन पर विश्वास रखती थीं। तो, बेगम की सरकार से केदारनाथ ने काफी कमा लिया था। बड़े-बड़े बारे-न्यारे करते रहते लेकिन तबियत के खोटे और लालच के वसीभूत थे। आखिर कमीनेपन पर उतर आये। बादशाह बेगम की हरकतों की खबरें नवाब वजीर को पहुँचाने लग गयीं। वजीरे आजम ने चाँदी सोने के टुकड़ों के अलावा खुल्लमखुल्ला अपनी मेहरबानी उनकी तरफ उछाल दी। आखिर किसी तरह बादशाह बेगम को लाला केदारनाथ की नीचता का पता चल गया और उन्हें अपने यहाँ से निकाल दिया। अब लाला केदारनाथ को एक वजीरे-आजम का ही सहारा था। उन्हीं की डियूटी पर हाजिर रह कर सेवा खुशामद करने लगे। वजीरे-आजम आगामीर में यह एक खास गुण था कि जिसे अपना कर अपनी नवाजिश की बौछार करते थे, अन्त तक उसे निभाते थे। वह समझ रहे थे कि केदारनाथ की बेकारी मेरी वजह से हुई है अतः उन्होंने लाला को अपनी वजारत के दफ्तर में रख लिया। साथ ही उनकी खिदमत-खुशामद को यहाँ तक कबूल किया कि लाला केदारनाथ वजीरे-आजम की नाक का बाल गये। फिर क्या था, लखनऊ में लाला केदारनाथ की तूती बोल उठी।'···मुंशी महताव राय ने जरा दम लेकर कहा—'लाला चिरंजीलाल जी उनका वह जमाना मैंने अपनी आँखों से देखा था। मेरे पड़ोस में तो उनकी हवेली है। मैं देखता था कि लखनऊ के बड़े-बड़े रईस नवाब अपने मतलब के लिए रुपयों भरी थैलियाँ लिए उनके दरवाजे पर खड़े रहते थे। मगर जमाना कभी किसी का एक सा नहीं रहता। किसी शायर ने सच कहा है —

जो सर आज जीनतदहे ताज है,
वह कल एक ताकिये का मोहताज है।

'वजीरे-आजम आगामीर की किस्मत ने भी पलटा खाया। उनकी वजारत एकाएक खतम हो गई। घर-बार लुट गया और लखनऊ से उन्हें कानपुर जाना पड़ गया। चूँकि लाला केदारनाथ उनके पिट्ठू मशहूर हो चुके थे इसलिए शाही अताब की बिजली उन पर भी गिरी। उनका भी घर लुटा और बड़ी जिल्लत के बाद लखनऊ से निकाले गये। ये भी आगामीर के पीछे लगे कानपुर चले गये। अभी तक लाला केदारनाथ के कोई औलाद न थी। घर में मियाँ-बीबी दो ही जीव थे। उसी वर्ष कानपुर पहुँचने पर लड़का पैदा हुआ। दो से तीन प्राणी हो गये। लेकिन कुछ अर्से बाद उनकी बीबी का स्वर्गवास हो गया। लड़का छह-सात साल का था। उसके पालन-पोषण की समस्या थी। केदारनाथ को अपना एकाकी जीवन भी खटक रहा था, अतः उन्होंने एक नीची जाति की नवयौवना को घर बैठा कर अपना जोड़ा बना

लिया। वह नवयौवना जैसी नीची जाति की थी वैसी तबीयत की भी नीच थी। लड़ने झगड़ने में बहुत निपुण थी। उसके लड़ाई-दंगे के मशगले के लिए घर में और तो कोई था नहीं, एक केदारनाथ ही थे। अतः प्रति दिन दो-चार बार झड़प, झाड़-फिटकार होती रहती थी। लेकिन केदारनाथ उसके सभी प्रकार के नखरे और आतंक को सहन करते हुए उसकी गुलामी में तत्पर रहते थे। स्त्री पूर्ण रुप से उन पर हावी थी। उस छोटे बच्चे को भी मारती-पीटती रहती थी। और केदारनाथ मुँह में दही जमाये बैठे रहते थे। उनकी कानपुर की ये कैफियत मैंने इसी फाँसी वाली घटना के सिलसिले में सुनी है।

'इधर लखनऊ का भी वातावरण बदल गया था। दो तीन बादशाहतें जल्द-जल्द एक के बाद दूसरी बदल चुकी थीं। हजरत वाजिद अली शाह ने हाल ही में तख्त-व-ताज संभाला था। उन्हीं दिनों कम्पनी सरकार के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग लखनऊ तशरीफ लाने वाले थे। कानपुर में ठहरे थे। हजरत वाजिद अली शाह गवर्नर जनरल को लखनऊ लाने के लिए कानपुर तशरीफ ले गये थे। लाला केदार-नाथ को मौका मिल गया। किसी तरह हजरत की खिदमत में पहुँच कर कदमों पर सिर टेक दिया और गिड़गिड़ा कर हजार आरजू मिन्नत के साथ पुनः लखनऊ में आवाद होने की इजाजत चाही। वाजिदअली शाह तो एक ही सीधे-सादे और शील स्वभाव के बादशाह थे। उन्होंने सहर्ष लखनऊ में आवाद होने की इजाजत दे दी और परवरिश करने का भी वादा किया। लाला केदारनाथ अपनी उस रखैल बीबी और लड़के को लेकर लखनऊ आ गये और अपनी उसी कशमीरी टोले वाली हवेली में आवाद हो गये। लेकिन खस्ता-हाल थे। कुछ दिनों बाद इमारत विभाग में नौकरी मिल गई। पुनः किस्मत जाग उठी।'

मुंशी महताब राय दो क्षण खामोश रहने के बाद बोले—'लाला चिरंजीलाल जी, ईश्वर की लीला अपार है। वह मनुष्य के जब दिन लौटाता है तो घर बाहर की मिट्टी सोना बन जाती है। लाला केदारनाथ के लिए भी मिट्टी सोना बन गई। इमारत विभाग में नौकर थे, किसी पुरानी इमारत की खुदाई-मरम्मत वगैरा के सिल-सिले में कई लाख रुपयों की दौलत हाथ आ गयी। चुपचाप लाकर घर में रख लिया। चैन की बंशी बजाने लगे। इधर लड़का भी अब जवान हो चुका था। लेकिन वह बेचारा बहुत सीधा,दीन-हीन और उस नीच-रखैल माँ के आतंक में था। बिला माँ की इजाजत के एक घूंट पानी भी नहीं पी सकता था। माँ का उस पर इस तरह का रोब जमा हुआ था कि अगर माँ हुक्म दे तो काशीनाथ दिन भर हाथ बाँधे धूप में खड़ा रहे।...खैर अब केदार नाथ की किस्मत का एक दूसरा खेल देखिये।...'

'लालाजी ने बीच में टोका—'मुंशीजी, उनकी बहू की उस आत्म-हत्या का जिक्र तो गड्ढे में पड़ गया। मैं तो उसी को सुनने का मुश्ताक हूँ। उसे तो फरमाइए ?'

'जी हाँ, अब वही जिक्र जबान पर आ रहा है । जरा उनके लड़के काशीनाथ की शादी होकर बहू को घर में आ जाने दीजिए । बहू घर में आ जाय और वह चुड़ैल सास, उसे अपने पँजों में दबोच ले तभी न वह नई नवेली बेचारी गले में फाँसी का फंदा डालेगी ।' मंशीजी हँसने लगे ।

'लालाजी बोले—'अच्छी बात है । शादी कीजिए, शहनाई बजवाइए । अब किस बात की फिक्र है । अब तो लाला केदारनाथ दौलत पाकर मालामाल हो गये हैं ।'

'अच्छा साहब', मुंजी जी बोले—'रुस्तमनगर में आप ही के हमकौम कोई लाला रोशनलाल जी रहते हैं । बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की बेवा बेगम नवाब ताज-महल की सरकार में मुलाजिम हैं । उनको अपनी लड़की के लिए एक खूबसूरत लड़के की तलाश थी । उनकी लड़की रामप्यारी सर्वगुण सम्पन्न और बहुत रूपवती थी । नवाब ताजमहल के महलों में जाती आती थी । ताजमहल उसे बहुत चाहती थीं । अपनी छोटी बहिन की तरह मानती थीं । इसलिए उसकी शादी करने के लिए भी तैय्यार थी । यानी शादी का कुल खर्च बेगम बर्दाश्त कर रह थीं । रोशनलाल ने इधर-उधर भटकने के बाद लाला केदारनाथ के लड़के को पसन्द कर लिया । शादी बड़े धूम-धाम के साथ हो गई । नवाब ताजमहल ने दो लाख रुपया नकद और करीब एक लाख के जड़ाऊ जेवर दिए । लाला केदारनाथ का घर भर गया । लक्ष्मी-ही-लक्ष्मी दिखाई देने लगी ।···शायद उस लड़के की उस रखैल माँ का किस्सा, उसकी नीच प्रकृति का अता-पता उन लाला रोशनलाल को नहीं था । मेरा ख्याल है कि अगर उन्हें उस नीच रखैल रामप्यारी की सास की पूरी हकीकत उन्हें मालूम होती तो वह अपनी लड़की को हर्गिज भाड़ में न झोंकते और न उस बेचारी को आत्म-हत्या करनी पड़ती ।'

'अच्छा अब समझ में आ गया !' लाला जी ने धीरे से कहा ।

'क्या !' कह कर मुंशी जी लालाजी के चेहरे की तरफ देखने लगे ।

'फाँसी डाल कर मर जाने वाली वही लड़की थी जिसकी शगुन-सगाई लाला रोशनलाल ने हमारे यहाँ की थी ?' लाला जी ने कहा ।

'आपके यहाँ कैसी शगुन-सगाई की थी ?' मुंशी जी ने जिज्ञासा के साथ पूछा ।

'पहले लाला रोशनलाल ने उस लड़की की शादी हमारे जीवन से ठहराई थी । शगुन-सगाई भी हो गई थी, लेकिन जाने क्यों, बाद में उन्होंने वह संबंध जोड़ना पसंद नहीं किया । एकदम मुँह मोड़ लिया था । और···'लाला जी आगे कुछ न कह-कर चुप रह गये ।

'मुंशी जी बोले—'यह राज मुझे मालूम नहीं था । आज आप की जबानी सुन रहा हूँ । कहीं वह लड़की आपके लड़के को ब्याह गई होती तो बेचारी को क्यों मरना पड़ता ।'

'खैर,' लाला जी ने कहा—'अब यह बताइए कि उस लड़की ने क्यों जान दे दी ?'

'चिरंजीलाल जी, इस बारे में मैं सही तौर पर कुछ नहीं कह सकता। हाँ, मोहल्ले-पड़ोस की औरतों में जो चर्चाएँ चल रहीं हैं और मैंने सुनी हैं, वही आप से अर्ज करता हूँ। कहना यह है कि नवाब ताजमहल ने जितना भी जरनकद और जेवर वगैरा दिया था वह सब लाला केदारनाथ की उस रखैल, रामप्यारी की सास ने अपने कब्जे में कर लिया था। रामप्यारी की उँगली में एक छल्ला भी बाकी नहीं रह गया था। कहती थी ये सब जहेज और ठहराव का है। इस पर किसी दूसरे का कब्जा नहीं है। अब जो कुछ लड़की का बाप उसे देगा, जो जेवर उसे पहनायेगा, वह उसका होगा। उस दिन सलीनो का त्यौहार था। रामप्यारी अपने भाई के हाथ में राखी बाँधने के लिए रुस्तमनगर जाने वाली थी। लेकिन नंगी छड़ंगी थी। एक भी जेवर उसके शरीर पर नहीं था। उसने सास से कुछ जेवर पहिनने के लिए माँगा। उस चुड़ैल ने साफ इनकार कर दिया। इस पर शायद बहू ने कुछ कहा। जिसे सुन कर वह रखैल औरत आग बगूला हो गई। केदारनाथ और काशीनाथ घर में नहीं थे। सास क्रोध में भरी रामप्यारी पर टूट पड़ी। लातों और घूसों से उसकी खूब मरम्मत की, फिर झोंटे पकड़ कर उसे आँगन में घसीटा और गरम चिमटे से उसे कई जगह दाग दिया। वह बेहोश हो गई। सास ने उसे घसीट कर उसकी कोठरी में डाल दिया। कुछ देर में केदारनाथ घर आए। उनकी रखैल ने बड़े क्रोध और गर्व के साथ बहू की मुँहजोरी उन्हें सुनाई। केदारनाथ तो उसके गुलाम थे ही। बहू के विरोध में ही बड़-बड़ाने लगे और उनकी रखैल ने जो कुछ जैसी सजा बहू को दी थी पसंद की। शाम हो चुकी थी। बहू अपनी कोठरी में पड़ी कराह रही थी। उसे अपने पति काशीनाथ की सहानुभूति का भरोसा था। मगर उलटा हुआ। काशीनाथ ने जैसे ही घर में कदम रखा, माँ ने उसे अपने पास बुला कर बहू की मुँहजोरी को खूब चटपटा बना कर सुनाया और उसे इस गुस्ताखी की सजा देने के लिए उभारा। काशीनाथ तो पूर्णरूप से माँ के आतंक में था। एकदम ताव में आ कर कोठरी में पहुँचा और बिना कुछ पूछ-ताछ किए ही पत्नी पर बरस पड़ा। लातों-घूसों से अपनी सहानुभूति दिख-लाई। फिर बाहर आकर कोठरी के दरवाजे की कंडी चढ़ा दी। ··शायद उसी ग्लानि और दुख के कारण रात में रामप्यारी गले में फाँसी डाल कर लटक गई थी। सुबह काफी दिन चढ़ जाने पर कोठरी का दरवाजा खोला गया तब वह मुर्दा पाई गई थी।'

'उस लड़की का इस तरह मर जाने का मुझे भी दुख है।' लाला जी ने धीरे से कहा।

'इसके बाद मुंशी महताब राय जी कुछ देर खामोश बैठे रहे। फिर नमस्कार करके अपने घर चले गये।'

जमालुद्दौला ने तकिए का सहारा लेकर कहा—'मिरजा जफर हुसैन साहब, यह थी रामप्यारी के आत्महत्या कर लेने की कथा। मैंने उन मुंशी जी की जवान से उस वक्त जो कुछ सुना था उसे आप के सामने दोहरा दिया।'

'बहुत दर्दनाक और अजीब-गरीब कहानी रही रामप्यारी की।' मिरजा ने धीरे से कहा।

सत्तरह

'रात में नींद कम आई थी, इसलिए मैं कुछ देर से जागा। दिन काफी चढ़ गया था। घर की अंगनाई में धूप फैल रही थी। जरूरियात से निपटने के बाद ही पंडिताइन आ गई। नाश्ता तैय्यार हो गया। मैंने इतमीनान से नाश्ता किया और हस्ब-मामूल आवारागर्दी के लिए तैय्यार हुआ। तभी मेरी दूकान के मुनीम जी लाला द्वारिकानाथ आ पहुँचे। उनके आने से मैं रुक गया। यों तो मुनीम जी को मैं पहले से इज्जत की निगाह से देखता था। लेकिन जब से लालजी की मृत्यु हो गई थी मैं मुनीम जी को लालाजी की जगह समझने लगा था। इधर काफी दिनों से मुझसे उनसे मुलाकात नहीं हुई थी, क्योंकि मैं दूकान की तरफ अपना रुख ही नहीं करता था। आवारागर्दी और यार-दोश्तों से मुझे फ़ुरसत कहाँ थी जो दूकान के पचड़े में पड़ता। गरज मैंने उनसे पूछा—'कहिए? कोई खास बात है दूकान की? आपने यहाँ आने की क्यों तकलीफ की? नौकर को भेज कर मुझे बुलवा लिया होता, अगर कोई खास बात थी?'

'यों तो कोई खास बात नहीं है?' मुनीम जी ने धीरे से कहा। फिर ठहर कर बोले—'आप ने दूकान का सारा भार मेरे सिर पर रख दिया है। ठीक है, मैं भी अपने धर्म और लालाजी के पुराने संबंधों से बँधा हूँ। जिस प्रकार हो सकता है, मैं दूकान को उसी तरह लठाए हुए हूँ। आप चाहे दूकान में आएँ या न आएँ। जब तक मैं जिन्दा हूँ लालाजी के नाम पर बट्टा न लगने दूँगा और दूकान को उसी तरह चलाता रहूँगा।'

'मुझे आप पर पूरा भरोसा है।' मैंने सहज भाव के कहा—'मैं तो आप को लालाजी की जगह ही समझता हूँ।'

'मुनीम जी ने धीरे के कहा, कल बादशाह सलामत ने पश्मीना और कुछ दूसरे कपड़े तलब फरमाये थे। आप दूकान पर थे नहीं...'

'आपने खबर भेज कर मुझे बुला क्यों नहीं लिया था?'

'मैंने सोचा आप मकान पर मौजूद हो या न हों? कपड़ों की तलब उसी वक्त थी, इसलिए मैं खुद नौकर के साथ चला गया?'

'फिर कैसा क्या हुआ?' मैंने उत्सुकता के साथ पूछा।

'हजरत सुलताने-आलम के सामने मैं कल पहली ही बार पहुँचा था। यों दूर से उन्हें कई बार देखा था लेकिन आमने-सामने होने का यह पहला ही अवसर था। इसलिए उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो!' मैंने हाथ बाँध कर कहा, 'हुजूर मैं लाला चिरंजीलाल की दूकान का मुनीम हूँ।'

'उन्होंने फिर सवाल किया—'तुम क्यों कपड़े लाए हों ? जीवनलाल कहाँ है ? वह क्यों कपड़े लेकर नहीं आया ?'

'गजब हो गया,' मैंने धीरे से कहा फिर उत्सुकता के साथ मुनीम जी से पूछा —'यह सवाल क्या जाने-आलम ने कुछ गुस्सा जाहिर करके किया था ?'

'नहीं।' मुनीम जी ने कहा —'सुलताने-आलम के सवाल का लहजा साधारण और मीठा था। । मुझे तो उसमें दया-कृपा और नवाजिश-करम का भाव महसूस हो हो रहा था।'

'तब आपने क्या जवाब दिया ?'

'मैं बड़े असमंजस में पड़ गया था। समझ में नहींआ रहा था कि क्या जवाल दूँ। फिर सोच-समझ कर जवाब दिया।'

'क्या जवाब 'दिया ?'मेरे पेट में चूहे कूद रहे थे। सोच रहा था कि जाने-आलम ने जाने क्या ख्याल फरमाया होगा। क्योंकि उस छल्ले की घटना के बाद मैं एक दिन भी उनके आगे सिर झुकाने नहीं पहुँचा था।

'मुनीम जी ने कहा—'मैंने अर्ज किया कि लालाजी की मृत्यु हो जाने से जीवन लाल बहुत दुखी रहते हैं। दूकान पर बहुत कम बैठते हैं। इस वक्त भी वह दूकान पर नहीं थे, इसलिए मुझे कपड़े लेकर जहाँपनाह के सामने के हाजिर होना पड़ा है।'

'इस पर जाने-आलम ने कुछ कहा ?'

'हाँ, उन्होंने धीरे से कहा था—हमने गुलफाम को एक अर्से से नहीं देखा है।'

'मैं चुप रह गया। तरह-तरह के विचार मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगे। बिलकुल फानूस ख्याल का मामला था—इन्दर सभा का खेल, उस के पात्रों के चुनाव, तमाशे का प्रदर्शन, हरे नग वाले छल्ले की करामात, छतर मंजिल की कैद, रिहाई और फिर मेरी उँगली में छल्ला पहनाया जाना, एक-एक करके मुझे याद आ रहे थे।

'मुनीम जी मुझे चुप और विचार मग्न देख कर कुछ देर तो मौन रहे फिर कहा—'वहीं शाही महलों में मैंने सुना था कि मंगलवार को सुलताने-आलम की साल गिरह मनाई जायगी।'

'मंगलवार तो आज ही है ?' मेरे मुँह से निकल पड़ा।

'हाँ आज शाहमंजिल में हजरत को वर्षगाँठ का महोत्सव मनाया जा रहा है। सवेरे से वहाँ नौबत शहनाई बज रही है।' फिर कुछ गम्भीर होकर बोले—'इस समय मैं आपके पास एक विशेष अभिप्राय को लेकर आया हूँ। यदि आपको फुरसत हो तो कहूँ।'

'मुझे पूरी फुरसत है ! कहिए ?' मैंने समझा शायद मुनीम जी का कोई घरू काम है। इस ख्याल से मैंने प्रसन्न मुख से कहा—'आप निस्संकोच होकर कहिए। आपका जो भी काम होगा और मैं उसे कर सकता हूँगा तो अवश्य करूँगा।'

'मेरा निजी कोई काम नहीं है।' मुनीमजी ने कहा। और मेरी तरफ ध्यान से देखने लगे।

'खैर, जिस बारे में भी आप कुछ कहना चाहते हों शौक से कहें ।'

'मुनीमजी जरा देर चुप रहे । फिर बोले—'जीवनलाल जी, मैं आप का हृदय से शुभचिंतक हूँ । मुझे लालाजी के वे शब्द नहीं भूलते···'मुनीमजी फिर खामोश हो गये ।

'कौन से शब्द ? क्या लालाजी ने मेरे बारे में आप से कभी कुछ कहा था ?'

'हाँ', मुनीमजी बोले—'मृत्यु के दस-पाँच दिन पहले एक दिन बैठे हुए इधर उधर की बातें करते-करते उन्होंने कहा था—मुनीमजी आप हमारे अपने हैं । आप से मैं आज अपने दिल की एक खटक बता रहा हूँ । मुझ जीवन का भविष्य कुछ डाँवा-डोल सा दिखाई दे रहा है । इसलिए आप उसे अपना ही समझ कर सचेत करते रहिएगा ?'

'मैंने लालाजी से पूछा—'ये आप किस कारण से कह रहे हैं ?' वह बोले—'जीवन का बहाव मेरी दिशा को छोड़ कर विपरीत दिशा की तरफ जाता दिखाई दे रहा है ।' शायद लालाजी कुछ आगे कहते मगर उस समय लोग आ गये और उन्होंने उस चर्चे को छोड़ दिया ।'

'मैंने कहा—'मुनीमजी, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया । आप स्पष्ट रूप से कहिए । मैं आपको अपना बड़ा समझता हूँ और आप जो कुछ कहेंगे उस पर अमल करने को मैं तय्यार हूँ ।'

'जीवनलाल जी, मैं आपका अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहता । आपके हित की दो-चार बातें कहता हूँ । लाला चिरंजीलालजी का पुश्तैनी धंधा दूकानदारी था । इसी धंधे से उन्होंने इस लखनऊ में नाम-दाम और मान सम्मान सब कुछ पैदा किया । मैं देखता हूँ कि दूकानदारी में आप का मन नहीं लगता । ठीक है, लेकिन अभी आप कम उम्र हैं, आप की तबियत इस धंधे को नहीं पसंद करती, ठीक है । लेकिन ऐसा धंधा अपनाइए जिससे आप का भविष्य चमकता हुआ दिखाई दे ।'

'मैं हँस पड़ा—'आप ही बताइए मैं क्या करूँ ?'

'मुझसे पूछते हैं, तो मैं आप को वह सलाह दूँगा कि आप राज-दरबार से अपना संबंध सम्पर्क स्थापित कीजिए । मैं महसूस करता हूँ कि सुलताने-आलम हजरत वाजिदअली शाह के दिल में आप के लिए बड़ी जगह है । उनका यह कहना कि हमने गुलफाम को एक अर्से से नहीं देखा है, बहुत गहरे मानी-मतलब रखता है । वह चाहते हैं कि आप उनके दरबार में पहुँचा करें । कहने का तात्पर्य यह है कि आज उनकी सालगिरह है । आप जाकर उन्हें बधाई दीजिए । संभव है भगवान आपका भविष्य चमकाने की सोच रहे हों और इस जरिए से कोई अवसर हाथ आ लगे ।'

'मैं जल्दी से बोल उठा—जरूर जाऊँगा । आपकी यह बहुत नेक सलाह है ।

'लेकिन राज दरबार में खाली हाथ न जाना चाहिए । न मालूम कब कैसी बात हो जाय, कुछ जेब में रख कर जाना जरूरी होगा । नजर-भेंट के काम आएगा ।'

'मैं जानता हूँ । ऐसे मौकों पर दरबारी-मुसाहब वगैरा बादशाह सलामत को नजरें पेश करते हैं । मुमकिन हुआ तो मैं भी नजर पेश करूँगा ।'

'इसके बाद मुनीमजी चले गये । उनकी हर एक बात मेरे गले उतर गई थी । मैं हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ । कपड़े बदले और दस-बीस आर्शाफियाँ निकाल कर जेब में रख लीं । मकान के द्वार पर ताला लटका कर शाह मंजिल की तरफ चल पड़ा ।

शाह मंज़िल पर पहुँच कर देखा-खुशियाँ बरस रही थीं । नौबत-शहनाई की धुन से मुबारकवाद गूँज रही थी । नौकर चाकर नयी-नयी अर्क-बर्क पोशाकें पहने भीतर से बाहर और बाहर से भीतर दौड़ लगा रहे थे । दरवारी कमरे में दरबारी अमीर उमरा और मुसाहबों की बहुत बड़ी भीड़ जमा थी । जश्न के सभी साज-व सामान मौजूद थे । लेकिन मेरी हिम्मत दरबारी कमरे के अन्दर दाखिल होने की न हुई । तरह-तरह के विचार हिम्मत पस्त कर रहे थे । मैं चाह रहा था कि कहीं से जाने-आलम नजर आ जाएँ तो अपना मतलब पूरा कर लूँ । उन्हें सलाम करके पापस चला जाऊँ । इसलिए मैं बाहर एक कोना पकड़े खड़ा था । तभी मालूम हुआ कि जाने-आलम अम्मी हुजूर जनाबे आलिया मलिका किश्वर बहादुर की नजर पेश करने के लिए चौलक्खी महलों तशरीफ ले गये हैं । उन दिनों जनाबे अलिया चौलक्खी—महलों में में कयाम फ़रमा रही थीं । बहाँ से लौट कर हजरत दरबारी कमरे में तशरीफ फरमा होंगे । यह जान कर मैं उनका इन्तजार करने लगा । और खुश था कि अच्छा मौका है । उनके तशरीफ लाने पर यहीं से सलाम अर्ज कर लूँगा ।

'मैं इसी गुनताड़े में डूबा हुआ था कि मेरे पड़ोसी नवाब जाफिर अली खाँ दरबार में शामिल होने के लिए अपने घर से शाह मंजिल आए । उन्होंने मुझे बाहर खड़ा देख कर कहा—'जीवनलाल, यहाँ क्यों खड़े हो ? अन्दर कमरे में चलो ।'

'जी में यहीं ठीक हूँ ।' मैंने कहा—'यहीं से जाने-आलम के तशरीफ लाने पर सलाम अर्ज कर लूँगा । कमरे के अन्दर जाना मैं मुनासिब नहीं समझता । क्योंकि वहाँ अमीर-उमरा दरबारी और मुसाहबों की बैंठकें हैं । वहाँ मेरा क्या काम है । मैं कोई दरबारी या मुसाहब थोड़े ही हूँ ।'

'अरे, आज का दरबार तो आम दरबार है । सब के लिए हर तरह से खुला है ।' जाफिर अली खाँ ने कहा—'फिर तुम कोई अनजान नहीं हो ? हजरत सुलताने-आलम जरूर तुम्हें जानते-पहचानते होंगे ।' फिर जरा मुस्करा कर कहा—'तुम तो शाहजादा गुलफ़ाम हो ।'

'तभी शोर गूँज उठा-'बादशाह सलामत तशरीफ ला रहे हैं ।' नवाब जाफिर अजी खाँ दरबारी कमरे के अन्दर चले गए । मैं संभल कर अदव कायदे के साथ अपनी जगह पर खड़ा हो गया ।

'जाने-आलम की वादेबाहारी कंधों पर से जमीन पर आई । जाने-आलम ने वादेबाहारी पर से नीचे कदम रख कर चारों तरफ नजर घुमाई । मैंने इस मौके को बहुत गनीमत और बेहतर समझा । एक कदम आगे बढ़ कर सलाम के लिए सिर

झुका दिया। मुझे देख कर जाने-आलम मुस्कराए और उसी हालत में धीरे से उनके जबान मुबारक से सुनाई पड़ा—'तुम गुलफ़ाम यहाँ क्यों खड़े हो ?' और वह दरबारी कमरे की तरफ बढ़ गए।

'अब दरबार की भीड़ कुछ कम हो गई थी। शोर-गुल भी न था। जाने-आलम शाही तख्त पर रौनक फरमा चुके थे। मैं अपना मतलब पूरा करके घर लौटने की सोच रहा था। तभी कमरे के अन्दर से दयानतुद्दौला मोतमिद अबीखाँ झपटते हुए बाहर आए और इधर-उधर नजर डालते हुए मेरे पास आकर कहा—'जीवनलाल अन्दर चलो ! हजरत सुलताने-आलम तुम्हें याद फरमा रहे हैं।' दयानतुद्दौल मुझे अच्छी तरह जानते-पहचानते थे। उनके साथ मैं कमरे में पहुँचा। सभी लोग अदब कायदे से अपनी-अपनी जगह पर बैठे थे। जाने-आलम के इशारे पर मुझे नवाब इफ्तखारुद्दौला इफ्तखार अलीखाँ के बगल में जगह देकर बैठाया गया।'

मिरजा जफर हुसैन ने जिज्ञास प्रकट की, 'ये नवाब इफ्खारुद्दौला कौन थे ? मुझे याद आ रहा है कि आपकी पहली शादी के शगुन-सागई के जिक्र में एक इफ्त-खारुद्दौला का नाम आया था। ये कहीं वहीं तो न थे जो सआदतगंज में रहते थे ?'

'जी हाँ,' जमालुद्दौला ने कहा, 'बादशाह वाजिदअली शाह के फूफा इफ्लखारुद्दौला नवाब महदीअली खाँ थे। उन्हीं के खान्दान में नवाब इफ्तखारुद्दौला थे। जाने-आलम के पिता हजरत अमजदअली शाह ने उन्हें इफ्तखारुद्दौला का खिताब अता फरमाया था।' फिर जरा रुक कर कहा—'खैर अभी तो आप जो जिक्र चल रहा है उसी को सुनिए। जगह पाकर मैं दरबार में इतमीनान के साथ बैठ गया। इसके बाद नजरें पेश होना शुरु हुई। पहले शाही खानदान के नजदीकी लोगों ने बाद-शाह सलामत के सामने जाकर नजरें पेश कीं। उनके बाद वजीरे-आजम मदामुद्दौला नवाब अली नकी खाँने नजर पेश की। फिर मुसाहबों और दीगर लोगों की बारी आई। इफ्तखारुद्दौला जब नजर पेश कर के लौट आए तो जाने-आलम के रू-बरू पहुँचने की मेरी बारी थी। लेकिन मैं बड़े असमंजस में था। सोच रहा था कि जाकर नजर पेश करूँ या न करूँ। कहीं ऐसा न हो कि कुछ अदब कायदे के खिलाफ समझा जाय। लेने के देने पड़ जायें। तभी दयानतुद्दौला मोतमिद अली खाँ ने मुझे नजर पेश करने का इशारा किया और मैं हिम्मत बाँध कर जाने-आलम के तख्त के सामने पहुँच गया। पन्द्रह अशर्फियाँ रुमाल पर रख कर नजर पेश की, जाने-आलम मुझे ऊपर से नीचे तक देख कर मुस्कराए। नजर को सिर्फ दाहने हाथ से छू कर कहा—'हम तुम्हारी इस वक्त की नजर माफ फरमाते है।'

'दरबार में एक सन्नाटा सा छा गया। सब की निगाहें मेरी तरफ उठ गईं।' मैं बुत बना तख्त के आगे खड़ा था। सोच रहा था कि सब की नजरें तो जाने-आलम ने कबूल फरमाई, मेरी नजर क्यों टाल दी गई। इस माफी का क्या कारण है।

'तभी जाने-आलम ने कुछ ऊँची आवाज से कहा—'हम अपनी इस साल गिरह की खुशी में जीवनलाल उर्फ शाहजादा गुलफाम को 'जमालुद्दौना नवाब गुलफाम

अलीखाँ' का खिताव अता फरमाते हैं और अपने मुसाहबों के गिरोह में शा मिल करते है।'

'मैं तख्त के आगे झुक गया।

'सब अमीर रईस, मुसाहब और शाही खानदान के लोगों की निगाहें मुझसे चिमट रही थीं। उनमें कौतूहल भरा था। हजरत के सामने से हटने पर अबकी बार दयानतुद्दौला ने मुझे मुसाहवों के बीच में बैठाया। नाच-गाना शुरू हो गया।

'मेरी दाहिनी तरफ मुसाहब गुलाम हैदर 'सगीर' बैठे हुए थे। बहुत अच्छे शायर भी थे।'

मिरजा जफर हुसैन ने कहा—'गुलाम हैदर 'सगीर' ने बादशाह वाजिद अली शाह की बादशाहत और उनके बाद की बिरजिसी सरकार वगैरा के हालात की उर्दू नज्म में 'आईन अख्तरी' के नाम से बहुत अच्छी किताब लिखी है। मेरा ख्याल है कि उस वक्त की बह एक एक सच्ची और सही तवारीख है। हर एक बयान को बड़े साफ-सुथरे तरीके और ढंग पैराए से लिखा है।'

'वाकई आईन अख्तरी एक मुस्तनद तवारीख है। खैर, यहाँ उनका जिक्र यों आ गया कि जब मैं खिलाब अलकाब पाकर उनके पास बैठा तो उन्होंने उस वक्त एक शेर कहा और मेरे कान के नजदीक अपना मुँह लाकर सुनाया था। उनका वह शेर यह था—

खूबी है यह गुलफाम के हुस्न व जमाल की,
हासिल हुई जो आज यह इज्जत कमाल की।

'दोपहर से कुछ पहले नाच-गाना बन्द हो गया। जाने-आलम तख्ते-शाही से उठ कर जनानखाने की तरफ चले गये। दरबार खतम हो गया। लोग दो-दो, चार-चार की टोलियाँ बनाकर बातें करते हुए अपने-अपने घरों की तरफ चल पड़े। सब की जबान पर मेरा ही खिताव अल्काब का जिक्र था। मैं भी अपने घर चला आया।

'शाम के कुछ पहले नवाब माशूक महल की कोठी कैसर पसंद से मेरा बुलावा आया। मैं तैय्यार होकर नौकर के साथ कोठी पर पहुँच गया। खबर पाते ही बेगम ने मुझे अन्दर बुला लिया लिया। सामने पहुँच कर मैंने कायदे से सिर झुका दिया।

'उन्होंने होठों पर मुस्कान लाकर कहा—'इस वक्त हमने तुम्हें मुबारकबाद देने के लिए तलब किया है। अब तो तुम खिताब अलकाब पाकर बादशाह सलामत के बहुत नजदीक पहुँच गए हो। उनके मुसाहबों में शामिल हो गये हो।'

'हुजूर मैं बादशाह सलामत का मुसाहब नहीं हूँ ?' मैंने धीरे से कहा।

'तब किसके मुसाहब हो ?' बेगम ने आश्चर्य के लहजे से कहा।

'तभी वहाँ जाने-आलम तशरीफ ले आए ! नवाब माशूक महल की तरफ रुख करके कहा—'आज हमने जीवनलाल उर्फ गुलफाम को 'जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अलीखाँ' का खिताव अता फरमाया है और अपने मुसाहबों में भी शामिल कर लिया है।'

'ऐ हुजूर,' बेगम ने कहा—'यही खुशखबरी सुन कर हमने इन्हें मुबारकबाद देने को बुलाया था। लेकिन ये कुछ और ही कह रहे हैं। इस वक्त इनके जवाब ने हमें हैरत में डाल दिया है ?'

'ये क्या कह रहे हैं ?' जाने-आलम से पूछा।

'ये कह रहे हैं कि मैं बादशाह सलामत का मुसाहब नहीं हूँ ?'

'क्यों जमालुद्दौला ?' जाने-आलम ने मेरी तरफ रुख करके कहा—'क्या तुम्हें हमारा अता फरमाया हुआ खिताब अलकाब पसंद नहीं है ?'

'हुजूर ने आज जो इस नाचीज को इज्जत बख्शी है, वह सर आँखों पर है। मेरी जिन्दगी का एक नया मोड़ है। उससे कमतरीन कैसे मुकर सकता है ?'

'और हमारी मुसाहबत के बारे में तुम्हारा क्या कहना है !'

'वह भी फिदवी को दिल-व-जान से मंजूर है। लेकिन कुछ फर्क के साथ ?'

'किस फर्क के साथ ?' लहजा हैरत भरा था।

'हुजूर गुस्ताखी की माफी का ख्वास्तगार हूँ।' और मैंने उनके आगे सिर झुका दिया।

'हाँ हाँ, कहाँ ?

'हुजूर खाकसार की अर्ज यह है कि मैं खिताब अलकाब के साथ अपने जाने-आलम का गुलाम या मुसाहब हूँ। सुलताने-आलम बादशाह सलामत का नहीं।'

'हमारी समझ में नहीं आ रहा कि जाने-आलम और सुलताने-आलम या बादशाह-अवध में क्या फर्क है ? जाने-आलम और सुलताने-आलम दोनों हमारे ही तो नाम खिताब अलकाव है।'

'हुजूर, जाने-आलम में तबीयत की रंगीनी, जिन्दादिली और दिलवस्तगी के मशगले मौजूद हैं। जिनके जरिए ही ये गुलाम उनके दिल के नजदीक पहुँच कर आज इस दर्जे-मर्तबे को पहुँचा है। सुलताने-आलम, या शाहे-अवध में दिन रात की झंझटें और परेशानियाँ हैं। सल्तनत का इन्तजाम, हुक्म अहकामों के अमल दर आमद पर निगाह, लखनऊ में बैठे हुए अंग्रेज रजीडेन्ट और कलकत्ते में बैठे गवर्नर जनरल से निपटना वगैरा ऐसे दर्द-भरे मसले हैं जो किसी दूसरी तरफ घुमाने की फुरसत नहीं देते। इसलिए मैं अपने जाने-आलम का गुलाम और मुसाहव हूँ।'

बादशाह और बेगम दोनों बड़े जोर से हँस पड़े और देर तक हँसते रहे। जाने-आलम ने सावधान होकर कहा, 'तुम्हारी समझ बहुत खूब है। बल्कि एक हकीकत है। सुलताने-आलम और शाहे-अवध के खिताब अलकाब वाकई तौर पर जहमत और दिलशिकन है। हमें भी अपना जाने-आलम नाम बहुत प्यारा है।'

'तब हुजूर मुझे उसी प्यारे नाम की गुलामी और मुसाहबत में रहने दिया जाय।'

'हमें मंजूर है।' जाने-आलम ने प्रसन्न होकर कहा।

'इसके बाद मैं शाही जोड़े को सलाम करके अपने घर आ गया। और उस रात में मुझे माँ की बताई हुई खैरातन बुढ़िया की बात याद आई। जिसने साल डेढ़ साल की उम्र में मेरा कयाफा पढ़ कर मुझे जमालुद्दौला के नाम से पुकारा था। कितना सच था उसका पढ़ा हुआ मेरा कयाफा।

अठारह

'मोहल्ले-पड़ौस में, मिलने-मिलाने वालों में, बल्कि सारे लखनऊ में अब मैं जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ के नाम से ही पुकारा जाता था। भूल कर भी कोई जीवनलाल नहीं कहता था। इसके अलावा लोगों की निगाह में मेरी इज्जत भी बढ़ गई थी। जहाँ भी मैं पहुँच जाता, आदर के साथ लिया जाता था। यहाँ तक कि मेरे पड़ोसी बुजुर्ग नवाब जाफिर अली खाँ साहब भी मुझे 'जमालुद्दौला साहब' कहने लगे थे।

'मैं बड़े सुबह उठ कर और नाश्ते वगैरह से फारिग होकर जाने-आलम की खिदमत में पहुँच जाता था। उस समय वह जनाने महलों में हुआ करते थे। मगर मेरे लिए कोई रोक-टोक न थी, चाहे वह जहाँ भी हों। वहाँ बेगमात भी मौजूद रहती थीं। राज-काज की वहाँ कोई गुजर-गुँजायश न थी। दिल-बस्तगी के मशगले ही हुआ करते थे। उन्हीं मशगलों में मैं भी शामिल हो जाया करता था। ज्यादा से ज्यादा दो-तीन घंटे का सम्पर्क रहता था। यही मेरी मुसाहबत थी। दोपहर से पहले मैं अपने घर वापस आ जाया करता था। दोपहर का खाना खाने के बाद मैं मटर-गश्ती, दोस्त-अहबाबों से मिलने-बैठने के लिए निकल पड़ता था क्योंकि सूने घर में मेरा दिल नहीं लगता था।'

'तब आपने अपने घर का सूनापन दूर करके उसमें चहल-पहल भर देने की कोशिश क्यों नहीं की थी ? क्या जनाब को एक से दो होना पसन्द नहीं था ? अकेले रह कर ही जिन्दगी गुजार देना चाहते थे ? अब तो आपकी जवानी जोश पर आ चुकी होगी। उसमें उबाल नहीं आता था ?' जफर हुसैन ने कहा।

'जवानी में उबाल तो हर इनसान के दिल में पैदा हुआ करता है। मेरे दिल में भी पैदा हुआ करता था। लेकिन मैं उसे हाँड़ी के मुँह से बाहर नहीं आने देता था। इसकी वजह वही तस्वीर, वही सूरत थी जो मेरे दिल-आँखों में समाई हुई थी। मैंने तय कर लिया था कि अगर मेरी किस्मत में जोड़ा लिखा है तो उसी को अपना जोड़ा बनाऊँगा।'

'लेकिन उसका तो कोई अता-पता नहीं था। खुदा जाने वह किसके बगल में जा बैठी होगी। जिसकी किस्मत की रही होगी उसके हाथ लग गई होगी।' मिरजा जरा मुसकरा कर बोले—'आप उसकी माला बेकार जप रहे थे ?'

'आपका यह कहना सही है मिरजा शैदा साहब ?' जमालुद्दौला ने इतमीनान से कहा—'मेरे उस विचार को सुन कर हर कोई मुझे बेवकूफ समझ सकता था।

मगर अपना विचार ही तो था ।' फिर जरा गम्भीर होकर कहा—'मिरजा साहब, यह भी कुदरत का एक करिश्मा ही था । जब कभी मैं उसे याद करता और उसे पाने के बारे में कुछ सोचता, मेरा दिल मुझे विश्वास दिलाता कि घबरा मत, वह तेरी है, तुझे मिल कर रहेगी । खैर, इस जिक्र को अभी जाने दीजिए । सिलसिले की बात सुनिए ।'

'मेरे खिताब अलकाब को सुन कर मेरे मुनीमजी बहुत खुश थे । उसी रात के पहले पहर में दूकान बन्द करके मेरे घर आए और खुले दिल से मुझे बधाई दी । मैंने कृतज्ञता भरे लहजे से कहा—'यह आप के सिखावन का नतीजा है ।'

'मुनीमजी गदगद होकर बोले—'मेरा सिखावन कुछ नहीं है । स्वर्गीय लालाजी का पुन्य प्रताप है ।' फिर जरा ठहर कहा—'मेरी एक लालसा और है, भगवान उसे भी पूरा कर दें, बस फिर सब अच्छा ही अच्छा है ?'

'क्या लालसा है आप की ?' मैंने मुस्करा कर पूछा—'अब आप क्या चाहते हैं ।'

'अभी मैं कुछ नहीं कहता । जब अपने प्रयत्न में सफल हो जाऊँगा तभी कहूँगा ?'

'आखिर आप किस प्रयत्न में लगे हैं ? किस कार्य में सफल होना चाहते हैं ?'

'उसी काम को अब पूरा करना चाहता हूँ जिसे लालाजी ने हाथ में लिया था । और अपनी आँखों से उसे पूर्ण हुआ नहीं देख सके थे ।'

'यानी ? जरा खुले शब्दों में कहिए । मुझसे क्यों छिपा रहे हैं ?'

'छिपाने की कोई बात नहीं है ? मेरा कर्तव्य और आपके लालाजी का मुझ पर विश्वास हर समय मेरे हृदय को कचोटता रहता है कि मैं आपका व्याह करा सकूं । इसलिए मैं प्रयत्नशील हूँ । अपने काबू भर भाग-दौड़ कर रहा हूँ और ईश्वर चाहेगा तो एक दिन मेरी मनोकामना पूरी भी हो जायेगी । इस घर का सूनापन दूर हो जायगा । घर की लक्ष्मी आकर घर में बैठ जायगी ।'

'आप भी किस बेकार की धुन में है ।' और मैं जोर से हँस पड़ा ।

'जब तक मुझे अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त नहीं होती तब तक तो हँसने की ही बात है ।' मुनीमजी ने धीरे से कहा ।'

'बड़े समझदार और खैरंदेश थे आपके मुनीमजी ।' मिरजा ने कहा ।

'इसमें सन्देह नहीं । मगर मिरजा साहब, इन्सान कुछ चाहता है और खुदा कुछ करता है । मुनीमजी मेरे पास से उठ कर अपने घर सआदतगंज गये । उसी रात उन्हें हैजे की बीमारी ने पकड़ लिया और सबेरा होते-होते वह इस दुनिया से दूसरी दुनिया का सफर कर गये ।'

'उफ !' मिरजा ने धीरे से कहा ।

जमालुद्दौला जरा देर खामोश बैठे रहे । फिर बोले—'मुनीमजी की मौत से लाला जी की पुश्तैनी दूकान और कपड़ों की दूकानदारी जो अभी तक उनका नाम

जिन्दा किए चली आ रही थी खतम हो गई। मैं तो दूसरे ही बहाव में बह रहा था। जब दूकान किसके भरोसे पर चलती और कायम रहती। इसलिए मैंने उसका नाम-निशान मिटा देने का निश्चय किया। लालाजी के इष्ट-मित्रों ने मुझे बहुत कुछ ऊँचा-नीचा समझाया। खास तौर पर लाला कालीचरन ने कई दिन मेरे घर आकर मेरे निश्चय को पलटना चाहा। उन्होंने एक बुजुर्ग के नाते कहा—'एक जमाने से तुम्हारे खानदान में कपड़े की दूकानदारी चली आ रही है। यही नहीं, तुम्हारे पूर्वजों ने खून पानी करके दूकान को इतना ऊँचा उठाया। शाही महलों से लेकर लखनऊ के सभी अमीर उमरा, रईस-नवाब तुम्हारी ही दूकान को जानते हैं। लाखों रुपयों के कपड़ों की खपत उनके यहाँ होती है और इसी दूकान की बदौलत तुम्हारे लाला चिरंजीलाल जी लखपती मशहूर थे। ऐसे नाम-दाम के रोजगार-धंधे को आन की आन में समाप्त कर देने की बात सोचना कहाँ की अकलमंदी है। तुम जिन सब्ज-बागों को देख कर दूकान को खतम कर देना चाहते हो वह रंगीन हरे-भरे नजारे हमेशा आँखों के आगे रहने वाले नहीं है। दुनिया क्षण-क्षण पर रंग बदलती है। अभी आप कम उम्र हैं। दुनिया देखना है। गृहस्थी का बोझ सिर पर संभालना है। माना कि आप को धन दौलत की भूख नहीं है। भगवान ने इतना दे रखा है कि आप क्या आप की संतान भी बड़े सुख से जीवन व्यतीत कर सकती है। आप ने बादशाह सलामत से सम्पर्क बढ़ा कर इज्जत कमा ली है। ठीक है, लेकिन इसके थे मानी नहीं है कि अपने बाप-दादों के नाम को खतम कर दिया जाय। उनके पेशे रोजगार को लात मार दी जाय। जमाना दूसरा लग रहा है। मुल्क पर गैरों का कब्जा हो रहा है। एक के बाद एक सल्तनत मिटती चली जा रही है। इस लखनऊ की बादशाहत का भी क्या ठिकाना है। आज है, कल न रही, अंग्रेज जाने कब से इस अवध को अपने पेट में रख लेने के बहाने ढूँढ रहे हैं। ईश्वर न करे, जाने किस दिन क्या हो जाय। किस अमीर रईस और इज्जतदार पर कैसी गुजरने लग जाय। इसलिए बहुत सोच समझ कर और आगा-पीछा देख कर कोई काम करना चाहिए। ऐसा न हो कि बाद में अपने किए पर हाथ मलना और पछताना पड़ जाय।

'लेकिन लाला कालीचरन की इतनी बड़ी नसीहत जरा भी मेरे गले न उतरी। मैं अपने इरादे पर अटल रहा। दूकान किसी सूरत में कायम रखना मुझे पसंद न था।

एक दिन पहर दिन चढ़े मैं अपने इरादे को मजबूती के साथ पकड़े हुए नखास बाजार जा पहुँचा। मेरी दूकान पर ताला लटक रहा था। दो-तीन नौकर मुँह लटकाए, हाथ पर हाथ रखे, बैठे पहरा दे रहे थे। मैंने ताला खोला और सबसे पहले मुनीमजी का बस्ता खोल कर बही-खातों पर निगाह जमाई। वाह रे मेरे मुनीमजी, अपने काम में कितने चुस्त और ईमानदार थे। अपनी मृत्यु की संध्या तक का कुल लेखा-जोखा बही-खातों में मौजूद था। कहीं एक पाई की भी भूल नहीं थी। उन्हें देख समझ लेने के बाद मैंने रोकड़, रुपयों-पैसों वाली तिजोरी खोल कर देखी। सब सही और पूरा पाया। मुनीमजी की सचाई के प्रति मैं गदगद हो उठा।

'नौकरों ने जो मेरी गति-विधि देखी तो उनके मुर्झाय हुए चेहरे खिल गये। उन्होंने समझ लिया कि मालिक दूकान संभालने के लिए आ गए। अब दूकान का कार्य-क्रम पूर्वतत चलने लगेगा। लाला चिरंजीलाल का नाम इस बाजार में उसी तरह जागता रहेगा। सब मेरे हुक्म का इन्तजार करने लगे। मैंने उनसे कहा—'दूकान का कुछ सामान, कपड़ा वगैरा और दूकान की इमारत भी इसी वक्त नीलाम पर चढ़ाई जा रही है। मैं हमेशा के लिए इस दूकान को खतम कर रहा हूँ। जाकर पास-पड़ोस की दूकानों और बाजार में खबर कर दो।'

'मेरा हुक्म सुन कर नौकरों को काठ सा मार गया। उनके चेहरों की वह चमक-दमक जाने कहाँ गायब हो गई।

जान की जान में दूकान के सामने भीड़ जमा हो गई। सारी नखास बाजार उमड़ आई। मेरे इरादे को जान-समझ कर अगल-बगल की दूकानों के महाजनों-साहूकरों ने मुझे इस गलत इरादे से रोकना चाहा। जो जिससे बन पड़ा उसने वैसा समझाया। लेकिन मैंने किसी की एक न सुनी, एक न मानी। अपने विचार को हिमालय पहाड़ की तरह उन सब के सामने खड़ा रखा। दूकान का सारा कपड़ा और दूकान की इमारत नीलाम पर चढ़ी। लाखों का माल सैंकड़ों में लुट गया। मुझे इसकी थोड़ी भी परवाह न थी। जो कुछ हाथ आया ठीक समझा। नौकरी की उस दिन तक की तनखाह चुका कर उनकी भी छुट्टी कर दी। इस तरह दो तीन घन्टों में युग-युग और पुश्त-दर-पुश्त की जमी हुई दूकान का नाम निशान मिटा कर मैंने संतोष की सांस ली और खुश-खुश घर लौट आया।'

'दूकान लुटा-मिटा कर अब क्या करने का इरादा था?' मिरजा जफर हुसैन ने पूछा।

'जो कुछ कर रहा था।' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा।

मिरजा चुप रहे।

जमालुद्धौला ने आगे कहा—'उस दिन मैं सूबह के वक्त जाने-आलम की सेवा में नहीं पहुँच सका था। अतः संध्या समय तैय्यार होकर शाही महलों की तरफ चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि जाने-आलम नवाब सिकन्दर महल साहिबा के महलों में तशरीफ रखते हैं। मैं वहाँ जा पहुँचा। नवाब सिकन्दर मगल के महलों में बड़ी चहल-पहल थी। शादी और जश्न की तैय्यारी थी। हर तरफ धूम-धाम ही नजर आ रही थी। नौकर नौकरानियाँ इधर के उधर दौड़े फिर रहे थे। आज उन सबके ठाठ निराले थे। सभी नई-नई पोशकें पहने सजे-सजाये थे। मैं कौतूहल से भर गया। जाने-आलम का पता लिया मालूम हुआ कि वह नवाब सिकन्दर महल के पास अन्दर कमरे में हैं। मेरी समझ में न आया कि आज यहाँ इस धूम-धाम का कारण क्या है। कौन सा उत्सव मनाया जा रहा है। किसकी शादी की तैय्यारियाँ हैं। सभी अपने अपने काम से मस्त थे। जानने के लिए किसी को बात करने की फ़ुरसत न थी। मेरा कौतूहल और अधिक बढ़ गया। कारण जानने को उत्सुक हो उठा। मगर पूछूँ तो किससे पूछूँ। कोई

मेरी तरफ मुखातिब ही नहीं हो रहा था। एक कुर्सी पर बैठ कर पेट में कूदने वाले चूहों को सहलाने लगा। तभी बाहर की तरफ से जीनत हाथ में दो तीन ताजे फूलों के गुलदस्ते लिए चटकती-मटकती आती नजर आई। पास आने पर मैंने उसे रोक लिया।

'जीनत नवाब सिकन्दर महल की खास और मुँहलगी कनीज थी। उसका शौहर मियां शकूर जाने-आलम के पंखाबरदारों में नौकर था। जीनत बहुत चंचल चपल हँसोड़ और दिल्लगीबाज थी। मजाक तो उसके स्वभाव में कूट-कूट कर भरा था। बात करने में इतनी चुस्त थी कि उससे उलझ कर सुलझना मुशकिल था। जरा सी बात में इतनी शाखाँए निकालती थी कि छतनारा दरख्त बना कर खड़ा कर देती थी। मैं जीनत को अच्छी तरह जानता था। वह भी मुझे जानती थी। लेकिन उसका मजाकिया स्वभाव होने के करण मैं उससे बात करने से डरता था। उसे कभी नहीं छेड़ता था। मगर इस समय मेरे कौतूहल ने मुझे मजबूर कर दिया और महलों के उस असाधारण चहल पहल का कारण जानने के लिए मैंने उसे रोक लिया।

'जीनत की उम्र बीस-तीस के लपेट में थी। शकल-सूरत की भी चौकस थी। उसकी जड़ी-बड़ी कजरारी आँखें तथा होठों की मुस्काने विशेष आकर्षण थी। बरवस ही नजरों को अपनी ओर खींच लेते थे। आज जीनत भी मूरे बनाव सिंगार में थी। कंघी-चोटी, तैल-फुलेल से लैस, अतलस का घेरदार लहंगा, गाज का संदली रंग का गोटा टंका दुपट्टा और हरे रंग की गिरंट कों चुस्त कुर्ती उसकी सजावट को ऊंचा उठा रही थी। मेरे रोकने पर रुकते ही उसने बौछार सी छोड़ी—'कहिए, किस लिए रोक लिया ? कोई चुभन हो रही है क्या ?'

'मैंने कहा—'पहले यह बताओ कि आज तुम इस ठाठ में क्यों हो ? इतना जोरदार सिंगार क्यों कर रखा है ?'

'उसने आँखें चमका कर कहा—'ऐ, इतना भी नहीं समझ रहे ? तब कैसे जाने-आलम के मुसाहब हैं ? क्या आज महलों में बरसने वाला रंग आप को नजर नहीं आ रहा। उसी रंग में आज मैं भी डूबी हुई हुँ।' और वह हँस पड़ी।

'अच्छा तो यह बताओ कि आज यहाँ रंग बरसने का कारण क्या है ?'

'ऐ, वाह, जमालुद्दौला साहब ?' जीनत ने मुस्करा कर कहा—'आप जाने-आलम के मुसाहब बन कर भी कोरे लाला जीवनलाल ही हैं। हजरत की किसी बात का आप को पता नहीं रहता। आज यहाँ खुशियाँ बरस रही हैं। शादयाने बज रहे हैं और जरा देर में जश्न शुरू हो जायेंगे। आप को इन सब बातों का कोई पता ही नहीं है ?'

'अगर मुझे पता होता तो तुमसे क्यों पूछता ?'

'तब अपना खिताब और मुसाहबत मुझे दे दो। मैं हर बात का पता रखा करूँगी और आज यहाँ जो हो रहा है उसे भी जाहिर करूँगी।' और वह हँसने लगी।

'मुझे मंजूर है ?' मैंने उत्सुकता से कहा—'अब कहो, यहाँ यह जलसा किस खुशी का है ?'

'आज की खुशियाँ हैं, नवाब सिकन्दर महल साहिबा का निकाह ।'

'किसके साथ ?' मैंने पूछा ।

'किसके साथ ? कैसा बेतुका सवाल कर रहे हैं आप ?' उसने मुँह बना कर कहा—'बेगम का निकाह जाने-आलम के सिवा और किसके साथ होगा ?'

'क्या अभी तक निकाह नहीं हुआ था ?'

'जी नहीं, अभी तक नवाब सिकन्दर महल साहिबा जाने-आलम की मुताही बेगम थीं । कल की रात का जिक्र है । बेगम ने जाने-आलम से अर्ज किया-ऐ, जाने-आलम मेरी दीन दुनिया की सभी इच्छाएँ पूरी हो गईं । केवल एक प्रबल इच्छा ऐंसी है जो पूर्ण नहीं हो सकी । जाने-आलम उसे भी पूर्ण कर दें । उसके बाद मुझे दुनियाँ-जहान का कुछ भी नहीं चाहिए ।' बेगम की यह अर्ज सुन कर जाने-आलम ने पूछा—'तुम्हारी वह कौन सी आरजू है । पहले उसे जाहिर तो करो ।' नवाब सिकन्दर महल ने लालसा भरे भाव से कहा—'आप के साथ निकाह पढ़ा लेने की आरजू है और वह बहुत प्रबल भी है । हर समय मेरे दिल को कुरेदती रहती हैं ।' जाने-आलम ने हँस कर कहा—'बेगम जरा ख्याल तो करो, अब हमारी उम्र निकाह पढ़ाने की है । शाही हरम की सभी बेगमों और लखनऊ के लोग हमारी हँसी उड़ाएँगे । कहेंगे कि यह भी बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की तरह निकाहों के लिए दीवाने हो गये ।' लेकिन नवाब सिकन्दर महल ने उनकी एक न सुनी । अपनी आरज़ू को लेकर उनके गले से लिपट गईं । मजबूर होकर जाने-आलम ने कहा—'हम अम्मी हुजूर से जाकर पूछते हैं, अगर वह इजाजत दे देंगी तो हम बखुशी तुम्हारे साथ निकाह पढ़ा लेंगे ?' सुबह जाने-आलम मलिका किश्वर की खिदमत में पहुँचे । नवाब सिकन्दर महल भी साथ गईं । बात सुन-समझ कर मलिका ने निकाह पढ़ा लेने की इजाजत दे दी । वहाँ से लौटते ही यहाँ धूम-धाम मच गई ।' जीनत मुस्करा कर बोली—'ऐ समझ, गये जमालुद्दौला साहब, यहाँ रंग बरसने का कारण मालूम हो गया ?'

'इस वक्त जाने-आलम कहाँ हैं ?' मैंने पूछा ।

'बेगम के कमरे में हैं । शायद निकाह पढ़ा जा चुका होगा ।' और जीनत ने अपने काने घूँघट में हाथ लगाया ।

'मैंने एक चुटकी भरी । कहा—'जीनत, तुम मुखड़े पर यह काला घूँघट क्यों डाले हो ।'

'ऐ, तो क्या भाड़ जैसा मुखड़ा खोले रहूँ ? आप क्या खुला मुखड़ा देखने के शौकीन हैं ?'

'खुला मुखड़ा देखने से ही आँखों को तरावट मिलती है ।'

'ऐ, है, बड़ी तरावट वाली हैं आप की आँखें ?' उसने शोखी के साथ कहा—'अब मुझे राई-नोन उतारना पड़ेगा। नजर-झड़वानी पड़ेगी। आपकी आँखों ने जरूर मेरे मुखड़े को नजर लगा दी होगी। बड़े बदनजर हैं आप।'

'मेरी आँखों को क्यों कोसती हो ? अपने मुखड़े को कहो।'

'ऐ, मैं इसीलिए तो यह घूँघट खींचे रहती हूँ कि कहीं कोई नजर न लगा दे।' फिर मुस्करा कर कहा—'अच्छा जमालुद्दौला साहब, अब एक बात बताइए ? आप अपना निकाह कब पढ़ाएँगें ?'

'मैं किसके साथ निकाह पढ़ाऊँ ? कोई दुलहिन भी तो हो ?'

'दूलहिन तो मैं मौजूद हूँ।' जीनत मुस्करा कर बोली—' मेरे साथ पढ़ाइए निकाह। मैं आपकी बेगम बनने को तैय्यार हूँ। बोलिए मंजूर है ?'

'हमें तो मंजूर है। लेकिन······'और मैं मुस्करा कर रुक गया।

'लेकिन क्या ?' जीनत बोली—'कोई शक-शुभा, डर की बात है ? खुल-कर कहिए।'

'अगर तुम हमारी बीबी बन जाओगी, तब तुम्हारे वे मियाँ शकूर क्या करेंगे ? उनकी दुनिया न उजड़ जायगी।'

उनकी दुनिया क्यों उजड़ जायगी ? क्या मैं उन्हें लात मार दूँगी ?' उसने मुस्कारा कर कहा—'वह भी रहेंगे और आप भी रहिएगा। वे बड़े मियाँ होंगे और आप छोटे मियां। हाँ, नये पुराने का थोड़ा फर्क जरूर रहेगा।'

'यह तो ठीक न होगा जीनत।' मैंने कहा—'जब तुम हमारे पास रहोगी तो मियाँ शकूर घर में अकेले रह कर डंड पेला करेंगे या जब तुम उनके पास होगी तो मैं बैठा माला जपा करूँगा...यह तो हसद-रश्क और लड़ाई-झगड़े का सामना होगा।'

'आपस में साझा-समझौता करके साझे की खेती किया कीजिएगा। हाँ अगर कभी आप व उनमें कोई मनमुटाव की बात पैदा होगी तो मैं तुम दोनों का मन समझा कर या मार-पीट कर एक कर दिया करूँगी।'

'मगर साझे का रोजगार अच्छा नहीं होता। वह पुराने खिलाड़ी और मैं नया खिलाड़ी, कैसे निभेगी। इससे मुझे डर लगता है, दिल काँपता है।'

'डरने-काँपने की बात नहीं। आप दोनों को नचाने वाली तो मैं हूँगी। आप दोनों की नकेल तो मेरे हाथ में रहेगी। आपने देखा नहीं है। मदारी बन्दरिया को किस तरह नचाया करता है। जरा लाठी दिखाई और दोनों सीधे।' और वह हँस पड़ी। फिर संभल कर बोली—'आप डरिये नहीं। मेरे मियां शकूर ऐसे नहीं है। वह तो इस साझे की खेती से बहुत खुश होंगे। कहेंगे मेरी जीनत कितनी बहादुर है। दो-दो शौहरों को अपनी उँगली पर नचाती है। दोनों पर हुकूमत करती है।'

'तो क्या तुम मुझ पर हुकूमत भी करोगी ?'

'बेशक,' उसने ठस्से की आवाज में कहा—'अगर मैं हुकूमत न करूँगी और आप मेरो ताबेदारी न करेंगे, मेरे तलुवे न सहलाएँगे तो लखनऊ में जोरु के गुलाम

कह कर कैसे पुकारे जायेंगे ? मैं हुक्म दूँगी—ऐ, मेरी जूतियाँ लाकर पैरों में पहनाओ, आप को फौरन दौड़ पड़ना होगा। मैं कहूँगी उस खजूर के ऊँचे पेड़ पर चढ़ जाओ। आप बन्दर को तरह कूद कर उस पर जा बैठेंगे।'

'मुझे जीनत की बातों में मजा आ रहा था। साथ ही बेकारी का वक्त भी कट रहा था। मैं नहीं चाहता था कि जीनत बात खतम कर के भाग जाय। इसलिये मैंने आगे छेड़ा—'जीनत अब यह बताओ कि तुमने ये लम्बी-चौड़ी मजाक भरी बातें किससे सीखी हैं।'

'किससे सीखी है ?' वह मुस्करा कर बोली—'किससे सीखनी थी। मैं खुद उस्ताद हूँ। माँ के पेट से सीख कर आई हूँ। तभी न दो सौहरों की जोरू बनने को तय्यार हूँ। आप सीखना चाहते हों तो जीनत उस्ताद के शागिर्द बन जाइए। मगर यह याद रखिएगा कि सिखलाते वक्त मैं आप के कान भी ऐंठा करूँगी।' वह जोर से हँस पड़ी।

'जीनत, वकई तुम बहुत बड़ी उस्ताद हो।'

'ऐ, तभी न दो खसमों को अपनी बगल में दबाने के लिए तैय्यार हूँ। आपने दो जोरू के शौहर तो बहुत देखे होंगे। लखनऊ के हर कूचे-गली में मौजूद हैं। लेकिन सो खसमों की एक वीवी न देखी होगी। मुझसे निकाह पढ़ा कर देख लीजिएगा।'

'वाह, देखी क्यों नहीं है।' मैंने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'एक रंडी के तो सैकड़ों खसम हुआ करते हैं ?'

'ऐ, निगोड़ी पतुरिया की क्या बात करते हैं ? मेरा उनका क्या मुकाबला ? कहाँ खरा-तपा सोना और कहाँ लोहे का जलन-मैल-कोयला। फिर रंडी के वे सैकड़ों सगे निकाह पढ़ाये हुए खसम थोड़े ही होते हैं। वे सब तो उसके मतलब के यार-गुलाम हुआ करते हैं। आप तो मेरे सच्चे निकाही शौहर-खसम और दुलहा होंगे।' फिर आँख मटका कर कहा—'क्या जोड़ी होगी मेरी आपकी ! देखने वाले जल-भुम जायेंगे।'

'अरे वाह जीनत,' मैंने हँस कर कहा—'तुम वाकई जादू की पुड़िया हो।'

'अच्छा, अब मैं जाती हूँ।' उनसे हाथ छुड़ा कर कहा—'अभी बहुत काम करना है। शायद अन्दर निकाह की रसम भी पूरी हो चुकी होगी।' और आगे कदम बढ़ाते हुए बोली—'ऐ, जिस दिन मुझसे निकाह पढ़ाना हो पढ़ा लेना। मैं तैयार हूँ।' और वह हँसती-मटकती वहाँ से चली गई।'

जीनत का जिक्र खतम होते ही मिरजा जफर हुसैन ने कहा—'नवाब जमालुद्दौला साहब, ये नवाब सिकन्दर महल क्या वही हैं, जिनका एक मौके पर जिक्र करते हुए आपने फरमाया था कि जब जाने-आलम अपनी वर्षगाँठ के दिन जोगी बना करते थे, तो उनकी जोगिन बनने का मौका नवाब सिकन्दर महल को हासिल हुआ करता था।'

'जी हाँ, बिलकुल वही।' जमालुद्दौला ने इतमिनान के साथ कहा—'अब उधर का बाकी किस्सा सुन लीजिए—जीनत को रोक कर उससे बातें करने से अगरचे मुझे वहाँ की चहल-पहल का राज मालूम हो गया था, साथ ही उसकी मजेदार पुरमजाक बातों से भी तबियत में एक तरह की ताजगी पैदा हो गई थी। लेकिन वहाँ अकेले बेकार बैठे रहने से जी घबरा रहा था। सोचा, जब यहाँ शादी हो रही है। निकाह पढ़ाया जा रहा है। ऐसी सूरत में आज जाने-आलम से नियाज हासिल होना मश्किल है। कब तक बैठा रहूँगा। अतः मैं उठने को हुआ। तभी जाने-आलम माथे पर फूलों का सेहरा बाँधे हुए, शाही पोशाक पहने हुए कमरे के अन्दर से बाहर तशरीफ ले आये। मैंने उठ कर कायदे के साथ सलाम किया और शादी की मुबारकवाद अर्ज की।

'जाने-आलम मुस्कराते हुए बोले—'भई जमालुद्दौला, हम तुम्हारी इस मुबारकवाद को कबूल तो करते है, मगर कायदे से हकदार नहीं है। यह निकाह एक रसम अदायगी ही थी और वह भी नवाब सिकन्दर महल की जिद से। मजबूत होकर हमें सेहरा बाँधना पड़ गया।'

'इसके बाद जाने-आलम उसी सुसज्जित दालान में मसनद पर आसीन हो गये। मुझे भी बैठने का हुक्म हुआ और मैं एक तरफ कालीन का कोना दबा कर बैठ गया।

'जाने-आलम मेरी तरफ रुख कर के बोले—'जमालुद्दौला, तुम्हारी शादी तो हो चुकी होगी। तुम माथे पर सेहरा बाँध चुके होगे ?'

'जी नहीं,' मैंने नीची निगाह किए धीरे से कहा।

'क्यों ?' उन्होंने मुस्करा कर कहा—'तुमने अभी तक अपना जोड़ा क्यों पसंद नहीं किया ? ऐसा क्यों ?'

'मैंने इसका कोई जवाब न दिया। चुप बैठा रहा।

'वह पुनः बोले—'यह तो गलत है। तुम्हें भी किसी के साथ अपना निकाह पढ़ा लेना चाहिए। बिला जोड़े के जिन्दगी का कोई लुत्फ नहीं।'

'मैं चुप ही रहा। झुंड की झुंड बेगमें सोलहो सिंगार किए, मुस्कराती अठखेलियाँ, करती हुई वहाँ आ गईं। महफिल जम गई। नाच-गाना आरम्भ हो गया। और लगभग डेढ़ पहर रात तक रौनक बरसती रही।'

उन्नीस

'वजीरगंज के नवाब इम्तियाज अली खाँ के साहबजादे सरफराज-अली खाँ से मेरा याराना बहुत बढ़ गया था। बिना उनसे मिले मुझे चैन नहीं पड़ती थी। मेरा अकेलापन उन्हीं के दीवानखाने में बैठ कर दूर होता था। जब से मैंने जमालुद्दौला का खिताब अलकाब पाया था सरफराज अली खाँ मुझे बहुत बड़ा आदमी समझने लगे थे। कहा करते-भाई तुम तो अब बादशाह सलामत के मुसाहब हो। अगर मुझसे कभी कोई बेअदबी हो जाय तो माफ करना।' मैं उनके गले से लिपट जाता था और कहता था—'सरफराज भाई, अगर तुम ऐसा ख्याल दिल मैं लाओगे तो मैं तुम्हारे यहाँ आना छोड़ दूँगा। हमारी-तुम्हारी दोस्ती बेतकल्लुफी की है। उसमें किसी तरह के भी अदब-कायदे या भेद-भाव की बू न पैदा होनी चाहिए, दोस्ती का मजा इसी में है।'

'अब एक दिन का जिक्र सुनिए। मैं सुबह से ही सरफराज की बैठक में जमा बैठा था। उस दिन सरफ़राज की छोटी बहिन नूरजहाँ बेगम की शादी थी। चौधरी की गढ़िया में नवाब सिराजुद्दौला मरहूम के तीसरे पोते अहमद हसन खाँ से निसबत करार पाई थी। उसी दिन शाम को निकाह था। बड़ी धूम-धाम और जोर-शोर के साथ शादी हो रही थी। नवाब इम्तियाज अली खाँ को औलाद के नाम से केवल दो ही तो थे। सरफराज अली खाँ और नूरजहाँ बेगम इसलिए दिल खोल कर हर एक बात का बहुत ऊँचे पैमाने में इन्तजाम था। कहीं कोई कमी नहीं थी।

'सबेरे से ही उनके यहाँ धूम मची हुई थी। मेहमानों का ताँता बँधा हुआ था। खानदानी नवाब थे। लखनऊ के हर मोहल्ले में उनके रिश्तेदार मौजूद थे। इसलिए डोलियाँ, पालकियाँ और घोड़ा गाढ़ियाँ एक के पीछे एक चली आ रही थीं। पर्दे खिंच रह थे और जनानी सवारियाँ उतर-उतर कर महलसरा के अन्दर दाखिल हो रही थीं।

'तीसरे पहर का वक्त था। मैं सरफराज के दीवानखाने में अकेला था। सरफराज किसी काम से महलसरा के अन्दर गये हुए थे। अन्दर के दरवाजे पर पर्दा पड़ा हुआ था। एकाएक पर्दे का एक कोना हटा और एक चेहरा नजर आया। मानो बदली को हटा कर चौदहवीं का चाँद निकल आया। मेरी उसकी चार आँखें मिल गईं। नजर से नजर मिलते ही उस माहरू के मुँह से निकल पड़ा—'अरे, आप?' फिर पूछा, 'सरफराज यहाँ नहीं हैं?'

'जी नहीं', मैंने धीरे से कहा। इसके बाद एक बार फिर आँखें उठीं। फिर एकदम वह चेहरा नजरों से गायब हो गया।'

'आज दूसरी बार और एक अर्से के बाद मैंने सआदतगंज की उस हसीना को देखा था। आँखों ने तो पहचान लिया था। पूरी गवाही दे रही थीं कि वही सूरत है मगर दिल डाँवडोल हालत में था। कह रहा था—कुदरत ने इस दुनिया में लाखों-करोड़ों चेहरे पैदा किए हैं। उनमें समानता भी हो सकती है , यह कैसे यकीन किया जा सकता है कि यह चेहरा वही है जो कभी नजर आया था और आँखों में समा गया था। आँखों को धोखा भी हो सकता है ? मगर मेरी आँखें बड़ी मजबूती के साथ कह रही थीं—हरगिज नहीं, हम कभी भी धोखा नहीं खा सकतीं। जिसे एक बार देख पलकों के अन्दर बन्द कर लिया, उसे क्यों कर भूल सकती हैं। उम्र और निखार-उभार में कुछ फर्क हो सकता है, लेकिन उसके मानी यह नहीं कि उसे दूसरा समझ लिया जाए। यही उधेड़बुन मुझे परेशान किए थी।

'तभी उसी पर्दे को हटा कर सरफराज अली खाँ आकर मेरी बगल में बैठ गये और मुझसे पूछा—'अभी यहाँ दीवानखाने में कोई आया था ?'

'बाहर से तो अभी तक यहाँ कोई नहीं आया।' मैंने जवाब दिया।

'अन्दर से कोई आया था ?'

'अब मैं चौंका, बोला—'हाँ, आप की तलाश में इस पर्दे को हटा एर एक चाँद सा चेहरा जरूर चमका था ?'

'तुम उस चेहरे को पहचानते हो ?'

'मैं बड़े शशपंज में पड़ गया। समझ में नहीं आ रहा था कि इसका क्या जवाब दूँ, आखिर में मैंने उनकी तरफ नजर उठा कर कहा—'क्यों ?'

'वह चेहरा तुम्हारे नाम से वाकिफ है ?'

'किसका चेहरा था वह ? जरा साफ कहिए ? मुझे तो कुछ भी याद नहीं आ रहा।'

'सआदतगंग में हमारे एक रिश्तेदार नवाब इफ्तखारुद्दोला इफ्तखार अली खाँ साहब रहते हैं। उन्हीं इफ्तखारुद्धौला साहब की साहबजादी हुस्नआरा बेगम थीं।'

'मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गईं। चुप रह गया।

'सरफराज ने कहा—'यहाँ से जाकर उन्होंने मुझे अन्दर तलाश किया और एक अकेली जगह ले जाकर मुझसे सवाल किया—तुम्हारे दीवानखाने में कौन बैठा है ? मेरे मुँह से मामूली तरीके पर निकल पड़ा जमालुद्दौला। सुन कर उन्होंने धीरे से कहा—वह लाला जीवनलाल यही हैं जिन्हे बादशाह सलामत ने जमालुद्दौल का खिताब अता फरमाया है ? मैंने कहा-हाँ। इस पर वह एक क्षण खामोश रही। फिर दबी जबान से कहा—हमने एक बार उन्हें देखा था। लेकिन... शायद आगे वह कुछ और कहती मगर उनकी माँ ने आवाज देकर उन्हें बुला लिया और वह मुझें छोड़ कर चली गई।'

'सरफराज के मुँह से यह बयान सुन कर मेरे दिल की धड़कनें और बढ़ गईं। दिल में अभी तक जो कुछ भी शक-शुबहा था एकदम दूर हो गया। पूरा यकीन हो गया कि यह वही चेहरा था जिसे मैंनें कभी देखा था और आज तक जिसकी याद कभी-कभी दिल में चुटकियाँ भर लिया करती थीं। मगर आज उस सूरत ने फिर सामने आकर सूखे हुए जख्म को हरा कर दिया। फिर भी अपने इस ख्याल को दबा कर मैं खामोश था।

'क्यों ? तुम चुप क्यों हो ?' सरफराज ने छेड़ा।

'कुछ नहीं, यों ही बैठा हूँ।'

'क्या तुम हुस्नआरा को जानने हो ?'

'जी... नहीं।' मैंने धीरे से कहा।

'तब वह तुम्हें क्योंकर जानती हैं ?'

'मैंने कहा—'कह नहीं सकता ?'

'शाम करीब चली आ रही थी। इसलिए शादी की चहल-पहल बढ़ गई। बारात का इन्तजार होने लगा। स्वागत-सत्कार की तैय्यारियाँ होने लगीं। बड़े नवाब साहब अपने दीवानखाने से बाहर आकर लोगों को चुन-चुन कर काम सिपुर्द करने लगे। कुछ देर बाद बारात आई। और करीब आधी रात के कुछ पहले शादी होकर रूखसती भी हो गई।

'मैं भी अपने घर आ गया। लेकिन सारी रात मुझे नींद नहीं आई। वही चेहरा आँखों के सामने था और मैं उसे गले लगाने के लिए तड़प रहा था। करवटें बदल-बदल कर सुबह पकड़ी।'

मिरजा शैदा ने कोंचा,'तब यों कहिए कि हजरते इश्क ने इतने दिनों बाद आप पर नवाजिश की।'

'आप जो कुछ कहें बजा है।' जमालुद्दौला ने कहा—'इधर बहुत दिनों से जाने-आलम से मुलाकात हासिल नहीं हो सकी थी। उनकी तबियत नासाज थी। कोई छूत की बीमारी हो गई थी, जनानखाने के अन्दर अकेले-दुकेले पड़े रहते थे। किसी को अपने पास नहीं आने देते थे। मैं बाहर से ही मुजरा सलाम भिजवा कर लौट आया करता था। हस्ब-मामूल सुबह के वक्त मैं उस दिन भी शाह मंजिल की तरफ चल पड़ा।'

'हजरत को ऐसी कौन सी छूत की बीमारी हो गई थी ?' मिरजा ने पूछा।

'यह मैं नहीं जानता। उसे हकीम लोग ही जानते होंगे और वही बता सकते हैं। मैं शाह मंजिल पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि जाने-आलम वहाँ से रजौउद्दौला के मकान में कायम फरमाने चले गये हैं। मैं उलटे पैरों उस मकान पर पहुँचा और बाहर बैठे हुए दरबान के जरिए उनको अपना मुजरा सलाम भेज कर मिजाज का हाल पुछवाया। उन्होंने मुझे अपने पास बुलवा लिया। हाजिर होकर सलाम बजाया। उस वक्त वह अकेले पलंग पर लेटे हुए थे। मेरा सलाम लेकर वह बड़े तकिए के

के सहारे अध-लेटे से हो गये और मुझे बैठने का इशारा किया। मैं इजाजत पाकर पलंग के सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया। जाने-आलम गहरी निगाह से कुछ देर तक मेरी तरफ देखते रहे। फिर संजीदा होकर कहा—'जमालुद्दौला, तुमने बहुत अच्छा किया है जो अभी तक किसी हसीना को अपने गले नहीं लगाया। किसी परी जमाल के साथ निकाह नहीं पढ़वाया।' फिर जरा ठहर कर कहा—'हसीनों का जमघट जिन्दगी की बहुत बड़ी खराबी है। हसीनों में वफा की बू तो होती ही नहीं। सिवा सताने के उन्हें कुछ नहीं आता। इसका अपनी इस जिन्दगी में हमें काफी तजुर्बा हासिल हो चुका है। मगर यह पहलू का दिल भी बड़ा कम्बख्त है। जान कर भी अनजान बन जाता है।'

'मिरजा शैदा साहब! इसके बाद जाने-आलम ने अपनी उस बीमारी की हालत और कुछ बेगमात के ऐसे सलूक बयान किए जिन्हें सुन कर मैं चौंक पड़ा और जिस चेहरे ने सारी रात मेरे सामने रह कर मुझे सोने नहीं दिया था उसे मैं भूल सा गया। इरादा कर लिया कि मैं कभी किसी चाँद से चेहरे के फेर में नहीं पड़ूँगा। दुनिया में अकेला आया था। अकेला ही यहाँ से जाऊँगा।'

'जाने-आलम ने ऐसी कौन सी आप-बीती सुनाई, जिसने आप के दिल में हसीनों की तरफ से ऐसी नफरत पैदा कर दी?' मिरजा ने पूछा।

'उन्होंने कहा—'जमालुद्दौला, मैं बीमार पड़ा हूँ लेकिन कोई भी सच्चे दिल से मेरा हाल पूछने वाला नहीं है। जिन हसीनों को मैंने अपना दिल देकर अपना बनाया अपने हरम में दाखिल करके उन्हें बेगम और महल के दर्जे मर्तबे तक पहुँचाया उनमें से कुछ के सलूकों का हाल तुम्हें सुनाता हूँ। अपने और पराये की परख मुसीबत और तकलीफ के वक्त ही हुआ करती है। हम अपनी आँखों से देखी हुई बात कह रहे हैं। इसे झूठ या बनावटी मत ख्याल करना। एक दिन महबूबए-आलम नवाब मुगल बेगम साहिबा ने जब मेरे माथे पर हाथ रख कर बुखार देखा, तो हमने देखा, उन्होंने आटे और बेसन से अपने हाथ धोए। यह देख कर मुझे रोना आ गया। सोचा कभी ये हमारे गले लिपटती थीं और घन्टों लिपटी रहती थीं। उस वक्त हम इनके लिए कितने पाक या क्या थे और आज इस बीमारी की हालत में इनके लिए कितने नापाक और गंदे हो गये है कि हमें जरा छूकर ये आटा-बेसन से हाथों को धो रही हैं। इसके बाद उन्होंने हमारे दिल पर एक दूसरी चोट लगाई। पास आकर कहा-खुदा तुमको अच्छा कर दे। बड़ा मूजी मर्ज है। इस रोग के बीमार को लकड़ी में बाँध कर रोटी दी जाती है। उसके जिस्म को छूना बहुत बड़े खतरे का सबब होता है खुद को बीमारी लग जाने का डर रहता है। इसीलिए हमने आटे-बेसन से हाथों को साफ किया है। यह उस वक्त का जिक्र है जब हम शाह मंजिल में कयाम करते थे। उसी दिन हम वहाँ से इस मकान में आकर लेट गए। और अपने पास सब का आना-जाना बन्द कर दिया। बेगमात ने हमारे पास आने की बहुत कोशिश की, लेकिन हमने इजाजत नहीं दी। क्योंकि नवाब मुगल बेगम साहिबा की हरकत हमारे

दिल में बर्छी की तरह चुभ रही थी।' इसके बाद जाने-आलम जरा देर तक खामोश रहे। फिर कहा—'जमालुद्दौला, एक वाकया हो तो सुनायें। यहाँ तो बेगमात की बद-सलूकियों और बेजा हरकतों के ढेर लगे हुए हैं। इस वक्त कुछ सुना कर हम दिल का गुबार निकाल रहे हैं।

'एक दूसरा वाकआ है महबूबए आलम नवाब मुगल बेगम और नवाब खुसरो बेगम ने दूसरी हरकतें शुरू कर दीं। मुझसे छिप-छिप कर गाड़ी में सवार होकर सैर-तफरीह के लिए जाने लगीं। मैंने सुना। मना किया और कहा कि हम बीमार पड़े हैं और तुम्हें सैर की सूझ रही है? जवाब दिया हमें कैदियों की तरह महल में बन्द रहना मंजूर नहीं है। फिर हम कौन बीमार मरीज हैं जो पलंग पर पड़ी रहें। हम तो भली-चंगी हैं। आप मरीज हैं। मरीज का काम बिस्तर पर पड़ा रहना है। पड़े रहिए। सुन कर मैं चुप रह गया। आगे क्या कहूँ समझ में न आया और वह दोनों हँसने लगीं। अब एक तीसरा वाकया सुनो—नवाब मुगल बेगम और मतलूबल सुलतान नवाब हजरत बेगम एक दिन जबर्दस्ती इस मकान में घुस आईं और मेरे पास रहने लगीं। और दूसरी बेगमात का आना-जाना बन्द था। बीमारी की हालत में मुझे भीड़ पसंद न थी। इसलिए दरवाजों में ताले लटका दिये गये थे। एक दिन बहुत सी बेगमात ने जमा होकर और आपस में सलाह करके लकड़ी का एक जीना लगाया और कोठे पर चढ़ आईं और किवाड़ ताले तोड़-ताड़ कर मेरे पास आ गईं। यह हरकतें खुसरो बेगम, मुमताज आलम, कैसर बेगम, उमराव बेगम, जुहरा बेगम और बादशाह बेगम की थीं। मैं मजबूर होकर चुप रहा। मगर उनको चैन कहाँ थी। वह सब तो मुझे सताने के लिए आई थीं। बीमार को कुछ ढाढ़स-सहारा देना तो उन्होंने सीखा ही न था। उन्हें तो सिर्फ चरके लगाना आता था। इसलिए सब ने मिल बैठ कर ताश खेलना, ठुमरियाँ, गजलें गाना, अलापना और तरह-तरह के मशगलें शुरू कर दिए। मैंने बहुतेरा मना किया कि बीमारी की हालत में मुझे तुम लोगों की ये बेहूदगी पसंद नहीं है। अगर आई हो तो कुछ मेरी तीमरदारी करो, मेरे दिल को तस्कीन दो। मगर वह लोग कब सुनने वाली थीं। गरज जिस तरह उनका जी चाहा, उन्होंने मुझे सताया। इनके अलाव और भी सकड़ों बातें हैं जिनकी वजह से मेरी बीमारी दूर नहीं हो रही और उन सब की जड़-बुनियाद हमारी बेगमात की भीड़ ही है।'

'अच्छा यह बताइए जमालुद्दौला साहब?' मिरजा शैदा ने कहा—'ये नवाब मुगल बेगम, खुसरो बेगम, कैसर बेगम, वगैरा शरीफ खान्दागी खातूनें और भले घर-घराने की औरतें थीं?'

'जी नहीं, सब रंडियाँ या उनकी छोकरियाँ थीं। जाने-आलम के हरम की भीड़ में खान्दानी तो दो चार ही बेगमें थीं और उनमें वह खान्दानी शराफत मौजूद भी थी।'

'तब तो उन सब की हरकतें बेजा नहीं कही जा सकती थीं।'

'क्यों ?' जमालुद्दौला ने मिरजा के चेहरे पर नजर जमा कर कहा ।

'क्यों का क्या सवाल है।' मिरजा ने संजीदा होकर कहा—'रंडियों के नखरे तो मशहूर हैं । शोखी, शरारत, रूठना, मुकरना, गाल फुलाना, अपनी जिद पर डट जाना और मन चाही करना तो उन्हें जन्म-घुट्टी में पिलाया जाता है । उनके पेशे के तो ये सब खास गुण हैं । उनकी माँ बहनें उन्हें इसी की तालीम दिया करती हैं । किसी शरीफ खान्दान की खातून या किसी खानगी औरत में ये सिफतें कहाँ से पैदा हो सकती हैं । वह तो सच्ची शौहर-परस्त अपने खाविन्द-मियाँ की वफादार बीबियाँ हुआ करती हैं । अपने मियां का सुख-दुख ही उनका सुख-दुख हुआ करता है । रंडियों को किसी के सुख-दुख तकलीफ-दर्द से क्या मतलब-गरज हो सकती है । उन्हें तो अपने हलवे-माड़े और गुलछर्रों से मतलब हुआ करता है । उनके नजदीक तो यह घर जले मुबारकवाद, वह घर ज़ले सलामतबाद ।' और मिरजा-जफर हुसेन हँस पड़े ।

जमालुद्दौला खामोश रहे ।

'मिरजा फिर बोले—'हजरत सुलताने-आलम ने यही बहुत बड़ी गलती थी । शाही हरम को बाजारू औरतों से न भर कर दस—पाँच शरीफ खानदानी खातूनों से ही आवाद करना था, उन्हें इस शिकवा-शिकायत का मौका न मिलता ।'

'आप का कहना सही है,' जमालुद्दौला ने कहा—'मगर बकौल जाने-आलम; यह पहलू का दिल भी बड़ा कम्बख्त है । जान कर भी अनजान बन जाता है ।'

'खैर, जाने-आलम के इस गिला शिकवा का आपने क्या जवाब दिया था ?'

'मैं क्या जवाब देता । खामोश बैठा सुनता रहा और जब वह अपना किस्सा खतम करके पैर फैला कर लेट गये । मैं सलाम करके वहाँ से अपने घर आ गया ।'

बीस

मिरजा जफर हुसेन ने कहा—'अब आप उसकी कुछ खैर-खबर सुनाइए ?'

'किसकी खबर ?' जमालुद्दौला ने पूछा।

'उसी चाँद से चेहरे की। जिसने रात में आप की नींद हराम कर रखी थी। हम तो उसी का हाल जानने के लिए बेचैन हो रहे हैं।'

'उसका हाल जानने के लिए आप क्यों परेशान हो रहे है ?'

'क्योंकि उसका आप से एक अर्से से ताल्लुक है और शायद वह चेहरा आपकी कहानी का एक बड़ा हिस्सा भी होगा।'

'मैं आप को सुना चुका हूँ कि जाने-आलम के उन वाकयात को सुन कर मैं उस चेहरे को भूल सा गया था और मेरा विचार भी बदल गया था। इसलिए मैंने उसकी कोई खैर-खबर नहीं ली। मेरे लिए वह बात आई-गई सी हो गई थी।' उस घटना को गुजरे हुए अरसा हो चुका था। मैं अब जाने-आलम की खिदमत में भी नहीं पहुँचा था, क्योंकि उनकी तबियत नासाज थी। हकीमों ने सलाह दी थी कि यहाँ किसी तरह की भीड़ न जमा हो। हजरत को कोई परेशान न करे। इस बीमारी का सबसे बड़ा इलाज यही है कि हजरत आराम करें, शोरगुल से दूर रहें। हकीमों की इस सलाह पर वजीरे-आजम नवाब अली नकी खाँ ने मकान के बाहर कड़े पहरे बैठा दिए थे। कोई भी उनसे मिलने के लिए अन्दर नहीं जा सकता था। इस तरह उधर से तो मुझे फुरसत थी। हाँ, यार दोस्तों की सोहबत से फुरसत न थी। वह धमाचौकड़ी बराबर जारी थी। आज इसके यहाँ महफिल जमी है तो कल उसके यहाँ मंजीफा खेला जा रहा है और परसों किसी और की बैठक में हँसी-मजाक और ठहाके गूंज रहे हैं।

'एक दिन पहर दिन चढ़े मैं सरफराज अली खाँ से मिलने के लिए बजीरगंज पहुंचा। लेकिन उनका दीबान-खाना बन्द था। नौकर ने बताया कि वह कहीं गए हुए हैं। मैं वहाँ से एक दूसरे दोस्त के यहाँ चला गया। वह भी घर पर न मिला। ससभ लिया कि आज का दिन मनहूस है और अपने घर लौट आया। दोपहर का खाना खाकर कमरे में जा पलंग पर लेट गया। तीसरा पहर खतम होने को आ गया था। बाहर का दरवाजा खुला हुआ था। किसी के आने की आहट मिली। मैंने समझा पंडिताइन या कहारी आई होगी। तभी सरफराज अली खाँ आकर मेरे सामने खड़े हो गये। मैंने उठ कर उनका स्वागत फिर हम और वह दोनों नीचे कालीन पर तकिए का सहारा लेकर आराम से बैठ गये। बातें शुरू हुईं।

'मैंने पूछा—'आज सबेरे-सबेरे आप कहाँ चले गये थे ? मैं दरे-दौलत पर हाजिर हुआ था। आपके नौकर रहमू ने बताया कहीं चले गये हैं।'

'पूछा कहाँ गये हैं तो उसने जवाब दिया-मालूम नहीं है। पूछा, 'कब तक वापस आएँगे ? वह यह भी नहीं बता सकता था। आखिर मैं अपने घर लौट आया। और बहुत मनहूस सा दिन महसूस हुआ। काटे नहीं कट रहा था।'

'सुन कर सरफराज अली खाँ बोले—'क्या कहूँ, सबेरे-सबेरे ही सआदतगंज से बुलावा आ गया था। उस पर तकाजा यह था कि अभी चलिए।'

'ऐसा जबर्दस्त बुलावा किसके यहाँ से आ गया था ?' मैंने कुछ हैरत के लहजे से कहा।

'हमारे जो वह रिश्तेदार सआदतगंज में रहते हैं। उन्हीं की बीबी ने बुलाया था।'

'कौन रिश्तेदार ? मैं नहीं जानता ?'

'नवाब इफ्तखारुद्दौला को आप नहीं जानते ?'

'उस दिन बादशाह सलाम की सालगिरह के मौके पर दरबार में एक इफ्तखारुद्दौला साहब जरुर मेरी बगल में बैठे हुए थे। बहुत खूबरु गोरे-गोरे से थे। उनकी मूँछे बहुत लच्छेदार थीं। लेकिन न मैंने उनको पहले कभी देखा था न जान पहचान थी।

'जी हाँ आपके रिश्तेदार हैं।' जो हुलिया आपने बयान किया वही नवाब इफ्तखारुद्दौला हैं। कुछ दूर के रिश्ते से वह मेरे फूफा और उनकी बीबी जहानआरा बेगम मेरी फुफी होती हैं ?'

'तब उन्होंने इतनी ताकीद के साथ क्यों बुलाया था ? कोई खास काम था ?'

'खास ही समझ लीजिए ? सरफराज ने कुछ धीरे से कहा-'उन्हीं के यहाँ का किस्सा तुम्हें सुनाने के लिए इस वक्त मैं दोड़ा आया हूँ। तुम्हें सुना देना जरूरी है।'

'मुझे सुना देना क्यों जरुरी है ?' मैंने कुछ आश्चर्य के साथ कहा। 'मैं तो नवाब इफ्तखारुद्दौला साहब को सिर्फ उतना ही हूँ जितना कि बता चुका हूँ। उनके घर के किसी किस्से से मेरा क्या लगाव हो सकता है।'

'अगर उस किस्से से आप का कुछ लगाव न होता तो क्यों आपको सुनाना जरूरी समझा जाता।'

'मैं अजब चक्कर में पड़ा हुआ था। हालात से वाकिफ होने के लिए उत्सुकता बढ़ रही थी। अतः मैंने सरफराज से कहा—'फरमाइए, उनके यहाँ का क्या किस्सा है ?'

'किस्सा यों है ?' उन्होंने कहा—'मैं उनके घर पहुँच कर जहानआरा बेगम से मिला। वह मुझे एक अलहदा कमरे में ले गईं और इतमीन से बैठा कर खुद भी बैठ गईं। फिर मुझसे पूछा—'तुम्हारे दोस्त कोई जमालुद्दौला हैं ?'

'हाँ,' मैंने कहा।

'कहाँ रहते हैं ?'

'हमारे वजीरगंज के करीब गोलागंज में उनका पुश्तैनी मकान है।'

'कोई खान्दानी रईस नवाब हैं ?'

'वह खान्दानी रईस तो जरूर कहे जा सकते हैं। लाखों रुपया उनके यहाँ भरा पड़ा है। नखास बाजार में उनकी बहुत बड़ी दूकान भी थी····'

'उन्होंने बीच में ही टोक कर कहा 'उनका असली नाम क्या है। किसके साहबजादे हैं।'

'वह लाला चिरंजीलाल के लड़के हैं। जीवनलाल नाम हैं।'

'तो जमालुद्दौला मुसलमान नहीं, कोई हिन्दू है।'

'हाँ, लखनऊ के पुराने खानदान से हैं। जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ का खिताब अलकाव हजरत सुलताने-आलम ने अता फरमाया है। क्यों ?' जमालुद्दौला से आपका कोई काम है ?'

'उनसे···नहीं···हमारा कोई काम नहीं है।' उन्होंने धीरे से कहा। फिर कुछ देर के बाद नजर उठा कर कहा—'सरफराज ? क्या जमालुद्दौला वही लड़का है जो एक बार शाही महलों के खेल-तमाले में गुलफाम बना था ?'

'जी हाँ, वही है।' मैंने कहा—'क्या आपने उस खेल-तमाशे को देखा था ?'

'हाँ, उस शाही खेल को देखने हम सब लोग गए थे।'

'इसके बाद जहाजआरा बेगम खामोश बैठी कुछ सोचने लगीं। मैंने ख्याल किया कि जमालुद्दौला से इनका कोई मतलब जरूर है, जिसे ये जाहिर नहीं कर रहीं। और मैंने भी उस मौके पर छेड़ना मुनासिब न समझा।

'उन्होंने मेरी तरफ देखा और बड़े इतमीनान से कहा—'सरफराज, हुस्नआरा की शादी तय हो गई है।'

'यह तो आपने इस वक्त बहुत खुशी की बात सुनाई।' मैंने प्रसन्न मुख से कहा। फिर पूछा—'कहाँ, किसके साथ शादी तय हुई है ?'

'रुस्तम नगर में जो नवाब मिरजा अकबर अली खाँ रहते हैं। उन्हीं के लड़के असगर अली खाँ के साथ हुस्नआरा की निस्बत करार पाई है। नवाब मिरजा अली खाँ पुराने खानदानी आदमी हैं। उनके बुजुर्ग नवाब आसुफद्दौला के दरबारी मुसाहब थे। बहुत बड़ी हैसियत बना ली थी। वह पुरानी जायदाद अब तक उनके यहाँ मौजूद है।'

'मैं तो उनसे वाकिफ नहीं हूँ। शायद बड़े नवाब वालिद-माजिद साहब उन्हें जानते होंगे।'

'वह तो जरूर उन्हें जानते होंगे।' बेगम ने इतमीनान के साथ कहा-रुसतम-नगर में जो वह पुरानी जामा मस्जिद है उसी के पीछे कुछ हट कर उनकी हवेली है। हवेली का रंग लाल होने की वजह से वह मुहल्ले पड़ोस में लाल हवेली वाले नवाब

मशहूर हैं।' फिर जरा रुक कर कहा—'कभी फ़ुर्सत पाकर उस लड़के को तुम भी देखना। वह हमारी हुस्नआरा के लायक है या नहीं?'

'जब आपको लड़का पसंद आ गया है तो फिर उसमें क्या कमी हो सकती है कि वह क्यों हुस्नआरा के लायक न होगा!'

'बेगम एक क्षण चुप रहीं। फिर धीरे से कहा—'मगर आज कल की......' और आगे कुछ न कह कर चुप रह गईं।'

'मैंने पूछा—'क्यों? कोई फिक्र की बात है?'

'कुछ नहीं। यों ही मुँह से निकल गया। कुछ कहना चाह रही थी, भूल गई।' और उन्होंने उस बात को दबा दिया।

'मैंने पूछा—'शादी की तारीख कब है?'

'अभी शादी की तारीख नहीं मुर्कारिर हुई। इसकी खास वजह यह है कि हजरत सुलताने-आलम की तबीयत नासाज है। उनकी बीमारी दूर होकर सेहत हासिल हो जाय, उसके बाद शादी की तारीख तय की जाय। वह वहाँ महलों में बीमार पड़े हैं और हम यहाँ धूम-धाम मचाएँ। ऐसा करना एक तो मुनासिब नहीं। दूसरे पीछे वाइस नाराजगी भी हो सकती है।'

'यह तो बहुत दूर की सूझ-समझ है।'

'हमारी ख्वाहिश ये है सरफराज अली खाँ कि हुस्नआरा की शादी में बादशाह सलामत भी शरीक हों। और अगर मुमकिन हो सके तो हरमसरा की बेगमात भी तशरीफ लाकर घर की रौनक बढ़ाएँ।' फिर जरा रुक कर कहा—'हमारे कौन दस-पाँच-लड़के-लड़कियाँ शादी करने के लिए मौजूद हैं। यही एक हुस्नआरा ही तो है। क्यों न दिल खोल कर इसकी शादी करलें। क्यों अपने हौसलों को दबा रखें?'

'बेशक? बहुत बेहतर ख्याल है। हुस्नआरा की शादी एक याद होनी चाहिए।'

'इसके बाद जरा देर तक दोनों तरफ से खामोशी रही। फिर मैंने पूछा-'हुस्न आरा कहाँ हैं?'

'अपने कमरे में चादरा ताने पड़ी होगी?' फिर धीरे से कहा—'आज कल की लड़कियों का अजब हाल है।'

'मैंने महसूस किया किया कि जिसको इन्होंने पहले दबाना-छिपाना चाहा था शायद अब वह खुद-ब-खुद जबान पर आ रहा है। उसे सुनने के लिए मैं संभल गया और मामूली तरीके से कहा—'क्यों? क्या अजब हाल है?'

'क्या बताएँ, हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा। जिस दिन से शादी तै हुई है वह चादरा ताने पड़ी रहती है। उस दिन तुम्हारी बहन की शादी में तुम्हारे यहाँ गई थी। उसके बाद से तो और भी निढाल नजर आने लगी हैं। फिर एक दिन सोते में बड़बड़ा उठी-जमालुद्दौला, याद रखो, मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी होकर रहूँगी।

कोई दूसरा मुझे नहीं पा सकता। उसका यह बड़बड़ ाना आज तक हमारी समझ में नहीं आया।'

'कोई ख्वाब देखा होगा।'

'खुदा जाने क्या देखा था? कैसा क्या ख्वाब था वह।'

'आपने हुस्नआरा से नहीं पूछा?'

'पूछा था। मगर उसने मुस्करा कर टाल दिया।' फिर जरा रुक कहा—'उस दिन हमने तुम्हारे घर में किसी की जबान से जमालुद्दौला नाम सुना था लेकिन उस पर कोई खास तवज्जह नहीं दी थी। जब हुस्नआरा ने अपनी बड़बड़ाहट में वही नाम लिया, तो हमें याद आया। इसीलिए हमने तुम्हें बुला कर जमालुद्दौला के बारे में पूछ-ताछ की है।'

'अच्छा तो अब मुझे इजाजत दीजिए?' मैंने कहा।

'हुस्नआरा से नहीं मिलोगे? मिल कर उस बड़बड़ाहट के बारे में कुछ जानने की कोशिश करना। शायद तुमसे कुछ बता सके।'

'उस कमरे से उठ कर मैं हुस्नआरा के कमरे में पहुँचा। वह चादर ताने पलंग पर पड़ी थी। मैंने पलंग पर बैठ कर पुकारा। शायद वह जाग रही थी, फौरन उठ कर बैठ गई। मैंने पूछा—'कैसी तबीयत है? कुछ तकलीफ है क्या?'

'जी नहीं, मुझे कोई तकलीफ नहीं है।' उसने मुस्करा कर कहा—'बिलकुल भली-चंगी हूँ।'

'फिर चादर ताने क्यों पड़ी हुई थीं?'

'यों ही लेटी हुई थी।' फिर मुस्करा कर कहा—'आपका आना मुझे मालूम हो गया था।'

'फिर तुम वहाँ हमारे पास क्यों नहीं आई थीं?'

'वाह, वहाँ मैं क्यों आती? आप अम्मी जान ने बातें कर रहे थे। मैं क्यों वहाँ आकर खलल अन्दाज होती।'

'मैंने कहा—'बेगम साहब, यानी तुम्हारी अम्मी जान फरमा रही थी कि जब देखो हुस्नआरा चादरा ताने पलंग पर पड़ रहती है? यह क्या बात है। तुम्हारी तो शादी तय हो गई है। सिर्फ तारीख निकाह मुकर्रिर होना बाकी है। तुम्हें तो ससुराल जाने की खुशी में फूली न समाना चाहिए?'

'उँहुँ, ऐसी शादी रोज तय हुआ करती हैं।' उसने लापरवाही के साथ धीरे से कहा—'भाईजान, शादी के मानी खुशी जरूर है मगर जिसके मानी दुख-दर्द हो उसके लिए किस तरह खुशी मनाई जाय?'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। तुम जाने क्या कह रही हो हुस्नआरा?'

'मैं जो कुछ कह रही हूँ सही कह रही हूँ। मुमकिन है मेरा कहना इस वक्त आप की समझ में न आ रहा हो, लेकिन आगे आप जरूर समझ जाँयगे और मेरे

कहने को मानने लगेंगे ।'

'तुम तो पहेलियाँ बुझाती हो हुस्नआरा ?' मैंने उसके चेहरे पर निगाह डाल कर कहा—'मुझसे क्यों छिपाती हो? जो बात हो, जिससे तुम्हें दुख-दर्द महसूस हो रहा हो उसे जाहिर करो। जहाँ तक मेरा काबू चलेगा, उसे दूर करने की कोशिश करूँगा। मैं कोइ गैर थोड़े ही हूँ।'

'भाई भी कहीं गैर हुआ करते हैं ?' उसने मुस्करा कर कहा।

'हाँ, तुम्हारी अम्मीजान फरमा रही थीं कि एक दिन तुम सोते में जाने क्या ऊल-जलूल बक रही थीं। किसी जमालुद्दौला से बातें कर रही थीं। उनके आगे अपना दिल खोल कर रख रही थी।'

'सच बात थी ?' हुस्नआरा ने चेहरे पर गम्भीरता लाकर कहा—'जो अपना है, जिसे मेरा दिल एक बार अपना बना चुका उसके आगे क्यों न दिल खोल कर रखा जाय।'

'अच्छा यह उताओ; वह जमालुद्दौला कौन हैं ?'

'वह हँस पड़ी। फिर संभल कर कहा—'उन्हें आप मुझसे पूछते हैं ? वह आप ही के तो कोई मिलने वाले हैं। उस दिन आप ही के दीवानखाने में तो मौजूद थे। मेरे दिल का जख्म उन आँखों ने ही तो हरा किया था ? फिर जरा ठहर कर कहा—'आप भूल गये ? याद कीजिए। वहाँ से लौट कर उनके बारे में मैंने आपसे कुछ तस्दीक भी की थी।'

'मैं समझ गया। फिर भी मैंने पूछा—'क्या तुमने जमालुद्दौला को और भी कभी देखा था ? पहले कभी वह तुम्हारी आँखों में सामने आ चुके थे ?

वह एक क्षण चुप रहने के बाद बोली—'पहली बार मैंने उन्हें शाही महलों के खेल में शाहजादा गुलफ़ाम की शकल में देखा था और तभी वह मेरी आँखो में समा गये थे। मैं उनकी बन गई थी। लेकिन वह वक्त, वह दिन कुछ और थे। उस वाकया को दिल में रख कर पालने-पोसने की जरूरत थी। लेकिन अब वह पौधा बढ़ कर जवान हो रहा है फूल खिलने को आ रहे है......'और वह आगे कुछ न कह कर चुप रह गई। किसी विचार में डूब गई।

'मै भी चुप बैठा रहा। जब कुछ देर हो गई और बातों का सिलसिला टूट सा गया। तो मैंने कह—'अच्छा हुस्नआरा अब मैं जा रहा हूँ।' और मैं उठकर खड़ा हो गया।

'उसने मेरी तरफ नजर उठा कर कहा—'अब आप कब आएँगे ?'

'जब जरूरत समझूँगा।,'

'देखिए भाईजान, उसने गम्भीर मुख-मुद्रा और विश्वास भरे स्वर में कहा—'आप जमलुद्दौला के दोस्त हैं और मेरे भी दिली राज से किसी कदर वाकिफ हो चुके हैं। इसलिए इस मामले में मुझे आप से बहुत बड़ी उम्मीद है।'

'इनशाअल्ला ।' कह कर मैं उसके कमरे से बाहर हो गया ।'

'मिरजा जफर हुसैन साहब ? सरफराज अलीखाँ की जवान से नवाब इफ्त-खारुद्दौला के यहाँ यहाँ का यह किस्सा सुन कर मेरे दिल में हलचल सी पड़ गई । हुस्न आरा की भूली हुई याद फिर ताजा हो गई । उसका चेहरा फिर मेरी आँखों के सामने आने लगा । ख्याल भी बदल गया । मैंने भी सरफराज अलीखाँ को अपना राजदार बना लिया । हुस्नआरा के प्रेम की शुरू दिन से लेकर सारी कहानी सुना दी । सरफराज अलीखाँ ने मुझे भी वही जवाब दिया जो उन्होंने हुस्नआरा को दिया था । इनशा अल्ला कहकर अपने घर चले गये ।'

'आप बहुत खुश-किस्मत थे ?' मिरजा ने मुस्करा कर कहा ।

'किस मानी में ?'

'दोनों तरफ थी आग बराबर लगी हुई ।' मिरजा ने कहा—'ऐसा बहुत कम देखने सुनने में आया है ।'

एक झटके के साथ कहानी रुक गई । जमालुद्दौला तकिए का सहारा लेकर चुप रह गये । मिरजा गौर से उनकी तरभ देखने लगे ।

इक्कीस

'अब लगे हाथों नवाब मिरजा अकबर अली खाँ के साहबजादे मिरजा असगर अली खाँ की भी कुछ कैफियत सुन लीजिए।' जमालुद्दौला ने संभल कर कहा।

'जरूर वह तो आपके हरीफ हैं। बिना उनकी कैफियत के कहानी बेलुत्फ है।' मिरजा जफर हुसेन ने मुस्करा कर कहा।

'मिरजा असगर अली खाँ की पैदाइश नवाब अकबर अली खाँ की निकाही बीबी से नहीं थी।'

'और किससे पैदा हुए थे?'

'बन्नो नाम की एक डोमनी उसी रुस्तमनगर में रहती थी। जवान थी। नवाब अकबर अली खाँ पुश्तैनी नवाब थे। घर में जायदाद बहुत काफी मौजूद थी। उन्होंने बन्नो की जवानी की कदर की और उससे राह-रसम पैदा कर ली। फिर मोहब्बत के पेगों ने वह जोर लगाया कि बन्नो अपना घर छोड़ कर नवाब की लाल हवेली में आ बैठी। मिरजा शैदा साहब, लखनऊ का वह जमाना, वह रंग और उस समय के रईस-नवाब कुछ और ही थे। उन दिनों के रईस-अमीरों के नजदीक वह सभी बातें शान, इज्जत और मर्तबे की थीं, जो आज बुरी नजर से देखी जाती हैं। उस वक्त लखनऊ में क्या छोटा, क्या बड़ा, एक भी नवाब ऐसा नजर नहीं आता था जिसके जनानखाने में दो-चार निकाही बीबियाँ और दीवानखाने में नवाब की बगल में बैठी हुई कोई रंडी, कसबी या डोमनी मुसकरा न रही हो।

'नवाब अकबर अली खाँ को निकाही बेगम से कोई औलाद पैदा नहीं हुई थी। शादी हुए एक अर्सा गुजर चुका था। बन्नो जो उनके घर आ बैठी तो खुदा के फजल से अंधेरे घर में चिराग जल उठा। उसकी कोख से मिरजा असगर अली खाँ ने जन्म लिया। मगर बन्नो जच्चाखाने में ही कजा कर गई। चूंकि घर में कोई बच्चा नहीं था। बेगम की गोद सूनी थी। उनके पेट से पैदा नहीं हुआ था तो क्या, अंधेरे घर का चिराग तो था! इसलिए बेगम ने उसे अपनी गोद में लेकर अपना ही लड़का समझ लिया और पाल-पोस कर हर तरह के लाड़-लड़ाते हुए उसे जवानी की सीढ़ी पर खड़ा कर किया था। मिरजा असगर अली खाँ, नवाब अकबर अली खाँ की एकलौती औलाद मशहूर थे। मगर जानने वाले उनकी पैदाइश को जानते थे।

'मिरजा असगर अली खाँ की चौबीस-पच्चीस वर्ष की उम्र, जवानी से इतरा इठला रही थी। हसीनों के जिक्र पर दिल में गुदगुदी पैदा हो जाती थी। घर में बैठना मुशकिल हो गया। लखनऊ की गश्त शुरू की। हसीन चेहरे की तलाश में निगाहें

इधर-उधर दौड़ने लगीं। चौक के कोठों में हसीनों की कमी न थी। रहीमन नाम की एक नौजवान रंडी अपने कोठे पर मोढ़े पर बैठी मुस्करा रही थी। मिरजा असगर अली खाँ की आँखें उससे लड़ गईं। जीना चढ़ कर ऊपर पहुँच गये। रंडी ने बड़े नाज-अन्दाज से लिया और इश्कबाजी शुरू हो गई। मिरजा असगर अली खाँ उस पर फिदा हो गये। घर काटने को दौड़ने लगा और रहीमन के कोठे पर रंग बरसने लगा।

'लेकिन रहीमन तो पेशेवर रंडी थी। अपनी माँ-बहनों से रंडीपने की तालीम पाये हुए थी। उनको अपनी मुट्ठी में बंद करने के लिए नये-नये पैंतरे बदलने लगी। रोज एक नया नखरा दिखाने लगी। उन पर इस तरह मरने लगी कि गोया उसके बराबर मरना दुनिया में और किसी को नहीं आता। ठन्डी सांसें भर रही है। बात-बात पर आँसू बहा रही है। खाना नहीं खा रही है। दुनिया से मुँह मोड़ लेने के लिए अफीम मँगा रही है, और मिरजा असगर अली खाँ मनुहारें कर रहे हैं। उसके पैरों पर लोट रहे हैं। अगर रहीमन जरा सा मुस्करा दी, सारे जहान की दौलत मिरजा असगर अली खाँ के हाथों आ गई। अपने को बहुत बड़ा किस्मतवर समझने लग गये। पूरा यकीन हो गया कि अल्ला मियाँ ने मेरे लिए रहीमन को और रहीमन के लिए मुझको पैदा किया है। मुझे रहीमन से इश्क है और रहीमन को मुझसे मोहब्बत है। न मेरी नजर में कोई दूसरा है, न उसकी नजर में कोई गैर है।

'लेकिन रहीमन तो रंडी थी। उसके सैकड़ों आशना और चाहने वाले थे, मगर उसे किसी की चाह न थी। किसी की सगी वह न थी। जब जिसके बगल में होती उसी की सगी बन जाती। पीछे उसी को उलटी लात मार देती।

'एक दिन रहीमन ने मिरजा असगर अली खाँ को हाथों पर तौला। फरमाइश की। कहा—'मैंने अभी तक अपने हाथों में जड़ाऊ कंगन नहीं पहने। अब आप पहना दीजिए।'

'भला मिरजा असगर अली खाँ उसकी फरमाइश को कैसे ठुकरा सकते थे? फौरन बोल उठे—'हाँ हाँ, यह कौन बड़ी फरमाइश है। तुम्हारी मोहब्बत के आगे जड़ाऊ कंगन की जोड़ी क्या हकीकत रखती है? मैं अपने हाथों से जड़ाऊ कंगन तुम्हारे हाथों में पहना दूँगा।'

'सच कह रहे हैं?' रहीमन ने अपनी आँखों का चमत्कार दिखाया।

'मिरजा असगर अली खाँ की जबान से उसका जादू बोल उठा—'क्या तुमसे झूठ बोलूँगा! कल ला कर तुम्हारी इन नाजुक कलाइयों में पहना दूँगा।' और उन्होंने रहीमन का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'मुझे यों यकीन नहीं होता?' उसने जरा गम्भीर लहजे से कहा।

'तब तुम्हें किस तरह यकीन होगा?'

'मेरे जिन हाथों में आप कंगन पहनाने का वादा कर रहे हैं। उन्हें चूम कर कसम लीजिए।'

'हाँ हाँ यह लो।' और मिरजा ने उसका हाथ अपने होंठों से लगा कर चूम लिया।

'मिरजा को मालूम था कि माँ के हाथों में जड़ाऊ कंगन की जोड़ी पड़ी हुई है। रोज ही अपनी आँखों से उन्हें पहने हुए देखा करते थे। शाम को घर लौटने पर उन्हें अपना वादा पूरा करने की फिक्र सवार हुई। माँ से कंगन माँगने में बहुत बड़ी झंझट थी। सैकड़ों किस्म के सवाल जवाब के बाद भी कंगन हाथ नहीं लग सकते थे। साथ ही बात बढ़ कर जाने कहाँ तक पहुँच जाने का डर था। उनकी इश्कबाजी और रंडी की मोहब्बत का भांड़ा फूटता था। इसलिए उन्होंने माँगने वाले ख्याल को छोड़ दिया। बहुत सोचने-विचारने के बाद उन्हें तरकीब समझ में आ गई।

'रात में जब बेगम खाना खा कर हवादार खुली दालान में पलंग पर लेट कर पहली नींद के खर्राटे भरने लग गईं, मिरजा असगर अली खाँ को मौका हाथ आ गया। चुपके से अपने कमरे से बाहर आए, इधर-उधर देखा और दबे पाँव माँ के पलंग के पास पहुँच गये। बड़ी होशियारी से कील घुमा कर बेगम के दोनों हाथों से कंगन निकाल कर अपने कब्जे में कर लिए। और कमरे में जाकर पलंग पर लेट रहे। मगर चोर का दिल कितना ? नींद नहीं आई, करवटें बदल कर सुबह देखी।

'सबेरे बेगम जाग कर मुँह-हाथ धोने के लिए गुसलखाने में गईं। हाथों को धोते समय उन्होंने देखा, दोनों हाथों में कंगन नहीं है। समझीं शायद कील खुल गई होगी, बिस्तर पर पड़े होंगे। भाग कर आईं, बिस्तर को देखा-झाड़ा, मगर उसमें कंगन कहाँ थे। आखिर चोरी हो जाने का शोर-गुल मचाया। नवाब अकबर अली खाँ भी दीवानखाने से उठ कर अन्दर आ गये। नौकरानियों और महरियों से पूछा जाने लगा। मिरजा असगर अली खाँ खुद भी अपने कमरे से आकर उस शोर-गुल और पूछ-ताछ में शामिल हो गए। बिस्तर, पलंग और दालान का कोना-कोना इस तरह झाड़ने-तलाशने लगे गोया सबसे ज्यादा दुख-दर्द इन्हीं को है। नवाब अकबर अली खाँ खामोश थे, मगर मिरजा असगर अली नौकरानियों को डरा-धमका रहे थे। उन्हें कोतवाली का चबूतरा दिखाने को तैय्यार थे।

'आखिर नवाब अकबर अली खाँ ने मामला दरगुजर किया। बेगम से कहा-जो चीज किस्मत से उतर गई उसके लिए परेशान होना बेकार है। दूसरे कंगन की जोड़ी निकाल कर हाथों में पहन लो। बेगम ने उनके हुक्म की तामील की। दूसरे कंगन हाथों में पहन लिए। और उसी शाम को मिरजा असगर अली खाँ ने रहीमन के कोठे पर पहुँच कर आपना वादा पूरा किया। अपने हाथों से उसके हाथों में कंगन पहना दिए। रहीमन उनके गले से लिपट गई।

'नवाब अकबर अली खाँ की ससुराल अकबरी दरवाजे पर थी। उनके छोटे साले मीर वजीर अली वहाँ रहते थे। उसी शाम को चिराग जले वह बहिन से मिलने आये। दो-चार इधर-उधर की बातों के बाद बेगम ने अपने जड़ाऊ कंगन चोरी चले जाने का जिक्र किया।

'मीर वजीर अली ने पूछा—'कितने की जोड़ी थी ?'

'मुझे तो ठीक तौर पर उनकी कीमत मालूम नहीं है। नवाब साहब ने गुलाब राय जौहरी के जरिये खरीदे थे। ढाई तीन हजार की जोड़ी थी।' बेगम ने कहा।

'क्या वे वही कंगन थे जिनमें बड़े-बड़े लाल मानिक जड़े हुए थे ?'

'हाँ, वही कंगन थे। हर कंगन में सात-सात मानिक जड़े हुए थे और हर दो मानिक के बीच में एक-एक पुखराज भी जड़ा था।'

'वह कंगन की जोड़ी तो मेरे सामने ही नवाब ने खरीदी थी। पूरे पाँच हजार दिए थे।' फिर जरा रुक कर पूछा—'चोरी किस तरह हो गई ? क्या आप उन्हें अपने हाथों में नहीं पहने हुए थीं ? कहीं रखे हुए थे ?'

'अरे नहीं,' बेगम ने बड़े इतमीनान से कहा—'हम अपने हाथों में पहने हुए थीं, हमेशा पहने रहती थीं। उस रात में भी पहने हुए सोई थीं।'

'अच्छा ये बताइए ?' मीर वजीर अली ने कहा—'क्या उन कंगनों की कीलें ढीली थीं ?'

'जी नहीं, बिलकुल कसी हुई थीं।'

'आप रात में सोई कहाँ थीं ? कमरे के अन्दर ?'

'इसी दालान में।'

'और नौकर-नौकरानियाँ वगैरा कहाँ सोए हुए थे ?'

'वे सब तो नीचे के दर्जे में सोये हुए थे। हमेशा वहीं सोया करते हैं। नवाब दीवानखाने के ऊपर वाली बारहदरी में लेटे थे। यहाँ हम अकेली इस दालान में और असगर मिरजा अपने कमरे में सोये हुए थे।'

'मीर वजीर अली कुछ देर चुप बैठे रहे। फिर धीरे से कहा—मालूम होता है किसी चोर ने बड़ी होशियारी के साथ कंगन की कीलें खोल कर हाथों से निकाल लिए

'खुदा जाने, हम तो पहली नींद में पूरी बेहोशी के साथ सो रही थीं। हमें जरा भी मालूम नहीं हुआ कि कब क्या हो गया।'

'इसके बाद मीर वजीर अली अपने घर चले गए।

'मीर वजीर अली रहीमन के पुराने आशिक-जारों में थे। करीब-करीब रोजाना उसके कोठे पर पहुँचा करते थे। दूसरे दिन हस्ब-मामूल वह रात के पहले पहर में रहीमन के यहाँ पहुँचे। रहीमन कोठे में अकेली ही थी। दूसरे आशना, आशिक-जार मिल-मिला कर अपने-अपने घर जा चुके थे। रहीमन अपने दोनों हाथों में वही कंगन जो मिरजा असगर अली खाँ ने अपने हाथों से पहनाये थे, पहने हुये थी। मीर वजीर अली की निगाह उन कंगनों पर पड़ी, बोले—'वाह, आज तो तुमने बड़े जोरदार जड़ाऊ कंगन पहन रखे हैं !' फिर अपने हाथ से उन्हें घुमा-फिरा कर पूछा—'यह कंगन की जोड़ी तुमने कितने में खरीदी है ?'

'रहीमन मुस्करा कर बोली—'ऐ, भला मैं खरीद कर क्यों पहनने लगी ?'

'और कहाँ से पा गईं ?'

'कहाँ से पा गई ?' रहीमन ने एक अदा के साथ कहा—'आप यह अच्छा सवाल पेश कर रहे हैं। किसी चीज को पाना मेरे लिए क्या मुश्किल है ? फरमाइश की देर समझिए। आप जैसे मुझे चाहने-प्यार करने वाले फरमाइश को पूरा करना अपना फर्ज समझते हैं। यह कंगन भी ऐसे ही एक मेरे सच्चे आशिके-जार साहब ने लाकर अपने हाथों से मेरे हाथों में पहना दिए हैं।

'मीर वजीर अली ने एक बार पुन: कंगनों को घुमा कर देखा और अच्छी तरह पहचान गये कि यह कंगन कोई दूसरे नहीं बिलकुल वही हैं। लेकिन बहिन के हाथों से उतर कर रहीमन के हाथों में किस तरह आ गये यही भेद की बात है। फिर ख्याल दौड़ाया। कहीं वह मिरजा असगर अली खाँ की तो कारगुजारी नहीं है। उन्होंने तो रहीमन की फरमाइश पूरी नहीं की ? ख्याल ने दूसरी करवट ली। हम तो एक अर्से से रहीमन के कोठे पर आ रहे हैं। दो-दो, तीन-तीन घन्टे जमे भी रहते हैं लेकिन मिरजा असगर अली खाँ तो हमें एक दिन भी आते-जाते नजर नहीं आए।···

'तभी रहीमन ने मुस्करा कर कहा—'मीर साहब आप कंगनों को देख कर किस ख्याल में डूबे हुए हैं ? दिल-गुर्दे वाले ही ऐसे कंगन लाकर पहनाया करते हैं। अगर आप मुझे चाहते हैं और हिम्मत रखते हैं तो मेरी इन कलाइयों में जड़ाऊ पहुँचियाँ लाकर पहना दीजिए।'

'मीर वजीर अली को रहीमन का यह फिकरा अखर गया। उठ कर ज़ीने उतरनेलगे। रहीमन पुकारती की पुकारती रही। उन्होंने एक हर्फ भी जवान से न निकाला।'

जमालुद्दौला ने कुछ देर दम ले कर कहा—'मिरजा जफर हुसेन, मिरजा असगर अली खाँ की यह कैफियत हुस्नआरा बेगम के साथ शादी तय होने के करीब एक साल पहले की है। चूँकि सरफराज अली खाँ अब मेरे सच्चे राजदार बन चुके थे, इस लिए वह कभी मेरे मकान में आकर, कभी अपने दीवानखाने में बैठ कर मुझे सुनाया करते थे।

'मीर वजीर अली ने अपनी बहिन को नहीं बताया। कि तुम्हारे वह कंगन रहीमन के हाथों की रौनक बढ़ा रहे हैं और तुम्हारे ही साहबजादे ने ले जा कर उसे पहनाये हैं।'

मिरजा ने सवाल किया, 'इस बारे में तो सरफराज ने कोई जिक्र नहीं किया था। मेरा ख्याल है कि मीर वजीर अली को शक-शुभा ही था। या अगर वह सचाई की तह तक पहुँच चुके थे तो शायद बहिन से कहना मुनासिब न समझा हो। सोचा होगा जाने कैसी सीधी उल्टी पड़े। कहीं वह लोग यह न समझें कि हमारे लड़के को बदनाम करते हैं।'

मिरजा चुप हो रहे।

जमालुद्दौला बोले—'अब शादी तय हो जाने के दस-पन्द्रह दिन बाद की एक कैफियत सुनिए। यह वाकया तो कुछ ऐस गुजरा था कि सारे लखनऊ में चर्चा फैल गई थी। मैंने खुद भी सुना था और सरफराज ने भी दोहराया था ?'

'वह क्या वाकया था ?' मिरजा ने उत्सुकता-भरे लहजे से पूछा ।

'वह वाकया यों था ?' जमालुद्दौला ने बड़े तकिए का सहारा लेकर इतमीनान के साथ कहना शुरू किया—'एक दिन मिरजा असगर अली खाँ कुछ देर से रहीमन की खिदमत में पहुँचे । वैसे सरे-शाम पहुँच जाया करते थे, मगर उस दिन चिराग जले हुए काफी देर हो चुकी थी । कमरे में कदम रखते ही रहीमन ने पैंतरा बदला । मुँह थोथा लिए तिर्छी होकर बैठ गई । इनकी तरफ देखती भी नहीं । असगर अली खाँ के सीने पर साँप लोटने लगे । मिन्नत मुनहार के लहजे में कहा—'आज ये नाराज़गी क्यों है ? आने में कुछ देर जरूर हो गई । उसकी वजह अर्ज कर सकता हूँ ?'

'रहीमन पहले तो कुछ बोली ही नहीं, जब असगर अली खाँ ने खुशामद को और आगे बढ़ाया । उसका हाथ अपने हाथ में लेकर—'माफ कीजिए । आगे एक दिन भी देर न होगी । अगर कहो तो मैं तुम्हारे पास ही बना रहूँ ।'

'चलो हटो ।' रहीमन ने अपना हाथ छुड़ा कर कहा—'मैं खूब जानती हूँ, जिस तरह आप मेरे पास बनें रहेंगे । मैंने बहुत बड़ी गलती की जो आप पर जान देने-मरने लगी । यह नहीं ज़ाना था कि मर्दुए बेमुरव्वत होते हैं । उनकी आशनाई अंडे की जड़ हुआ करती है ।'

'आखिर इन उलहनों की वजह भी तो होनी चाहिए ।' मिरज़ा ने बहुत मीठे लहजे से कहा ।

'वजह-सबब कुछ नहीं । आज दो-टूक फैसला कर दीजिए ।' उसने जरा सीधे होकर कहा ।

'किस बात का फैसला चाह रही हो ?'

'मुझे घर में बैठा लीजिए ?' उसने नजर से नज़र लड़ा कर कहा ।

'असगर अली खाँ पर बिजली से गिरी । कुछ देर बुत बने बैठे रहे । फिर धीरे से कहा—'अभी तो यह बहुत टेढ़ा सा मामला है । क्योंकि...।'

'रहीमन रूखे स्वर-लहजे से बीच में बोल उठी —'बस टहलिए । हमारी आप की मोहब्बत हो चुकी । अब आप मेरा पीछा छोड़िए । आप भले और हम भले ।'

'इतना सख्त दिल कर लिया है ?'

'रहीमन उठ कर दूसरे कोठे में चली गई ।

'रात का पहला पहर खतम हो कर दूसरा भी आधा बीत चुका था । बाहर गश्त के सिपाहियों ने आवाज ऊँची की । उसे सुन कर मिरजा चौंक पड़े । गुंडागर्दी में पकड़ जाने का डर पैदा हुआ । उठ कर जल्दी-जल्दी जीना उतरने लगे । जीने से नीचे आकर देखा कि पन्द्रह-बीस सिपाही आगे बढ़े चले आ रहे थे । सिपाहियों की नजर से अपने को बचाने के लिए मिरजा असगर अली कोना-अंतरा ताकने लगे । बदहवास से हो गए । रहीमन के कोठे के नीचे एक कुंजड़िन की सब्जी की दूकान थी । असगर अली खाँ झट से उसी में घुस गए । वहाँ सब्जी भरे टोकरे-छींटे रखे हुए

थे। हजरत अंधेरे में उनसे टकरा गये। खड़खड़ाहट को आवाज हुई। वहीं चारपाई पर कुंजड़िन सो रही थी। खड़खड़ाट की आवाज सुन कर जाग उठी और चोर-चोर कह कर चिल्ला पड़ी। गश्त के सिपाही करीब आ चुके थे। चोर-चोर की आवाज सुन कर दूकान पर आ गए। मिरजा असगर अली खाँ इतने डर गये थे, ऐसी बदहवासी उनके सिर पर सवार हो गई थी कि जबान बन्द थी। एक कोने में दीवार से चिपटे खड़े थे। हिपाहियों ने उनको बाँध लिया। कोतवाली पर पहुँचे। मिरजा अली रजा बेग कोतवाल को सारी बारदात सुनाई। उन्होंने कहा—'मरदूद को इस वक्त हवालात कोठे में बन्द कर दो, सुबह देख लिया जायगा। और मिरजा असगर अली खाँ हवा-लात में बन्द कर दिये गये। सारी रात घुटनों से सिर दबाए अपनी करनी का मजा लेते रहे।

'दूसरे दिन पहर दिन चढ़े मिरजा अली रजा बेग ने मिरजा असगर अली खाँ को हवालात से निकलवा कर अपने सामने बुलाया। जो सिपाही रात में उन्हें बाँध कर लाये थे उनकी जवान से वारदात सुनी। मिरजा अली रजा बेग उन्हें पहचान नहीं सके। सूरत शकल और वेश-भूषा से इतना जरूर समझ गये कि किसी शरीफ घराने के साहबजादे हैं। फिर भी उनसे सवाल किया—'किसके लड़के हो, किस मोहल्ले में मकान है ?' मिरजा असगर अली खाँ शरम से पानी-पानी हो रहे थे। बाप का नाम जबान पर न ला सके। नीची नजर किए चुप खड़े रहे। कोतवाल साहब के पीछे अर्दली का सिपाही रुस्तम खाँ खड़ा था। वह रुस्तम नगर का ही रहने वाला था। उसने इन्हें पहचान कर मिरजा अली रजा बेग से अर्ज किया—'हुजूर यह रुस्तम नगर के लाल हवेली वाले नवाब अकबर अली खाँ के साहबजादे हैं। मैं इन्हें पहचा-नता हूँ।'

'मिरजा अली रजा बेग, नवाब अकबर अली खाँ को अच्छी तरह जानते थे। असगर अली खाँ को ऊपर से नीचे तक देखा, फिर सैकड़ों लानतें और सलावतें सुना कर मामले को दरगुजर किया और मिरजा असगर अली खाँ को घर जाने की इजा-जत दे दी।'

बाईस

'मिरजा शैदा साहब, आप को यह मालूम हो चुका है कि सरफराज अली खाँ मेरे दिली दोस्त थे और हुस्नआरा के रिश्ते में भाईजान होते थे। इसके अलावा वह हम दोनों के राजदार भी बन चुके थे। हम दोनों की चाहत उनसे छिपी न थी। इसलिए वह दिल से चाहते थे कि हम दोनों अपनी मुराद पा जायें। इसके लिए वह अपनी-सी कोशिश भी कर रहे थे।

'चूँकि हुस्नआरा के माँ-बाप उसकी शादी मिरजा असगर अली खाँ के साथ ठहरा चुके थे, मँगनी भी हो चुकी थी। सिर्फ निकाह की तारीख नियत होना बाकी थी। उसमें भी केवल बादशाह सलामत के गुस्ले-सेहत लेने की देर थी। इसलिए सरफराज अली खाँ बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। मिरजा असगर अली खाँ की मँगनी को किस तरह ठुकराया जाय, किस बहाने से इस संबंध को तोड़ा जाय ? उन्हें इनकी चिन्ता घेरे रहती थी। अगरचे उन्होंने मिरज़ा असगर अली खाँ के खिलाफ बहुत कुछ मसाला अपने दिल में जमा कर लिया था, फिर भी उसमें अधिक तीखापन पैदा करना चाहते थे।

'अकबरी दरवाजे पर मिरजा असगर अली खाँ के मामू यानी नवाब अकबर अली खाँ के सगे साले मीर वजीर अली रहते थे। बड़े रंगीन मिजाज और दिल फेंक आदमी थे। सरफराज के हमउम्र और दोस्त थे। जब दोनों मिल बैठते थे, खूब घुटती थी। मीर वजीर अली चौक की रहीमन जान के आशना थे, सरफराज को इसका पता था। यह वही मिरजा असगर अली खाँ वाली रहीमन थी।

'जिस दिन मिरजा असगर अली खाँ ने कोतवाली की हवालात से छुटकारा पाया था उसके तीसरे-चौथे दिन का जिक्र है। सुबह का वक्त था। मीर वजीर अली सरफराज से मिलने के लिए उसके घर आये। दीवानखाने में बैठक जमी। बातें शुरु हुईं।

'सरफराज ने पूछा—'मीर साहब, इस वक्त कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं, चौक से ?'

'आप को तो हर वक्त छेड़खानी ही सूझा करती है।' मीर साहब ने कहाँ—'इस वक्त तो मैं रुस्तमनगर से आ रहा हूँ।'

'सबेरे-सबेरे रुस्तमनगर क्यों तशरीफ ले गये थे ? कोई जरुरी काम था ?'

'वहाँ मेरी बड़ी बहिन रहती हैं न ?'

'कहाँ पर ?' सरफराज ने अनजान बन कर कहा।

'आप लाल हवेली वाले नवाब अकबर अली खाँ को नहीं जानते ? वही तो मेरे सगे बहनोई हैं। मेरी बड़ी बहिन जी नितुन्निसा बेगम उन्हीं को तो ब्याही हैं। उन्हीं के यहाँ गया था।'

'लाल हवेली वाले रुस्तम नगर के नवाब ?...शायद आप मिरजा असगर अली खाँ के वालिद नवाब अकबर अली खाँ के बारे में फरमा रहे हैं।'

'जी हाँ, असगर अली खाँ मेरा भानजा होता है। उसकी शादी होने वाली थी। उसी के सिलसिले में उनके यहाँ गया था। ... मगर क्या कहूँ···'और वह चुप रह गये।

'क्यों ?' सरफराज ने पूछा—'कोई खास बात है ?'

'खास बात क्या है !' मीर साहब ने कहा—'बड़ा नामाकूल लड़का है असगर अली खाँ।'

'क्या उन्होंने कोई अड़ंगा डाल दिया ?'

'ऐसा ही समझ लीजिए। अपनी हरकतों से बाप-माँ के मुँह पर कालिख पोत रहा है।' फिर धीरे से कहा—'आखिर माँ का असर तो बेटे में होना ही चाहिए।'

'मेरी समझ में नहीं आता। आप जाने क्या कह रहे हैं। और असगर अली खाँ से क्यों इस कदर नाराज हैं ?'

'मैं क्या नाराज हूँ ? जोभीउसकी करतूतों को सुनेगा नफरत करने लगे गा।' फिर एक क्षण चुप रहने के बाद कहा—'क्या आप जानते हैं असगर अली खाँ को ?

'जी नहीं, सिर्फ नाम सुना है। वह भी लखनऊ की एक ताजा हवा के जरिए।'

'अगरचे सरफराज अली खाँ, मिरजा असगर अली खाँ के बारे में बहुत कुछ सुन चुके थे, लेकिन मीर वजीर अली के मुँह से उसकी तस्दीक चाहते थे। बोले—खैर अब यह फरमाइए कि मिरजा असगर अली खाँ की शादी कब की रही।'

'अजी अब क्या होगी उसकी शादी ? ऐसे बदनाम लड़के को कौन अपनी लड़की देगा ? ऐसा कौन होगा जो जिन्दा मक्खी निगल जायगा ?'

'उनकी मँगनी किससे और कहाँ हुई है ?'

'सआदतगंज में नवाब इफ्तखारुद्दौला की लड़की से निसबत ठहरी थी।... मैं समझता हूँ कि अब इफ्तखारूद्दौला इनके नाम पर भी नहीं थूकेंगे। शादी तो बहुत दूर की बात है।'

'जरा इन बातों का सबब भी तो बयान कीजिए !'सरफराज ने कुछ और गहरा खोदना चाहा।

'मीर वजीर अली ने चौक की गश्त, रहीमन की खिदमत और जड़ाऊ कंगनों को चोरी से लेकर कोतवाली के चबूतरे तक का हाल सुना कर कहा—'बोलिए अब असगर अली खाँ की और क्या तारीफ की जाय ! उनके साथ शादी करके कौन अपनी लड़की को भाड़ में झोंकेगा ?'

'उनकी आशना वह रहीमन कौन है ?' फिर जरा मुस्करा कहा—'कहीं आप वाली रहीमन तो नहीं हैं ?'

'जी हाँ, वही है ।'

'तब तो वाकई असगर अली खाँ बहुत बदतमीज हैं । आप के माल पर हाथ साफ कर दिया ।'

'वह तो रंडी है । असगर क्या, कोई भी उस पर हाथ साफ कर सकता है । मीर साहब ने धीरे से कहा ।

'अच्छा अब यह फरमाइए ?' सरफराज ने चुटकी भरी—'रहीमन अब किसकी हैं ? आप की या असगर अली खाँ की ?'

'रहीमन तो रंडी है । किसकी हो सकती है ? रंडियों के खून में कहीं वफा की बू पैदा हो सकती है ? कंगन पहन कर उसने असगर अली खाँ को घता बता दिया ।'

'तव आप खुशकिस्मत रहे ?'

'क्यों ?' मीर साहब ने पूछा ।

'इसलिए कि अब रहीमन आपकी हो गई । असगर की पतंग कट गई ।'

'मीर वजीर अली एक क्षण चुप रहे फिर बोले—'मैंने भी उससे मँह मोड़ लिया । तर्क मोहब्बत कर दी ? अब उसकी तरफ ख्याल भी नहीं ले जाता ।'

'ऐसा जुल्म क्यों किया ? वह तो आप की पुरानी आशना थीं ।'

'समझ आ गई ।'

'कैसी ? जरा फरमाइए । मैं भी तो उसे सुन लूँ ।'

'भाई सरफराज ?' मीर वजीर अली ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'मैंने यह समझ लिया कि इस दुनिया में अपनी सगी सिर्फ एक निकाही बीबी ही है । मर्द को उसी से मोहब्बत करनी चाहिए । अगर जिन्दगी में सच्चे प्यार का मजा लेना है, तो अपनी जोरू के पैर धोकर पीना चाहिए । इसके अलावा और भी कुछ बातें मेंरी समझ में आ गईं ।'

'वह कौन सी बातें हैं ? उन्हें भी सुना दीजिए । इस वक्त तो आपकी ये बातें मुझे बहुत पसंद आ रही हैं । बहुत कीमती मालूम होती हैं ।'

'सरफराज अली खाँ, इसे हकीकत समझिए कि खुदा ही आवारा बनाता है और खुदा ही सीधे रास्ते पर लाता है । इतने दिनों बाद उसी ने मुझे समझ दी ।··· मैं देखता हूँ कि इस लखनऊ में हर मर्द आदमी के घर में दो दो, चार-चार बीबियाँ मौजूद हैं । मजहबी कायदे-कानून के मुताबिक चार निकाह जायज कहे जाते हैं । लेकिन मेरे नजदीक यह कायदा-कानून गलत है । इसमें नेक-नीयती और प्यार की खुशबू नहीं पाई जाती, बल्कि एक तरह से तबीयत का छिछोरापन जाहिर होता है । नेक-बख्त और नेक-नीयत वही मर्द कहा जा सकता है जो एक औरत का मुँह देख कर दूसरी का मुँह नहीं देखता । और इसे भी एक सचाई मानिए कि उसी की जिन्दगी सुख

की जिन्दगी हुआ करती है। इधर-उधर नजर दौड़ा कर मोहब्बत को तलाश करने वाले इंसान के लिए तो यह दुनिया नर्क की तरह है और वह नर्क का एक कीड़ा है।'

'मीर साहब, इस वक्त तो आपने कमाल कर दिया। ऐसी समझ की बातें सुनाईं जिनका मूल्य नहीं आँका जा सकता। मैंने तो उन्हें गिन-गिन कर गाँठ में बाँध लिया है। और इसके लिए आप को धन्यवाद देता हूँ।'

'इसके बाद मीर वजीर अली चले गये। मीर साहब की इस बैठक में सरफराज को बहुत सी मतलब की बातें मिल गईं। और एक दिन वह अपने अभिप्राय को लेकर सआदतगंज की तरफ चल पड़े। इफ्तखारुद्दौला के मकान में पहुँच कर देखा। नवाब घर में नहीं थे। दीवानखाना बन्द था। अन्दर पहुँचे। बेगम जहानआरा अपने कमरे के अन्दर थीं। लेकिन हुस्नआरा का कमरा खुला हुआ था, और हुस्नआरा सामने कमरे में कालीन पर बैठी सितार के तारों से खेल रही थी। जो गत उस समत बजा रही थी उसी में डूबी हुई थी। घर में कौन आया, कौन गया, उसे कोई खबर न थी। सरफराज ने सोचा, चलो पहले हुस्नआरा से ही मिल लें। और वह कमरे के अन्दर पहुँच गए। हुस्नआरा अपनी धुन में लीन थी। सरफराज उसके सामने कालीन पर बैठ गए। अब हुस्नआरा चौंकी। एक झंकार के साथ सितार बन्द हो गया।

'उसने सरफराज की तरफ देख कर कहा—'ऐ, भाई जान आप ? बहुत दिनों के बाद इधर का रुख किया है।'

'तुम्हें सितार बजाने की खूब महारत है। बहुत अच्छी धुन बजा रही थीं।'

'अरे नहीं भाई जान, दिल बहलाने का एक जरिया है।'

'नहीं, वाकई तुम बहुत अच्छा सितार बजाती हो। मैं तो समझता हूँ कि शाही दरबार में जो कुतुब अली सितार नवाज है अगर तुम्हारे सितार की झंकार सुनें तो सकते में आ जाय। अपनी कला एकदम भूल जाय।'

'भाई जान, आप तो मजाक करते हैं। मुझे काँटों में घसीटते हैं। कहाँ उस्ताद कुतुब अली खाँ और कहाँ मैं। जमीन आसमान का फर्क है।'

'एक मैं ही तुम्हारी कला की तारीफ नहीं कर रहा। दूसरे लोग भी करते हैं। जमालुद्दौला भी तुम्हारे फन की तारीफ करते हुए नहीं थका करते। वह तो तुम्हारी उँगलियों को चूम लेने के इच्छुक रहा करते हैं।'

'वह क्या जानें कि मैं सितार बजाती हूँ।'

'वह जानते ही नहीं, बल्कि उन्होंने अपनी आखों से तुम्हें सितार बजाते देखा था। और तभी से अपनी आँखों में तुम्हें बन्द किए हुए हैं।'

'गलत है।' उसने दृढ़ स्वर से कहा—'मैं कब उनके सामने सितार बजाने बैठी थी।

'यह तो मैं नहीं जानता। लेकिन उन्होंने पहली बार तुम्हें सितार बजाते हुए ही देखा था।'

'किसी और को देखा होगा। उनकी आँखों का फेर होगा। 'फिर एक क्षण रुक कर कहा—'अच्छा क्या खैर-खबर है ?'

'किसकी खैर-खबर पूछ रही हैं ! मिरजा असगर अली खाँ की !'

'ऐ, लानत भेजिए उनकी खैर खबर पर।' उसने घृणा भरे लहजे से कहा।

'क्यों ! ऐसी नफरत क्यों दिखा रही है ? उनके बारे में क्या कुछ सही गलत सुना है ?'

'सब सुन चुकी हूँ। लखनऊ का शोर-गुल किसी से छिपा रह सकता है।'

'क्या सुना हैं।'

'मुझसे मत पूछिए। अम्मीजान से मिल कर पूछ लीजिएगा।' फिर थोड़ा मुस्करा कर कहा—'अम्मी को जो कुछ मालूम होगा आप को बातएँगी। आप को जो मालूम हो आप उन्हें बताइएगा।'

'तभी जहानआरा बेगम अपने कमरे से अँगनाई में आईं मुझे हुस्नआरा के पास बैठा हुआ देख कर,वहीं से आवाज़ देकर कहा—'ऐ, मियाँ सरफराज ! हम तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं।'

'मैं हुस्नआरा को छोड़ कर बेगम के पास पहुँच गया। हम और वह दालानमें कालीन पर बैठ गये।

'मिरजा शैदा साहब, यह सब सरफराज का बयान किया हुअ वाकया है। सरफराज और जहानआरा बेगम में बातें शुरु हुई —

'सरफराज ने पूछा—'कहिए शादी की तारीख कब रही ? मैं यही दरयाफ्त करने के लिए आया था।'

'अरे अब शादी की तारीख क्या पूछ रहे हो ? मिरजा असगर अली खाँ की बदनामी तो बाँस पर चढ़ रही है। सारे लखनऊ में थू-थू मची हुई है। खुद तो बदनाम हुए ही नवाब अकबर अली खाँ की पुश्तैनी शराफत और इज्जत, मर्तबे को खाक में मिला दिया। ऐसे बदनाम आवारा और रंडी के गुलाम लड़के को अपनी लड़को दी जा सकती है ! तुमने भी तो उनका सारा किस्सा सुना होगा। अब तुम्हीं कहो कि क्या वह रिश्ता जोड़ने लायक है ? फिर सांस लेकर कहा—'नवाब ने एक-दम बात बंद कर देने की ठान ली है। इसी मसले को लेकर शाही महलों की तरफ गये हुए हैं।'

'सरफराज चुप रहे। जहानआरा फिर बोलीं—'तुमने भी तो उनकी नजर बन्दी की खबर सुनी होगी। उसका तो तमाम लखनऊ में चर्चा है।'

'नजरबन्दी के अलावा मिरजा असगर अली खाँ की एक और बेजा हरकत मुझे मालूम हुई है।'

'वह क्या हरकत है ?'

'बड़ी बेहूदा हरकत है ।'

'जरा उसे भी सुन लें ?'

'उन्होंने सोते में अपनी माँ के हाथों से जड़ऊ कंगन उतार लिए और ले जा कर अपनी आशना रहीमन के हाथों में पहना दिए ।

'खुदा बचाए ऐसे लड़के से ?' बेगम ने धीरे से कहा —'फिर सरफराज की तरफ देख कर बोलीं—'उनकी रंडी ने कंगनों की फरमाइश की होगी । इसलिए हजरत चोरी पर उतर आए । गनीमत यही रही कि अपनी माँ के हाथों से ही कंगन उतारे कहीं किसी दूसरे के यहाँ चोरी करने गये होते तो जाने क्या गति बनी होती और किस नतीजे को पहुँचे होते ।' फिर जरा रुक कर पूछा, 'तुम्हे ये कंगन की चोरी वाली हरकत किससे मालूम हुई ?'

'उन्हीं मिरजा असगर अली खाँ के मामू मीर वजीर अली ने हमें यह किस्सा सुनाया था , एक बात और ऐसी मालूम हुई है जो साफ कहती है कि यह शादी खानदान का नाम डुबाने वाली थी ।'

'वह क्या बात है ?' बेगम ने आश्चर्य-भरी निगाह से उनकी तरफ देखा ।

'मिरजा असगर अली खाँ नवाब अकबर अली खाँ की निकाही बीबी से पैदा नहीं है !'

'फिर किससे पैदा हैं ?'

'उनका जन्म एक डोमनी की कोख से हुआ था । बेगम अकबर अली खाँ ने सिर्फ उनको पाला-पोसा है ।'

'या अल्ला !'बेगम ने ठन्डी सास लेकर कहा—'तब तो वाकई हमारा खानदान डूब ही गया था ।'

'जरा देर की खामोशी के बाद सरफराज ने पूछा—'और हुस्नआरा का कैसा ख्याल है !'

'इस बारे में हमसे तो कोई बात हुई नहीं । अगर तुमसे कोई बात हुई हो तो बताओ ।'

'मुझसे आज तो ऐसी कोई चर्चा नहीं चली । हाँ, पहले जब मैं आया था तब जरूर उसकी बातों से मालूम हुआ था कि वह जमालुद्दौला के सिवा किसी भी दूसरे से शादी नहीं करना चाहती । कहना था कि अगर मैं दुनिया में जिन्दा रहूँगी तो उन्हीं की होकर । वरना एक दिन संखिया खा कर सो रहूँगी ।'

'लेकिन जमालुद्दौला तो···'

तभी नवाब इफ्तखारुदौला बाहर से अन्दर आ गये और वहीं बेगम के करीब ही बैठ गये । कुछ देर सन्नाटा रहा । फिर बेगम ने नवाब से पूछा—'बादशाह सलामत से मुलाकात हासिल हुई ? अब उनके मिजाज का क्या हाल है ?'

'हजरत सलामत से मुलाकात तो नहीं हासिल हो सकी । लेकिन यह मालूम हो गया कि उनकी बीमारी दूर हो चुकी है । अब कोई शिकायत बाकी नहीं है और जल्द ही वह गुसले-सेहत लेने वाले हैं ।' नवाब ने कहा ।

'और किसी से मुलाकात हुई ? कोई मतलब का जिक्र छिड़ा ?'

'और तो वहाँ वजीरे आजम नवाब मदारूद्दौला अली नकी खाँ साहब और दूसरे दरबारियों-मुसाहबों सभी से मुलाकात हुई। बातें भी चलीं। उन्हीं बातों में हुस्न आरा की शादी का भी जिक्र आया। उसी दौरान में एक नई बात मालूम हुई। नवाब मदारुद्दौला अली नकी खाँ ने कहा—नवाब अकबर अली खाँ के तो कोई औलाद नहीं है। वह जो एक लड़का उनका मशहूर है डोमनी के कोख का है।····'

'बेगम जल्दी से बोल उठी—'यही बात तो अभी सरफराज ने भी बताई थी। और अब एक के बदले दो मुँह से उसकी तस्दीक हो गई।' फिर जरा देर रुक कर कहा—'वहाँ किसी और ने कोई सिलसिला नहीं बताया ?'

'बताए क्यों नहीं ?' नवाब ने कहा—कई सिलसिले सामने आए। मगर किसी में खानदान की खराबी पाई गई। किसी के लड़के में नुक्स निकल आया। इसलिए कोई सिलसिला जमा नहीं।'

'मगर एक बात और सोचने-समझने की है ?' जहानआरा ने नवाब की तरफ नजर उठा कर कहा।

'अभी इन सरफराज अली खाँ की जबानी मालूम हुआ है कि हुस्नआरा का कहना है कि मैं शादी जमालुद्दौला के साथ ही करूँगी। और अगर कहीं किसी दूसरे के साथ मेरी शादी का सिलसिला पैदा किया गया तो जहर खाकर सो जाऊँगी।'

'जमालुद्दौला कौन ?' नवाब ने कहा फिर जरा सोच कर कहा—'समझ गये लाला चिरंजीलाल खत्तरी के लड़के जीवनलाल से मतलब है। बुरा तो नहीं है। खुदा ने उसे बहुत खूबसूरत सरापा दिया है। पुश्तैनी दौलत जायदाद भी घर में बहुत काफी मौजूद थे। इधर लाला चिरंजीलाल ने भी लाखों रुपया कमाया फिर अब तो वह हजरत सुलताने-आलम के बहुत नजदीक पहुँच गये हैं। उनके मुसाहबों में नाम आ गया है। साल गिरह के दरबार मे हजरत सलामत ने उन्हें जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ का खिताब अलकाब अता फरमा कर उनकी इज्जत को भी ऊँचा उठा दिया है। लेकिन वह'···फिर जरा देर चुप रहने के बाद कहा—'अगर वह बुतपरस्ती से मुँह मोड़ कर इसलाम मजहब कबूल करके कलमा पढ़ लें तो हुस्नआरा की शादी उनसे की जा सकती है।'

'क्यों सरफराज अली खाँ ?' जहानआरा बेगम ने उनकी तरफ देख कर कहा—'वह मुसलमान होना मंजूर करेंगे ?'

'भला इस बारे में मैं क्या अर्ज कर सकता हूँ ?' सरफराज ने कहा।

'तुम्हारे तो वह बहुत पक्के दोस्त हैं। जिक्र करके समझना ?

'फिर भी एक बात है। अगर वह मजहब बदलने के लिए राजी हो गये तब भी हमें इसका जिक्र बादशाह सलामत से करना पड़ेगा और उनसे इजारत हासिल करनी पड़ेगी। बिला हजरत की मंशा और इजाजत के हम रिश्ता नहीं जोड़ सकते।'

'उसी दिन शाम को सरफराज अली खाँ ने मेरे घर आकर उस दिन की सारी बारदात मुझे सुना दी।'

तेईस

प्रति दिन के अनुसार गुलफाम मंजिल के अन्दर पाँव रखते ही मिरजा जफर हुसेन 'शैदा' ने देखा कि दीवानखाना नई नवेली की तरह सजा हुआ है। फर्श, कालीन, मसनद, तकिए सभी नये बिछे हुए हैं। जगह-जगह पर ताजे फूलों के गुलदस्ते सजे हुए हैं। कमरे के चारों कोनों में तिपाई पर धूपदान सजे हैं जिनमें सुगंधित धूप जल रही है और कमरा मह-मह हो रहा है। दीवारों पर सुन्दर रंग-रंग के सुगंधित फूलों की झालरें हैं और उनके बीच-बीच में बड़े फूलों के गुच्छे लटक रहे हैं। सजावट में कहीं कोई कमी नहीं थी।

मसनद पर तकिये का सहारा लिए नई जर्क-बर्क पोशाक पहने नवाब जमालुद्दौला साहब बैठे हुए हैं। उनकी पोशाक इत्र में कुछ ऐसी डूबी हुई है कि सारा दीवान खाना महक रहा है। नवाब साहब के सफेद चाँदी की तरह चमकने वाले सिर और गलमुच्छों के बाल मेंहदी के लाल रंग से रंगे हुए हैं। आँखो में सुर्मे की काली रेख खिची है। पान की गिलौरी मुँह में दबी हुई है। भारी भरकम पेचवान खासदल उगालदान बगैरह-वगैरह अपनी-अपनी जगह पर रखे हुए हैं।

वहाँ का यह ठाठ देख कर मिरजा जफर हुसेन चकित से रह गये। तभी जमालुद्दौला में नजर उठा कर उनकी तरफ देखा और बड़े मीठे स्वर से कहा—'आइए मिरजा साहब तशरीफ रखिए।'

मिरजा रोज की तरह अपनी जगह पर बैठ गये। कौतूहल से उनके अन्दर खलबली पड़ी हुई थी। दीवानखाने की सजावट और नवाब साहब की हुलिया को देख कर वह चुप न रह सके। अन्त में पूछ ही लिया—'आज तो जनाब का ठाठ बिलकुल शाहाना नजर आ रहा रहा है?'

जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—'आज जो कुछ आप देख रहे हैं। यह सब वहीदन की करामात है। इसमें मेरा जरा भी हाथ नहीं है। मैं एक काठ का पुतला हूँ जिसका धागा वहीदन के हाथ में है। वह चाहे जिस तरह नचाये। नाचना मेरा काम है। क्या करूँ उसके सच्चे इश्क और सच्ची मोहब्बत से मजबूर है।'

'यह तो मैं समझता हूँ?' मिरजा ने कहा—'लेकिन वजह न मालूम होने से जरा···'और मुस्करा कर रह गये।

'वजह में अर्ज करता हूँ!' नवाब ने इतमीनान के साथ कहा—'वहीदन आज हमारी सालगिरह मना रही है। बहुत बड़ा इन्तजाम, अहतमाम कर रखा है। हमारे

जो दो-चार पुराने दोस्त-अहबाब इस वक्त लखनऊ में मौजूद है। जैसे हमारे गोला गंज के पड़ोसी नवाब जाफिर अली खाँ के साहब जादे नवाब राहत अली खाँ, पुराने यार नवाब सुलतान अली खाँ और वजीर गंज के नवाब सरफराज अली खाँ को भी दावत दी है, बुलाया है। शायद कुछ देर में वह लोग आते होंगे।'

तभी अन्दर से वहीदन मुस्कराती हुई दीवानखाने में आ गई। आज वहीदन का भी ठाठ देखने लायक ही था। उसका बनाव सिंगार जो कुछ भी था बहुत जोरदार था। आते ही वहीदन ने मिरजा जफर हुसेन से कहा—'ऐ, मिरजा साहब, कल शाम को आप कहाँ थे? मैंने पहले दो बार आप के यहाँ नादमी भेजा, आप नहीं मिले। चिराग जलने के कुछ पहले मैं खुद नवाब के सालगिरह की दावत देने के लिए आपके दरे-दौलत पर हाजिर हुई फिर भी आप गायब रहे।' और वह वहीं नवाब के सामने बैठ गई।

'चलो रहने दो!' मिरजा ने मुस्करा कर कहा—'आप भला मुझे क्यों याद करने लगीं। अभी अगर नवाब साहब न फरमाते तो मुझे इस जश्न का पता भी न चलता। मैं तो हस्व-मामूल नवाब साहब की जबान से कहानी सुनने आया था।'

'मिरजा साहब?' जमालुद्दौला ने उनकी तरफ निगाह उठा कर कहा—'आज माफ कीजिए। आज मैं कहानी बयान न करूँगा। आज तो आप इतमीनान के साथ मेरी सालगिरह के जलसे में शरीक हूजिये और बीबी वहीदन के हौसले की कदर कीजिए। ये कल से इन्तजाम में जुटी हुई हैं। जाने क्या किया है। मुझे तो कुछ पता भी नहीं।'

'क्यों बीबी वहीदन?' मिरजा ने पूछा।

'ऐ, मैं किस लायक हूँ मिरजा साहब? क्या कर-धर सर सकती हूँ? लेकिन अन्दर वाला जबर्दस्त है। वह नहीं मानता। अपने माशूक के लिए हर वक्त मर मिटने को तैय्यार रहता है। वही आज भी अपने माशूक की सालगिरह मना रहा है।' और उसने नवाब जमालुद्दौला के चेहरे पर नजर जमा दी। नवाब मुस्करा कर रह गये।

'नवाब की तरफ से निगाह हटा कर वहीदन ने मिरजा शैदा से कहा—'मिरजा शैदा साहब? मैं आज आप से एक बात पूछना चाहती हूँ?'

'शौक से पूछिए?'

'ये रोजाना जो नवाब साहब आपको कोई दास्तान-सी सुनाया करते हैं और आप कागज पर कलम घसीटते हुए उसका मसौदा तैय्यार किया करते हैं, यह कैसी क्या कहानी है? बड़ी लम्बी भी मालूम होती है। जो ढाई घन्टे रोज चलने पर भी अभी तक खतम नहीं हुई?'

'वाह बीबी वहीदन? तुम्हें अभी तक पता नहीं, यह कैसी क्या कहानी है?'

'ऐ, बिना बताए मैं क्या जानूँ? मैंने कभी बैठ कर सुना थोड़े है।'

'अरे वह बड़ी दिलचस्प कहानी है। उसमें नवाब जमालुद्दौला साहब की

सारी जिन्दगी का दुख-सुख, उतार चढ़ाव और इस वक्त तक के सभी रंग भरे हुए हैं।'

'ऐ, तो यों कहिए मिरजा साहब कि नवाब आप को 'आप-बीती सुनाया करते हैं ?'

'बिलकुल यही बात है ?'

'तब आप उसे कलमबन्द करके क्या कीजिएगा ?'

'क्या करूँगा यह तो समझने की बात है। एक अच्छे उपन्यास की शकल में उसे छपाऊँगा। हर कोई उसे पढ़ेगा और लुत्फ उठाएगा। और इस तरह से नवाब का नाम हमेशा जिन्दा रहेगा। तुम जानती हो कि अमीर-गरीब, बादशाह-फकीर कोई भी इस दुनिया में आकर जिन्दा नहीं रहा करते। सब को मौत अपने पेट में रख लिया करती है। सभी गुमनाम हो जाते हैं। लेकिन जिसके नाम के साथ कोई कहानी लगी हुई है और किसी ने उनकी उस दास्तान को किताब की शकल में लिख रखा है उनका नाम अभी तक जिन्दा है और आगे भी जिन्दा रहेगा।'

'यह तो आपका कहना बिलकुल सही है।' वहीदन ने धीरे से कहा। फिर जरा देर चुप रहने के बाद मिरजा की नजर से नजर मिला कर कहा—'अच्छा मिरजा शैदा साहब, अब आप यह बताइए कि नवाब की कहानी में कहीं किसी सिलसिलेलिया या मौके पर उनके नाम के साथ मेरा नाम तो आपने कलमबन्द नहीं कर लिया या कलमबन्द करने का इरादा तो नहीं रखते ?'

'भला यह कैसे हो सकता है कि कहानी में आप का नाम न आए ? सचाई को कैसे छिपाया जा सकता है। फिर आपका नाम तो नवाब साहब की इस जिन्दगी का एक जबर्दस्त हिस्सा है। वह तो जरूर ही लिखा जायगा।'

'उई, मिरजा ?' वहीदन ने कहा—'मुझ निगोड़ी को आप ने बेकार घसीट लिया। मैं इस लायक कहाँ जो नवाब के साथ चल सकूँ। हाँ, यह जरूर है कि दुनिया में ये मेरे माशूक हैं और मैं इनकी आशिका। और यह रिश्ता मेरी इस जिन्दगी के साथ है।'

'तब आप खुद सोचिए कि ये रिश्ता कितना मजबूत है।'

तभी अन्दर से किसी ने आवाज दी और वहीदन दीवानखाने से उठ कर अन्दर चली गई। अन्दर बावर्ची खाना पका रहा था। देग खनक रहे थे। पकवान तैय्यार हो रहे थे और उनकी खुशबू दीवानखाने में भरी जा रही थी।

जमालुद्दौला ने मिरजा शैदा की तरफ नजर उठा कर बड़े इतमिनान और भरोसे के लहजे से कहा—'मिरजा शैदा साहब, इसमें जरा भी शक-शुभा की गुंजायश नहीं कि वहीदन हमारी इस वक्त की जिन्दगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। अगरचे वहीदन की पैदायश एक रंडीं के पेट से हुई थी और शुरू में वह भी एक रंडी ही थी। लेकिन मुझसे मोहब्बत पैदा करने के बाद वह रंडी नहीं रही। उसके सीने के अन्दर का दिल एकदम बदल गया। एक सच्ची, अपने खाविन्द पर जान निछावर

करने वाली औरत का दिल बन गया है। और मैं समझता हूँ कि शायद हुस्नआरा बेगम ही उसे अपना दिल देकर मरी हैं। इन सब बातों की तस्दीक में आप को कल का एक वाकया सुनाता हूँ। जरा गौर से सुनिएगा। कल वहीदन दो पहर से पहले गुलफ़ाम मंजिल में आ गई और आते ही मेरी सालगिरह मनाने की बात पेश कर दी। मैंने कहा कि अब इस बुढ़ापे में मेरी साल गिरह मनाने का क्या तुक है? उसने कहा आप मेरे हौसले को न ठुकराइए। मुझे अपने दिल के अरमान निकाल लेने दीजिए। और वह सालगिरह मनाने की तैय्यारी में मशगूल हो गई।

'मुझे एक मजाक सूझा। जारागाह के कमरे में जाकर पलंग पर चुपचाप पैर फैला कर सीधा लेट गया और कुछ देर बाद बड़े जोर से चीख पड़ा। मेरी चीख सुनते ही वहीदन दौड़ कर मेरे पास आ गई। और भी नौकर-चाकर आ गये। मैं आँखें बन्द किए खामोश बेहोश बना पड़ा था। वहीदन ने दो-तीन बार पुकारा-हिलाया डुलाया, लेकिन मैं उसी तरह बेहोश बना पड़ा रहा। न आँखें खोलीं न किसी को थोड़ा भी हिलाया डुलाया। वहीदन जोर-जोर से रोने लगी। बार-बार मुझसे लिपट जाती और मेरे सीने पर सिर रख कर रोती। उसके आँसुओं से मेरा सीना भींग गया। हकीम जी को बुलाने के लिए नौकर को दौड़ाकर वहीदन भीतर-बाहर एक करने लगी। उसका एक पैर मेरे पंलग के पास और दूसरा हकीम जी की तलाश में गुलफाम मंजिल के फाटक पर था। अबकी बार मेरे पास से जो वह बाहर को भागी तो गुलफ़ाम मंजिल के सदर दरवाजे पर जाकर जमीन पर गिर गई और गिर कर वहीदन वाकई बेहाश हो गई। नौकरों ने शोर मचाया। उनके शोर-गुल की आवाज मेरे कानों में गूँजी। मालूम हुआ कि वहीदन बेहोश पड़ी है। मैंने अपना मजाक खतम कर दिया और पलंग से उठ कर वहीदन के करीब आ पहुँचा। वहाँ हकीम जी आ चुके थे और उन्होंने वहीदन को होश में लाने के लिए लखलखा उसकी नाक पर रखा था। कुछ देर में वहीदन को होश आ गया। आखें खोल दी और मुझे अपने नजदीक खड़ा पाकर उठी और मुझसे लिपट गई। हकीम जी को वहीं से रुखसत करके मैं वहीदन को लेकर कमरे में आया। दोनों पलंग पर बैठ गये। वहीदन ने बड़े प्यार से मुझसे पूछा-'ऐ, मेरी जान के मालिक तुम्हें क्या हो गया था?'

'मैंने मुस्करा कर कहा—'कुछ नहीं, यों ही सो रहा था।'

'लेकिन मेरी तो जान निकल गई थी।'

'मैंने हँस कर कहा—'खैर अब तुम अपने पूरे हौसले के साथ मेरी साल गिरह मना सकती हो।' और वहीदन फिर काम में जुट गई। अब कहिए मिरजा साहब वहीदन का दिल रंडी का है या निकाही बीबी का?'

'आप के इस मजाक को मैं वहीदन की मोहब्बत का इम्तहान कहूँगा।' मिरजा ने कहा।

जो कुछ आप समझें कहें, वह बजा-दुरुस्त है। लेकिन मैंने तो मजाक ही किया था।'

तभी आमंत्रित नवाब राहत मेहमान अली खाँ, नवाब सुलतान अली खाँ और नवाब सरफराज अली खां दीवानखाने में आ मौजूद हुए। जमालुद्दौला ने उठकर दोस्तों का स्वागत किया। गले मिले और उन सब को मसनद पर अपने बराबर से बैठाया। तीनों मेहमानों की उम्र करीब-करीब बराबर की थी। लेकिन ठाठ सभी जवानी के थे और नवाबी रंग में डूबे हुए थे। इतमीनान से बैठ कर तीनों चारों ने मुस्कराते हुए बड़े मीठे लहजों से सालगिरह की मुबारकबाद दी। फिर जमालुद्दौला ने उन तीनों को मिरजा जफर हुसैन शैदा का परिचय दिया। आपस में तस्लीम-दुआ के लिए हाथ उठ गये।

मेहमानों के आ जाने की आहट पाकर बीबी वहीदन अन्दर से दीवानखाने में आई, सब को बड़े अन्दाज के साथ सलाम किया। किसी को सीधी किसी को तिरछी निगाह से देखा और मुस्कराती हुई फिर अन्दर चली गई।

नबाव सुलतान अली खाँ ने मुस्कराते हुए जमालुद्दौला की तरफ नजर घुमा कर कहा, 'मालूम होता है, इस सालगिरह के जलसे-दावत की सारी जिम्मेदारी बीबी वहीदन के सिर पर है।'

'और दूसरा यहाँ कौन है ?' जमालुद्दौला ने मुस्कराते हुए कहा—'फिर इस में भी उनकी एक जिद है। वरना इस उम्र में मेरी सालगिरह मनाई जाना क्या मानी ?'

'खुशकिस्मती है ?' नवाब सरफराज अली खाँ ने कहा।

'वाकई, बीबी वहीदन अपनी नजीर आप हैं।' नवाब राहत अली खाँ ने कहा—'लखनऊ में ऐसा दिल, ऐसी मोहब्बत और ऐसा रिश्ता लगाव बहुत कम देखने में आया है। ऐसी बेलौस, बेगरज मोहब्बत चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी न मिलेगी।'

'मैं तो यही समझता हूँ कि खुदाबन्द करीम ने मुझे अकेला देखकर इस बुढ़ापे की जिन्दगी को आगे ढकेलने के लिए दो हाथ और दे रखे हैं। वरना यह जिन्दगी कभी को खतम हो गई होती।' जमालुद्दौला ने इतमीनान के साथ कहा।

तभी वहीदन ने पुनः दीवानखाने में आकर मीठे स्वर लहजे में बोली-'दस्तरख्वान बिछ चुका है।आप साहबान उस तरफ तकलीफ फरमाएँ।'

सब लोग उठ खड़े हुए और वहीदन के पीछे चलने लगे। गुलफ़ाम मंजिल किसी शाही कोठी से कम न थी। पहले एक लम्बा चौड़ा बरामदा मिला, उसके बाद कई कमरों से होते हुए गुजरे। हर एक कमरा नये ढंग से सजा हुआ, अपनी मिसाल आप ही था। फर्श कालीन, शीशे, तसवीरें, मेज-कुर्सी, पलँग-मसहरी गरज किसी में किसी चीज की कमी नहीं नजर आ रही थी। जहाँ दस्तरख्वान चुना हुआ था उस कमरे की सादगी और सफाई बयान नहीं की जा सकती। मालूम होता था कि शायद दुनिया में कुदरत ने मक्खियाँ पैदा ही नहीं कीं। सभी मेहमान और जमालुद्दौला जमकर दस्तरख्वान पर बैठ गये। लेकिन वहीदन नहीं बैठी। यह देख कर नवाब सुलतान

अली खाँ ने उससे कहा—'बीबी वहीदन ? हम सब के साथ तुम क्यों दस्तरख्वान पर नहीं बैठती ? तुम भी बैठो न ?'

'मैं अगर दस्तरख्वान पर बैठ जाऊँगी तो आप सब साहबान की खातिर कौन करेगा ?' वहीदन ने कहा।

'खातिर नौकर चाकर करेंगे ?' उन्होंने कहा। बिला तुम्हारे साथ के दस्त-ख्वान में कोई मजा नहीं आ सकता। फिर अगर तुम नहीं बैठना चाहती तो हम भी उठे जाते हैं।'

मजबूर होकर वहीदन को सब के साथ दस्तरख्वान पर बैठना पड़ा।

दस्तरख्वान पर कई तरह के खाने पुलाव, मुतंजन, सफेदा, शीर बिरंज, बाकर खानियां, पूड़ी, कचौड़िया, पापड़, कई तरह की खुश्क तरकारियाँ, कबाब, मछली। अचार-मुरब्बे, दही, बालाई और तरह-तरह की मिठाइयाँ चुनी हुई थीं। सव ने खाना शुरु किया। नौकर सभी तरह की चीजें लाकर सामने रखते जा रहे थे। तकल्लुफ का कोई ज़िक्र न था। खाने के साथ हँसी-मजाक भी चल रहा था। मजाक का निशाना बीबी वहीदन थीं। लेकिन वह किसी से कम न थी। वह चुट-कियाँ भरती, वह पैंतरे बदलती, अपनी जवान और आँखों के वह लहजे, वह चमत्कार दिखलातीं कि हर एक चारों खाने चित पड़ा दिखाई दे रहा था।

खाने के बाद बेसनदानी सामने आई। हाथ मुँह धोकर सब लोग दीवान खाने में आ बैठे। पान की गिलौरियाँ सोने चाँदी के वर्को में लिपटी हुई सामने आ गईं। सबने पान खाया और पेचवान का मजा लिया।

इसके बाद सितार और तबले की जोड़ी आ गई। नवाब राहत अली खाँ ने सितार उठा लिया। तारों को मिलाने लगे। किसी के कहने की जरूरत न थी। सभी बे-तकल्लुफ थे। इसलिए नवाब सुलतान अली खाँ ने तबले की जोड़ी अपने सामने खींच ली। सितार के तार झनझना उठे। तबले पर थाप पड़ी। बीबी वहीदन ने पहले एक मुबारकबाद गाया। फिर श्याम कल्याण की एक चीज शुरू की। वहीदन ने बहुत मीठा कंठ-स्वर पाया था। उसका गाना सुन कर महफिल झूम गई।

इसके बाद वहीदन की फरमाइश पर नवाब सुलतान अली खाँ और नवाब राहत अली खाँ ने एक-एक ठुमरी गाई। वहीदन ने अब अपने माशूक नवाब जमालु-द्दौला को पकड़ा, बोली—'अब आप एक ठुमरी गा-बता कर सुनाइए।'

'अभी-अभी तुमने दो ठुमरियाँ सुनी हैं ?, क्या उनसे तुम्हारा पेट नहीं भरा ? अब भी भूखी हो ?'

'अपने माशूक के मुँह से कुछ सुनने के लिए मैं हमेशा भूखी रहती हूँ।' फिर मुस्करा कर कहा-'जब आपने सालगिरह मनाने की मेरी जिद को कायम रखा है तो यह जिद भी रखनी पड़ेगी।'

मिरजा जफर हुसेन बोल उठे—'नवाब साहब, वहीदन हर्फ-हर्फ सही कह रही हैं। आपने हौसले के साथ बीवी को जश्न-जलसा मनाने की इजाचत दी है। इसलिए यह जिद भी उसी हौसले में शामिल है।'

'भई अब हमारी उम्र गाने-बजाने की कहाँ है ?' जमालुद्दौला ने कहा।

'तब क्या नवाब सुलतान अली खाँ साहब और नवाब राहत अली खाँ साहब की उम्र ठुमरी गाने की थी ?' वहीदन ने कहा, ये दोनों साहब तो आप से कुछ बड़े ही है।'

सरफराज अली खाँ ने जमालुद्दौला की नजर से नजर मिलाई बोले—'मैंने आप का ठुमरी गाना तो किसी जमाने में सुना था मगर बताना कभी नहीं देखा। मैं भी उसका मुश्ताक हूँ।'

वहीदन ने अपना दुपट्टा उतार कर उनके सिर पर डाल दिया और बोली—'लीजिए अब शुरु कीजिए।'

जमालुद्दौला ने मजबूर होकर एक ठुमरी गाई—बताई। रस बरस गया। सभी बुत बने बैठे रह गये।

इसके वाद नवाब सरफराज अली खाँ ने मिरजा जफर हुसेन की तरफ देख कर कहा—'मिरजा साहब, आज की महफिल में सभी ने कुछ न कुछ गाया-सुनाया मगर जनाब कोरे ही बच रहे। सुना है आप बहुत अच्छे शायर हैं। फीजमाना बहुत अच्छा कहते हैं। आप भी कोई ताजा तसनीफ गजल वगैरा सुनाएँ।'

'आज मुँह अँधेरे ही जाग गया था। मुँह हाथ धोने के बाद इधर आने के लिए तैय्यार हुआ। लेकिन रुक गया। तबीयत कुछ मौज में थी। बैठकर एक छोटी-सी पाँच शेरों की गजल कह ली। अगर इर्शाद हो तो अर्ज करूँ।'

'बहुत खूब, उसी ताजा तसनीफ को फरमाइए !' सरफराज ने कहा।

सब लोग मुखातिब हो गये। मिरजा शैदा ने गजल सुनाना आरम्भ की:—

'उठा के पर्दे को जलवा दिखा के लूट लिया,
जमाले-यार ने बेखुद बना के लूट लिया।
न ऐसी लूट सुनी थी कभी न देखी थी,
मुकर के, रुठ के, फिर मुस्करा के लूट लिया।
थका था दर्द से झपकी-सी एक आई थी,
सितम जरीफ ने पलकों में आ के लूट लिया।
न पूछो शोख निगाहों की शोखियाँ मुझसे,
कि शरे-आम में छुरियाँ चला के लूट लिया।
बचे न लूट से घर में खुदा के भी शैदा'
किसी ने अपना ही सिजदा करा के लूट लिया।'

गजल सुन कर सब लोग झूम उठे। वाह-वाह की आवाज से दीवान-खाना भर गया।

'कमाल है शैदा साहब !' सरफराज ने कहा—'आपने गजल क्या सुनाई हम लोगों को लूट लिया।'

'अच्छा शेर फौरन याद हो जाता है ।'जमालुद्दौला ने कहा—'मुझे यह शेर बार-बार याद आ रहा है:—

न ऐसी लूट सुनी थी कभी न देखी थी,
मुकर के रुठ कें फिर मुस्करा के लूट लिया ।'

'वाकई, मिरजा शैदा ने कलम तोड़ दी है ।' सुलतान अली खाँ ने कहा—'इस छोटी सी गजल की जिस कदर दाद दी जाय, जितनी तारीफ की जाय कम है ।'

मिरजा शैदा ने तसलीम के लिए हाथ उठा दिया ।

वहीदन बोली—'ऐ मिरजा शैदा, आप तो बड़े छिपे रुस्तम निकले । मुझे अभी तक पता नहीं था कि आप इतने बड़े जादूगर हैं । इतनी धूम-धाम की गजल कहते हैं । खैर, आज तो छोड़ रही हूँ लेकिन किसी दिन ऐसा पकड़ूंगी कि हुलिया तंग कर दूँगी ?' और वह हँसने लगी ।

शाम करीब आ गई थी, इसलिए बैठक खतम हो गई । मेहमान अपने-अपने घर चले गये । दीवानखाने में नवाब जमालुद्दौला और वहीदन बैठे रह गये ।

कुछ देर तक सन्नाटा सा छाया रहा । फिर जमालुद्दौला ने वहीदन की तरफ नजर उठा कर कहा—'बीबी वहीदन, आज तुमने हमारी साल गिरह की महफिल जमा कर हमारी जिन्दगी की बहुत सी पुरानी यादों को सोते से जगा दिया ।'

वहीदन बोली—'मैं एक बात पूछना चाहती हूँ ।'

'पूछो ?'नवाब ने धीर से कहा ।

'कल आप सचमुच में सो रहे थे ?'

'नहीं जाग रहा था ।' नवाब ने मुस्करा कर कहा ।

'मेरे रोने-बिलखने और सबों के शोर-गुल मचाने पर आँखें क्यों नहीं खोलीं थीं ।'

'यों ही ।'

'और कही उसी रंज-ओ-गम की हालत में मैं मर गई होती । तब ?

'तब क्या ? इसी गुलफाम मंजिल में कफन-दफन कर दिया जाता । और एक खूब सूरत कब्र बनवा कर उस पर लिखा होता, 'शहीदे वफा ।'

'अरे मेरे माशूक, तुझ पर कुर्बान जाऊँ ।' और वहीदन नवाब के गले से लिपट गई । उधर चिराग जल उठे ।

चौबीस

दूसरे दिन की बैठक में जमालुद्दौला ने कहा, 'मिरजा शैदा साहब, उस दिन शाम को सरफराज अली खाँ ने नवाब इफ्तखार अली खाँ के यहाँ की जो बातें मुझे सुनाई, उनमें खास बात सिर्फ एक ही थी जो इफ्तखारुद्दौला के मुँह से निकली थी। और वह यह कि अगर मैं अपने हिन्दू धर्म को छोड़ कर इस्लाम धर्म कबूल कर लूँ, कलमा पढ़ कर उस पर ईमान ले आऊँ तो हुस्नआरा मुझे मिल सकती है। उसकी शादी मेरे साथ की जा सकती है। यह सुन कर मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। इस धर्म-परिवर्तन के सवाल ने मेरे अन्दर खलबली पैदा कर दी एक संघर्ष सा छिड़ गया। एक तरफ रुप सौन्दर्य और प्रेम स्नेह की चाह और दूसरी तरफ अपना धर्म अजब तरह की खींचातनी थी। सैकड़ों तरह के विचार आ-जा रहे थे।—जीवनलाल तू जन्म-जात हिन्दू है ··· याद कर जब तू अपनी कृष्ण -भक्त माता के साथ कृष्ण के मूर्ति के सामने खड़ा होकर सूरदास के पद गाया करता था। सुखसागर और प्रेमसागर पढ़ कर माँ को सुनाया करता था। उसके बदले अब मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ेगा? रोजा रहेगा? पूर्व को छोड़ कर पश्चिम की पूजा करेगा? सिर्फ एक हुस्नआरा के लिए? दूसरा ख्याल कहता—सौन्दर्य ही तो भगवान का सत्य रुप है। वही तो सत्यम् शिवं सुन्दरम् है। चाहे उसे मन्दिर में जाकर देख, चाहे मस्जिद में जाकर उसके आगे सिजदा कर। बड़ी जबरदस्त चपकलश थी। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। हर एक विचार अपनी तरफ खींचता था और मेरे कदम डगमगा कर रह जाते थे। कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था।

'इसी उधेड़वुन में उस रात मैंने खाना नहीं खाया। जाकर पलंग पर लेट गया। आँखों में नींद कहाँ थी। करवटें बदल-बदल कर ख्यालों से उलझने-सुलझने लगा। बमुश्किल तमाम टूटती रात में आँखें झपक गईं। और एक सपना सामने आ आ गया। 'वही नखास बाजार वाली मेरी दूकान है। वही हमारे मुनीमजी हैं और वही मेरे लालाजी। लालाजी और मुनीमजी की गद्दियाँ पास-पास हैं। मेरी गद्दी उन दोनों से हटकर दूसरी तरफ है। मुनीमजी और लालाजी में धीरे-धीरे बातें चल रही हैं, मेरे हाथ में कोई बही खाता है। आँखें उस पर जमी हैं। लेकिन कान उनकी बातों की तरफ खड़े हैं। पूरे ध्यान के साथ उन दोनों की बातें सुन रहा हूँ। उनकी बातों का विषय मेरी शादी है। मुनीमजी, मेरे लालाजी से कह रहे हैं—'लालाजी अब आप चिन्ता न कीजिए। जीवनलाल का ब्याह बहुत जल्द हो जायगा क्योंकि मुझे अपने प्रयत्नों में पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई है। लेकिन ब्याह न होकर निकाह होगा।

जीवनलाल को हिन्दू धर्म त्याग कर मुसलमानी मजहब अपनाना पड़ेगा।' मुनीमजी की सुनकर लालाजी कह कर रहे हैं—'निकाह-ब्याह में क्या अन्तर है। वे कोई अलग-अलग काम थोड़े ही हैं। काम एक ही है चाहे उसे निकाह कहो चाहे ब्याह। दोनों रसमों का मतलब स्त्री-पुरुष को एक सूत्र में बाँध कर सुखी-जीवन के मार्ग पर अग्रसर कर देना है। और जो तुमने धर्म-परिवर्तन के बारे में कहा। उसमें भी कोई अन्तर नहीं है। धर्म सभी एक हैं। ईश्वर एक है, चाहे उसे राम कहो चाहे रहीम कह कर पुकारो। वही मस्जिद में है और वही मंदिर में। लोगों ने उसके पास पहुँचने के अलग-अलग मार्ग अपना लिए हैं। और उन रास्तों को धर्म के नाम से पुकारने लगे हैं। अगर जीवन को राम के बजाय खुदा कहना पड़ेगा, मंदिर में मूर्ति के आगे माथा टेकने के बदले मस्जिद में जाकर सिजदा करना पड़ेगा तो उसमें कौन सी बुराई है। मुसलमान और हिन्दू दोनों के शरीर में एक ही आत्मा है। हमारे नजदीक वही धर्म, वही ईमान और वही विश्वास सच्चा है जिससे दम्पति का जीवन सुख-मय रहे।'

'तभी सपना टूट गया। आँखे खुल गईं। कहीं कुछ न था। बाहर सदर द्वार की सांकल बड़े जोर से बज रही थी। जाकर दरवाजा खोला। पंडिताइन और कहारी अपना-अपना काम-काज करने आई थीं। दोनों अन्दर आकर काम में जुट गईं। मैं मुँह-हाथ धोने के लिए गुसलखाने की तरफ चला गया।

'मुझे मालूम हो चुका था कि हजरत जाने-आलम की बीमारी दूर हो चुकी है और बहुत जल्द गुस्ल-सेहत लेने वाले हैं। एक अर्से से मैं उनकी खिदमत में पहुँचा भी नहीं था। इसलिए नहा-धोकर मैंने कपड़े बदले, थोड़ा सा नाश्ता किया और शाही मंजिल पहुँचने के लिए तैय्यार हो गया। पंडिताइन और कहारी भी अपना काम निपटा चुकी थीं, इसलिए वे दोनों भी इजाजत लेकर अपने-अपने घर चली गईं। और मैं दरवाजे पर ताला लटका कर शाही महलों की तरफ चल पड़ा।

'कुछ आगे चलने पर मैंने देखा कि सड़क के किनारे एक फकीर पड़ा है। जैसे ही मैं उसके नजदीक पहुँचा वह उठ कर बैठ गया और हाथ से इशारा करके मुझे अपने पास बुलाया। मैं सहज भाव से उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। वह बोला, 'जानते हो मैं कौन हूँ?'

'नहीं।' मैंने धीरे से कहा।

वह धीरे से बोला—'ठीक है। तुम क्या जान सकते हो?' फिर मेरी तरफ-नजर उठा कर कहा, 'मैं वही हूँ जिसने कभी तुम्हारी माँ की गोद में गुलाब का फूल डाला था और तुम पैदा हुए थे। खैर, अब दीन इसलाम पर ईमान लाओ। खुदा एक है। सब के दिलों में एक ही खुदा है। उस पर यकीन करो। तुम्हारी मुराद पूरी होगी।' और वह उठ कर बगल की गली में जाकर गायब हो गया। उस वक्त मैंने उसके कहने का कुछ ख्याल नहीं किया। यों ही पागल की बकवास समझ कर अपने रास्ते पर चल पड़ा।

'शाह मंजिल पर पहुँच कर फीरोजुद्दौला नजर आ गये। मैंने उनसे जाने आलम के पास सलाम पहुँचा देने को कहा। उन्होंने कहा—'जरा ठहरिए, जाने-आलम ने आज बड़े सुबह गुस्ले सेहत लिया है। मसनद नशीन हैं। लेकिन इस वक्त उनकी खिदमत में वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ, हजरत सलामत के फूफा इफ्तखारूद्दौला और मेहदी अली खाँ मौजूद हैं। बातें चल रही हैं। उन तीनों के बाहर आते ही मैं आप का सलाम हजरत सलामत के पास पहुँचा दूँगा।'

'मैं इतमीनान से तिपाई पर बैठ गया। करीब आधा घन्टे बाद वह तीनों असहाब अन्दर से बाहर आए। सलाम-दुआ हुई। नवाब अली नकी खाँ ने धीरे से इफ्तखारुद्दौला से कुछ कहा जिसे मैं सुन नहीं सका। लेकिन उनका कहना सुन कर इफ्तखारुद्दौला ने बड़े गौर से मेरी तरफ देखा। फिर तीनों असहाब अपनी सवारियों पर सवार हो कर चले गये। फीरोजुद्दौला ख्वाजा सरा ने अन्दर जाकर हजरत से मेरा सलाम अर्ज किया। उन्होंने मुझे अपने पास बुला लिया। आदाब-सलाम के बाद जाने-आलम ने बैठने का इशारा किया। जाने-आलम मसदन पर तकिए का सहारा लिए बैठे थे। मैं कालीन का एक कोना दबाकर कायदे से बैठ गया। जाने-आलम के होंठ मुस्कानों से भरे हुए थे और निगाह बार-बार मेरी तरफ घूम रही थी।

'कुछ देर इसी तरह गुजर जाने के बाद उन्होंने ने कहा—'जमालुद्दौला ? तुम बड़े खुश किस्मत हो ? जानते हो क्यों ?'

'हुजूर अपनी खुशकिस्मती को अकेला मैं नहीं जानता। सारा लखनऊ जानता है ?'

'तुम क्या जानते हो ?' उन्होंने संजीदा लहजे से पूछा।

'जाने-आलम ने मुझ नाचीज को खाक से पाक किया है। नवाजिशों का ढेर मेरे सामने लगा कर खिताव अलकाव अता फरमा का मेरी इज्जत को आसमान पर चमका दिया है। इससे बढ़ कर और कौन सी खुशकिस्मती हो सकती है ?'

'वह हँस पड़े बोले—अभी तुम अपनी खुशकिस्मती को वाकई तौर पर नहीं-समझपाए।'

'मैं चुप रहा।

'जाने-आलम ने कहा—'खुशकिस्मती उसका नाम है जो इन्सान की सारी जिन्दगी को खुशियों से भरी रखे। यह काम इज्जत अफजाई और खिताव अलकाब नहीं कर सकते। हमारी नवाजिश भी नहीं कर सकती क्योंकि इन सब की जिन्दगी बहुत छोटी हुआ करती है। मान लो आज हम बादशाह हैं। तुमसे खुश हैं। तुम्हें चाहते हैं और अपनी इनायतों-मेहरबानियों को तुम्हारी तरफ उछाल रहें हैं। लेकिन क्या यह हमेशा कायम रहने वाली और तुम्हें खुश रखने वाली कही जा सकती हैं ? हरगिज नहीं। तुम्हें और तुम्हारी जिन्दगी को खुश रखने वाली तुम्हारी नेकबख्त बीवी होगी। उसी की सोहबत-मोहब्बत और खिदमत को तुम्हारी खुशियों का सच्चा

बाइस कहा जा सकता है। और ये बातें एक तुम पर ही मुनहसर नहीं, हर इन्सान पर लागू हैं।'

'अगर हुजूर गुस्ताखी माफ फरमाएँ तो अर्ज करूँ ?'

'हाँ, हाँ, विला किसी झिझक-संकोच के कहो।'

'उस दिन जो हुजूर ने कुछ बेगमात साहिबान को बेवफाइयाँ सुनाई थी, उन्हें सुन कर मेरा दिल काँप उठा था और······'

'जाने-आलम बीच में बोल उठे—'जरूर काँप उठा होगा। मगर दुनिया में सभी औरतें एक तरह की नहीं हुआ करतीं। अपने हाथ की पाँचों उगँलियाँ भी बराबर नहीं नजर आतीं। फिर खानदान, शराफत और खून का भी फर्क हुआ करता है। शरीफ में शराफत की खुशबू और रजील में नीचता की बदबू होना मानी हुई बात हुआ करती है।'

'मैं कुछ नहीं बोला। समझ में भी नहीं आया था कि जाने-आलम के यह सब कहने का मतलब क्या है ?

'जाने-आलम ने फिर कहा—'अभी तुम्हारे आने के पहले; हमारे सामने तुम्हारे व्याह का सवाल चल रहा था। नवाब इफ्तखारुद्दौला अपनी साहबजादी तुम्हें सौंपना चाहते हैं क्यों कि वह नेकबख्त लड़की तुम्हें चाहती है और उसकी चाह बड़ी कीमती मालूम होती है। उसकी मोहब्बत एक सच्ची बीबी के गहरे रंग में डूबी हुई है। लेकिन'······वह चुप रह गये।

'अब मैं बहुत कुछ समझ गया था। हुस्नआरा का वह चाँद सा चेहरा जो कभी मैंने सरफराज के दीवानखाने में बैठे हुए देखा था, मेरी आँखों के आगे आकर घूम गया। और मैं आगे जाने-आलम का कहना सुनने के लिए संभल गया।

'जाने-आलम ने पूछा—'जमालुद्दौला धर्म-मजहब के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ? तुम हिन्दू हो, हम मुसलमान हैं ? इसमें क्या फर्क मानते हो ?'

'मैंने पिछली रात में जो सपना देखा था और व्याह-निकाह, हिन्दू मुसलमान के विषय में मेरे लाला जी ने जो कुछ कहा था, उसका एक-एक हर्फ मुझे याद आ गया और मैंने जाने-आलम से अर्ज किया-हुजूर मेरे नजदीक तो धर्म मजहब इसी दुनिया की चीज हैं। दुनिया वालों ने ही उनको गढ़ लिया है। खुदा के यहाँ से तो हिन्दू मुसलमान एक ही शकल और एक ही तरह से दुनिया में आए हैं। इन्सान की शकल में जो एक दरख्त नजर आता है हिन्दू मुसलिम और जो भी धर्म मजहब यहाँ मौजूद है सब उसी की शाखें और फूल पत्ते हैं। दरख्त की जड़ एक ही है। खुदा एक है, उसके नाम जुदा-जुदा हैं। और उन्हीं नामों के जरिए लोगों ने धर्म मजहब बना लिए हैं।'

'तुम्हारा ख्याल बिलकुल सही है। क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सब एक ही खुदा के बन्दे हैं। उस तक पहुँचने की सिर्फ राहें अलग अपनाए हुए हैं।' फिर जारा-देर खामोश रहने के बाद कहा—'हमें इफ्तखारुद्दौला से यह तो अच्छी तरह मालूम

हो चुका है कि उनकी लड़की हुस्नआरा तुमसे मोहब्बत रखती है। लेकिन अभी तक हमें इस बात का पता नहीं है कि तुम्हारे दिल में भी उसके लिए चाहत है या इकतरफा इश्क-व-मोहब्बत है। अगर इकतरफा ही चाहत है तब तो बेकार सी बात है। इकतरफा मोहब्बत एक तरह बबाले-जान हुआ करती है। मोहब्बत का लुत्फ उसी हालत में है जब दोनों तरफ बराबर की आग लगी हो?'

'अब मैंने जाने-आलम से कुछ छिपा कर रखना गुनाह समझा। इसलिए शुरू-दिन लाला मुन्नीलाल के यहाँ की दावत से लेकर सरफराज अली खाँ के यहाँ तक की सारी कहानी कह सुनाई।

'ऐसी सूरत में तो तुम दोनों को एक धागे में जरूर बंध जाना चाहिए।' जाने-आलम ने कहा। फिर जरा रुक कर कहा—'लेकिन इफ्तखारुद्दौला की जिद कुछ और है। वह ऐसे पक्के मुसलमान हैं कि अपनी लड़की की गाँठ किसी हिन्दू से नहीं बाँधना चाहते। कहते हैं कि अगर जमालुद्दौला कलमा पढ़ कर दीन इसलाम पर ईमान ले आएँ तो मैं उसी दिन उनके साथ हुस्नआरा का निकाह पढ़ा दूँ।'

'मैं कुछ नहीं बोला।

'जाने-आलम ने फिर कहा—'हमारा ख्याल तो यह है कि इश्क-व-मोहब्बत में धर्म मजहब के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जब दोनों मियाँ-बीबी के दिल एक होने के लिए तैय्यार हैं, ऐसी सूरत में न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान और जिद पर हुस्नआरा हिन्दू धर्म अपना सकती है और जमालुद्दौला दीन इसलाम कबूल कर सकते हैं।' और वह मेरी तरफ देख कर मुस्करा दिए।

'तभी फिरोजुद्दौला ख्वाजासरा ने आ कर अर्ज किया—'जहाँपनाह, नवाब सुलतान जहाँ बेगम साहिबा कुछ अर्ज करने के लिए खिदमत में हाजिर होना चाहती हैं।'

'कह दो, इस वक्त यहाँ हमारे पास कोई गैर नहीं है, सिर्फ जमालुद्दौला हैं।' जाने-आलम ने कहा—'वह शौक के साथ तशरीफ ला सकती हैं।'

'फीरोज गया और दूसरे ही क्षण नवाब सुलतान जहाँ बेगम ने आकर हजरत के आगे सिर झुका दिया, बोलीं—'हुजूर हम एक बहुत खुसियों भरी अर्ज लेकर आए हैं।'

'जाने-आलम ने बेगम का हाथ पकड़ कर मसनद पर बैठाते हुए कहा, 'हाँ हाँ, हम वह खुशियों भरी अर्ज जरूर सुन कर कबूल करेंगे।'

'आज का दिन बहुत खुशी का है। बड़ी मुश्किलों से हासिल हुआ है?' बेगम ने प्रसन्न मुख मुद्रा से कहा—'जाने-आलम ने कम्बक्त बीमारी से छुटकारा पाकर गुसले-सेहत लिया है। हरम की सभी बेगमात साहिवान के दिल फूल रहे हैं। खुशियाँ उमड़ी चली आ रही हैं। उनके इजहार के लिए आज रात में हरम की हम सब बेगमात नाच-गाने की महफ़िल जमाना चाहती हैं।' इजाजत दीजिए और उस महफिल में खुद तशरीफ रख कर उसे कामयाबी बख्शिए।'

'जरूर-जरूर'—जाने-आलम ने मुस्करा कर कहा—'हम जरूर महफिल में शरीक होंगे। आप लोग बड़े शौक के साथ नाच गाने की महफिल गरम करेंगी। एक अर्से से नाच गाने की कोई महफिल भी तो नहीं जमी।'

'जी हाँ हुजूर ?' बेगम ने मुस्करा कर कहा—'हम सब के दिल ठण्डे हो रहे थे। आज अपने अपने हौसले पूरे कर लेंगी।'

'मगर सुलतान जहाँ साहब ? तुमने अपनी उस महफिल में शिरकत करने की जमालुद्दौला को दावत नहीं दी ? हमारे मुसाहबों में एक जमालुद्दौला ही तो ऐसे मुसाहब हैं जो बिना किसी रोक-टोक के जनानखाने की महफिल में शरीक हो सकते हैं। इनसे किसी बेगम को पर्दा भी तो नहीं हैं। सभी वे-तकुल्लफ हैं।'

'हजूर गलती हुई। माफी चाहती हूँ ?' फिर जमालुद्दौला की तरफ नजर घुमा कर बेगम ने कहा—'जमालुद्दौला साहब ? हमारी इस गलती का कोई ख्याल न कीजिएगा ? महफिल में शरीफ होने की तकलीफ कीजिएगा।'

'मैंने सिर झुका कह अर्ज किया—'जरूर हाजिर हूँगा।'

'इसके बाद जरा देर खामोशी रही। फिर जाने-आलम एकाएक चौंक से पड़े। बोले, वाह हम तो बिलकुल भूल ही गये ?'

'क्या हुजूर ?' बेगम ने पूछा।

'आज हमने गुस्ले-सेहत लिया है। जनाब वालदा साहिबा मलिका किश्वर बहादुर के मुजरे और नजर पेश करने के लिए हमें छतर मंजिल पहुँचना जरूरी था और इसी इरादे से हम यहाँ आ बैठे थे। मगर वहाँ बैठते ही वजीर नवाब मदाहद्दौला, इक्तदारुद्दौला और इफ्तखारुद्दौल आ गए। उन लोगों से काफी देर तक बातें चलती रहीं। छतर मंजिल जाना ख्याल से उतर गया। फिर जमालुद्दौला से कुछ बातें कीं। धीरे-धीरे यह वक्त हो गया। खैर कोई हर्ज नहीं है। हम अभी जा रहे हैं, फिर मसनद से उठते हुए कहा—'नवाब सुलतान जहाँ साहब, क्या तुम भी हमारे साथ अम्मी हुजूर से सलाम करने चलोगी ?'

'जरूर चलेंगी ?' बेगम ने कहा।

'तब चलो ?' जाने-आलम बेगम का हाथ पकड़े वहाँ से चले गये। और मैं भी शाह मंजिल से अपने घर आ गया।

'रात का पहला पहर शुरू होने के बाद ही मैं शाही जनानखाने में पहुँच गया। वहाँ जश्न-जलसे की पूरी तैय्यारी थी। जाने-आलम जर्क-बर्क पोशाक पहने हुए मसनद-नशीन थे। इस वक्त उन्होंने सिर पर खजाटित कुलाह पहन रखी थी जिस का बड़े छोटे सच्चे मोतियों की सात लड़ियों का गुच्छा उनके दाहने कान पर झूल रहा था। हर एक बेगम ने अपने आप को नई दुलहिन की तरह सजा रखा था। हर-एक बेगम के पैरों में घूंघरु बँधे रए थे। उनकी जरा सी हरकत पर छम-छम की झंकार ये साथ घुंघरू बज उठते थे। महफिल में साजिन्दा एक भी नहीं था। लेकिन बाजे सभी मौजूद थे। सारंगी, पखावज, तबला-सितार और मजीरा वगैरा किसी की

भी कमी न थी। जो बेगम जिस साज को बजाने की काफी महारत रखती थी वह उस साज को संभाले हुए थी।'

'महफिल में सब से पहले बेगमों ने नाच शुरू किया। एक बेगम दूसरी बेगम के बाजू में बाजू डाल कर कभी अपना पंजा दूसरे के पंजे से मिला कर, कभी अपना हाथ दूसरी बेगम के कमर पर रख कर और कभी दास पाँच मिलकर सिल-सिले के साथ एक-एक के बाजू पकड़ कर गोल चक्कर बना लेती थी और तरह तरह के नाच,नाच रही थीं। एक साथ उनके घुँघरुओं की झंकार गूँजती और एक जोरदार छमाके के साथ बन्द हो जाती थी। जाने-आलम बैठे झूम रहे थे। और मुझ पर तो एक तरह से बेहोशी सी छा रही थी। पत्थर की मूर्ति बना बैठा था। लगभग डेढ़ दो घन्टे तक नाच जारी रहा। कुछ बेगमों ने अजब तरह के स्वांग भरे थे। ऐसे रूप बनाए थे कि पहचानना मुश्किल था। मैंने अपनी आँखों से देखा कि किसी एक बेगम ने वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ का ऐसा रूप भरा कि किसी बात में जरा भी फर्क नजर नहीं आ रहा था। वही चेहरा-मोहरा वही वजारत की पोशाक पगड़ी और बात करने का वही ढंग लहजा। जाने किधर से उन नकली वजीरे आलम ने जाने-आलम के सामने आकर उनके साथ में एक कागज दिया। कागज को हाथ में लेकर जाने-आलम पूरी तरह धोखा खा गये। उनकी तरफ नजर उठा कर बोले—'आप इस वक्त यहाँ कहाँ ?' वजीरे-आजम ने अर्ज किया—'सुलताने-आलम बाहर रेजीडेन्ट साहब आप का इन्तजार कर रहे हैं। कोई जरुरी काम से आए हुये है।' जाने-आलम मसनद पर से उठने को हुए तभी वजीर रुपी बेगम खिल-खिला कर हँस पड़ी। दूसरी बेगमों ने भी तली बजा कर कहकहे और ठहाके ऊँचे किए। जाने-आलम भी मुस्करा दिए।

'इसके बाद गाना शुरू हुआ। बारी-बारी से कई बेगमों ने ठुमरियाँ और गजलें गाई। रस बरस गया। आखीर में जाने-आलम की फरमाइश पर नवाब दिलदार महल ने यह दादरा गया:—

वंशी वाले से मोरी लगन लागी,

सखियों लगी है अब तो उसीं से मेरी लगन, कहती हैं ब्रज नारी जिसे सांवरे सजन,
रहती हूँ उसकी याद में मैं रात दिन मगन, यह तो बताओ कैसे हो उस यार से मिलन।

जिसको देकर मैं तन-मन हुई त्यागी।

वह रुप माधुरी वह निराली नई अदा, सिर मोर मुकुट कानों में कुंडल की वह छटा, आँखें वह मदभरी हुई वह चाल दिलरुबा, होती नहीं नजर से मेरे इक घड़ी जुदा।

दोई नयना हैं दर्शन के अनुरागी।'

पच्चीस

'उधर नवाब इफ्तखारुद्दौला की जिद अटल थी। इधर जाने-आलम की नवाजिश मंशा,दबाव का जोर काम कर रहा था। उधर हुस्नआरा की कशिश अलग अपना जादू फूँक रही थी।' जमालुद्दौला ने बात आगे बढ़ायी।

'हुस्नआरा को जाने किससे उस हरे नगदार छल्ले का किस्सा जिसके लिए मलिका किश्वर बहादुर ने मुझे नजरबन्द कर रखा था मालूम हो गया था। उसे इसका भी पता चल गया था कि सब्जपरी यानी नवाब माशूक महल साहब गुलफाम पर खास तौर पर मेहरबानी रखती हैं। उन्होंने ही उसे नजरबन्दी से छुटकारा दिलाया था। अपने वालिद इफ्तखारुद्दौला की जिद भी उसे मालूम हो चुकी थी। इसलिए उसने एक रुक्का लिख कर गुपचुप से नवाब माशूक महल की खिदमत में भिजवाया और मुलाकात चाही। माशूक ने उसे कोठी कैंसर पंसद में बुला लिया। हुस्नआरा ने अपना दिल खोल कर उनके आगे रख दिया और कदम पकड़ लिए। बेगम ने हुस्नआरा को पूरी तसल्ली बँधाई। कहा, 'हर सूरत में जमालुद्दौला का निकाह तुम्हारे साथ होगा। वह हमारा कहना हरगिज नहीं टाल सकते।' दूसरे दिन मुझे कोठी कैंसर पसंद में तलब फरमाया। मैं बेगम के सामने हाजिर हुआ। माशूक महल ने मुझसे सवाल किया—'जमालुद्दौला ? तुम हुस्नआरा को जानते हो ?'

'कौन हुस्नआरा हुजूर ?' मैंने सहज भाव से कहा।

'इसके मानी ये कि तुम उसे नहीं जानते।'

'हजूर एक नाम के तो सैकड़ों लोग हुआ करते हैं ?'

'हम नवाब इफ्तखारुद्दौला की साहबजादी के बारे में पूछ रही हैं। जो सआदत गंज में रहती हैं।'

'उनको···जानता हूँ ?'

'और उसे कभी देखा भी है ?'

'जी।' स्वर धीमा था।

'उसे चाहते भी हो ?' फिर नजर उठा कर कहा—'सच कहना। झूठ से हमें नफरत है।'

'जी हाँ, चाहता हूँ ?' सहसा मेरे मुँह से निकल गया।

'किस कीमत पर चाहते हो ? मुफ्त ?'

'इसका मैं कुछ जवाब न दे सका। चुप रह गया।

'चाही हुई चीज मुफ्त नहीं मिला करती।' बेगम ने कहा—'उसके लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ करनी पड़ती हैं? तुम भी कुछ कुर्बानी कर सकते हो?'

'जी।'

'क्या कुर्बानी कर सकते हो?'

'जो हुजूर फरमाएँ।'

'बेगम जरा देर चुप रहीं। फिर नजर उठा कर कहा—'हमारा कहना मानोगे?'

'एक जान से नहीं, हजार जान से हुजूर का कहना मानूँगा।'

'यों नहीं?' बेगम ने जरा मुस्करा कर कहा।

'और किस तरह हुजूर?'

'हमारे सिर की कसम लेकर कहो।'

'मैंने उनके सिर की कसम ली।

'माशूक महल ने गम्भीर होकर कहा—'देखो, हमारा कहना सुन कर कसम से मुकर मत जाना। मर्द की जबान एक हुआ करती है?'

'हुजूर के सिर की कसम लेकर मुकर जाना कैसा?' मैंने दृढ़तापूर्वक कहा—'इस जिन्दगी में मैं ऐसा गुनाह नहीं कर सकता। हुजूर की एक-एक नवाजिश मेरे दिल में घर बनाये बैठी है। क्या मैं इतना नीच हूँ कि उन्हें भूल जाऊँगा और अपने मालिक, अपने सरपरस्त के सिर की कसम को ठुकरा दूंगा? ऐसा ख्याल की जिएगा।'

'हमें तुमसे ऐसी ही उम्मीद है?' उन्होंने विश्वास भरे लहजे से कहा—फिर जरा देर खामोश रहने के बाद नजर उठा कर कहा—'हमारा कहना, हमारी ख्वाहिश और आरजू यह हैं कि तुम हुस्नआरा पर अपने मजहबी ख्यालात को कुर्बान कर दो। कलमा पढ़ कर और दीन-इसलाम पर यकीन लाकर हुस्नआरा को अपने निकाह में ले आओ। उसे अपनी जीवन साथिन बना कर ऐश-आराम की जिन्दगी बरस करो? याद रखो, हुस्नआरा तुम्हारी सच्ची बीबी साबित होगी।'

'बेगम का कहना सुन कर मुझे वह खुदा रसीदा फकीर याद आ गया जिसने कहा था कि दीन-इस्लाम को कबूल करो। तुम्हारी मुराद पूरी होगी। और उसने अपनी दुआ से मुझे दुनिया में आने की भी याद दिलाई थी। इधर बेगम के सिर की कसग खा चुका था। अतः अब मेरे पास इनकार के लिए कोई सांस न थी। मैंने बेगम के आगे सिर झुका कर कहा—'हुजूर का हुक्म मेरे सिर आँखों पर है। मैं कलमा पढ़ने और मजहब इस्लामिया पर यकीन लाने को तैय्यार हूँ।'

'तभी जाने-आलम वहाँ आकर मसनद पर बैठ गये। नवाब माशूक महल ने बड़े खुशी के लहजे से कहा—'लीजिए हुजूर, जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ की गांठ हुस्नआरा बेगम के आँचल से बंध गई।'

'ऐ, किस तरह? अभी हम कुछ समझे नहीं?' जाने-आलम ने कहा।

'जमालुद्दौला हुस्नआरा के लिए अपने धर्म की कुर्बानी करके मजहबे इस्लामिया पर ईमान लाने को तैयार है।'

'मुबारक मुबारक।' जाने-आलम ने मेरी तरफ नजर घुमा कर कहा। फिर मुस्कराते हुए बेगम की नजर से नजर मिला कर बोले—'भई, नवाब माशूक महल साहब ? जमालुद्दौला से कहीं ज्यादा हुस्नआरा मुबारकवाद की मुस्तहक है। जानती हो क्यों ?'

'हुजूर ही फरमाएँ ?'

'यह सब हुस्नआरा के इश्क की करामात है। उन्हीं का जादू जमालुद्दौला के सिर पर चढ़ कर बोला है।'

'और क्या जमालुद्दौला का इस मामले में कोई हिस्सा नहीं कहा जा सकता ?'

'इनका हिस्सा यह है कि इन्होंने एक बहुत बड़ी कुर्बानी करने का इरादा कर लिया है। लेकिन वह कुर्बानी सारी जिन्दगी इन्हें खुश रखेगी।'

'तब यह खबर नवाब इफ्तखारुद्दौला के पास पहुँचा देना चाहिए। ताकि वह जल्द निकाह का इन्तजाम करें।'

'जाने-आलम कुछ देर तक खामोश बैठे कुछ सोचते रहे। फिर नजर उठा कर कहा—'नवाब माशूक महल, इस मामले में अभी कुछ और दिक्कतें हैं। सिर्थ कलमा पढ़ लेने से ही जमालुद्दौला का निकाह हुस्नआरा के साथ नहीं हो जायगा। उस दिन इफ्तखारुद्दौला ने इस बारे में अपने दिल की गाँठ हमारे सामने खोली थी, उससे बहुत सी बातें हमें मालूम हुई थीं ?'

'वह क्या बातें हैं ?' बेगम ने कहा—'हमें तो सिर्फ इतना मालूम हुआ था कि उनकी जिद यही है कि जमालुद्दौला दीन इसलाम पर अपना ईमान ले आएँ। इसलिए इस वक्त हमने वह मसला हल कर दिया। जमालुद्दौला को कलमा पढ़ने के लिए राजी कर लिया।'

'बात यों है कि इफ्तखारुद्दौला अपने बाप-दादों की इज्जत को नहीं खोना चाहते। उनके और कोई औलाद तो है नहीं, सिर्फ लड़की है। इसलिए वह बड़ी धूम-धाम के साथ अक्दशरई करना चाहते हैं। शरा के मुताबिक शादी की सभी रसमें जैसे मांझा, साचक, मेंहदी वगैरा-वगैर सभी कुछ कायदे के साथ पूरा करना चाहते हैं। अब इसमें सवाल यह पैदा होता है कि इफ्तखारुद्दौला तो अपने यहाँ की रसमें अपने हौसले के मुताविक पूरी कर लेंगे। लेकिन जमालुद्दौला के यहाँ की रसमें कौन पूरी करेगा ? यह हजरत तो अपने घर में अभी अकेले है और मुसलमान हो जाने के बाद तो और भी अकेले हो जाएँगे। इनकी जात-बिरादरी के सभी लोग जीवनलाल को जानते होंगे, वह एकदम मुकर जाएँगे। कभी इनका साथ न देंगे।'

'अगर हुजूर हमारी अर्ज कबूल फरमाएँ तो हम कहें।' माशूक महल ने कहा।

'हाँ, हाँ, कहो ?'

'हुजूर हमें इजाजत दे दें। हम अपनी इसी कोठी कैसर पसंद में जमालुद्दौला की शादी का इन्तजाम करेंगी और वाकायदा सभी रसमें पूरी करेंगी।'

'भाई वाह नवाब माशूक महल साहब ?' जाने-आलम ने प्रसन्न होकर कहा–'तुमने तो एक कलम में फैसला कर दिया। सारी दिक्कतें आन की आन में दूर कर दी। तुम बड़ी खुशी के साथ जमालुद्दौला की शादी का इन्तजाम करो। इफ्तखा-रुदौला को हम अभी खबर कराये देते हैं।'

'लेकिन इस वक्त की इन खबरों के साथ इफ्तखारुदौलो को इस बात से भी आगाह कर देना जरूरी होगा कि शादी की हर एक रसम में जल्दी से काम लिया जायगा एक के बाद दूसरी पूरी की जायगी, महीनों नहीं घसीटा जायगा।'

'इसके बाद जाने-आलम उठ कर वहाँ से चले गये। माशूक महल ने मुझसे कहा—'जमालुदौला ! कल रजब की नौचन्दी और जूमरात का दिन है। बहुत खूब है। हजरत अब्बास की दरगाह में जाकर तुम इस्लाम धर्म कबूल कर लो। मोलवी सैय्यद अली साहब वहाँ पहुँच जाएँगे और तुम्हें कलम पढ़ा देंगे। हम कल सुबह इसका इन्तजाम करा देंगी। यह पहला काम है। इसके बाद ही और कामों में हाथ लगाया जायगा।'

'मैं तैय्यार हूँ।' मैंने इतमीन के साथ कहा।

'हाँ एक बात और है।' बेगम ने कहा। 'दीन इसलाम पर ईमान लाने के बाद निकाह के दिन तक तुम्हें इसी कोठी कैसर पसंद में कयाम करना होगा, तभी शादी की रसमें हम पूरी कर सकेंगी।'

'मैंने उनके आगे सिर झुका दिया और वहाँ की बात खतम हो गई।

'जाने किस हवा के झोंके ने मेरी धर्म परिवर्तन की मंजूरी को लखनऊ के इस कोने से उस कोने तक पहुँचा दिया था। शाम के झुरमुट में जैसे ही मैं मकान पर आया, देखा पंडिताइन और कहारी दरवाजे पर खड़ी हैं। उन दोनों को करीब-करीब मेरे घर लौटने का समय मालूम था। मैंने जल्दी से दरवाजा खोला और अन्दर आकर दो तीन सफेद कंवल रोशन किए। अंधेरा घर उजाले से भर गया। बाकी रानियाँ अपने कामो में जुट गई और मैं अपने कमरे में जा बैठा। अब खबर का असर सुनिए, तभी लालाजी के कई पुराने इष्ट-मित्र आकर मेरे पास बैठ गये। उनमें सेठ कुन्दन लाल, गुलाबराय जौहरी लाला कालीचरण खत्तरी और मुंशी गुरुसाहय विशेष थे। मेरी समझ में न आया कि ये लोग इस वक्त क्यों आये हैं ? आखिर मैंने पूछ ही लिया—'आप साहबान ने इस वक्त कैसे आने की तकलीफ उठाई ?

'सेठ कुन्दनलाल बोले—'मैंते सुना है आप धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। अपने बाप दादों का धर्म छोड़ कर मजहव इमाम अपना रहे हैं।'

'मैंने दृढ़ स्वर से कहा—'जी हाँ, कल में दीन इसलाम पर ईमान ला रहा हूँ ?'

'उन्होंने कहा—'क्यों ?'

'इसका मैं क्या जवाब दूँ ?'

'आखिर कोई वजह तो होगी ?'

'वहज, अपना यकीन विश्वास है।'

'यह तो एक टालने की बात है ।'

'में कुछ नहीं बोला । जौहरी गुलाबराय ने मेरी तरफ नजर उठा कर कहा—हमने तो कुछ और सुना है ?'

'आप ने क्या सुना है ?' मैंने धीरे से कहा ।

'हमने सुना है कि आप किसी मुसलमान लड़की से प्रेम करते हैं । उसके रूप लावण्य पर फिदा हैं और उसी को पाने के लिए अपने धर्म से मुँह मोड़ रहे हैं ?'

'क्या किसी से प्रेम करना बुरा है ?' मैंने कहा ।

'प्रेम करना तो बुरा नहीं है । मनुष्य के जीवन का सुख स्त्री-पुरुष का प्रेम ही है । लेकिन क्या प्रेम करने के लिए संसार में एक गैर मजहबी लड़की ही है ?'

'मैं चुप रहा । लाला कालीचरण बोले—'जौहरी जी ? हमने इनके लालाजी के जीवन काल में इनकी शादी की कोशिश की थी । संयोगा वश वह पूरी नहीं पड़ी । हमें लाला चिरजीलाल का अब भी ख्याल है । उनके घर में पुत्र-वधू को लाकर बैठा देना हम अपना कर्तव्य समझते रहे हैं । क्योंकि लालजी विरादरी के सिरमौर और हमारे हितैषी थे । इसलिए हम तभी से प्रयत्नशील रहे हैं । एक लड़की हमारी निगाह में जमी हुई है । हर प्रकार से योग्य है । हम कल ही उसके साथ व्याह संपंन्न कराने को तैय्यार हैं ।'

'क्यों जीवनलाल जी ?' गुलाब राय ने मेरी तरफ देख कर कहा ।

'प्रेम एक ही से किया जाता है । चाहे वह हिन्दू समाज की लड़की हो चाहे मुसलमान घराने की । जीवन का सुख उसी से प्राप्त हो सकता है जिससे प्रेम किया जाता है, सैकड़ों की तरफ ढुलकने वाला प्रेम कलंकित होता है । वह प्रेंम नहीं, उस में वासना की दुर्गंध भरी रहती है ।' मैंनें गम्भीरतापूर्वक दृढ़ स्वर से कहा । 'फिर मैं इस बारे में सुलताने -आलम को वचन दे चुका हूँ ।'

'गुलाबराय जौहरी ने कहा—'जीवनलाल ? थोड़ा समझ से काम लो । तुम अभी हमारे सामने दुधमुँहें बच्चे की तरह हो । हमने दुनिया देखी । धूप में बाल सफेद नहीं किए हैं । इसी लखनऊ में जाने कितने बादशाहों को हम देख चुके हैं । उनके रंग ढंग से उनके चढ़ाव-उतार और उनकी कृपा-क्रोध सभी कुछ हमने अपनी आँखों से देखा है । यहाँ किसी के दिन एक से नहीं रहे । जो आज हाथी पर बैठा कर घुमाया गया, वही कल गधे पर बैठा कर लखनऊ से निकाला गया । सारी मान-मर्यादा जाने कहाँ गायब हो गई । कहने का मतलब यह है कि आज हजरत सुलताने-आलम तुम्हें चाहते हैं अपना मुसाहब बना कर तुम्हारी इज्जत को ऊँचा उठा दिया है । तुम्हें खिताब अलकाब अता फरमाया है । मगर भगवान न करे, कल जाने क्या हो ? समय बदलते देर नहीं लगती । अभी जहाँ धूप चमक रही है जरा देर में वहाँ छाया दिखाई देती है । इन सब बातों को गहराई तक छान कर आगे कदम बढ़ाना चाहिए ।'

'मुझे ये बताइए कि मुसलमान धर्म में बुराई क्या है ? मैं तो समझता हूँ कि ईश्वर एक है । उसी के दो पुजारी हैं । एक कां नाम हिन्दू है । दूसरे का मुसलमान ।

दोनों अपनी-अपनी भावना और विश्वास के साथ उसी एक ईश्वर की पूजा आराधना करते हैं। कहने के लिए उनकी आराधना-अर्चना अलग-अलग है मगर वास्तव में है एक ही।'

'तब इन सब बातों का अर्थ यह है कि आप दीन-इसलाम स्वीकार करके ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं?' मुशीगुर सहाय ने कहा।

'निस्सन्देह?' मैंने दृढ़ स्वर से कहा—'अब मुझे कोई नहीं डिगा सकता।'

'तब आगे कुछ कहना-सुनना बेकार है?' कह कर मुंशी गुरुसहाय उठ कर खड़े हो गये।

'उन सब के चले जाने के बाद कुछ देर तक मैं अकेला बैठा सोच विचार में डूबा रहा। तरह-तरह के विचार आते-जाते रहे।अन्त में सहसा मेरे मुख से तिकल पड़ा, 'उँह, अब मुझे कोई भी ताकत धर्म बदलने से नहीं रोक सकती।'

'मैं उठा, चौक में जाकर खाना खाया और वहाँ से आकर पलंग पर लेट गया। उस रात मुझे बड़ी गहरी संतोष भरी नींद आई।'

छब्बीस

'रजब की नौचंदी जुमेरात का दिन, सबेरे की सफेदी फैलते ही मैंने बिस्तर छोड़ दिया। जरूरियात से फारिग होकर गुसलखाने में पहुँच नहाया-धोया, कपड़े बदले और अपने कमरे में आ गया। पंडिताइन और कहारी अभी तक नहीं आई थी। लखनऊ में मेरे धर्म-परिवर्तन की खबर तो फैल ही चुकी थी। मेरे दोस्त भी सुन चुके थे, इसलिए एक के बाद एक मेरे तीनों जिगरी यार यानी सरफराज अली खाँ, सुलतान अली खाँ और राहत अली खाँ आ पहुँचे। उन लोगों से इसलाम धर्म कबूल करने के बारे में कुछ देर तक बातें होती रहीं। बीच-बीच में यारों की छेड़खानियों और मजाक चुटकियों से कहकहे ठहाके भी चलते रहे। खुशियों की बौछारें पड़ती रहीं।

'सब दरगाह चलने के लिए तैय्यार हुए। राहत अली खाँ ने दौड़कर अपने यहाँ की घोड़ा गाड़ी बुलवा ली और उस पर सवार होकर हम लोग दरगाह की तरफ चल पड़े। वहाँ पहुँच कर देखा कि बहुत बड़ा मजमा था। लखनऊ के करीब-करीब सभी मोलवी मुल्ला उमड़े पड़ रहे थे। तभी फीरोजुद्दौला ख्वाजा सरा ने एक तरफ से आकर हम लोगों को सवाँरी पर से उतारा। फिर मुझसे मुखातिब होकर कहा—'चलिए अन्दर मौलवी सैय्यद जली साहब आप का इन्तजार कर रहे हैं!'

'मैं समझ गया कि यह सब नवाब माशूक महल साहिबा की करामात है। शायद उन्होंने पिछली रात को ही सब को खबर देकर इन्तजाम फरमा दिया था।

'मैं फिरोजुद्दौला के साथ मर्दानी दरगाह का आँगन पार करके अन्दर पहुँचा। तीनों दोस्त मेरे साथ थे। दरगाह के करीब लम्बे-चौड़े कालीन बिछे हुये थे। बड़े-बड़े तकिए रखे हुए थे। उन्हीं पर सैय्यद अली साहब तशरीफ रख रहे थे। उनके इधर-उधर बीस-तीस मौलवीं मौलाना बैठे हुए थे। मैंने कायदे के साथ पहले जनाब सैय्यद अली साहब को और फिर मौजूदा मौलानाओं को सलाम किया। और इजाजत पाकर सामने बैठ गया। मेरे साथी भी बैठ गये। कुछ देर बाद एक मौलवी साहब ने मुझे अलग ले जा कर बजू करने के कायदे बता कर बजू कराया। उसके बाद दरगाह के करीब ही मुसल्ला बिछा। सैय्यद अली साहब उठकर मुसल्ला पर आकर खड़े हुए, पश्चिम का रुख करके मुझे खड़ा किया और कुरान शरीफ हाथ में देकर मुझे कलमा पढ़ाया। उमके बाद मौजूदा सभी मौलवी मौलाना वहाँ आ गये। मुझे नमाज पढ़ना सिखाया गया। फिर सब के साथ में खड़े होकर नमाज पढ़ी और मजहवे-इस्लमिया पर ईमान लाकर मैंने खुदा को सिजदा किया। कुराने-पाक को घूमा। पाँच-सात मौलानाओं ने मिल कर हदीस पढ़ी। जनाव सैय्यद अली साहब ने मेरा नाम वही

घोषित किया जो जाने-आलम ने अलकाब के रूप में अता फरमाया था। यानी 'गुल-फ़ाम अली खाँ।' और अब मैं 'जमालुद्दौला नवाब गुलफाम-अली खाँ' कह कर पुकारा गया।

'इसके बाद मैंने दरगाह पर शमा जलाई, हाजरी चढ़ाई। एक साहब ने मर-सिया पढ़ा। उसके बाद एक मौलवी साहब ने पुनः हदीस पढ़ी। मातम हुआ। मैं भी मातम में शरीक हुआ। अब कहाँ का कोई काम बाकी न था। जनाब सैय्यद अली साहब सवारी पर बैठ कर अपने घर चले गये। उनके जाते ही भीड़ छँट गई। सभी लोग अपने-अपने घरों को चले गये। मैंने जयारत रुखसती पढ़ी और अपने दोस्तों के साथ बाहर आया। आँगन पार करके दरवाजे पर पहुँचा। गाड़ी पर सवार होने वाला था कि देखा जनानी दरगाह की तरफ से अपनी गाड़ी पर सवार होने के लिए हुस्नआरा बेगम चली आ रही हैं। बड़े ठाठ हैं। तोलवां जोड़ा पहने हुए हैं। चार पाँच महरियाँ उनके साथ हैं। कोई पाँयचे संभाले है। कोई पंखा और खासदान लिए है। किसी के हाथों में तबकीत है। मेरी और हुस्नआरा की नजर मिल गई। वह मुस्करा कर अपनी गाड़ी पर सवार हो गई और गाड़ी चल पड़ी।

'मैंने सरफ़राज अली खाँ से पूछा—'इस वक्त ये यहाँ कहाँ ?'

'उसने कहा—'शायद जयारत के लिए आई हुई थीं।' फिर मुस्करा कर कहा, 'अब मांझे बैठेगी न ?'

'हम चारों भी अपनी गाड़ी पर सवार हो गये। गाड़ी के चलते ही मैंने राहत अली खाँ से कहा—'मुझे कोठी कैसर पसंद पर उतार देना।' उसने पूछा—'क्यों अपने मकान नहीं चलोगे ?' मैंने कहा, 'अभी नहीं। जाने-आलम और नवाब माशूक महल साहिबा के आगे सिर झुकाना है।'

'कोठी कैसर पसंद पर गाड़ी रुकी। मैं नीचे उतरा। उन तीनों को लेकर घोरा गाड़ी आगे बढ़ गई।

'फीरोजुद्दौला मुझसे पहले दरगाह से चल कर कोठी में आ गया था। दरवाजे पर मौजूद था। उसके जरिये मैंने बेगम के पास सलाम भिजवाया। उन्होंने तुरन्त ही अपने पास बुला लिया। मैंने उनके सामने जाकर अदब से सिर झुका दिया।

'दरगाह हजरत अब्बास में जो कुछ गुजरा था, वह हर्फ-हर्फ बेगम को फीरोजुद्दौला की जबानी मालूम हो चुका था। मेरे सिर झुकाते ही उन्होंने मुस्कराकर कहा—'तुम्हें दीन इसलाम मुबारक हो। फिर जरा रुक कहा—'उधर तुमने मजहबे इस्लामिया कबूल किया, इधर चौदहवीं रजब शबे महताब तुम्हारे निकाह की तारीख भी तय हो गई और शायद हुस्नआरा बेगम अब मांझे बैठ गई होंगी।'

'इसके बाद मैं जाने-आलम के महलों में पहुँचा और उनके आगे भी सिर झुकाया। उन्होंने भी मुस्करा कर मुबारकबाद दी।'

मिरजा जफर हुसेन ने सवाल पेश किया—'नवाब जमालुद्दौला साहब ? क्या

आप ये बता सकते हैं कि चौदहवीं रजब जो आपके निकाह की तारीख करार पाई थी,, उसका सन् हिजरी क्या था ?'

'बारह सौ छयांसठ हिजरी थी।' जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान के साथ कहा—'वह तारीख और वह हिजरी मैं कैसे भूल सकता हूँ ? वह तो मेरी जिन्दगी की एक जबरदस्त करवट थी।' फिर सांस लेकर कहा—'और उसके बाद ही जाने-आलम ने भी अपनी शादी वजीरे-आलम नवाब मदारुद्दौला बहादुर की तीसरी लड़की रौनकआरा बेगम से की थी।'

'वह किस तरह, जरा फरमाइए ?' मिरजा शैदा ने उत्सुकता के साथ पूछा।

'अभी नहीं, उसे फिर किसी दिन सुनाऊँगा। अभी मेरी शादी तो हो जाने दीजिए। आप तो उसे पीछे धकेलने लग गए।'

'आप पूरे शौक के साथ अपनी शादी कीजिए और मेरी इन गुस्ताखी को माफ कीजिए।' मिरजा ने मुस्करा कर कहा।

'अच्छा साहब, मैं जाने-आलम को सलाम करके जैसे ही दरबारी कमरे से होकर गुजरा, वहाँ दरबारियों और मुसाहिबों की भीड़ जमा थी। आगे कदम बढ़ाना मुश्किल हो गया। सबके सब मुझसे चिपट गये और मुबारकवादियों की भरमार शुरु कर दी। जिससे जो बन पड़ा उसने मजाक भरे फिकरे भी सुनाए और कहकहों की काफी बौछारें की। बमुश्किल तमाम उन लोगों से छुटकारा मिला। वहाँ से जो अपने घर को चला तो हर सड़क, हर गली-कूचे में वही तूफान नजर आया। जिसे देखो वही नवाब गुलफाम अली खाँ को दीन-इसलाम की बधाई दे रहा था। मेरे उस धर्म-परिवर्तन की लखनऊ में एक धूम सी मच गई थी। हर जवान पर वही चर्चा और उसी का जिक्र था।

'हमारे मोहल्ले में भी वही शोर-गुल था। राहत अली खाँ अपनी हवेली के बाहरी बरामदे में बैठे हुए मेरी राह देख थे। दूर से मुझे आता हुआ देख कर दौड़ पड़े। पकड़ कर हवेली के अन्दर ले गये। बोले—'तुम्हारे इन्तजार में अभी तक मैं दस्तरख्वान पर नहीं बैठा। चलो खाना खाएँ। मुझे भूख लग रही है और तुम भी भूखे होगे।'

'तभी राहत अली खाँ के वालिद नवाब जाफिर अली खाँ साहब वहाँ आ गये। पकड़कर मुझे गले से लगा लिया। मुबारक बाद दी। इसके बाद हम तीनों दूसरे कमरे मे गये। दस्तर ख्वान बिछा और तीनों ने साथ बैठ कर खाना खाया।

'तीसरे पहर मैं अपने घर में था। तभी एक के बाद एक-राहत अली खाँ, सरफराज अली खाँ और सुलतान अली खाँ आ गये। इधर-उधर की बातें और हँसी मजाक चलता रहा। फिर सरफराज अली खाँ ने गम्भीर होकर कहा—'देखिए अब आप लाला जीवनलाल नहीं हैं। वह जिन्दगी खतम हो चुकी। आज से आप की दूसरी जिन्दगी शुरू हो गई है। और अब आप हर शकल सूरत, दीन-ईमान और खिताब अलकाब के साथ नवाब जमालुद्दौला गुलफाम अली खाँ साहब हैं ?'

'तब क्या करूँ ?' मैंने मुस्करा कर कहा ।

'नवाबी ठाठ बनाइए । लखनऊ में जिस ठाठ और शान-शौकत से सभी रईस अमीर और नवाब रहते है उसी शान से रहिए ।'

'बेशक ?' राहत अली खाँ ने कहा—'चौदहवीं तारीख को आप का निकाह हो जायगा । बेगम साहिबा आकर घर में बैठेंगी । और आप की ये पुरानी वजा फिता देख कर नाक-मुँह सिकोड़ने लग जायँगी ।'

'अन्दर का दिल तो आपने बदल दिया । लेकिन बाहर का रुपरंग वही मौजूद है । इसे भी बदलने की जरूरत है ।' सरफराज ने कहा ।

'सुलतान अली खाँ ने मुस्कराते हुए चुटकी भरी, बोले—'बाहर का रंग बदलने में मेरी एक इसलाह भी है ?'

'आप की क्या इसलाह है ?' मैंने उनकी तरफ देख कर कहा ।

'वह उसी मुस्कान भरे होंठो से बोले—'मेरी इसलाह यह है कि चौक के कोठो पर से एक नौजवान परी अमाल को चुन कर नौकर रखिए, अपना पाबन्द बनाइए । वह नबाव गुलफाम अली खाँ के दीवानखाने में बगल में बैठी हुई दिल गुदगुदाती नजर आया करे । तभी लखनऊ की नवाबी शान पूरी होगी ।'

'एक जोरदार ठहाका गूँज गया ।

'मैने धीरे से कहा—'यह लखनऊ के खान्दानी नवाबों की जिन्दगी है । उन्हीं को भली मालूम होती है । मैं खान्दानी नवाब नहीं हूँ ।'

'सरफराज ने गम्भीर लहजे से कहा—'खैर, यह तो मजाक था । मैं आप को इसकी इसलाह कभी न दूंगा । हाँ, ठाठ के साथ रहने के लिए जरूर कहूँगा ।'

'शाम होते-होते वह लोग अपने-अपने घर चले गये ।

'दूसरे दिन मैंने पहला काम यह किया कि अहमद अली इमारतों के ठेकेदार को बुला कर मकान की सफाई और सफेदी का ठेका देकर जल्द काम पूरा करने की ताकीद कर दी । वह बहुत चुस्त आदमी था । उसी दिन से उसने काम शुरू कर दिया । इसके बाद मैंने पंडिताइन और कहारी की तनखाहें चुका कर और इनाम-इकराम देकर उनकी छुट्टी कर दी । उनके ऐवज में चार अधेड़ उम्र की महरियाँ और एक मुगलानी जिसकी उम्र पचास से कुछ ऊपर थी नौकर रखी । अपने काम-काज के लिए दो जवान ईमानदार शख्स हसनू और करीम को नौकर रखा । राहत अली खाँ के जरिए एक अच्छी घोड़ा गाड़ी, घोड़ों की जोड़ी खरीद ली और उसके लिए दो साईस और एक कोचवान को भी नौकर रख लिया ।

अहमद अली ठेकेदार ने तीन-चार दिनों में मेरे पुराने मकान को नया बना दिया । और मेरी मंशा के मुताविक हर एक कमरे को सजा-सँवार दिया । मुझे अपनी नजर से कोई कमी न दिखाई दी । सलाहकार दोस्त अहवाव भी इन सभी तबदीलियों को देख कर खुश हो रहे थे ।

'दसवीं रजब की शाम को नवाब माशूक महल साहिबा का बुलावा आ पहुँचा। उस वक्त मेरे तीनों दोस्त मेरे पास बैठे हुए थे। सरफराज ने कहा—'शायद कल से शादी की रसमें शुरू होने वाली होंगी। इसीलिये आप बुलाये गये हैं। तशरीफ ले आइए।'

'मैंने कहा—निकाह के दिन तक तो अब मुझे कोठी कैसर पसंद ही में रहना होगा। क्योंकि बेगम साहिबा यह हुक्म पहले ही सुना चुकी हैं। तब आप तीनों मुझे कहाँ मिलेंगे ?'

'आप हम लोगों की फिक्र न कीजिए।' सुलतान अली खाँ ने कहा—'हम लोग चौदहवीं को ठीक वक्त पर सआदतगंज नवाब इफ्तखारुद्दौला की हवेली पर पहुँच जायेंगे। और बारात महफिल में शरीक हो जायेंगे ?'

'यह कोई गुप-चुप वाली शादी थोड़े ही है। बादशाह सलामत के घर से तुम्मारी शादी की धूम-धाम इफ्तखारुद्दौला के यहाँ तक पहुँच रही है। सभी दरबारी मुसाहब अमीर उमरा और शाही खानदान के लोग बुलाये जायेंगे।' राहत अली ने कहा।

'बात खतम हुई। मैं उठ कर कोठी कैसर पसंद की तरफ चला और वह लोग अपने-अपने घर चले गये। अपना घर मैंने हसनू और करीम के सिपुर्द कर दिया। हसनू बहुत विश्वासी नौकर मुझे मिल गया था। वह पहले नवाब मलिका किश्वर बहादुर के यहाँ था और मैं उसे उसी वक्त से जानता था जब छल्ले वाले मामले में छतर मंजिल में नजरबन्द हुआ था। उन दिनों हसनू बेकार होने की वजह से मेरे पास आ गया था।'

'इस वक्त इस गुलफाम मंजिल में जो हसनू नाम का खिदमतगुजार आप के पास है। क्या यह वही हसनू है।' मिरजा जफर हुसेन ने पूछा।

'जी हाँ, बिलकुल वही है। उसी वक्त से मुझसे चिपटा हुआ है। ऐसा वफादार नौकर मिलना भी किसमत की बात है। खैर, अब आगे का हाल सुनिए। दूसरे दिन से कोठी कैसर पसंद में धूम मच गई। शाही जनानखाने की और भी बहुत सी बेगमें वहाँ आ गईं। जिनमें नवाब सुलतान महल, नवाब हजरत महल, नवाब दिलदार महल, नवाब खुर्द महल और नवाब शैदा बेगम खास थीं। हर रसम बहुत जल्दी के साथ निपटाई जाने लगी। जिस दिन नवाब इफ्तखारुद्दौला के यहाँ से मांझा आया उसके सिर्फ एक दिन बाद इधर से साचक पहुँच गई। उसके दूसरे दिन उधर से मेंहदी आई। जिसके दूसरे दिन ब्याहने जाने की तैय्यारी का शोर ऊँचा हुआ। नवाब माशूक महल किसी बात में हेठी नहीं होने देती थीं। वह खुद दौड़ी-दौड़ी फिरती थीं और उनके साथ दूसरी बेगमें भी बड़े उत्साह के साथ उनका हाथ बँटा रही थीं।'

जमालुद्दौला ने जरा देर ठहर कहा—'मिरजा जफर हुसेन साहब, अब जरा नवाब इफ्तखारुद्दौला के यहाँ का भी कुछ हाल सुन लीजिए। इफ्तखारुद्दौला ने अपनी

इकलौती बेटी हुस्नआरा की शादी का कुल प्रबंध आदि अपने खानदान के बुजुर्ग इफ्तदारुद्दौला नवाब मेंहदी अली खाँ के हाथों में दे रखा था। इफ्तदारुद्दौला सुलताने आलम वाजिद अली शाह के सगे फूफा थे और इन्तजाम अहतमाम के मामले में अपनी नजीर आप थे। उन्होंने इफ्तखारुद्दौला की मंशा और हौसले को देख कर वह प्रबंध किया कि सींक खड़ी कर दी। वह खुद भी समझते थे कि इस शादी में बादशाह सलामत की खुशी और उनकी एक खास चहेती बेगम का हाथ है। इसलिए इन्तजाम में कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी थी। दरबारी लोगों, मुसाहबों, शाहीखानदान के लोगों और लखनऊ के सभी रईसों, बड़े-बड़े सेठ-साहूकारों को दावत दी थी। बाहरी भीतरी महफिलों का पूरा प्रबंध था। कहीं किसी बात की कमी नहीं मालूम होती थी। रोशनी के लिए सैकड़ों बड़े-बड़े सफेद, लाल, पीले, नीले कंवल और झाड़ फानूस जल रहे थे। दिन की तरह उजाला फैल रहा था। जगह-जगह पर ताजे फूलों के बड़े-बड़े गुलदस्ते रखे हुए थे। शामियाने में फूलों की मोटी-मोटी मालाएँ झालर की शकल में झूल रही थीं। धूप जल रही थी, जिसकी सुगंध चारों तरफ फैल रही थी। फरशों पर रंगीन ईरानी कालीन बिछे हुए थे। उन पर मसनदों, तकियों की भरमार थी। बादशाह सलामत की नशिस्त के लिए मुनासिब जगह पर चमचमाती हुई शाही ठाठ की मसनद और छोटी-बड़ी तकियों का इन्तजाम था। गरज वहाँ की आरायश और सजावट देखते ही बनती थी। मेहमानों के स्वागत-सत्कार के लिए सैकड़ों आदमी अपना काम कर्तव्य लिए तैय्यार खड़े थे।

'उधर चौदहवीं का चाँद अपनी चमक दमक के साथ पूर्व में नमूदार हुआ इधर बरात दुलहिन के दरवाजे पर जा पहुँची। शोर मच गया। आवभगत शुरू हो गई। एक-एक का स्वागत सत्कार किया गया। महफिल जम गई। जाने-आलम अपनी मसनद पर तशरीफ फरमा हुए। मैं भी उन्हीं के करीब मसनद पर बैठाया गया, क्योंकि चन्द घड़ियों का मैं भी बादशाह था। तमाम अराकीन, दरबारी, मुसाहब, वजीरे-आजम, शाही खानदान के अमीर-रईस-नवाब और दूसरे सभी मेहमान कायदे के साथ अपनी-अपनी जगह पर बैठे थे। जाने-आलम ने बड़ी खुशी के साथ मुस्कराते हुए अपने हाथों से मेरे माथे पर मोतियों और फूलों के सेहरे बाँधे और मुबारक बाद दी।

'मिरजा जफर हुसेन साहब?' जमालुद्दौला ने कहा—'इस मौके पर जाने-आलम के एक दरबारी शायर मकबूलुद्दौला 'कबूल' ने एक बहुत ही खूबसूरत पुरलुत्फ सेहरा पढ़ कर सुनाया था।'

'फरमाइए, जरा मैं भी उसे सुन लूँ।' मिरजा ने उत्सुकता भरे लहजे से कहा।

'कोई दस-ग्यारह शेर का सेहरा उन्होंने लिखा था। अब मुझे उसके सिर्फ दो शेर शुरू और आखिर का याद रह गया है। बाकी सभी शेर जहन से उतर गये हैं।'

बाँधे बैठे हैं जो गुलफाम अली खाँ सेहरा,
देखने चर्ख पर आया महेताबां सेहरा।'

'वाह, कबूल साहब ने कमाल का सेहरा कहा था।' मिरजा ने प्रसन्न मुख से कहा—'और आखिरी शेर यानी मक्ता क्या था ?'

'आखिरी शेरे यह था :—

महफिले-ऐश-व-तरब में है दुआगो यह 'कबूल,'
दुलहा-दुलहिन को रखे खुर्रम-व शादां सेहरा।

'शादी को उस महफिल की रौनक लखनऊ वालों के लिए एक यादगार कही जा सकती थी। नृत्य-संगीत का वह ठाठ था कि किसी ने कभी अपनी आँखों से न देखा था। शहर की रंडियाँ, डोम-ढाँडी, कशमीरी भाँड़ तो थे ही, दूर-दूर से डेरेदार तवाइफें भी बुलाई गई थीं। बड़े-बड़े नामी गवैय्ये भी मौजूद थे। करनाटक से एक बाई जी भी आई थीं। उनके गाने की बड़ी धूम थी। बड़े-बड़े पेशेवर गाने वाले कान पकड़ते थे। संगीत-शास्त्र की ऐसी जानकार थी कि राग-रागिनियों को मुँह में लिए रहती थी। गला ऐसा पाया था कि दूसरे मोहल्लों तक आवाज गूँजती थी। इन सब के अलावा खास तौर पर जुहरा और मुश्तरी भी बुलाई गई थीं क्योंकि तब लखनऊ में इन दोनों बहनों की बड़ी धूम थी। दोनों शायर थीं। खुद गजल कहतीं और गातीं थीं। जुहरा तो फिर भी खैर थी। लेकिन मुश्तरी बहुत खरी थी। बहुत जल्दी शेर कहती थी। गोया नोंक-जबान पर लिए रहती थी। महफिल में बैठे-बैठे उसने सात शेर की एक मुबारकबादिया गजल कह ली थी। बाई जी का संगीत खतम हुआ था। महफिल में एक तरह की बेहोशी सी छाई थी। मुश्तरी का मुजरा शुरू हुआ। उसने वही अपनी मुबारकवादिया गजल गाई। महफिल में ज्वार-भाटा सा आ गया। उसकी गजल ने लोगों पर जादू सा चढ़ा दिया था। किसी को खुद अपनी खबर न थी। बाईजी के संगीत का प्रभाव जाने कहाँ लोप हो गया था। बादशाह सलामत को मुश्तरी की गजल पसंद आई। उसी वक्त पाँच हजार रुपया पाँच कपड़ों के खिल-अत के साथ मुश्तरी को अता फरमाए गये थे।'

'अगर मुश्तरी की वह गजल याद हो तो बराह करम सुना दीजिए ?' मिरजा ने कहा।

'अरे मिरजा साहब ! एक जमाने की बात है। अब पूरी गजल किसे याद रह सकती है। उसका भी शुरू और आखीर का शेर याद रह गया है। उन्हीं को सुनाए देता हूँ।

शादी हुई है शुभ लगन, ऐश-व-तरब दिन रात है।
शम्श-व-कमर दर अंजुमन, मिल बैठने की बात है।
हुस्न-व-जमाल की दिलवरी, क्या चाल है शतरंज की,
चल देखिए ऐ मुश्तरी, यह मात है वह मात है।'

'वाह, मुश्तरी ने आखिरी शेर कमाल का कहा है। जाहरा मानी मतलब के अलावा एक दूसरे मानी भी निकाले हैं।' मिरजा ने कहा—'आप और हुस्नआरा की लगा-लगी को शतरंज की चाल बता कर साबित किया गया है कि हुस्नआरा की कशिश से आप मात खा गये हैं और आप की मोहब्बत से हुस्नआरा मात है।'

'ये शायराना बारीकी है। इसे आप ही समझ सकते हैं।' जमालुद्दौला ने कहा।

'वाकई मुश्तरी बहुत अच्छी शायरा थी। पूरी गजल में जाने कैसी-कैसी उड़ाने ली होंगी। कैसे शेर निकाले होंगे।' मिरजा ने धीरे से कहा।

'खैर, इधर बाहर तो यह रंग बरस रहा था। उधर महलसरा के अन्दर दूसरी तैय्यारियाँ हो रहीं थी। दुलहिन को सोलहों सिंगार से सजा कर बैठाया गया था। हमजोलियाँ चुटकियाँ भर रही थीं। कहकहे और ठहाके बाहर तक सुनाई दे रहे थे। कुछ देर बाद मैं महलसरा के अन्दर ले जाया गया। दुलहिन की बगल में बैठा। शादी की रस्में शुरू हुईं। अगरचे हर एक रसम जल्दी-जल्दी पूरी की जा रही थी, फिर भी रात टूटने को आ गई। निकाह से निपट-निपटा कर सुबह के वक्त रुखसती हुई। दुलहिन को साथ लेकर कोठी कैसर पसंद में आ गया। वहाँ बड़ी धूम-धाम और चुहलबाजी का सामना रहा। शाही हरमसरा की बेगमात उमड़ आई। हँसी दिल्लगी का तूफान खड़ा कर दिया।

'चौथी चाले की रसमें उसी कोठी में पूरी हुईं। तब तक वहीं रहना पड़ा। उसके बाद नवाब माशूक महल साहिबा से इजाजत हासिल कर के मैं हुस्नआरा को लेकर अपने मकान गोलागंज में आ गया।'

सत्ताईस

'हुस्नआरा और मैं दो-चार दिन में ही ऐसे घुल-मिल गये मानो जन्म-जन्म के साथी थे। हुस्नआरा सुन्दर तो थी ही। सुर्ख-सफेद रंग, ऊँचा माथा। निकली हुई माँग। काली नागिन की तरह कमर तक पीठ पर लहराती हुई चोटी और उसमें बीच-बीच में मोगरे के सफेद फूल गुँथे हुऐ। खिची हुई भवें, बड़ी-बड़ी बिरौनियों, आम की फाकों जैसी आँखें। मुनासिब नाक, छोटा मुँह, पतले गुलाबी होंठ और गोल ठुड्डी, जिस पर जरा सी गहराई के अन्दर काला तिल। हाथ-पैर जैसे साँचे में ढ़ले हुये थे। उसके सारे नक्शे और सरापा में किसी तरह की कमी नहीं थी। मालूम होता था कि कुदरत के कारीगर ने उसे पूरी फुर्सत में गढ़ा है। मैंने पहली बार जब उसे देखा था उस वक्त और अब में जमीन-आसमान का फर्क था। उस वक्त लड़कपन और जवानी की दमयानी तस्वीर थी और उसकी जवानी अब अंग-अंग से अठखेलियाँ कर रही थी। मैंने जाने-आलम के जनानखाने में बेगमात की शकल में सौन्दर्य की एक भीड़ देखी थी लेकिन उस भीड़ में हुस्नआरा का मुकाबला करने वाली एक भी सूरत नहीं थी। वहाँ जो कुछ भी था बाजारी रूप सौन्दर्य और बनाव सिंगार था। इसके अलावा उन सब के दिल-दिमाग की परवरिश पैदायश के दिन से जिस रंग-ढंग से हुई थी उसकी बू किस तरह दूर हो सकती थी, गो जाने-आलम उसे दूर करने की भर-सक कोशिश करते थे। उन्हें ऊँचा उठा कर आसमान के जीने पर बिठा दिया था। उनके ऐश-आराम में किसी तरह की कोई कमी नहीं थी फिर भी उनके दिलों का रोना बाकी था।

'मिरजा शैदा साहब, खून और खानदान का बहुत बड़ा असर हुआ करता है। हुस्नआरा खानदानी नवाबजादी थी, इसलिए उसमें शराफत कूट-कूट कर भरी थी और सभ्यता की तो वह जीतीं जागती तस्वीर ही थी। मैंने हिन्दी भाषा की कई किताबों में देखा-पढ़ा है। जहाँ उनमें औरतों का बयान आया है, उनके तीन विशेष गुण गिनाये गये है। यानी लज्जा, शील और संकोच। और यही तीनों विशेषताएँ उनका साज-सिंगार बताया गया है। हुस्नआरा में ये तीनों गुण मौजूद थे। हुस्नआरा बहुत बहुत खुश मिजाज थी। बात करती तो ऐसा मालूम होता कि फूल झड़ रहे हैं। हर बात पर खुद-ब-खुद खिलखिलाकर हँस दिया करती थी। उसे सादगी बहुत पसंद थी। हर वक्त के बनाव सिंगार से नफरत थी। और सच बात यह थी कि अपनी असली सूरत और सीने के अन्दर मौजूद कोमल दिल के साथ शौहर परसी, नेकनीयती से मुझे लुभाना चाहती थी। और इसमें शक नहीं कि वह अपनी कोशिशों में बहुत जल्द

सफल भी हो गई थी। मैं उसकी मुट्ठी में बन्द हो गया था और ऐसी नेकबख्त बीबी पाकर मैं फूला नहीं समा रहा था।

'दुनिया के शौकों में हुस्नआरा को सितार बजाने का शौक था। और वह शौक-बारह तेरह बरस की उम्र से उसके पीछे लगा था। अब तो उसने इस हुनर में काफी अभ्यास कर लिया था। अकसर वह सितार लेकर मेरे सामने बैंठ जाया करती थी और तारों को छेड़कर ऐसा समां बाधतीं, ऐसा बरसाती थी कि मैं क्या कमरे के दरवाजे और दीवारें तक झूमने लग जाती थीं। सितार के तारों पर उसकी कोमल उगँलियाँ इस प्रकार दौड़ लगाया करती थीं कि समझना कठिन था कब किस तार पर आकर इस प्रकार दौड़ लगाया करती थीं कि समझना कठिन था। मैं भी सितार बजाता था लेकिन हुस्नआरा का पासंग नहीं थी। वह मुझसे सितार बजाने को कहती तो मैं शरम से सिर झुका लेता था। कभी उसके आगे सितार अपने हाथ में नहीं लेता था। हाँ, उसकी जिद पर एक दो ठुमरियाँ अवश्य गा दिया करता था और वह सुन कर मेरे गले से लिपट जाया करती थी। इस तरह हम दोंनों के बीच में प्रेम-स्नेह का एक अथाह सागर लहरा रहा था और हम दोनों उसमें डूबते-उबरते रहते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे दिन आगे बढ़ते जा रहे थे।

'हुस्नआरा मुझसे इजाजत लेकर कभी-कभी अपनी माँ से मिलने के लिए गाड़ी पर बैठकर सआदतगंज जाया करती थी और शाम के पहले घर लौट आती। अपनी शादी के सिलसिले में माशूक महल से उसकी काफी जान-पहचान हो गयी थी और बेगम को भी उससे एक तरह का प्रेम हो गया था।

'मैं घर से बाहर बहुत कम आता-जाता था। सिर्फ सुबह शाह मन्जिल में जाकर एक बार जाने-आलम के सामने सिर झुकाना ही मेरा बाहर निकलना कहा जा सकता था। मगर इस सलाम में भी किसी कदर बाधा आ गई थी।'

मिरजा जफर हुसेन ने पूछा—'क्या बाधा आ गई थी? आप तो जाने-आलम के मुसाहब थे और ऐसे-वैसे भी नहीं। दरबार से लेकर हरमसरा तक आप की पहुँच थी। फिर क्या अंड़गा पड़ गया था?'

'मिरजा साहब, बादशाहत बहुत बुरी बला होती है। खुदा बादशाहत जरूर अता फरमाता है लेकिन उसके साथ सैकड़ों बलाएँ पीछे लगा देता है। जिनसे बादशाह की जिन्दगी परेशान हो जाती है। सच पूछिए तो बेफिक्री की हुकूमत ही बादशाहत कही जा सकती है, लेकिन वह हर बादशाह को कहाँ नसीब होती है। इने गिने ही उसे पाते हैं। जाने-आलम जैसे आजाद तबियत और रंगीले बादशाह के लिए अवध सल्तनत का भार वाकई एक बहुत बड़ा बोझ था। जरा सी बात में वह घबड़ा जाते थे। और इसकी कुछ खास वजहें भी थीं। मुल्क में अंग्रेजों का राज था। कम्पनी सरकार का बोल-बाला था। कम्पनी सरकार मुल्क की बड़ी-बड़ी हुकूमतें एक के बाद एक खतम करती चली जा रही थी। अवध की सल्तनत पर अर्से से अंग्रेजों के दाँत लगे थे वे अवध को अपने पेट में रख लेने के बहाने ढूँढते चले आ रहे थे। मगर अभी

तक उनको कोई कामयाबी हासिल नहीं हो सकी थी। कलकत्ते में जो नया गवर्नर-जनरल आकर बैठा था वह अवध की हुकूमत को खतम करने के लिए नये पैंतरे बदलने लगा था। जाने-आलम की तख्तलशीनी के थोड़े अर्से बाद ही गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने लखनऊ आकर उनकी हुकूमत में बहुत सी बुराइयाँ बता कर उन्हें सचेत किया था। जाने-आलम के सिर पर राज्य में बदइन्तजामी का दोष थोपा गया था। जो ऐसा था नहीं। राज्य में पूरा अमन-चैन था, प्रजा खुशहाल थी। किसी को कोई शिकायत नहीं थी। लेकिन बहाना तो बहाना ही था, उसे सचाई से क्या मतलब था। दो साल के अन्दर हुकूमत की बुराइयाँ दूर करने की मोहलत देकर लार्ड हार्डिंग चले गये थे।

'अब कलकत्ते में लार्ड डलहौजी जी गवर्नर जनरल थे। वह अवध राज्य को कम्पनी राज्य में मिला लेने के लिए उधार खाये बैठे थे। लखनऊ में रेजीडेन्सी तो अरसे से कायम थी। इस वक्त स्लीमन नाम के एक नये और शातिर शरीर रजीडेन्ट आये हुए थे। गवर्नर जनरल के सिखाये पढ़ाये थे। आते ही उन्होंने जाने-आलम पर नमदा कसने शुरू कर दिए थे और बात बात में उनकी हुकूमत में अड़ंगे डाल रहे थे। और अब वह अपनी सफलता के लिए लखनऊ से बाहर अवध राज्य का दौरा करने निकले थे।

'यही वजह थी कि इन दिनों जाने-आलम कुछ चिन्तित रहा करते थे। रंग-रेलियों में वह पहले जैसा जोश नहीं था। लोगों से मिलना-बैठना भी कम कर दिया था।' जमालुद्दौला ने जरा रुक कर कहा—'मिरजा साहब, मुझे इन राज-काजों की झंझटों से कोई मतलब नहीं था। मैं तो जाने-आलम को जानता था। सुलताने-आलम बादशाह वाजिदअली शाह को जानने वाले दूसरे मुसाहब और दरबारी थे। यह जिक्र तो आपके सवाल पर आज जबान पर आ गया। वरना मुझे इससे कोई मतलब न था।

'खैर, अब सुनिए मेरे दोस्तों को यह बहुत बड़ी शिकायत थी कि जिस दिन से हुस्नआरा को ब्याह कर आप लाये हैं घर से बाहर कदम रखना छोड़ दिया है। हमी लोग जबर्दस्ती आप के यहाँ आकर आपके ऐश-आराम में खलल डाल देते हैं। उन सबकी इस शिकायत को मैं हँस कर टाल दिया करता था व दूसरे मित्रों को अक्सर सरफराज अली खाँ मेरे घर लेकर आ जाया करते थे। हुस्नआरा का उनसे पर्दा न था क्यों कि वह तो उसके पुराने भाईजान थे।

'अब एक दिन का जिक्र सुनिए। गरमियों के दिन शुरू हो गये थे, लेकिन मौसम अभी ठीक था। न सर्दी थी और न गर्मी। मेरे मकान के आँगन में नीम का एक पुराना दरख्त था। उसके नीचे गोल पुख्ता चबूतरा बना था। मेरी दादी को वह पेड़ और चबूतरा बहुत पसंद था। अकसर सुबह-शाम वहीं बैठा करती थीं। सबेरे का वक्त था। चबूतरे पर कालीन बिछा कर मैं और हुस्नआरा बैठे हुए थे। धूप अभी पूरे आँगन में फैली थी। ठन्डी-ठन्डी हवा के झोंके चल रहे थे। बड़ा सुहाना

मौसम था, नीम के दरख्त में नई पत्तियाँ आ चुकी थीं। फूल लग रहे थे, उनकी भीनी-भीनी खुशबू फैल रही थी।

'मुझमें और हुस्नआरा में मजे की बातें चल रही थीं। छेड़खानियाँ दिलों में गुदगुदी पैदा कर रही थीं। तभी सरफराज अली खाँ आ गये। मेरी बगल में बैठ कर वह भी मजे की बातों में शरीक हो गये। कुछ देर तक मजे की बातें चलती रहीं। फिर हुस्नआरा की शादी का जिक्र छिड़ गया। उसी सिलसिले में सरफराज की जबान पर मिरजा असगर अली खाँ का नाम आ गया।

'मिरजा जफर हुसेन साहब ?' जमालुद्दौला ने कहा—'आप शायद मिरजा असगर अली खाँ को भूले न होंगे ? ये वही चौक वाली रहीमन के आशना रुस्तम नगर की लाल हवेली वाले नवाब अकबर अली खाँ के साहबजादे थे।'

'हाँ, हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है। पहले हुस्नआरा की शादी उन्हीं के साथ होने वाली थी।' मिरजा ने इतमीनान से कहा—' आप आगे कहते चलिए।'

'उनका नाम सुन कर हुस्नआरा मुस्कराई। फिर सरफराज को सुना कर कहा—'भाई जान ? क्या हाल है आपके उन करम फरमा का ?' फिर मेरी तरफ निगाह घुमा कर कहा —'आपने भी कभी उनको देखा है ? निहायत खूबसूरत जवान हैं। शायद उनके जोड़ का हसीन मर्द इस लखनऊ में ढूँढे नहीं मिलेगा।'

'मैंने तो उन्हें कभी नहीं देखा। सरफराज की जबान से एक-दो बार उनका नाम और कुछ उनकी तरीफ जरूर सुनी थी।' मैंने जवाब दिया।

'देखना चाहते हैं ?' उसने पूछा।

'उनको देखने की मुझे क्या गरज है ?'

'वाह, आप भी बड़े रुखे-सूखे आदमी हैं। आपकी नजर में हुस्न-व-जमाल की कोई कदर नहीं है।' हुस्नआरा ने मुस्करा कर कहा—'जिसकी खूबसूरती पर रहीमन जैसी रंडी जान निछावर करती है, घर बैठना चाहती है। आप उसे देखने से इनकार करते है।' फिर उन्हीं मुस्कान भरे होठों से कहा—'अगर देखना नहीं चाहते तो उनका हुलिया ही सुन लीजिए।'

'बयान करो ? वह तुम्हारे कभी मंगेतर थे, इस रिश्ते से सुन लूँगा।'

'उसने सरफराज की तरफ निगाह उठा कर कहा—'भाई जान ? जरा उनका नकशा-खीच दीजिए ?'

'सरफराज ने टालने के लहजे से कहा—'तुम भी क्या उनके पीछे पड़ गईं। वह जैसे हैं वैसे हैं। उनका नकशा खींचना बेकार है।'

'तुम्हें मेरे सिर की कसम है भाईजान ? मेरा कहना रखिए। जरा उनका हुलिया बयान कर दीजिए।' हुस्न ने गम्भीर लहजे से कहा।'

'तुम्हारी भी जिद अजीब है ?' सरफराज ने कहा—'मिरजा असगर अली खाँ का हुलिया क्या बयान करूँ। आखिर डोमनी के पेट से तो पैदा हुए हैं। वाकई बहुत खूबसूरत हैं। पक्का काला रंग। चेहरे पर चेचक के दाग। कुछ ऊपर को उठी हुई

लम्बी नाक, गढ्डों में धँसी हुई छोटी-छोटी आँखें। पिचके गाल, मोटे होंठ, तंग माथा। कंधों से चिपकी हुई गर्दन और नाटा कद। यही तो हुलिया है उनका। इसके अलावा उनके सिर के घने बाल और दाढ़ी की काट-छाँट देखने लायक है। दाढ़ी न कतरवां न खसखसी। दो-चार बाल इधर, दो चार उधर। ऐसी बेतुकी कि न शिया की न सुन्नी की।'

'एक जोरदार ठहाका गूँज गया और देर तक गूँजता रहा।

'मैंने हुस्नआरा से कहा—'वाकई तुमने मिरजा असगर अली खाँ के साथ बड़ा जुल्म किया। बेचारे की मंगनी ठुकरा दी।'

'अगर उनके साथ जुल्म न करती तो फिर आप को कैसे पाती ?' उसने गम्भीर मुख-मुद्रा से कहा। फिर सरफराज से पूछा—'भाईजान, उन हजरत और उनकी रहीमन का क्या हाल है ?'

'बड़ा बेतुका हाल है ?' सरफराज ने मुँह बना कर कहा।

'कैसा ?' हुस्नआरा ने मुस्करा कर पूछा—'जरा साफ तौर पर बयान कीजिए मुझे बड़ा मजा आ रहा है।'

'किसी का बुरा हाल है और तुमको मजा आ रहा है।' मैंने कहा—अरे अब तो उस बेचारे पर रहम करो ?'

'वाह, ऐसों की तो जितनी दुर्गति हो उतनी ही बेहतर है।' उसने कहा—'फिर सअफराज से कहा—'हाँ, भाई-जान बयान कीजिए।'

'सरफराज धीरे से बोले—'क्या बयान करूँ, बड़ा वाहियात सा जिक्र है।' फिर नजर उठा कर कहा—'सुनिये नवाब अकबर अली खाँ और उनकी बेगम साहिबा को करबला जाकर जयारात करने की धुन सवार हुई। तैय्यारियाँ शुरू की और एक दिन वह दोनों लखनऊ से करबला को खाना हो गये। घर गृहस्थी जो कुछ भी था, मिरजा असगर अली खाँ के हवाले कर दिया था। अब क्या था उनकी चाँदी ही चाँदी थी। रहीमन को घर में लाकर बैठाने की ठान ली। उसके कोठे पर पहुँच कर खुशखबरी सुनाई बोले—'लो चलो, खुदा ने तुम्हारी मुराद पूरी कर दी। घर खाली है। चल कर रहो और ऐश अराम करो।'

'वह तो रंडी थी। उसनें सोचा, क्या हर्ज है चल कर कुछ दिन गुलछर्रे उडाएँ। जो कुछ छीनते-झपटते बने अपने कब्जे में कर लाएँ। फिर मियाँ को लात मार देना तो अपने बाएँ हाथ का खेल है। खुश हो डोली में सवार होकर रुस्तम नगर आ गई और लाल हवेली के अन्दर बैठ गई। मिरजा असगर अली खाँ फूले नहीं समा रहे थे। अपने को बड़ा खुश-किस्मत समझ रहे थे। हर वक्त उसकी खिदमत में हाजिर रहते और खुशामदों के ढेर लगाये रहते। नवाब अकबर अली खाँ के नौकर नौकरनियों ने मिरजा का यह हाल देखा तो एक-एक करके अपने घर बैठ रहे। नवाब साहब बेटे को गुजर बसर के लिए काफी नकद हवाले कर गये थे। नौकरों के पीठ फेर लेने से खाना

पकाने वगैरह का सवाल पैदा हो गया। मिरजा ने एक नयी नौकरानी रखने का इरादा जाहिर किया। रहीमन ने कहा-गलत है। चूल्हा फुँकवाने की जरूरत नहीं है। बाजार किसलिए है। मन चाहा खाना बाजार से ले आया करो। मिरजा उसकी बात किस तरह काट सकते थे। दोनों वक्त बाजार घाट उतरने लगे। रहीमन ने भी धीरे धीरे हाथ पैर फैलाना शुरू कर दिया। रोज नयी-नयी फरमाइशें शुरू कर दीं। और मिरजा असगर अली खाँ आँख बन्द करके पूरी करने लगे। इस तरह रहीमन ने काफी झटक कर अपने कब्जे में कर लिया। रहीमन की नायिका चौक में कोठे पर रहा करती। वह तीसरे-चौथे दिन रुस्तम नगर पहुँचती रहती थी। मिरजा से जो कुछ भी हाथ लगता था रहीमन उसके हवाले कर दिया करती थी और नायिका खुशी-खुशी ढो ले जाती थी।

'नवाब अकबर अली खाँ का दिया हुआ नकद रुपया आखिर कितने दिन चलता। महीने दो महीने में खतम हो गया। अब मिरजा का खर्च और रहीमन की छीन-झपट जरा गढ़े में पड़ने लगी। नवाब अकबर अली खाँ के पास लाखों रुपया नगद मौजूद था। बाप दादों की कमाई थी। सभी जानते थे कि उसे नवाब साहब अपने साथ करबला नहीं ढो ले गये थे। वह तो सिर्फ अपनी जरूरत के लिए अपने साथ ले गये थे। बाकी सब लाल हवेली में मौजूद था। लेकिन वह नकद कहाँ रखा है इसका पता सिवा नवाब और बेगम के किसी को नहीं था। पास का सब खर्च हो जाने पर मिरजा असगर अली खाँ ने जरनकद की हवेली में काफी तलाश की मगर कहीं से एक पैसा भी हाथ न लगा। लेकिन मिरजा हताश नहीं हुए। घर में कीमती जायदाद इतनी भरी पड़ी थी कि उसे बेंचकर काफी दिनों तक ऐश-आराम की जिन्दगी बसर की जा सकती थी। इसलिए मिरजा ने जरूरत के मुताबिक एक-एक चीज बेचना शुरू कर दिया। रहीमन ने भी उसमें से बहुत सी कीमती चीजे पसंद करके अपने घर भेज दी। मिरजा चूं तक न कर सके।

'पूरे साढ़े सात महीने बाद नवाब अकबर अली खाँ और बेगम करबला की जियारत मे लखनऊ वापस आए। मिरजा असगर अली खाँ को नवाब के लौटने की कोई खबर न थी। हस्ब-मामूल रहीमन के गले में हाथ डाले हुए दीवानखाने में बैठे हुए थे। रहीमन गा रही थी और मिरजा ताल दे रहे थे।

'नवाब अकबर अली खाँ जैसे ही किराये की गाड़ी में बैठे हुए मस्जिद के करीब पहुँचे, उनका एक पुराना वफादार नौकर जो वहीं मस्जिद के पास रहता था दौड़ कर उनके नजदीक पहुँच गया। नवाब ने गाड़ी रूकवा कर उससे हवेली और मिरजा की खैरियत पूछी। नौकर ने उनके करबला जाने के बाद से लेकर इस वक्त तक की मिरजा की सारीं कैफियत कह सुनाई। नवाब सुन कर खामोश रहे। लाल-हवेली के फाटक पर गाड़ी से उतरे। बेगम अन्दर चली गईं। अकबर अली खाँ अपने दीवानखाने में पहुँचे। मिरजा असगर अली खाँ ने उन्हें देखा। रहीमन के गले से हाथ हटा कर हड़बड़ाते हुए उठ कर खड़े हो गये।

'नवाब ने रहीमन पर एक उचटती नजर डाली। फिर मिरजा से पूछा—यह कौन है?'

'जी, ये मेरी······।'

'हम समझ गये।' कह कर नवाब अन्दर चले गये। मिरजा भी उनके पीछे लगे चुपचाप अन्दर चले गये।

'रहीमन समझ गई कि अब यहाँ एक सायत भी ठहरना गुनाह है। यहाँ का खेल खतम हो चुका। वह दीवानखाने से उठकर हवेली के फाटक पर पहुँची। किराये पर डोली की और उस पर बैठ कर चौक का रास्ता पकड़ा और अपने कोठे पर पहुँच गई।

'नवाब को नौकर से सब हाल तो मालूम हो ही चुका था। अन्दर जाकर देखा तो वहाँ जितनी भी कीमती चीजें थीं सब गायब थीं। मिरजा से पूछा—'वह सब कीमती चीजें कहाँ गईं?'

'मिरजा ने जवाब दिया—'आप की अदम मौजूदगी में मैं खाता क्या? मेरा खर्च किस तरह चलता? उन्हीं चीजों को फरोख्त करके लस्टम-पस्टम तरीके से गुजर करता रहा हूँ।'

'और जो हम जरनकद दे गये थे?'

'वह कितने दिन के लिए था? पन्द्रह बीस दिन में ही खतम हो गया था?'

'ठीक है, तो अब तुम्हारे लिए इस मकान में जगह नहीं है!' नवाव ने क्रोध भरे स्वर से कहा।

'तो मैं कहाँ जाऊँ?' मिरजा ने धीरे से कहा।

'यह मैं क्या जानूँ? जिसके गले में हाथ डाले हुये दीवानखाने में बैठे थे उसी से जाकर पूछो। उसी के यहाँ जाकर रहो।' आज इसी वक्त अपना काला मुँह कर जाओ।'

'बेगम ने मिरजा की परवरिश की थी। पाल-पोस कर अपने बेटे की तरह लाड़ लड़ाये थे। उन्हें फिर भी मिरजा के हाल पर तरस आ गया। उन्होंने नवाब से कुछ शिफारिश करनी चाही। लेकिन नवाब ने उनसे साफ तौर पर कह दिया। 'इस मामले में अब तुम जरा भी मत बोलो। मैं ऐसे कमीने लड़के का मूँह भी नहीं देखना चाहता। इसने हर तरह से हमें बदनाम किया। अगर इस पर थोड़ा भी तरस खाया जायगा तो आगे यह जाने क्या-क्या करेगा।' बेगम चुप हो रही।

'नवाब गुस्से में थे। मिरजा की तरफ लाल नजर से देख कर कहा—'जाओ, हमारे सामने से दूर हो जाओ। वरना मैं इसी वक्त कोतवाली के सिपाहियों को बुलवा कर तुम्हें इस मकान से धक्के देकर निकलबाने की तकवीर करता हूँ।'

'मिरजा नवाब के पास से हट कर दीवानखाने में आये। उनका ख्याल था कि रहीमन वहाँ मौजूद होगी। जब वहाँ वह नहीं मिली तो सीधे चौक पहुँचे। और उसे अपने निकाले जाने की कहानी सुनाई। उसने जाने क्या सोचा, बोली—'खैर, फिलहाल

तुम मेरे यहाँ रहो। बाद में देखा जायगा।' इस वक्त मिरजा असगर अली खाँ एक नौकर के तौर पर रहते और उसकी खिदमत करते हैं।' हुस्नआरा ने मुस्कराकर कहा—'जैसी सूरत थी, वैसा ही काम भी मिल गया।'

जरा देर चुप रहने के बाद जमालुद्दौला ने मिरजा जफर हुसन के चेहरे पर नजर डाल कर कहा—'मिरजा शैदा साहब, उधर तो मिरजा असगर अली खाँ का यह किस्सा चल रहा था। इधर हमारे उसी गोलागंज में एक अजीब सी घटना घट गई। हमारे मकान के दस-पाँच मकान आगे एक मुंशी कामता प्रसाद साहब रहते थे। बड़े शिव-भक्त और परहेज वाले आदमी थे। पुराने खान्दानी थे। बड़ा मकान था। उसके बाहर एक बगीचा और उसके बीच में एक छोटा सा बंगला बना हुआ था। खाने-पीने से बहुत खुश थे। मुंशी जी के दो जवान लड़के कृपाशंकर और दयाशंकर थे। दोनों की शादियाँ हो चुकी थी। पुत्र बधुएँ धर में मौजूद थीं। बड़ा लड़का साहेब-औलाद भी हो चुका था। पाँच साल का पोता मुंशीजी की गोद में खेला करता था। छोटे लड़के दयाशंकर के अभी तक कोई संतान न थी। कृपाशंकर तो कहीं और नौकर था। दयाशंकर वजीरे-आजम नवाब अली नकी खाँ के वजारत के दफ्तर में मुंशी था। नवाब की उस पर बड़ी मेहरबानी रहती थी। काफी कामता उड़ाता था।

'दयाशंकर की उम्र कोई तीस-बत्तीस साल की थी। तबीयत रंगीन थी। नजर में हुस्न-पसंदी भी मौजूद थी। इसलिए चौक के एक कोठे वाली दिलवर जान से नजर लड़ गई। दिलबर बहुत हसीन चौबीस-पच्चीस के उम्र की खानदानी रंडी थी। दोनों में राह-रसम पैदा होकर दिल से दिल मिल गया। दयाशंकर रोजाना उसके कोठे पर पहुँचने लगे और पहर रात तक सोहबत रहने लगी। दोनों में कुछ ऐसी चाहत पैदा हो गई कि बिना एक दूसरे को देखे हुए चैन न थी।

'मिरजा साहब, यह आमतौर पर कहा जाता है कि रंडी किसी की सगी नहीं होती। उसकी चाह और मोहब्बत मतलब की हुआ करती है। जब जिसको अपने जाल में फँसाना हुआ उस पर मरने लगी और जब जी चाहा लात मार दी। यह सब रंडी के बाएँ हाथ का खेल हुआ करता है। लेकिन कुदरत का भी अजीब हाल है। खुदा की इस खुदाई में जहाँ लाख दिल झूठे, बुरे, दगाबाज, और मतलबी मौजूद हैं वहाँ एक दिल सीधा सच्चा और निष्कपट भी नजर आ जाता है। दिलवर का शुमार ऐसे ही बेलौस और सच्चे दिल वालों में था। उसके दिल में वाकई दया-शंकर के लिए बहुत बड़ी जगह थी। एक दिन का विछोह भी उसके लिए हराम था। खाना, पीना, सोना सब कुछ भूल जाती थी। बरसों की बीमार नजर आने लग जाती थी। उसकी नायिका अक्सर सहानुभूति के तरीके पर उसे समझाती कि क्या तुम उनकी निकाही बीबी हो जो इस तरह मरती हो? एक दिन उनके न आने से इस तरह अपनी जान को जोखम में डालना कहाँ की अकलमंदी है? रंडी के सौ यार हुआ करते हैं। दुनिया में कभी कोई रंडी किसी एक की होकर नहीं रही। उसकी

मोहब्बत तो हजारों के लिए है और एक के लिए भी नहीं। अगर तुम इस तरह अपने को परेशान करोगी तो अपना बुरा चाहोगी। दिलबर के पास सिर्फ एक ही छोटा सा जवाब था—'मैं दुनिया की सभी रंडियों से अलग हूँ।'

'दयाशंकर भी उसे दिल से चाहते थे। उसके यहाँ पहुँचने में कभी नागा नहीं होने देते थे। फिर भी वह पूरे आजाद न थे। दिल में अपने पिता की और पतनी की डाँट-फिटकार का डर घुसा हुआ था। इसलिए पहर रात बीतने पर घर वापस आ जाया करते थे। दयाशंकर के बिला नागा सरेशाम दिलवर के पास पहुँच जाने के पीछे एक और भी बात थी। शुरू मोहब्बत के दिन से आज तक दिलवर ने कभी उनसे कोई फरमाइश नहीं की थी। कभी एक पैसा नहीं चाहा था। उलटे उनके पहुँचने पर स्वागत-सत्कार में दस पाँच रुपये अपनी गाँठ के ही खर्च कर दिया करती थी। ऐसी सूरत में दयाशंकर क्यों उसके कोठे पर पदुँचने से मुँह चुराते।

'मिरजा साहब, मैं तो समझता हूँ कि दयाशंकर को ऐसी बेलौस, बेगरज और सच्ची मोहब्बत वाली दिलबर का मिल जाना पूर्व संस्कारों का फल था।'

'वाकई रंडियों के बारे में तो ऐसा कभी नहीं सुना गया?' मिरजा ने कहा।

'अभी आप ने क्या सुना है? आगे सुनकर अपनी राय कायम कीजिएगा।' जमालुद्दौला ने कहा—'दयाशंकर की दिलवर की आशनाई का हाल उनके घर के सभी लोग जानते थे और उनकी इस बेजा हरकत से नाराज भी रहा करते थे। उनकी पत्नी तो हमेशा मुँह फुलाए रहती थी, कभी सीधे मुँह बात भी नहीं किया करती थी। इसलिए दयाशंकर दिलवर के यहाँ से लौट कर अक्सर बगीचे वाले बंगले में सो जाया करते थे। क्योंकि मकान का सदर दरवाजा बन्द हो जाया करता था। एक अर्से से यही सिलसिला चल रहा था।

'दयाशंकर को किसी बीमारी ने घेर लिया और रोग दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। लेकिन घर वाले उनसे अपनी नाराजगी निबाह रहे थे। वह बेचारे बागीचे वाले बंगले में अकेले पड़े रहते थे। न दवा-दारु का कोई प्रबंध था, न कोई उनके पास फटकता था। यहाँ तक कि उनकी सात भाँवरों वाली पत्नी भी भूल कर उनकी तबीयत का हाल पूछने नहीं आती थी। बीमारी थी कि नदी की बाढ़ की तरह बढ़ रही थी। उधर दयाशंकर का जो आना-जाना बन्द हुआ तो दिलवर के दिल पर एकदम वज्र टूट पड़ा। आँखों के सामने अंधेरा छा गया। दुनिया सूनी नजर आने लग गई। खाना-पीना; लेटना-सोना सब हराम हो गया। नौकर को दौड़ा कर दयाशंकर का हाल दरयाफ्त किया। मालूम हुआ कि वह सख्त बीमार हैं। दिलवर घबड़ा गई। घर में ताला लटकाया, डोली किराये पर करके सवार हुई और दयाशंकर के उस सुनसान बागीचे वाले बंगले में आ पहुँची। देखा वह बेहाश पड़े थे। उनके सीने से लिपट गई और जी भर कर रोई। फिर संभल कर अपनी वफादारी का परिचय देना शुरू किया। हकीमों वैद्यो को बुलाकर उनका इलाज कराना शुरू किया और

खुद आठों पहर उनकी सेवा-तीमारदारी करने लगी। दिलवर खान्दानी रंडी थी। उसकी माँ गुलाबजान काफी नकद और सोने के जेवर छोड़कर मरी थी। दिलवर ने वह सब जायदाद अपने आशना दयाशंकर पर निछावर करदी। हकीमों-वैद्यों के आगे दौलत के ढेर लगा दिए। खैरात बाँटने और भूखे भिखारियों को भर पेट खिलाने-पिलाने लगी। मन्नतें मानी, दुआएँ मांगी। लेकिन खुदा को तो कुछ और ही मंजूर था। दयाशंकर को न होश आया और न रोग में कोई कमी हुई।

'आखिरी दिन आगया। दिलवर, दयाशंकर के पलंग की पाटी पकड़े जमीन पर उदास मुख और आँखों में आँसू भरे बैठी थी। उनके घर का कोई भी व्यक्ति उनके पास न था न पहले कभी आता-जाता था। सहसा दयाशंकर ने करवट बदली। आँखें खोल कर दिलवर के चेहरे पर नजर डाली और धीरे से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'दिलवर चलो ?'

'कहाँ चलूँ ?' दिलवर ने कहा—'चलिए जहाँ चलना हो, मैं तैय्यार हूँ।'

'दयाशंकर ने एक बार फटी-फटी आँखों से उसके चेहरे को देखा। कुछ कहने को हुए तभी एक जोर की हिचकी आई। आँखें बन्द हो गई और उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

'दिलवर देखती की देखती रह गई। उसकी आँखों के आँसू सूख गये। जोर की साँस लेना भी भूल कर पत्थर की मूर्ति बनकर रह गई। तभी एक हकीम जी ने आकर मरीज को देखा और उल्टे पैरों दयाशंकर के घर वालों को खबर कर दी कि मरीज इस दुनिया से सफर कर गया। शोर मच गया। अब घर वाले वहाँ आए और लाश को उठाकर अन्तिम संस्कार के लिए ले गये। दिलवर जरा भी टस से मस न हुई। खामोश अपनी जगह पर बैठी टुकुर-टुकुर देखती रही। जब दयाशंकर को चिता पर फूँक कर लोग वापस लौटे तो देखा दिलवर जहाँ बैठी थी वहीं मरी पड़ी थी। सब की सलाह से लोगों ने दिलवर की लाश को भी ले जाकर दयाशंकर की चिता में रख दिया और वह उनके साथ ही चली गई। इस कहानी को सुनाने की की गरज ये थी कि आप उन दोनों रंडियों के दिलों को तोल कर देखें।'

मिरजा शैदा धीरे से बोले—'मैंने ऐसा वकाया पहली बार अपने कानों से सुना है।'

अट्ठाईस

'मेरा गोलागंज का वह मकान हुस्नआरा को पसंद नहीं था। पसंद क्योंकर आता। जाने किस युग का बना हुआ था। उसकी बनावट पुरानी थी। मुमकिन है मेरे दादों-परदादों के वक्त में उसी तरीके के मकानों का रिवाज रहा हो। मगर उस मौजूदा समय में तो लखनऊ के मकान, हवेलियाँ बिलकुल स्वर्ग का नमूना मालूम होती थीं। लखनऊ जैसी कलश कंगूरे और गुम्बदों वाली इमारतें मुल्क के दूसरे शहरों में भी नजर नहीं आती थीं। इसलिए हुस्नआरा चाहती थी कि हमारी हवेली भी इसी ढंग की हो। उस पुराने मकान से उसका मन उचाट होने की एक खास वजह भी थी। एक दिन का जिक्र है, शाम हो चुकी थी। पूर्णिमा का चाँद बड़े आव-ताब से निकल कर ऊँचे उठ रहा था। चारों तरफ दूधिया चाँदनी फैल रही थी। ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंके पर झोंके आ रहे थे। बड़ा खुशगवार मौसम था। मैं उस समय घर में न था। जाने-आलम की मुसाहबत करने के लिए शाह मंजिल गया हुआ था। घर की सभी महरियाँ वगैरा अपने अपने कामों में व्यस्त थीं। चाँद की चमक दमक चाँदनी का निखार में अकेलेपन। समय गुजारने के लिए हुस्नआरा हाथों में सितार संभाल कर नीम के उस छतनारे दरख्त के नीचे चबूतरे पर बिछे हुए कालीन पर आ बैठी और तारों को मिला कर अपनी नाजुक उँगलियाँ दौड़ाने लग गई। झंकारें गूँजने लगीं। गति के चढ़ाव-उतार का समा बँध गया। पेड़ की एक-एक पत्ती झूमने लगी।

'उसी मस्ती के आलम में हुस्नआरा की निगाह नीम की एक मोटी डाल से जा टकराई। उसे महसूस हुआ जैसे उस डाल पर सफेद दूधिया चादर में लिपटा हुआ कोई बैठा है। उसने नजर को कुछ और गहरे गड़ा कर देखा। किसी बुजुर्ग का सफेद दाढ़ी वाला चेहरा नजर आया। उसकी उगँलियाँ सितार के तारों पर दौड़ लगाने से रुक गईं। तारों की झंकार भी बंद ही गई। तभी एक आवाज सुनाई दी—'बजाये जाओ, हम सुन रहे हैं। हमें तुम्हारी सितार-नवाजी बहुत पसंद आ रही हैं। हुस्नआरा सहम सी गई। उसने मुगलानी को आवाज देकर बुलाया। वह दौड़कर आ गई। उसने नजर ऊपर डाल पर बैठे हुए किसी बुजुर्ग को देखने का इशारा किया। मुगलानी ने डाल पर नजर डाली लेकिन वहाँ कोई न था। और भी डालों पर उसने नजर गड़ाई पर कोई भी सूरत नजर न आई। आखिर हुस्नआरा ने भी अपनी निगाह ऊँची की। गौर से पेड़ की एक एक डाल को देखा, मगर कहीं कोई न दिखाई दिया। मुगलाती ने कहा-'हुजूर को यों ही वहम हो गया होगा,। हुस्नआरा चुपचाप वहाँ से उठकर अपने कमरे में चली गई।

'कुछ देर बाद मैं शाही महलों से लौटकर आया। हुस्नआरा ने उस वाकया का जिक्र किया। मैं सुन कर समझ गया, इनके अन्दर कुछ भय सा समा गया है इस लिए उसे सीने से लगा कर हर तरह से ढाढ़स बँधाया और कहा-'मैं इस मकान में अकेला रहा हूँ। कभी कोई खटके की बात पैदा नहीं हुई। चाँदनी रात थी, पेड़ की टहनियों के साये ने कोई सूरत बना दी होगी और तुम्हें किसी शकल का वहम हो गया होगा।'

'मगर वह आवाज जो मैंने सुनी थी?' उसने सवाल किया। 'वह क्या थी?'

'वह भी उसी वहम की एक आवाज थी। और कुछ नहीं था।'

'इसके बाद मैंने उसे गुदगुदाना हँसाना शुरू कर दिया और वह बात आई-गई सी हो गई लेकिन उसके बाद से हुस्नआरा उस मकान को छोड़ने और अपनी नयी हवेली बनवाने के तकाजों के लेकर मेरे पीछे पड़ गई। हर वक्त कोंचती रहती।

'आखिर एक दिन मौका पाकर मैंने अपनी नयी हवेली बनवाने का इरादा जाने-आलम से जाहिर किया और तोप दरवाजे पर जो सरकारी जमीन वीरान पड़ी थी, उनसे माँगी। उन्होंने खुशी के साथ वह जमीन मुझे बख्श दी। सरकारी दफ्तर में उस जमीन का दाखला भी मेरे नाम हो गया।

'बाकर अली नाम का एक पुराना खानदानी मैमार, नकशे खींचने और इमारत तैय्यार कराने में मशहूर था। उस जमाने में बाकर अली के मुकाबले का एक भी कारीगर नहीं था। नवाब आसुफ़ुद्दौला बहादुर का बड़ा इमामबाड़ा और रूमी दरवाजा उसी के पूर्वजों ने तामीर कराया था। हुसैनाबाद में जो जाने-आलम के दादा हजरत मोहम्मद अली शाह बादशाह ने बाद में इमामवाड़ा तामीर कराया था उसका नकशा तैय्यार करके बाकर अली के दादा अहमद अली ने अपनी निगरानी में इमारत खड़ी कराई थी। इस तरह बाकर अली को नकशाकशी और उसके मुताबिक जमीन पर इमारत खड़ी कराने का हुनर बपौती में मिला था। इसलिए मैंने बाकर अली को बुला कर हवेली का नकशा तैय्यार करने को कहा और वह नकशा तैय्यार करने में जुट गया।

'एक दिन गाड़ी पर बैठ कर हुस्नआरा को मैं अपने साथ तोप दरवाजे की वह जमीन और पास पड़ोस का दृश्य दिखाने के लिए ले गया। हुस्नआरा को वह जगह बहुत पसंद आई। उसने हवेली के सामने कुछ जगह छोड़ कर एक खूबसूरत सा इमामबाड़ा, एक छोटी सी सुन्दर मस्जिद तैय्यार कराए जाने की ख्वाहिश जाहिर की और मैंने उसी की इच्छा को पूरा करना मंजूर कर लिया।

'लगभग पन्द्रह बीस दिनों में बाकर अली ने दोमंजिली इमारत का नकशा तैय्यार कर लिया। यह भी एक अजीब बात थी कि बाकर अली ने खुद अपने ख्याल से पीछे की तरफ बाग का नकशा भी खींचा था। जब उसने वह नकशा लाकर मुझे दिखाया तो मैंने उससे पूछा कि बाग की जिक्र तो नहीं आया था, यह क्या तुमने अपने ख्याल से रखा है?

'वह बोला—'जी हाँ, ऐसी खूबसूरत हवेली से मिला हुआ अगर बागीजा नहीं है तो उसकी सुन्दरता फीकी मालूम होती है। इसीलिए मैंने पीछे की तरफ बाग का नकशा खींचा है।'

'हुस्नआरा ने भी गौर के साथ हवेली और बाग का नकशा देखा। पसंद करके खुशी का इजहार किया। मैंने बाकर अली से इमामबाड़ा और मस्जिद का नकशा भी बना कर दिखाने के लिए कहा। उसने चार-पाँच दिनों में उनके भी नकशे खींच कर दिखा दिए। उसके बाद मैंने इमारत खड़ी करने का काम बाकर अली के हाथों में सौंप कर जल्दी करने की ताकीद कर दी। फिर भी सब इमारतें, हवेली, बाग, मस्जिद और इमामबाड़ा की तामीर में पूरे दस महीने लग गये। बल्कि यों समझ लीजिए कि पूरी तरह से बाग की चमनबन्दी में पूरा एक साल लग गया था। मैंने हवेली का नाम 'गुलफाम मंजिल' रखा था।'

मिरजा जफर हुसैन ने पूछ लिया—'लेकिन नवाब जमालुद्दौला साहब ? इस वक्त मैं दखता हूँ कि 'गुलफाम मंजिल' तो मौजूद है मगर उसके आगे इमामबाड़ा और मास्जिद नहीं हैं। उनका नाम-निशान भी नजर नहीं आता ! क्या वह दोनों इमारतें तैय्यार होने से रह गई थीं ?'

'जी नहीं, कुल इमारतें एक साथ तैय्यार हुई थीं ?' जमालुदौला ने कहा—'जमाने की खूबी है। खूदा के घर में ही जमाने की बिजली टूट पड़ी।'

'कैसा ? मैं समझा नहीं।'

'जब लखनऊ उजड़ा, सुलताने-आलम की बादशाहत खतम करके अंग्रेजों ने अपनी नई हुकूमत जमाई तो सभी कुछ नया हो गया। नई-नई सड़कें निकाली गईं, सड़कों की सीध में जिसकी जो भी इमारत अड़ंगा डाल रही थी वह बिना झिझक, बिना किसी रोक-टोक के खुदवा कर जमीन में मिला दी गई। कोई चूं-चरा नहीं कर सका। गुलफाम मंजिल के आगे का इमामबाड़ा और मस्जिद भी उसी हमले में खतम हो गई। गुलफाम मंजिल के सामने जो उत्तर दक्षिण की दौड़ती हुई सड़क आप देख रहे हैं ठीक उसी जगह पर वह दोनों इमारतें खड़ी थीं।'

जमालुदौला ने दो क्षण ठहर कहा—'मिरजा शैदा साहब ? गुलफाम मंजिल की सजावट में किसी तरह की कोई कमी बाकी नहीं छोड़ी गई थी। फर्श,कालीन, मसनद-तकिए, शीशे, तस्वीर , कंवल, दीवाल गिरे, झाड़-फानूस वगैरह-वगैरह कोई आरामश की चीज ऐसी न थी जो गुलफाम मंजिल के कमरों में मौजूद न हों।'

'यह तो मैं आज भी अपनी आँखों देख रहा हूँ। 'मिरजा ने कहा—'उस वक्त चाहे जिस किसिम की सजावट रही हो। लेकिन मौजूदा वक्त में भी आपकी गुलफाल मंजिल नयी दुलहिन सी मालूम होती है।'

जमालुदौला कुछ ठण्डे लहजे से बोले—'अजी अब वह बात कहाँ है ? इसकी वह रौनक तो हुस्नआरा अपने साथ ले गई। उसकी जिन्दगी के साथ एक तरह से गुलफाम मंजिल की भी जिन्दगी खतम हो गई। अब तो यह एक उजाड़खाना है

और उस उजाड़खाने में एक मुर्दे की तरह मैं बन्द रहता हूँ। 'फिर कुछ देर खामोश रह कर कहा—'मेरे कहने का मतलब यह था कि उस वक्त गुलफाम मंजिल शाही कोठियों और उनकी सजावट के बाद अपना नजीर आप थी। लखनऊ के किसी नवाब या अमीर रईस की हवेली इसके मुकाबले में नहीं ठहरती थी।

'अच्छा साहब, तो एक दिन मैं और हुस्नआरा मय नौकरानियों के गोलागंज के अपने उस पुश्तैनी-सकूनती मकान को खैरबाद कह कर गुलफाम मंजिल में आ जमे। बाद में उस पुराने मकान को मैंने लाला बिहारीलाल साहूकार को बेच दिया था। जब हम लोग इस गुलफाम मंजिल में आकर रहने लग गये तो हुस्नआरा अपनी जिन्दगी में एक नयी ताजगी महसूस करने लगी। शाम के वक्त हम दोनों हवेली के पीछे वाले बाग में पहुँच जाया करते। बाग की फिजा देखते ही बनती थी। बाग के बीच काफी बड़ी एक हौज और उसके चारों तरफ करीब-करीब दस हाथ चौड़ा पक्का चबूतरा था। उस पर मुनासिब तरीके से देसी और बिलायती फूलों के बड़े बड़े गमले सजे हुए थे। हौज में पुराना पानी निकालने और ताजा पानी भरने के लिए ऊँचे-नीचे सूराखों में नल लगे हुए थे। हौज के दरमयान में एक फव्वारा चलता उसी से जब पानी नीचे गिरता और बूँदें ऊपर को उछलती थीं, देखकर आँखों में तरावट महसूस होती थीं। हौज में तरह-तरह के रंगों की मछलिया पाली गई थीं। और हुस्नआरा हौज के किनारे बैठ कर पानी में पैर लटका कर बहुत देर तक मछलियों से खेला करती थी। मछलियाँ भी इस कदर हिल-मिल गई थीं कि झुन्ड की झुन्ड आकर पैरों से लिपट जाती थीं। उन्हें भी हमारा खेल पसंद था।

'बाग में तरह-तरह के फूल बेला, चमेली, जूही मोंगरा, चम्पा, केतकी और गुलाब खिले होते थे। हमारे बाग में गुलाब के फूलों की जितनी-जितनी किममें थी, मेरा ख्याल है कि उतने रंग के गुलाब शाही चमन में भी नहीं थे, सफेद, गुलाबी, गहरा लाल, हरा गुलाब, और काले रंग का गुलाब मौजूद था। इसी तरह बेला और मोंगरा की भी कई किसमें थी, जिनमें छोटे और बड़े फूल खिला करते थे। सात रंगों की बड़े—बड़े फूलों वाली बैजन्ती केवल हमारे ही बाग में थी।

'कभी मौज आ जाती तो मैं और हुस्नआरा ढेर सारे रंग—रंग के फूल चुमते ओर हौज के किनारे बैठ कर उन फूलों से तरह-तरह के जेवर तैयार करते थे। मैं अपने बनाये हुए जेवर हुस्नआरा को पहनाता और हुस्नआरा अपने तैयार किए जेवर मुझे पहनाया करती थी। दोनों एक दूसरे की सजावट को देख कर हंसते और खुश होते थे। मिरजा साहब उस जिन्दगी के आनन्द का इस वक्त बयान करना असम्भव सी बात है। उन दिनों की याद आते ही अन्दर एक हूक सी पैदा हो जाती है।

'लखनऊ में गुलफाम मंजिल का ढिंढोरा-सा पिट गया था। अकसर लोग सुबह-शाम उनकी बनावट-सजावट और रौनक देखने के लिए आया करते थे और देख कर तारीफों के पुल बाँध दिया करते थे।

'एक दिन शाम के वक्त हजरत जाने-आलम और नवाब माशूक महल बादेबाहारी पर सवार होकर लखनऊ की सैर को निकले थे। मौज आ गयी, तोप दरबाजा की तरफ निकल आये। बादेबाहारी आकर गुलफाम मंजिल के समाने रुक गई। मैं और हुसनआरा अन्दर थे। खबर पाते ही दौड़ पड़े। सिर झुका कर बादेबाहारी पर से शाही जोड़े को उतारा। दीवानखाने में ले आए। स्वागत-सत्कार शुरु किया। लेकिन शाही जोड़ा मसनदनशीन नहीं हुआ। फरमाया, हम बैठने के लिए नहीं आए, सैर को निकले थे। इधर आ गये। घूम-फिर कर गुलफाम मंजिल के एक-एक कमरे को देखा। बाग को देख कर बहुत खुश हुए और चले गये।

'मिरजा साहब, यह वही जमाना था जब जाने-आलम ने अपनी पसन्द की शादी वजीर अली नकी खाँ की लड़की से की थी। उनकी पहली शादी पन्द्रह वर्ष की आयु में उनके दादा मोहम्मद अली शाह ने कराई थी। पहली निकाही बेगम साहिबा यानी खास महल, जिसका नाम आलमआरा और खिताब आजम बहू था, वजीरे आजम नवाब अली नफी खाँ की सगी भतीजी थीं। इस शादी के वक्त जाने-आलम की अवस्था उनतीस वर्ष की थी। शाही हरम साठ-सत्तर मुताई बेगमों से खचाखच भरा हुआ था। खास महल और उनके दूसरी बेगमों की गोदों में शाहजादे तथा शाहज़ादियाँ भी मौजूद थीं। इस शादी निकाह की खास जरुरत नहीं थी। हाँ, यह बात अवश्य थी कि हरमसरा की उस भीड़ में नवाब खास महल को छोड़ कर कोई भी बेगम खानदानी न थी। सभी बाजारी औरतें थीं और अपनी किस्मतों के बदौलत शाही बेगमें बनी गुलछर्रे उड़ा रही थी। दो-चार को छोड़ कर एक को भी अपनी इज्जत और मर्तबे का ख्याल न था। न किसी तरह की जिम्मेदारी महसूस करती थीं। जिसे मैं आप को सुना चुका हूँ। इसके अलावा खास महल से हजरत का दिल शुरु से फटा-फटा सा रहता था। यह सब कुछ ऐसे कारण थे जिन्होंने बादशाह सलामत को इस निकाह के लिए कमरबस्ता कर दिया था। फिर नवाब अली नकी खाँ का खानदान सुन्दरता और संगीत के लिए मशहूर था। बादशाह तथा वजीर वार जैसा सौन्दर्य ढूँढ़े नहीं मिलता था। नवाब की यह लड़की रूप-सौन्दर्य, संगीत और सरल स्वाभाव में अपनी दूसरी बहनों से बहुत आगे बढ़ी हुई थी। जाने-आलम उसे देख कर आँखों में बसा चुके थे।

इधर का तो यह हाल था और उधर नवाब अली नकी खाँ साहब बड़ी दूर की देखने तथा सोचने वाले थे। अवध राज्य का इतिहास उनसे छिपा न था। बादशाह तथा बजीर का जैसा संबन्ध मेहरबानी और नाराजगी जिस प्रकार लखनऊ में चली आ रही थी, उसे बह अच्छी तरह जानते समझते थे। वजारत के पद की कोई दृढ़ता नहीं थी। क्षण-मात्र में जड़-मूल से उखड़ जाता था। कोई नहीं जान सकता था कि कब बादशाह शलामत की लाल नजर हो जाय और कब वजीर-आलम पर आसमान फट पड़े। उन्हें लखनऊ से निकाले जाने पर गधे की सवारी भी नसीब न हो। अतः इन सभी बातों पर गौर करके नवाब अली नकी खाँ अपने वजारत के ओहदे को

मजबूत बनाने की फिक्र में रहते थे। भलाई-बुराई नेकनामी-बदनामी किसी भी सूरत से वह अपने ओहदे को हिमालय की तरह खड़ा रखना चाहते थे।

'बादशाह सलामत ने अपने एक मुसाहब के जरिए वजीरे-आज़म के पास शादी का पैगाम भेजा। बिल्ली के भाग्यों सींका टूट पड़ा। नवाब अली नकी खाँ के हाथ में घर बैठे सोने की चिड़िया आ गई। बादशाह से रिश्ता जोड़ लेने के मुकाबले पर वजारत की मज़बूती के लिए और कौन सी तबदीर ठहर सकती थी। फिर उन्होंने अपने परम मित्र मिरजा वसी अली खाँ से इस विषय में मशविरा किया। मिरजा वसी अली खाँ मामूली आदमी न थे। बड़े तिकड़मी और दूर की गोटी बैठाने वाले थे। नवाब से मिरजा की दाँत-काटी रोटी थी। वजारत का कोई भी काम बिना मिरजा की इसलाह के हाथ में नहीं लिया जाता था और लखनऊ के कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना था कि नवाब अली नकी खाँ की यह वजारत मिरजा वसी अली खाँ की वजारत है।

'मिरजा वसी अली खाँ ने छूटते ही कहा—'यह पैगाम खुदा का पैगाम है।' उसने वजारत के पाये को मजबूत बनाने के लिए ही यह पैगाम भिजवाया है। ससुर दामाद का रिश्ता को मामूली रिश्ता नहीं है। जिसकी लड़की अन्दर उसका बाप सिकन्दर। बिला कुछ सोच-विचार के आप इस रिश्ते को मन्जूर करके जितनी जल्दी मुमकिन हो सके साहबजादी की गाँठ हजरत सलामत से बाँध दीजिए।

'नवाब अली नकी खाँ ने अपना सिर्फ एक ही संकोच जाहिर किया। कहा—'नवाब खास महल मेरी सगी भतीजी हैं। वह क्या ख्याल करेंगी! कहेंगी चचा ने अपने मतलब के लिए लड़की को सौत बना कर मेरी छाती पर बैठा दिया।'

'मिरजा ने नवाब की इस कमजोरी को आन की आन ने दूर कर दिया। कहा—'यह जो साठ-सत्तर बेगमें शाही हरमसरा में बैठी हुई खासमहल की छाती पर मूँग दल रही हैं, इनका कौन दोषी है? क्या वे सब उनकी सौतें नहीं हैं? आप का यह ख्याल बेसिर-पैर का है। फिर इस दुनिया जहान में अपने फायदे के लिए कौन क्या नहीं करता। यह तो एक रिश्ता जोड़ने की बात है। जरुरत पर लोग बड़ी साजिशें तक कर गुजरते हैं।' फिर जरा मुस्करा कर कहा—'इसमें शक नहीं है कि नवाबजादी शाही हरम में पहुँच कर बादशाह के नाक का बाल बन जायेगी। सबके नगाड़े उलटे हो जायेंगे। खून और खानदान अपना वह असर दिखलायेगा कि हजरत वाजिद अली शाह नवाबजादी रौनक आरा की मुट्ठी में बन्द हो जायेंगे और वह जो एक मसल मशहूर है कि जिसको पिया चाहे वही सुहागिन, सच साबित होगी। और आप का ओहदा अडिग हो जायगा।'

'नवाब अली नकी खाँ ने बादशाह सलामत का सन्देश सहर्ष स्वीकार करके अर्ज कराया—'जहांपनाह की जो दया-कृपा मुझ गरीब पर चली आ रही है वह कुछ कम नहीं कही जा सकती थी। अब आला हजरत रिश्ता जोड़ कर उसे और ऊँचा उठाना चाह रहे हैं। इस महती उदारता के विषय में कुछ कहने के लिए मेरे मुँह में

जबान नहीं है । लेकिन कुछ कहने का साहस कर रहा हूँ । हजरत की शान के अनुसार शादी की रसमें सम्पन्न करने की इस नाचीज की हैसियत नहीं है । फिर भी अपना-कर्तव्य, खानदान का ख्याल और वजारत पद के लिहाज से जो कुछ हो सकेगा करूँगा, जहाँपनाह की शान में किसी तरह का फर्क न आने दूँगा । और हजूर भी उसे मान का पान समझ कर स्वीकार करेंगे । इसके साथ दूसरी अर्ज यह है कि कमतरीन के पूर्वजों और वंश की उच्चता भली प्रकार हुजूर को मालूम है । उसका ख्याल करते हुए फिदबी चाहता है कि आलम पनाह शुभ-मुहूर्त विचार कर सिर पर सेहरा बाँध कर रेजीडेन्ट और तमाम दरबारी अमीर-मुसाहबों तथा रिश्तेदारों को साथ लेकर शाही शान-व-शौकता के साथ ब्याहने के लिए मेरे मकान तहसीनगंज पर तशरीफ लाएँ और इस नाचीज को खाक से पाक करें ।'

'बादशाह सलामत ने नवाब वजीर की एक-एक बात मान ली । जल्दी-जल्दी रसमें पूरी की गईं । शुभ दिन को हजरत सलामत के सिर पर नायब रेजीडेन्ट वर्ड साहब ने मोतियों का सेहरा बाँधा । निहायत, शान व शौकत से बादशाह सलामत वजीरे-आलम के घर ब्याहने पहुँच गये और दुलहिन को ब्याह लाए । जाने-आलम की इस शादी में हुस्नआरा और मैं भी शरीक हुआ था । शाह मंजिल में दुलहिन के साथ हजरत सलामत मसनदनशीन थे । जनाब आलिया यानी जाने-आलम की अम्मी हुजूर मालिका किश्वर बहादुर भी मौजूद थीं । हरमसरा की सभी बेगमें सोलहों सिंगार से सजी हुईं दौड़ी-दौड़ी फिर रही थीं । केवल नवाब खास महल सौतिया डाह लिए अपने महलों में बैठी थीं । जाने-आलम ने नई दुलहिन को मलिक-ए-अवध नवाब अख्तर महल का खिताब अता किया था ।

इसके बाद जमालुद्दौला ने बड़े तकिए पर आराम से टिक कर कहा—'मिरजा साहब, जाने-आलम की इस शादी का जिक्र कोई जरूरी नहीं था । मगर मेरी शादी के जिक्र में आपने इसका बयान सुनना चाहा था, इसलिए मैंने संक्षेप में सुना दिया ।'

'क्या आप को यह याद है कि जाने-आलम की यह शादी किस सन्-ईस्वी में हुई थी ?'

'तारीख तो याद नहीं है । लेकिन जून का महीना और अठ्ठारह सौ इक्याबन का सन् अच्छी तरह याद है ।'

उनतीस

'अब दिन काफी आगे बढ़ आए थे। जाने-आलम की तख्त-नशीनी का सातवाँ साल चल रहा था। मैं और हुस्नआरा इसी गुलफाम मंजिल में रह रहे थे। बड़े मौज और प्यार की जिन्दगी थी। किसी तरह की फिक्र और तकलीफ का क्या जिक्र, दिन रात एक तरह से खुशियाँ ही खुशियाँ बरस रही थीं। जो कुछ हुस्नआरा को पसंद था वह मुझे मंजूर था और जो कुछ मैं चाहता उसे हुस्नआरा चाहने लग जाती थी। दोनों में तकुल्लफ, बनावट या किसी तरह का नाज-नखरा न था। शाम के वक्त हम दोनों कभी बाग में पहुँच कर रंगरेलियाँ मनाते, कभी गाड़ी पर बैठ कर घूमने, सैर करने को निकल जाया करते थे। हम दोनों के सैर की दो खास जगहें थीं। एक दिलकुशा और दूसरी दरिया गोमती का किनारा। दरिया के किनारे गाड़ी से उतर कर और ठण्डी-ठण्डी बालू पर बैठ कर मीठी-मीठी बातें करने में बड़ा मजा आता था। कभी-कभी सरफराज अली खाँ भी आ जाते थे और हमारे साथ वह भी सैर को चल पड़ते थे। किसी-किसी दिन हुस्नआरा अपना सितार भी गाड़ी में रख लिया करती और नदी के किनारे बैठ कर तारों को झनझनाया करती थी। नदी में कई शाही बजरे खड़े रहते थे। मल्लाह भी मौजूद होते थे। मुझे सब जानते-पहचाने और इज्जत की निगाह से देखते थे। वह लोग हमारे पास आकर बजरे में बैठकर गोमती की सैर की इल्तजा करते थे। मौज आ जाती तो मैं और हुस्नआरा बजरे पर सवार होकर देर तक नदी में घूमा-फिरा करते। अंधेरा होने पर घर लौट आते थे। हुस्न आरा अकसर मल्लाहों को इनाम इकराम दे दिया करती थी और वह लोग खुश होकर दुआएँ दिया करते थे।

'ऐसे ही दिनों का एक वाकया है। बरसात की शुरुआत थी। पानी बरस कर निकल गया था। लेकिन आसमान पर बादल छाए हुए थे, फिर भी उमस काफी थी। उस दिन कुछ पहले ही मैं और हुस्नआरा सैर के लिए तैय्यार हो गये। तभी सरफराज अली खाँ भी आ गये। तीनों गाड़ी पर सवार हो गये। गुलफाम मंजिल के फाटक से गाड़ी निकल कर रास्ते पर आई। सईस ने पूछा—किधर को गाड़ी का रूख किया जाय? मैंने कहा दिलकुशा···। लेकिन हुस्नआरा बीच में बोल उठी।—'नहीं, गोमती की तरफ चलो। घोड़े गोमती के रास्ते पर दौड़ने लगे। कुछ ही देर में नदी के किनारे पहुँच गये। गाड़ी से उतर कर हम लोग नदी के किनारे की तरफ बढ़े। हुस्नआरा अपना सितार संभाले हुये थी। बड़ा सुहाना मौसम था। हर तरफ हर-याली ही हरयाली दिखाई देती थी। किनारे की रेत ठण्डी हो रही थी। रेत का एक

बड़ा सा कुछ ऊँचा मैदान ताक कर हम लोग बैठ गये। कुछ देर मौसम से संबंध रखने वाली बातें होती रहीं। इसके बाद हुस्नआरा ने सितार के तार मिलाये और तिलक कामोद बजाना शुरू किया। नदी के किनारे पर तारों की झंकार जिस प्रकार गूँज रही थी, उसका बयान मुझसे नहीं हो सकता। एक झटके के साथ झंकार समाप्त हो गई। शायद हुस्नआरा कोई दूसरी राग बजाना शुरू करती कि जाने किस तरफ से गोटे पट्टे और किरण मसाले जड़ी हरे रंग की पिशवाज पहने, गले में काले रंग की जाली की ओढ़नी डाले, पैरों में घुँघरू बाँधे एक परी जमाल छम-छम करती वहाँ आकर हम तीनों के सामने खड़ी हो गई। आश्चर्य से हम लोगों की निगाहें उसकी तरफ उठ गईं। उसकी उम्र चौबीस-पचीस साल के करीब थी। भरी जवानी का आलम था। नाक नकशा, शारीरिक बनावट वगैरा आकर्षक थी। आखें बड़ी कटीली थीं।

'आते ही उसने हुस्नआरा से सवाल किया—' ऐ बाजी, तुम यहाँ बैठी हो? तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैं थक गई। आज इस वक्त तुम यहाँ नजर आईं?'

'हुस्नआरा उसके कहने का कोई जवाब न देकर हैरत भरी नजर से उसकी तरफ देखने लगी। मैंने धीरे से हुस्नआरा से पूछा—'तुम इन्हें जानती पहचानती हो?' हुस्नआरा ने मेरी तरफ नजर घुमा कर कहा—'नहीं, पहली बार, इस वक्त और यहीं देख रही हूँ।'

'तभी मल्लाह हम लोगों के पास आ गये। बोले—'हुजूर बजरा तैय्यार है। नदी की सैर के लिए चलिए। आज का मौसम बहुत अच्छा है।'

'वह परीजमाल मल्लाहों की तरफ देख कर बोली—'ऐ, मैं भी बजरे में सवार हूँगी।' एक अधेड़ उम्र का मल्लाह मुस्करा कर बोला—'हाँ हाँ, तुम जरूर बजरे में सवार होना मगर एक शर्त है?'

'क्या?' उसने कहा।

'बजरे में नाचना-गाना पड़ेगा।'

'ऐ, दिल खोल कर नाचूँ-गाऊँगी। बड़ी मुश्किल में बहिन मिली है। आज न नाचूँ-गाऊँगी तो कब के लिए उठा रखूँगी।' उसने उत्साह भरे स्वर से कहा।

'मैंने उस मल्लाह से पूछा—'क्या तुम इन्हें जानते हो?'

'हाँ हजूर?' उसने कहा—'ये कस्साब के पुल के करीब रहने वाली मुन्नी तवायफ की लड़की अजीजन जान हैं। गाने नाचने में बड़ी हुशियार है। दिन रात राग-रागिनियों के भेद-भाव में व्यस्त रहने के कारण पालन हो गई हैं।'

'अजीजन ने उस मल्लाह की तरफ घूर कर देखा-बोली—'तुम्हारी खोपड़ी, कौन कहता है कि मैं पागल हूँ। मैं तो छ: राग और छत्तीस रागिनियों की अवतार हूँ। जिस राग और जिस रागिनी को कहो सामने खड़ा करके दिखादूँ। गाना-नाचना क्या कोई आसान काम है? चोटी का पसीना एँड़ी से बह जाता है तब कहीं संगीत का कुछ ज्ञान होता है।' फिर हँस कर हुस्नआरा की तरफ देख कर कहा—'क्यों बाजी?

सही कहती हूँ न ? तुम भी तो सितार बजाती हो। जाने कितने दिन खून-पानी किया होगा तब पर्दों पर उँगलियाँ दौड़ाना और तारों की झंकारों से पानी ऐसा बरसाना आया होगा। तुम्हारे सितार की झंकार सुनकर ही तो मैं दौड़ी आई हूँ।'

'हम तीनों उठ कर बजरे पर सवार हुए तो अजीजन भी झमक कर बजरे पर आ बैठी। बजरा आगे बढ़ चला।

'सरफराज ने अजीजन से कहा—'बीबी अजीजन ? बजरे पर बैठ कर दरिया की सैर खामोशी के साथ तो अच्छी नहीं मालूम होती। कुछ गाना शुरू करो ?'

'कौन सा राग सुनना चाहते हो ?'

'राग रागिनी से तो मैं वाकिफ नहीं हूँ ?' सरफराज ने कहा—'इस सुहाने मौसम में कौन सा राग गाया जाना चाहिए यह तुम्हीं जान सकती हो ?'

'वह मुस्करा फर बोली—'ऐ, तो आप मेरा इम्तिहान ले रहे हैं ? यह मौसम तो मेघराग गाने का है ?'

'अच्छा वही गाओ ?'

'नहीं, इस वक्त मैं मेघ राग नहीं गाऊँगी। जोर की वारिश होने लग जायगी। नदी में बाढ़ आ जायगी और बजरा दरिया में डूब जायगा। मैं ऐसा नहीं करना चाहती।'

'मैंने कहा—'मौसम की कोई हलकी-फुलकी चीज गा कर सुना दो।'

'वह बोली—'हाँ, यह आपने ठीक फरमाया ? हलकी-फुलकी मौसम की कोई चीज गाने से रागिनी का प्रभाव भी हलका-फुलका आयेगा।' और उसने गाना शुरू किया—'कुंजन में झूलत दोनों गात।'

'अजीजन के कंठ की क्या तारीफ की जाय। कोयल की तरह कूक रही थी। और नजर घुमाकर बजरे के दरीचों से आकाश की ओर भी देखती जाती थी। उसने अपने गीत को इस पहली कड़ी को कई बार गाया और गलेबाजी के अजीब-अजीब चमत्कार दिखाए। फिर आगे गाया :—

परत फुहार हवा के झोंके,
पिया मुख मुड़-मुड़ जात।
कुंजन में झूलत दोनों गात।

'बजरे के बाहर हल्की-हल्की वारिश होने लग गई थी। हवा के झोकों के साथ फुहार की बूंदें बजरे के अन्दर जाने लगी थीं। उसकी रागिनी ने वाकई तौर पर पर अपना प्रभाव दिखा दिया था। हम लोग बुत बने बैठे थे। कोई साँस भी लेता नहीं मालूम होता था। बजरा धीरे-धीरे बीच नदी में चल रहा था।

'अजीजन अपना गीत खतम करके हुस्नआरा से मुखातिव हुई, बोली—'बाजी, आज मैं तुम्हें वह बात बताने आई हूँ जो मैंने अभी तक किसी को नहीं बताई थी। क्या तुम उसे सुनोगी ?'

'जरूर सुनेंगी ?' हुस्नआरा ने कहा—'कहो ?'

'मुझे अपने पहले जन्म की याद है। एक-एक बात याद है।' उसने बड़े इतमीनान के साथ कहा—'पहले जन्म में मैं मथुरा में एक पुजारी चौबे की लड़की थी। मेरे पिता-माता ने मुझे देवदासी बना दिया था। द्वारिकाधीश के मंदिर में कृष्ण भगवान की मूर्ति के आगे नाचा-गाया करती थी। बड़े आनन्द का जीवन था।.......' वह एक क्षण रुक कर बोली—'जाने किस अपराध और पाप के कारण मेरा दूसरा जन्म इस लखनऊ में हुआ और वह भी एक रंडी की कोख से। अपना क्या वश था। रंडी के उदर से जन्म लेने के नाते मेंने रंडी के गुणों को अपनाया। गाना-नाचना सीखा और उसी में लीन हो गई। रंडी को बदनाम करने वाले जो व्यसन गिनाये जाते हैं उनमें से एक को भी मैंने पास नहीं आने दिया था।' फिर हँस कर कहा—'बाजी ? मैंने ये ठीक किया था न ?'

'बिला शक, तुम्हारा रास्ता सही था।' हुस्नआरा ने कहा।

'वह फिर बोली—'अब मेरा इस दुनिया का जीवन खतम हो गया.........' फिर थोड़ा ठहर कर कहा और तुम्हारी जिन्दगी भी ज्यादा नहीं है। जो कुछ करना चाहो कर लो। लेकिन याद रखो, ये ऐश-आराम, खाना-उड़ाना और प्रेम-प्यार दुनिया के चोचले हैं। कोई साथ जाने बाला नहीं है। साथ जाने वाले केवल धर्म-कर्म हैं।'

'हम लोगों की समझ में उसका कहना कुछ नहीं आया। हैरत भरी नजरें उसके चेहरे पर गड़ी थीं। तभी अजीजन एकदम उठकर खड़ी हो गई और बजरे की खिड़की से कूद कर नदी में गिर गई। सब लोग घबड़ा गये। तीन-चार मल्लाह जल्दी से अजीजन को निकालने के लिए नदी में कूद पड़े। सांसों को साध-साधकर उन लोगों ने गोमती की तह को छान डाला मगर अजीजन का कहीं पता न मिला। और अन्त में मल्लाहों ने हार मान ली।

'शाम का अंधेरा गहरा होता चला जा रहा था। अजीजन नदी में लोप हो चुकी थी। उसे तलाशने की अपनी सी कोशिश भी की जा चुकी थी। इसलिए बजरा किनारे की तरफ लौट पड़ा। किनारे पर आ कर हम तीनों उदास मन लिए खामोशी के साथ बजरे से उतर कर गाड़ी पर सवार हुए और गुलफाम मंजिल में आ गये। सरफराज अली खाँ अपने घर चले गये। उस रात मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आई। अजीजन की वह सीख जो उसने हुस्नआरा को दी थी मुझे बार-बार याद आ रही थी। और खास तौर से उसका यह जुमला—तुम्हारी जिन्दगी भी ज्यादा नही है। मुझे भूल ही नहीं रहा था। तरह—तरह के ख्याल परेशान कर रहे थे। बहुत देर बाद आँखें झुकीं और हर बात आई गई हो गई।

'दूसरे दिन सुबह जब मैं शाह मंजिल पहुँचा। मैने जाने-आलम को अजीजन का वह दर्दनाक वाकया सुनाया।

'सुनकर जाने-आलम ने फरमाया—कस्साव के पुल पर रहने वाली मुन्नी जान और उसकी लड़की अजीजन से हम वाकिफ है। वली अहदी के जमाने में मुन्नी जान अकसर हमारी महफिलों में शरीक हुआ करती थी। उसके मुकाबले की गजल लखनऊ में दूसरी कोई तवायफ नहीं गा सकी। हाँ, इस वक्त मकरन जान मुश्तरी ने जरूर गाने में बड़ा कमाल हासिल कर लिया है। अजीजन उस वक्त कमसिन थी। नाचना गाना सीख रही थी। लेकिन उसे उस वक्त से ही संगीत की तह तक पहुँचने की एक धुन सवार थी। उस्ताद बासित खाँ से तालीम ले रही थी। इधर हमने सुना था कि अजीजन वाकई संगीत—कला की तह तक पहुँच गई है और उसे हिन्दी चीजें राग रागिनियों के साथ गाना पसंद है। गजल तो वह कभी भूल कर भी नहीं गाती। हम सोच रहे थे कि एक दिन उसे बुलाकर महफिल जमाएँगे। लेकिन वक्त टलता चला गया। फिर हमने सुना था कि उसके दिमाग में कुछ पागलपन पैदा हो गया है। खैर, अब तो उसका किस्सा ही खतम हो गया। तुमसे जो उसने अपनी पहली जिन्दगी का जिक्र किया, वह सब कहा जा सकता है। अकसर देखा गया है कि बचपन के जमाने तक किसी-किसी को अपने पहले जन्म की याद बनी रहती है मगर बाद में उसे भूल जाते है। इस तरह से हो सकता है कि अजीजन किसी मंदिर में नाचने गाने वाली देवदासी रही है।

'मिरजा जफर हुसैन साहब ?' जमालुदौला ने जरा देर खामोश रहने बाद कहा 'अजीजन के इस किस्से ने या खुदा जाने किस ख्याल ने हुस्नआरा को मजहब की तरफ ज्यादा झुका दिया। अब उसकी दिलचस्पी जो सितार के साथ थी वह बदल कर कुराने पाक और रोजा नमाज के साथ हो गई थी। खुद कुरान शरीफ का पाठ किया करती थी और दिन के तीसरे पहर रोजाना मुगलानी को अपने पास बैठा कर उससे पढ़वा कर सुना करती थी। पाँचों वक्त की नमाज अदा करना और मस्जिद में पहुँचना भी नहीं भुलती थी। मैं यह बता चुका हूँ कि जो कुछ हुस्नआरा को पसंद था वह मुझे भी मंजूर था। अगरचे कुरान पाठ और पंज-वक्त नमाज मेरे लिए एक दर्द-सर से कम न थी। मगर हुस्नआरा के साथ मुझे भी इन कामों में शरीक होना पड़ता था। हर जुमेरात को सौ-दो सौ रुपया फकीरों गरीबों को खैरात बाँटन भी हुस्नआरा का नियम था। इस तरह से हुस्नआरा की और उससे लगी लिपटी मेरी, धर्म कर्म की जिन्दगी चल रही थी।

'एक जुमा के दिन जैसे ही हम दोनों अपनी मस्जिद में नमाज पढ़ कर दीवान खाने में आकर बैठे हुस्नआरा ने अयारत के लिए करबला चलने की ख्वाहिश जाहिर की। मैंने उस वक्त मामूली सी बात समझ कर हाँ कह दिया। लेकिन हुस्नआरा को धुन सवार हो गई थी। जभी दोनों मिलकर बैठे होते करबला चलने का सवाल पैदा हो जाता था। मैं हाँ हूँ करके जितना टालता जाता उतना ही हुस्नआरा मेरे पीछे पड़ती जाती थी और कुछ उदास सी भी नजर आने लगी थीं। मैंने उसका दिल दुखाना मुनासिब न समझा। उसकी जिद किसी बुरे काम के लिए भी न थी। इस मौके

पर अजीजन का कहना भी याद आया। उसने हुस्नआरा से कहा था —'ये ऐशो आराम और खाना उड़ाना दुनिया के चोचले हैं। धर्म कर्म ही अपने साथ जाने वाले हैं। जो कुछ करना हो कर लो।

'हुस्नआरा के इरादे को अच्छी तरह समझ कर एक मौके पर जाने-आलम से भी जाहिर किया। उन्होंने पसंद किया। आखिर मैंने सफर की तय्यारियाँ शुरू कर दीं।

'सफर का पूरा यकीन नो जाने पर एक दिन हुस्नआरा गाड़ी पर सवार हो कर सआदतगंज अपनी माँ से मिलने गई और उसके बाद कोठी कैसर पसंद जाकर नवाब मालूक महल से भी मिल आई।

'पहले तो सरफराज अली खाँ ने भी मेरे साथ करबला-मुअल्ला चलने का ईरादा जाहिर किया था मगर बाद में इनकार कर दिया। इसकी वजह यह थी कि उनके बूढ़े बाप नवाब इम्तियाज अली खाँ साहब बीमार थे। ऐसी हालत में उन्हें अकेला छोड़ना मुनासिब न था। मैंने भी उन्हें यही सलाह दी कि इस वक्त तुम्हारा जाना गलत है। मैंने गुलफाम मंजिल का पूरा बंदोबस्त किया। उसकी देख-भाल और हिफाजत का हसनू को जिम्मेदार बनाया। और भी नौकरानियाँ थी। लेकिन हसनू पर मेरा पूरा विश्वास था। सफर खर्च के अलावा काफी जर नकद मैंने अपने साथ ले लिया। क्योंकि पहला सफर, फिर दूर दराज का मामला, गैर मुलक, वहाँ किसके आगे हाथ फैलाया जायगा। एक दिन मैं और हुस्नआरा लखनऊ से करबला के लिए रवाना हो गये।

'लजनऊ से चल कर पन्द्रह बीस दिनों हम दौनों कानपुर में ठहरे रहे। वहाँ से इराक के लिए रवाना हुए। इराक में बहुत से लोग लखनऊ के मौजूद थे। हम लोग इकबालुदौला के यहाँ ठहरे। वह एक अर्से से इराक में रह रहे थे। उनकी बीबी शम्शआरा बेगम हुस्नआरा की खाला होती थीं। इसलिए वह गैर जगह अपनी ही मालूम होने लग गई।

तीस

'जब एक लम्बे अर्से के बाद मैं और हुस्नआरा खुश-खुश करबला-मुअल्ला की जयारत से वापस लौटे, कानपुर में एक-दो दिन के लिए ठहर गये थे। क्योंकि वहाँ कई लोग मेरे मुलाकाती मौजूद थे। बल्कि यों समझिये कि उन लोगों ने ही मुझे रोक लिया था। उन मुलाकातियों की जवानी मालूम हुआ कि लखनऊ का तख्ता उलट गया है। अवध सल्तनत कम्पनी सरकार के पेट में चली गई है। लखनऊ में अब अंग्रेजों की हुकूमत हैं। सुलताने-आलम वाजिद अली शाह दर-दर के भिखारी बन कर अपनी पुकार के लिए कलकत्ते जा चुके हैं।

'इस मनहूस खबर को सुनते ही हम लोगों पर बिजली सी टूट पड़ी। हैरत के गहरे दरिया में डूब गये। कुछ समझ में न आया कि यह कैसा, क्या हो गया है।

'कानपुर से चलकर एक शाम को लखनऊ आये। गुलफ़ाम मंजिल के फाटक पर किराये की गाड़ी से उतरे। हसनू ने दौड़कर हम दोनों का स्वागत किया। और भी सभी नौकर-नौकरानियाँ उसके साथ थे। अन्दर दाखिल हुए तो देखा कि हसनू ने हमारे पीछे वाकई तौर पर गुलफ़ाम मंजिल की बड़ी हिफाजत की थी। कहीं भी किसी तरह का फर्क नहीं पैदा होने दिया था। हर एक कमरा उसी तरह साफ-सुथरा और सजा हुआ नजर आ रहा था। माल-असबाब जो कुछ भी हम जहाँ रखकर ताले लटका गगे थे वह सब उसी तरह मौजूद था। उस रात को कुछ थकावट और कुछ लखनऊ की मनहूस खबर की वजह से मैं और हुस्नआरा जल्द ही बिस्तर पर चले गये क्यों कि दिल भारी हो रहे थे।

'दूसरे दिन सुबह हम लोगों के आने की खबर पाकर सरफराज अली खाँ आ गए। गले मिले। फिर हम तीनों मिलकर दीवानखाने में आ बैठे। सरफराज ने जयारत और ईराक की सैर का हाल चाल पूछा। मैंने कहा—'वहाँ का हाल अहवाल पीछे कहूँगा पहले तुम लखनऊ की तबाही-बरबादी, उलट फेर और जाने-आलम से हुकूमत छीन जाने की पूरी कैफियत मुझे सुनाओ। लखनऊ पर यह खुदा का कहर क्यों फट पड़ा ? जाने-आलम क्यों दर-दर के भिखारी बना दिये गये।'

'यह सब अल्ला मियाँ का गैज-व-गजब ही था।' सरफराज ने धीरे से और उदास लहजे से कहा।

'सरफराज खाँ ?' मैंने कहा—'हम लोगों के दिल बैठे जा रहे हैं। यह मैं मानता हूँ कि खुदा के हुक्म के बगैर एक तिनका, एक जरा भी इधर से उधर नहीं होता। लखनऊ को तबाही और अवध सल्तनत का खात्मा भी उसी के हुक्म से हुआ

होगा। लेकिन इतने से ही दिल को तसल्ली नहीं हो सकती। पूरी हकीकत और कैफियत सुनने-समझने के लिए हम लोगों के दिल तड़प रहे हैं।'

'जरा देर खमोश बैठे रहने के बाद सरफराज अलीखाँ ने नजर उठाई, बोले—'अच्छा सुनिए। इस बारे में मुझे अपने वालिद बड़े नवाब साहब से जो कुछ मालूम हुआ है वह मैं आपके आगे अपनी जबान से दोहरा रहा हूँ क्योंकि बड़े नवाब साहब शाही दरबार से संबंध रखते थे। रोजाना आते-जाते थे। लखनऊ की तबाही और सुलताने-आलम की हुकूमत खतम होने की खास वजह उन्हें मालूम थी। हाँ, उस उलट- फेर में जैसा जो कुछ मैंने अपनी आँखों से देखा था उसके बयान में किसी तरह के झूठ या शक-सुभा की गुंजाइश न होगी।'

'आपके बड़े नवाब साहब ने जाने-आलम के हाथ से हुकूमत छीन ली जाने की क्या वजह बताई थी?' मैंने पूछा।

'उनका कहना यों था।' सरफराज ने इत्मीनान के साथ कहना शुरू किया। जाने-आलम का कोई कसूर नहीं था। उनकी हुकूमत में कोई खराबी नहीं थी। अवध राज्य में पूरा अमन-चैन था। प्रजा खुशहाल थी और बादशाह सलामत की हुकूमत को पसंद करती थी। लेकिन अंग्रेज सरकार ने अपनी धींगा-धींगी और फौजी ताकत के जोर-शोर से उन्हें तख्त से उतार कर अवध राज्य को कम्पनी राज्य में मिला लिया है। एक अर्से से अंग्रेजों की आँखों में लखनऊ शहर की रौनक-सभ्यता बादशाहत यहाँ के दूसरे नवाब रईसों का ऐश-आराम काँटे की तरह चुभ रहा था। कलकत्ता में कम्पनी में सरकार का जो नया गवर्नर जनरल विलायत से आकर बैठता था उस की पहली नजर अवध राज्य ही पर थी। एकदम नीयत बदल जाती थी और वह लखनऊ के बादशाह के सामने सैकड़ों तरह की मुसीबतें खड़ी कर देता था। नवाब शुजाउद्दौला के बाद से इस वक्त तक यह खेल चल रहा था। नवाब सआदत अली खाँ से कम्पनी सरकार ने अवध का आधा राज्य भी आँख दिखा कर अपने कबजे में कर लिया था। जो कुछ बच रहा था और जिस पर सुलताने-आलम वाजिद अली शाह हुकूमत कर रहे थे। नये गवर्नर लार्ड डलहौजी ने आकर उसे खतम कर देने का काम अपने हाथ में लिया। लखनऊ में अंग्रेज रेजीडेन्ट तो बहुत पहले से जमा बैठा था। गवर्नर जनरल ने अपने मतलब के लिए एक शातिर गुस्ताक चालाक अंग्रेज सलीमन को लखनऊ का रजीडेन्ट बनाया। सलीमन ने सारे अवध राज्य का दौरा किया। और सुलताने आलम की हुकूमत में हजारों खराबियाँ साबित करके अपना सफरनामा गवर्नर के पास भेज दिया। साथ ही अवध राज्य को बहुत जल्द मिटा देने की अपनी राय भी जाहिर कर दी।'

'रजीडेन्ट सलीमन के अड़ंगों, जाने-आलम की परेशानी और उसके अवध राज्य के दौरे पर निकलने का कुछ हाल उस वक्त मुझे भी मालूम हुआ था।' मैंने कहा।

'जरूर मालूम हुआ होगा। मगर उस वक्त इस तबाही का न लखनऊ के किसी शख्स को यह ख्याल था न आप को रहा होगा ?' सरफराज ने कहा।

'यह तो तुम्हारा कहना सोलहो आने सही है।' मैंने कहा—'उस वक्त थोड़ा भी इस उलट-फेर का ख्याल नहीं होता था। मुझे जाने-आलम की वह परेशानी हुकूमत के बोझ की एक हलकी सी थकावट समझ में आती थी।'

'खैर, सलीमन अपना काम करके लखनऊ से चला गया और उसकी जगह पर सुलताने-आलम को गद्दी पर से उतार देने के लिए नया रजीडेन्ट जनरल आउट्रम आया। उसके साथ कानपुर में अंग्रेजी फौजें और तोपखाना वगैरा भी लखनऊ का घेरा डालने को तैय्यार था। आउट्रम ने लखनऊ की रजीडेन्सी में कदम रखकर वजीर आलम नवाब अली खाँ को अपने पास बुलाया और खुले शब्दों में कहा—'कम्पनी सरकार ने अवध राज्य को कम्पनी राज्य में मिलाने का निश्चय कर लिया है। बादशाह वाजिद अली शाह को बारह लाख रुपया सलाना गुजारे के लिए मिलेगा। इस बारे में गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने हुक्मनामा बादशाह के लिये भेजा है, वह हजरत के पास पहुँचेगा। उस हुक्मनामे का खास मतलब यह है कि बादशाह वाजिद अली शाह यह लिखकर हमें देदें कि हम अपनी खुशी और रजामन्दी से कम्पनी सरकार के हाथों में अवध सल्तनत को सौंप रहे हैं। आगे हम हुकूमत का भारी बोझ अपने सिर पर नहीं ढोना चाहते। हमारे लिये कम्पनी सरकार ने जो गुजारा देना निश्चय लिया है हमें मंजूर है।'

'इसके मानी तो यह हुए कि मारना और रोने न देना। अपने हाथों अपना घर लुटा देना ?' मैंने धीरे से कहा।

'जनरल आउट्रम ने यह सब सुना कर वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ को भी एक मीठा सा झाँसा दिया, कहा—'तुम्हें बादशाह के मिजाज में पूरा दखल है। वह आँख बन्द करके तुम्हारा कहना मान लेते हैं। और एक तरह से सलतनत का सारा बोझ तुम्हारे कंधों पर रखे हुए हैं। इस लिए तुम्हें चाहिए कि बादशाह से वह राजीनामा लिखवाकर हमारे हवाले करो। तुम खैरख्वाह कम्पनी सरकार समझे जावोगे। इस काम के बदले में कम्पनी सरकार तुम्हें कसबा मछरहट की जागीर अता करेगी जो हमेशा तुम्हारे बंशजों के अधिकार में रहेगी। अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो गुनहगार समझ लिए जाओगे। गुनाहगार का जो नतीजा होता है उसे खुद समझ सकते हो ?'

'इस पर नवाब वजीर ने क्या जवाब दिया ?' मैंने पूछा।

'इसका तो मुझे पता नहीं हैं कि नवाब अली नकी खाँ ने रेजीडेन्ट को क्या जवाब दिया था ?' सरफराज ने कहा—'ख्याल यह कहता है कि उन्होंने मंजूर कर के सिर झुका दिया होगा क्योंकि वालिद साहब ने आगे कहा था। वहाँ से वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ सीधे बादशाह सलामत के पास पहुँचे और सनतनत के खात्मा की मनहूस खबर सुनाई। दुनियादारी के तरीफ पर कुछ ऊँचा-नीचा कह कर

सब्र बँधाया। गुजारे को गनीमत कह कर राजीनामा लिख देने की इसलाह दी। उस वक्त दो चार वजीर आजम के पिट्ठू सुलताने आलम के पास मौजूद थे। उन लोगों ने भी वजीर आजम की हाँ में हाँ मिलाई। लेकिन सुलताने आलम खुद अपनी कलम से राजीनामा लिख कर देने को तैय्यार न हुए। वजीरे आजम के इशारे से राजा बालकृष्ण ने राजीनामा का मसौदा लिखकर अली नकी खाँ के हाथ में दे दिया। हज़रत सलामत इस मनहूस खबर को सुनकर सिर झुकाए हुए फिक्रों में डूबे हुए थे। नवाब अली नकी खाँ ने मौका ताक कर हजरत की नजर बचा कर बादशाह की दस्तखती मोहर मसौदे के कागज पर लगा दी और मोड़ कर जेब में रख लिया। मनहूस खबर का कायदा है कि आन की आन में चारों तरफ फैल जाती है। इस लिए बादशाह सलामत के छोटे भाई मिरजा सिकन्दर हशमत और मलिका किश्वर बहादुर वगैरा वहाँ आ गये और राजीनामा लिखकर न देने की ही इसलाह देने लगे। नवाब वजीर वहाँ से हट कर सीधे रेजीडेन्ट के पास पहुँचे मसौदे पर शाही मोहर लगा राजीनामा जनरल आउट्रम के हाथ में दे दिया।'

इस मौके पर सहसा मेरी जबान से निकल पड़ा-'उफ वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ की इतनी बड़ी दगा ?' हुस्नआरा भी चुप बैठी न रह सकी। बोली-'नवाब वजीर ने तो अपनी साहबजादी बादशाह सलामत को व्याह कर अपना सगा दामाद बनाया था। अपनी लड़की का भी कुछ ख्याल न किया। अंग्रेजों से मिलकर अपने सगे दामाद को ही तबाह कर दिया।'

'जागीर के आगे रिश्ते और दामाद की क्या हकीकत थी। आगे तो नवाब अली नकी खाँ ने और भी अपनी दगाबाजी के जौहर दिखलाये थे।' सरफराज ने कहा।

'वह क्या जौहर थे ?' हुस्नआरा ने पूछा।

'नवाब वजीर ने अपने हुक्म से फौज शाही के हथियार रखवा लिए। जो तोपें जहाँ पर चर्खे पर चढ़ी हुई थी उन्हें चर्खे से उतरवा कर जमीन पर डलवा दी। जिस कदर बारूद गोला वगैरा था सब जमीन के अन्दर गढ़ों में बन्द करा दिया था। पहरों पर जो सिपाही खड़े रहते थे उनके हाथों में कुत्ते बिल्ली को दूर भगाने वाली लाठियाँ दे दी थीं। बड़े नवाब साहब फरमा रहे थे कि बाद में हजरत सुलताने-आलम को अपने वजीरे आजम की दगा फरेब और साजिशों का हाल मालूम हो गया था। मगर अब क्या हो सकता था। सिवाय हाथ मलने के कोई चारा न था। दूसरे दिन कानपुर से अंग्रेजी फौजें और तोपखाना आ गया। लखनऊ चारों तरफ से घिर गया। रेजीडेन्ट आउट्रम ने गवर्नर जनरल का हुक्मनामा देकर हजरत को तख्त से उतार दिया और अपना कब्जा करके लखनऊ में अंग्रेजी हुकूमत कायम कर दी।'

मैंने पूछा—'कुछ याद है कि लखनऊ और लखनऊ के तख्तेशाही पर अंग्रेज सरकार की यह बिजली किस सन् महीने और तारीख को गिरी थी।'

'वह कैसे भूल सकती है ? वह तारीख और दिन तो लखनऊ के हर छोटे-बड़े

को याद होगी। जुमेरात का दिन-फरवरी की सात तारीख और सन् अठारह सौ छप्पन था।'

'और जाने-आलम कलकत्ता कब तशरीफ ले गये ?'

'जाने-आलम उन्हीं दिनों यानी महीने भर बाद सोलह मार्च को लखनऊ से कलकत्ते के लिए रवाना हो गये थे।'

'इसके मानी ये कि उन्हें लखनऊ से गये हुए काफी दिन हो गये।' मैंने कहा- 'उनके साथ कितने लोग गये हुये हैं !'

'कोई पाँच सौ आदमियों का काफिला था।' सरफराज ने कहा —'शाही महलों से तो हजरत के छोटे भाई मिरजा सिकन्दर हशमत, वली अहमद बहादुर, नवाब मालिका किश्वर बहादुर और पाँच सात बेगमात साहिबान ही गई हैं। बाकी नौकर चाकर, महरियाँ लौंडियों और दूसरे लोग थे।'

हुस्न आरा ने पूछा—'जाननखाने की बेगमात में से कौन-कौन जाने-आलम के साथ गई हैं ? कुछ मालूम है ?'

'नवाब खास महल, नवाब माशूक महल, नवाब दिलदार महल, कैसर बेगम, जाफरी बेगम और एक और कोई बेगम उनके साथ गई हुई हैं जिनका नाम इस वक्त मुझे याद नहीं आ रहा।'

'तो नवाब माशूक महल कलकत्ते चली गयीं ?' हुस्नआरा ने धीरे से पूछा।

'जी हाँ, उनकी गाड़ी तो बादशाह सलामत की गाड़ी के पीछे ही लगी हुई थी।'

'और हरमसरा की बाकी बेगमात साहिवान कहाँ हैं ?' उसने पूछा।

'यहीं लखनऊ में मौजूद हैं। अपने-अपने ठिकानों पर कयाम फरमा रही है।'

इसके बाद एक दो क्षण खामोशी रही, फिर मैंने पूछा—'कलकत्ते में जाने-आलम की फरियाद सुनी गई या नहीं। कुछ खबर मिली है ?'

'वहाँ की खबरें तो रोज ही लखनऊ में आती रहती हैं। बराबर लोग आते-जाते रहते हैं।' सरफराज ने इतमीनान से कहा—'कैफियत यह है कि कलकत्ते में बादशाह सलामत की पुकार नहीं सुनी गई। गवर्नर ने साफ लफ्जों में जवाब दे दिया कि अवध सलतनत विलायत के हुक्म से जब्त की गई हैं। हम इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते। विलायत में जो कम्पनी सरकार के डायरेक्टर्स हैं वही लोग आप की फरियाद को सुन कर कुछ गौर कर सकते हैं। इस जवाब ने कलकत्ते की बात खतम करके विलायत की तरफ रुख किया। इसी बीच में हजरत सुलताने-आलम की तबीयत नसाज हो गई। फिर भी वह विलायत का सफर करने को तैयार थे। मगर हकीमों ने दरिया का सफर करने से रोक दिया। बीमारी और ज्यादा बढ़ जाने का अंदेशा जाहिर किया। इस लिए हजरत खुद विलायत जाने से रुक गये। लेकिन फरियाद को विलायत पहुँचाना जरूरी था। इसलिए पुकार को लेकर छोटे भाई मिरजा सिकन्दर हश्मत, वली अहमद मिरजा हामिद अली और अम्मी हुजूर जनाबे

आलिया मलिका किश्वर बहादुर को विलायत जाने के लिए तैय्यार किया। दस जून सन् छप्पन को वह लोग कुछ साथियों कारपरदाजों को साथ लेकर विलायत चले गये हैं। अब आगे खुदा जाने जो कुछ वहाँ हो।'

कुछ देर के लिए सन्नाटा रहा।

फिर हुस्नआरा ने नजर उठा कर कहा—'भाई जान, नवाब अख्तर महल साहिबा कहाँ है? वह जाने-आलम के साथ कलकत्ते चली गईं या यहीं लखनऊ में मौजूद हैं?'

'पहले यहीं लखनऊ में मौजूद थीं। लेकिन अब कलकत्ते चली गई हैं।' सरफराज ने कहा।

'हाँ, भाई सरफराज अली खाँ?' मैंने कुछ उत्सुकता के साथ कहा—'मैं एक बात पूछना तो भूल ही गया। नवाब वजीर सैय्यद अली नकी खाँ साहब कहाँ हैं?'

'वह भी पहले यहीं लखनऊ में मौजूद थे मगर अब कलकत्ते पहुँच गये हैं।'

उनको कस्बा मछरहटा की जागीर मिल गई?' अंग्रेजों ने उनकी खैरख्वाही का बदला चुका दिया?'

'आप भी किस ख्वाल-ख्याल में है?' सरफराज ने हँसकर कहा, 'अंग्रेज सात समन्दर पार करके हिन्दुस्तान में हुकूमत करने आये हैं, तो बुद्धू-वेवकूफ बनकर नहीं आये। बहुत बड़ी समझ और आदमी की पहचान लेकर आए हैं। उन्होंने एक ही नजर में वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ को पहचान लिया था।'

'किस तरह?' मैंने कुछ हैरत के साथ पूछा।

'भला यह भी कोई पूछने की बात है?' सरफराज ने मुस्कराकर कहा—'इसे तो हर एक शख्स आसानी के साथ समझ सकता है। जो अपने मालिक, अपने बादशाह का नहीं हुआ। जिसने खाक से पाक किया, जिसका नमक खाया उसी के साथ दगा की, उसीके आसतीन का साँप बन गया। अपनी बहबूदी और लालच के सुनहले सपने देख कर अपने सगे दामाद और लड़की को दर-दर का भिखारी बना दिया। ऐसे काले दिल का मतलबी आदमी कब किसी का सगा हो सकता है?' रेजीडेन्ट आउट्रम ने यही सब सोच समझ कर अपना मतलब पूरा करके यानी लखनऊ पर अपनी हुकूमत कायम करके नवाब अली नकी खाँ को उल्टी लात मार दी और जलील भीं किया।'

'जरा साफ तौर पर बयान करो सरफराज?' मैंने संभल कर कहा।

हुस्नआरा ने भी धीरे से कहा—'जैसा उन्होंने जाने-आलम के साथ किया, उन्हें गड्ढे में गिराया था, बैसा उन्हें भी फल मिला होगा। बुराई का नतीजा तो बुरा ही हुआ करता है।'

सरफराज अली खाँ इतमीनान के साथ बोले—'जब्ती सलतनत के बाद जब सुलतानेआलम सल्तनत को वापसी की कोशिश करने के लिए कलकत्ते चले गये तब अंग्रेज रेजीडेन्ट ने नवाब अली नकी खाँ को नजरबन्द कर दिया। उनसे इस बात

की जमानत भी ले ली कि लखनऊ से बाहर कदम न रखेंगे। इसकी कोई खास वजह नहीं थी, सिर्फ उन्हें जलील करने का मतलब था। इसलिए नवाब वजीर दौलत सराय सुलतानी में रह रहे थे। नवाब अख्तर महल भी उन्हीं के साथ वहीं रह रहीं थी। एक दिन नवाब वजीर की बहिन मंझली बेगम, अख्तर महल से मिलने आई और मिल कर जब अपने मकान तहसीनगंज को वापस जाने लगी तो रेजीडेन्ट के जो गोरे सिपाही फाटक पर पहरा दे रहे थे उन्हों ने मंझली बेगम को सवारी पर से उतार कर तलाशी लेनी चाही। नवाब वजीर वहाँ आ गये। कुछ देर बड़ी झाँय-झाँय और नामूसी हुई। आखिर बमुश्किल तमाम मंझली बेगम तहसीनगंज जा सकी।'

'इसके बाद नवाब वजीर ने वहाँ से अपने मकान तहसीनगंज में जाकर रहना चाहा। रेजीडेन्ट से इजाजत माँगी। हुक्म हो गया। सुबह जाने को हुए।' एक क्षण चुप रह कर सरफराज अली खाँ थोड़ा मुस्कराये और बोले—'लखनऊ में यह हवा फैल चुकी थी कि नवाब वजीर की दगाबाजी और अंग्रेजों से साठ-गाँठ पैदा कर लेने की वजह से ही सल्तनत का खात्मा हुआ है। लखनऊ वालों को ये बुरे दिन देखने पड़े हैं। इसलिए जले-भुने दिल वाले भला कब चूक सकते थे। नवाब वजीर जिस दिन दौलत खाना सुलतानी से तहसीनगंज जाने को थे। सुबह लोगों ने देखा जगह-जगह मकानों की दीवारों पर इश्तहार की शकल में बड़े-बड़े रंगीन कागज चिपके हुए हैं और उन पर मोटे-मोटे हर्फों में लिखा हुआ है—'आज नौ बजे दिन को लखनऊ के लोगों को एक अजीब आश्चर्य में डालने वाला तमाशा दिखाया जायगा। ऐसा तमाशा कभी किसी ने अपनी आँखों से न देखा होगा। इस तमाले को देखने के लिए लोगों को दौलतसरा सुलतानी से तहसीनगंज को जाने वाली सड़क पर जमा होना चाहिए।'

'इस इश्तहार को पढ़कर लखनऊ के छोटे-बड़े सभी लोग दौड़ पड़े। सड़क के दोनों किनारों पर भीड़ जमा हो गई। सड़क पर पहले नवाब अख्तर महल साहब की पीनस आठ कहारों के कंधे पर आई। उसके पीछे नवाब वजीर की गाड़ी थी। एक गोरा सिपाही कोच वकस पर बैठा हुआ था। चार-छः अंग्रेजी रिसाले के सवार गाड़ी के पीछे थे। नवाब वजीर अब भी वजारत का मंदिल सिर पर पहने हुए थे। ज्यों ही सवारियाँ सड़क पर आकर आगे बढ़ीं, तालियाँ पिटने लगीं। किनारों की भीड़ में शोर मच गया। लोगों के मुँह से निकले हुए लानत मलामत भरे अपशब्द सुनाई पड़ने लगे। थू-थू भी हो रही थी। बराबर तहसीनगंज तक यही हाल रहा। अगर गोरा सिपाही और अंग्रेजी रिसाले के सवार न होते तो शायद सवारियों पर ढेले भी बरसते।'

हुस्नआरा ने मुस्करा कर पूछा—'भाईजान ? यह अजीब-गरीब तमाशा देखने के लिए आप भी गये थे ?'

'जरूर गया था।' सरफराज ने हँसकर कहा—'बेपैसों का तमाशा था, क्यों न जाता ?'

एक खामोशी के बाद मैने सवाल किया—'फिर वजीरे आजम नजरवन्दी से छुटकारा पाकर कलकत्ते किस तरह और कब पहुँचे ?'

'वह भी इसी तरह का एक किस्सा है।' सरफराज ने कहा—'जाने-आलम, नवाब मुनव्बरद्दौला अहमद अली खाँ को अपना वजीर बनाकर कलकत्ते ले गये थे। इधर नवाब अली नकी खाँ को नजरबन्दी में रहते हुए चार-पाँच महीने हो गये थे। जिस लालच से बदनामी का टोकरा सिर पर रखा था। सबकी नजरों से गिरे थे, वह तो दूर रही, उलटे नजरबन्दी की कैद में पड़े हुए थे। इस बेबसी की हालत में उन्हें फिर से सुलताने-आलम वाजिद अली शाह याद आए। एक अर्जी में लिख कर कुछ रोये-गाये, गिड़गिड़ाये और अपने कसूरों की माफी माँगी। अपने एक विश्वासी खिदमतगार इमाम खाँ को वह विनय पत्र देकर कलकत्ते खाना किया।' सरफराज ने एक क्षण ठहर कर कहा—'वाह रे सुलताने-आलम वाजिदअली शाह ? कितना सरल कोमल हृदय पाया है। जिसके जरिए तबाह हुए, बादशाह से फकीर बने, फिर भी उस पर रहम करना न भूले। नवाब अली नकी खाँ के पिछले सभी काले-कारनामे भूल गये और उन्हें कलकत्ता आने की इजाजत दे दी। नवाब ने लखनऊ की अंग्रेजी हुकूमत से कलकत्ता जाने की इजाजत चाही। मगर न मिली। आखिर उन्होंने कलकत्ता के गवर्नर जनरल को लिखा। गवर्नर ने सुलताने-आलम से पूछा—'क्या उन्हें अपने पास रखना चाहते हैं?' उन्होंने हामी भर दी। गवर्नर जनरल के यहाँ से इजाजत आ गई। और पन्द्रह जुलाई सन छप्पन को नवाब अली नकी खाँ बहादुर मय नवाब अख्तर महल और घर के सभी लोगों को लखनऊ से कलकत्ते को रवाना हो गये। लखनऊ से जाते वक्त भी गुंडों शोहदों ने नवाब का पीछा नहीं छोड़ा था। और पूरी तरह से उनकी छीछालेदर करने को तैय्यार खड़े थे। यह देखकर नवाब ने एक-एक को पचास-पचास रुपया देकर हजारों रुपए लुटा दिए। लेकिन गुंडे ही थे, उस पर दिलजले हुए। नाके तक पीछे लगे और मनमाना ऊल-जलूल बकते रहे थे।'

अब दस्तरख्वान पर बैठने का वक्त हो चुका था। इसलिए बातें खतम करके हम तीनों ने दूसरे कमरे में जाकर खाना खाया। खाना खाकर सरफराज अली खाँ अपने घर चले गए।'

इकतीस

'लखनऊ की तवाही का हाल सुन कर हम लोग दस-दिन तक चुप-चाप गुलफाम मंज़िल में बन्द रहे। न मैं किसी से मिलने गया और न हुस्नआरा ने ही कहीं जाने-आने का इरादा किया। उसके बाद एक दिन हुस्नआरा तैय्यार होकर और गाड़ी पर बैठ कर अपने माँ-बाप से मिलने के लिए सआदतगंज गईं। चलते समय उससे मुझसे भी चलने के लिए कहा, लेकिन मैं नहीं गया। कह दिया कि आज तुम अकेले जाकर मिल-मिला आओ, उसके बाद फिर किसी दिन हम तुम दोनों साथ चलेंगे।'

'हुस्नआरा के जाने के बाद मैं दीवानखाने में आ बैठा। कुछ देर में सुलतान अली खाँ, राहत अली खाँ और सुलतान अली खाँ के एक दोस्त मीर सज्जाद हुसैन आ गये। मिले-बैठे। मैंने सुलतान अली खाँ से कहा—'वाह मियाँ, इतने दिनों बाद आज शकल दिखाई है ? जिस दिन से मैं करबला से लौटा हूँ तुम्हें याद करते-करते थक गया।'

'भाई साहब ! मुझे तो कल शाम को सरफराज ने बताया कि आप जयारत का सवाब उठा कर आ गये हैं। इसलिए सुबह होते ही दौड़ा आया हूँ।'

'राहत अली खाँ बोले—'मैं तो समझ रहा था कि शायद आप को लखनऊ से ईराक ज्याद अच्छा लगा है इसलिए लखनऊ लौटने का इरादा नहीं कर रहे हैं।'

'लखनऊ को तो मैं इस जिन्दगी में नहीं भूल सकता।' मैंने कहा—'यहीं पैदा हुआ हूँ और यहीं की मिट्टी में मिल जाऊँगा।'

'लखनऊ में अब क्या रखा है ?' मीर सज्जाद हुसैन ने कहा—'अब तो लखनऊ उजड़ा दयार है। यहाँ की रौनक तो जाने-अलम वाजिद अली शाह की पीठ फिरते ही खतम हो गई। अब तो यही शेर याद आ रहा है—'या तो हम फिरते थे उनमें या हुआ यह इनकलाब—'फिरते हैं आँखों में हरदम कूच हाये लखनऊ।'

'वाकई लखनऊ पर खुदा का गजब फट पड़ा।' राहत ने धीरे से कहा।

'लखनऊ ही पर क्यों, मैं तो समझता हूँ कि सारे अवध इलाके पर बिजली टूट पड़ी ?' मैंने कहा।

'आपने यहाँ की तवाही की सारी कैफियत तो सुन ली होगी ?' सुलतान ने पूछा।

'जी हाँ, सरफराज अली खाँ की जवान से सुन चुका हूँ। अच्छ अब यह बताइए कि आप के वालिद नवाब साहब बखैरियत हैं ?'

'जी हाँ, बखैरियत है ?' सुलतान ने कहा—'लेकिन यहाँ लखनऊ में नहीं है ?'

'और कहाँ हैं ?'

'कलकत्ता में सुलताने आलम के पास हैं ।'

'और आप के नवाब साहब ? मैंने रहमत अली खाँ की तरफ नजर घुमा कर पूछा ।

'वह भी वाल्दा के साथ कलकत्ते में हैं ।' राहत ने जवाब दिया ।

'इसके मानी यह है कि सारा लखनऊ कलकत्ता चला गया है ?' मैंने कहा ।

'मीर सज्जाद हुसैन बोल उठे—'सारा लखनऊ कलकत्ता चला गया है और चला जा रहा है । यहाँ सिवाय मातम मनाने के और क्या है । माना कि मजहबी तकाजों को लेकर इमामबाड़ों की सफाई हो रही है । जरीहों को तैय्यार है । मगर हजरत वाजिद अली शाह के चले जाने से सब कुछ फीका और न होने के बराबर है । उनके बक्त के मुहर्रम को जरा याद कीजिए । दो महाने पहले के हर तरफ दुल-दुल निकलते थे, लोग अलम संभालते थे । मर्सियों का अभ्यास किया करते थे । सोज पढ़ने वाले ऐसी आवाजें मिलाया करते थे कि सुनकर राह चलते लोग रोने लग जाते थे । हर बात, हर काम का साज सामान होता था । गरीब-गुरबा का भला होता था । अब क्या है, शहर सुनसान और मोहल्ले वीरान हैं । लखनऊ का बच्चा-बच्चा इस तवाही पर रो रहा है । जिन लोगों को सरकार से ताजिया दारी के लिए बड़ी-बड़ी रकमें मिलती थीं । उनका हाल जरा जा कर कोई देखे । हाथ पर हाथ धरे बैठे रो रहे हैं ।' ताजिया की कोई तैय्यारी नहीं है । अभी तक लोगों को यह उम्मीद थी कि कलकत्ते में बादशाह सलामत की पुकार सुनी जायगी । सलतनत वापस मिल जायगी । मगर वहाँ तो टका सा जवाब मिल गया ।'

'मैंने कहा, 'सुना है कि मलिका किश्वर बहादुर भाई बिरजा सिकन्दर हश्मत और अली अहयद पुकार करने के लिए विलायत गये हुए हैं ?' मुमकिन है वहाँ सफलता प्राप्त हो जाय ।'

'अली जमालुद्दौला साहब ?' मीर सज्जाद हुसैन ने एक अजब लहजे से कहा—'चेचक की बीमारी में गई आँख वापस नहीं लौटा करती । अंग्रेज अवध सल्तनत को पेट में रख चुके हैं । अब वह किसी ततवीर से बाहर नहीं आ सकती ।'

'इसके बाद वह तीनों उठ कर चले गये । और उनके जाते ही हुस्नआरा भी सआदतगंज से लौट आई ।

'मैंने पूछा—'इतनी जल्दी मिल-भेंट आई ?'

'वहाँ किससे मिलती । मकान के दरवाजे पर बड़ा सा ताला लटक रहा था ।'

'क्यों ? वह लोग कहाँ गए ?'

'पड़ोस के लोगों ने बताया कि वह लोग सुलताने-आलम के साथ कलकत्ता चले गये हैं ?'

'खुदा खैर करे, सारा लखनऊ कलकत्ता पहुँच गया ।' मैंने धीरे से कहा ।

'अभी मैं देखती हुई आ रही हूँ, कहीं पर कोई चहल-पहल नहीं है। चारों तरफ उदासी छाई हुई है। ऐसा मालूम होता है जैसे कोई लखनऊ को लूट ले गया हो। हुस्नआरा ने उदास स्वर से कहा—अब यहाँ कोई मिलने वाला ही नहीं रहा।'

'अभी सुलतान अली खाँ राहत अली खाँ वगैरह मिलने आये थे। वह लोग भी यही सब रोना रो रहे थे। मैने कहा—सुना है कि जाने-आलम की करीब—करीब सभी बेगमें यहीं लखनऊ में अपने—अपने ठिकनों पर रह रहीं हैं। अगर तुमसे उनसे जान पहचान हो, तो किसी दिन जाकर मिल बैठ आना। जी बहल जायगा।'

'कल चांदी बाजार जाऊँगी ?'

'वहाँ कौन है ? क्या चाँदी बाजार में तुम्हारे कोई रिश्तेदार रह रहे हैं ?'

'वहाँ मेरे रिश्तेदार तो कोई नहीं रह रहे । जाने—आलम की एक बेगम वहाँ रहती है।'

'कौन ?'

'शाही जनानखाने में सिर्फ दो ही बेगमें मेरी जान पहचान की थी। एक नवाब माशूक महल और दूसरी नवाब शैदा बेगम। माशूक महल कलकते चली गई। शैदा बेगम शायद अपने मकान चाँदीं बाजार में होंगी।'

'ससझ गया ?'

'क्या आप नवाब शैदा बेगम को जानते हैं।'

'जाने-आलम की हरमसरा की ऐसी कौन महल साहिबा हैं जिन्हे मैं नहीं जानता। छोटी उम्र से मेरा आना—जाना शाही हरम में रहा है। किसी को मुझसे पर्दा नहीं रहा।'

'अच्छा, समझ गई ?' हुस्नआरा ने मुस्करा कर कहा।

'क्या ?'

'इसीलिए शायद शाही रहम की सभी बेगमात ने मिल कर आप को उस इन्दर सभा के खेल में शाहजदा गुलफाम का काम करने के लिए चुना था। और आप ने भी कमाल कर दिखाया था।'

'क्या तुमने उस तमाशे को अपनी आँखो से देखा था ?'

अगर देखा न होता तो आप को किस तरह पाती। उसी देखने में, तो मेरे अन्दर मोहब्बत की आग भड़का दी थी। लगन लग गई थी। लेकिन खुदा का हजार हजार शुक्र है कि उसने मुराद पूरी की और मैं अब बगल मे बैठी हूँ।'

'मैं चुप रह गया। हुस्नआरा होठों पर मुस्कान लाकर बोली—आप भी कहिए ? आप के दिल में किस तरह मेरी चाह पैदा हुई थी ? आपने मुझे कहाँ देखा था ?'

'सआदतगंज में तुम्हारे पड़ोस में कोई लाला मुन्नी लाल खत्तरी रहते थे।'

'हाँ हाँ, बाई तरफ मेरे मकान से तीसरा मकान उन्हीं का था। वह मलिका किश्वर की सरकार में मुँशी थे।'

'उनके यहाँ तुम आया जाया करती थीं?'

'अकसर आती जाती थी?'

'उन्हीं के यहाँ मैंने तुम्हें देख कर अपनी आँखों में भर लिया था?'

'उनके यहाँ आपने मुझे किस तरह देखा था? आप तो गोलागंज में रहते थे। मुझे देखने के लिए सआदतगंज कैसे पहुँच गये थे?'

'तुम्हारी कशिश खींच ले गई थी।'

'मजाक न कीजिए? जिस तरह मैंने अपना इश्क साफ लफजों में आप से बयान कर दिया उसी तरह आप भी कहिए।'

'मेरी शादी लाला मुन्नीलाल की लड़की से होने वाली थी मगर कुछ खास वजहों से नहीं हो सकी थी। उसी शादी के सिलसिले में उन्होंने अपने घर में मुझे दावत दी थी। तभी मैंने एक खिड़की के चिलमनों से अन्दर कमरे में तुम्हें बैठे सितार बजाते हुए देखा था।'

'अरे वाह! तब मेरी आप की यह अच्छी देखा देखी रही?' फिर हँस कर कहा—'अच्छा अब यह बताइए कि आपने तमाशे के बाद मुझे देखा था या उससे पहले।'

'वह शाही खेल तो पहले खेला जा चुका था। वह सआदत गंज वाला वाकया तो पीछे का है।'

'तब पहली कशिश, पहला इश्क और पहली चाह मेरी थी।' और जोर दार ठहाका गूंज गया।

'दूसरे दिन बड़े सबेरे उठ कर और पूरी तरह तैय्यार होकर हुस्नआरा गाड़ी पर जा बैठी और गुलफाम मंजिल से चल कर घोड़ा गाड़ी चाँदी बाजार की सड़क पर दौड़ने लगी। सुबह की गई वह तीसरे पहर के बाद वापस आई। दोपहर में दस्तरख्वान पर बैठने के लिए मैंने काफी समय तक उनके आने का इन्तजार किया, मगर वह नहीं आई। मुझे भी खाना खाने में देर हो गई।

'तीसरे पहर वापस आकर वह मेरे पास आ बैठी। मैंने पूछा—'बहुत देर में वापस आई। नवाब शैदा बेगम से मुलाकात हुई?'

'जी हाँ, अच्छी तरह मुलाकात हुई। दोपहर में उन्हीं के साथ दस्तरख्वान पर बैठी। फिर कुछ देर सितार बजा। उनकी कही हुई एक दो ताजा गजलें सुनी...'

मैंने बीच में टोका—'नवाब शैदा बेगम तो बहुत अच्छी शायरी करती हैं उनकी लिखी गजलों की जाने-आलम भी तारीफ किया करते थे।'

'वाकई गजल कहने में उनको कमाल हासिल है। और बड़ी जल्दी शेर कहती हैं।'

'क्या बातें हुई ?'

'अरे, नवाब शैदा बेगम तो बड़ी खुश मिजाज और बहुत मीठा बोलने वाली हैं। उनकी बातों में तो शीरीनी का मजा आता है। बातों का ऐसा तार बाँधा कि सावन भादों की झड़ी लगा दी। एक बात का सिलसिला खतम नहीं हुआ था कि दूसरी का शुरू हो गया। बड़ी मुस्किल में इस वक्त उठने दिया।'

'उनसे जाने-आलम का कुछ हाल मालूम हुआ ?'

'बहुत कुछ मालूम हुआ। आपस में बराबर मोहब्बत नामे चलते हैं। ये यहाँ से लिखती हैं और जाने-आलम कलकत्ते से उनका जवाब लिख कर भेजते हैं। दोनों तरफ से प्रेम की अच्छी बौछारें पड़ती हैं। लेकिन दोनों को जुदाई अखर रही है। एक दूसरे से गले मिलने के लिए तड़प रहे हैं।' फिर जरा रुक कर कहा—'नवाब शैदा बेगम को वाकई जाने-आलम से दिली मोहब्बत है। जाने-आलम के ढेर सारे खत बेगम ने जमा करके एक बहुत खूबसूरत किताब तैय्मार कराई है। उसमें जाने-आलम के खतों को तारीखवार सिलसिले के साथ जमा किया गया है। खतों की संख्या ३८ है। मैंने उसे अपने हाथ में लेकर देखा पढ़ा था। बड़ी दिलचस्प बड़े पैमाने के कागज के कुल छप्पन वर्क हैं। वर्कों पर वह चित्रकारी की गई हैं, वह रंग भरे हैं कि बयान नहीं किया जा सकता। हर वर्क में तीन तरफ कोई पाँच अंगुल की चौड़ाई में सोने की सियाही से बनी हुई बेलें फूल-पत्तियाँ नजर आती हैं। उस पर एक खूबी यह रखी गई है कि हर वर्क की चित्रकारी अलग अलग है किसी में फूल-पत्तियाँ है तो किसी में चिड़िया खाना नजर आता है। किसी वर्क में बाग हौज और फव्वारे चल रहे हैं तो किसी में लखनऊ की खास-खास इमारतें मौजूद है। किसी में शाही बग्घियाँ, पीनसें बाहारियों और ताम जाम का नकशा खींचा गया है। बीच वर्क पर सात सतरों में जाने-आलन के मोहब्बत नामे दर्ज किए गये हैं। सतरों के बीच में भी वारीक बेल बूटे हैं। हर वर्क पर जिल्द की सिलाई की तरफ भी बारीक बेलें बनाई गई हैं। कहने का मतलब यह है कि ऐसी रंगीन किताब आज तक मैंने अपनी आँखों से नहीं देखी थी। नवाब शैदा बेगम नें बताया कि इसकी तैय्यारी में हमने पूरे बारह हजार रुपये खर्च किए हैं।'

'तब तो वाकई यह देखने लायक चीज होगी।' मैंने कहा।'

'उस खतों के मजमून को देख कर कहा जा सकता है कि शैदा बेगम दरअसल जाने-आलम पर शैदा हैं।'

'और कुछ ?'

'और यह कि मैं बेगम साहिबा को किसी दिन फुर्सत में गुलफाम मंजिल में तशरीफ लाने की दावत दे आई हूँ। और उन्होंने आने का वादा भी किया है।'

'हुस्नआरा यह तुमने हमारे दिल की बात छीन ली। हम यह चाह रहे थे कि उन्हें दावत देकर यहाँ बुलाया जाय। मगर एक बात की कमी रह गई ?'

'किस बात की ?'

'बेगम साहिबा जाने किस दिन तशरीफ लाएँ। अगर उनके आने का निश्चित दिन मालूम हो जाता तो यहाँ वैसी तैय्यारी......'

'हुस्नआरा मुस्करा कर बोल उठी—'आप फिक्र न कीजिए। उनके वादे पर मुझे खुद आप जैसा ख्याल आया था, इसलिए वादे का दिन दरयाफ्त किया। उन्होंने कहा-'हम समझती हैं। किसी तरह का तकल्लुफ करने की जरूरत नहीं है। हमारा आना कोई बड़ी बात न होगी। वही हम हैं और वही जमालुद्दौला। फिर भी हम एक दिन पहले अपने आने की खबर करा देंगे।'

'वाह हुस्नआरा?' मैंने उसे बाहों में भर कर कहा—'तुम वाकई समझ-बूझ की जीती-जागती तस्वीर हो।' और दोनों तरफ से मुस्कानें बरस पड़ीं।'

'दो दिन बाद मंगलवार को चाँदी बाजार से बेगम के नौकर ने आकर खबर सुनाई—'हुजूर नवाब शैदा बेगम साहिबा जुमेरात को आप के यहाँ सुबह कुछ दिन चढ़े तशरीफ लायेंगी और दोपहर से पहले वापस चली जायेंगी।' खबर देकर उनका नौकर वापस चला गया।'

'मैंने हुस्नआरा से कहा—'बेगम साहिबा किराये की गाड़ी या पीनस वगैरा में आएँगी। मैं समझता हूँ कि क्यों न जुमेरात को बड़े सुबह-अपनी गाड़ी उनके यहाँ भेज दी जाय। सहूलियत रहेगी।'

'हुस्नआरा ने कहा—'खाली गाड़ी क्यों भेजी जाय। मैं खुद उस पर बैठ कर चली जऊँगी और उन्हें अपने साथ ले आऊँगी?'

'यह तो और भी अच्छा होगा? हाँ, तुम जाकर उन्हें इस बात पर भी राजी कर लेना कि दोपहर में वह यहीं दस्तरख्वान पर बैठें। तीसरे पहर या उसके बाद घर तशरीफ ले जाँये।'

'इसके बाद हम लोग उनके स्वागत सत्कार के इन्तजाम में जुट गये।'

मिरजा जफर हुसेन ने कहा—'जमालुद्दौला साहब, अगर गुस्ताखी माफ करें तो इस मौके पर एक बात पूछूं?'

'शौक से पूछिए। इसमें गुस्ताखी का क्या जिक्र है।'

'क्या सुलताने-आलम वाजिद अली शाह की और दूसरी बेगमों की तरह नवाब शैदा बेगम भी कोई बाजरी कोठे पर बैठने वालीं नहीं थी?'

'जी नहीं, नवाब शैदा बेगम बाजारी कोठे पर बैठने वाली नहीं थी। वह हुसैन अली खाँ की लड़की थीं। हुसैन अली खाँ शाही फौज में सवारों में नौकर थे। नवाब शैदा बेगम परी सूरत थीं। खुदा ने उन्हें रूप सौन्दर्य खुले हाथों से बख्शा था।' किसी तरीके से जाने-आलम की उन पर नजर पड़ गई। उनकी जवानी की उठान को देख कर दिल तड़प उठा। आखिर मुता करके उन्हें शाही हरम में दाखिल कर लिया।'

'जुमरात के दिन हुस्नआरा बड़ी सुबह उठ कर तैय्यार हो गई। उधर पूर्व में

निकला इधर वह गाड़ी पर बैठकर चाँदी बाजार की तरफ रवाना हो नई। और मैं दीवानखाने में बैठकर उन लोगों के आने का इन्तजार करने लगा।

'कोई पहर दिन चढ़े गाड़ी गुलफाम मंजिल के फाटक पर आकर रुकी। शोर मच गया, नौकरानियाँ महरियाँ दौड़ पड़ीं। सवारियों को उतारा। दीवानखाने का जो दरवाजा अन्दर की तरफ था उस पर झिलमिला पर्दा पड़ा हुआ था। आगे अन्दर की तरफ दालान थी। मेरी निगाहें उस पर्दे पर जमी हुई थीं। हुस्नआरा बेगम को साथ लेकर दालान में आई। बेगम के साथ एक महरी थी। उसकी गोद में शैदा-बेगम की दो सवा दो साल की नगीनआरा थी। झिलमिले पर्दे से मैंने बेगम को देखा। अगरचे बहुत अर्से बाद देखा था। मगर सूरत पहचानी हुई थी।

'मैंने सुना, शैदा बेगम ने हुस्नआरा से पूछा—'जमालुद्दौला कहाँ हैं?'

'हुस्नआरा ने कहा—'दीवानखाने में होंगे।'

'वहाँ क्यों छिपे बैठे हैं?'

'पर्दे का ख्याल होगा।'

'शाही हरम की किस बेगम ने जमालुद्दौला से पर्दा किया है? जाने-आलम के वही तो एक मुसाहब ऐसे थे, जिनका पर्दा माफ था। हम भी कई बार उनके सामने हो चुकी हैं। और उनकी शादी के दिन तो बड़ी बेतकल्लुफी थी।'

'और नबाब शैदा बेगम पर्दा हटा कर दीवानखाने में आ गई। पहले तो मैं कुछ झिझका लेकिन जब वह करीब आने को हुईं मैं हड़बड़ा कर खड़ा हो गया और दो कदम आगे बढ़ कर कायदे से सलाम किया। और मसनद पर उन्हें बिठा कर मैं और हुस्नआरा भी कायदे से बैठ गये।

'शैदा बेगम मुस्करा कर बोलीं—'देखिए, अगर तुम लोगों को अदब कायदा और तकल्लुफ पसंद है, तो बेहतर है हम अभी अपने घर वापस जा रहीं हैं। यहाँ हम तकल्लुफ और अदब कायदों के बंधन में बँधने के लिए नहीं आए। यहाँ तो हम खुल-कर बातें करने आए हैं। फिर अदब कायदा शाही हरम में था। यह तो तुम्हारी गुलफाम मंजिल है। यहाँ तो हमें तुम्हें हर एक को आजादी है।' और वह हँसने लगीं। फिर मेरी तरफ नजर घुमा कर कहा—'जमालुद्दौला, मुमकिन है तुम इसलिए झिझक रहे हो कि आज के पहले कभी हमसे मिल बैठकर कोई बात नहीं हुई थी। लेकिन हुस्न आरा तो हमारी पुरानी मिली-बैठी है। हम इनको उस दिन से जानते हैं जब इनके साथ तुम्हारी शादी का सिलसिला चल रहा था और ये पहली मर्तबा शाही हरम में आकर नवाब माशूक महल से मिलीं थीं। उसी दिन हमसे भी इनकी मुलाकात हुई थी और दोनों के मिजाज मिल गये थे। क्यों हुस्नआरा याद है उस दिन की?' और उन्होंने हुस्नआरा ने तरफ देखा।

'जी, अच्छी तरह याद है?' हुस्नआरा ने मुस्करा कर कहा।

'इसके बाद बेतकल्लुकी के साथ बातें होने लगी। पहले कुछ सलतनत की जब्ती और लखनऊ की तबाही की बातें हुई। इसके बाद मैंने कहा—'अब यह

फरमाइए कि कलकत्ते का क्या हाल है इधर हाल में जाने-आलम का कोई ताजा खत आया है ?'

'बेगम इतमीनान के साथ बोली, 'जाने-आलम के मोहब्बत-नामे तो बराबर हमारे पास आते रहते हैं। और हम भी भेजती रहती हैं। अभी पाँच-सात दिन पहले मुंशी सफदर के जरिए उनका ताजा मोहब्बत नामा मिला है। इस वक्त उनकी तबीयत नासाज है। जो लोग फरियाद लेकर विलायत गये हैं, उस खत में उन्होंने उन्हीं लोगों के बारे में कुछ लिखा है।'

'क्या वहाँ सलतनत की वापसी की कोई उम्मीद पाई जा रही है ?'

'सल्तनत की वापसीकी जो उम्मीद होगी वह होगी लेकिन पुकार करने वालों का अजब हाल है। जाने-आलम ने लिखा है—लन्दन में यह हाल है। भाई साहब चाहते हैं मुझे सलतनत दो। साहबजादे चाहते हैं मुझे दो। चचा भतीजे में वाकई तौर पर जूता उछल रहा है। हम यहाँ बीमार पड़े हैं हमें कोई नहीं पूछता, खुदा जाने क्या गत और नौबत मेरी हो। अब तो वे दोनों वाकई तौर पर मुद्दई और दुश्मन हो चुके है।'

'यह भी एक जमाने की खूबी है।' मैंने धीरे के कहा।

'जमाने की खुबी तो हर हालत में है। अब अपने ही गैर हो रहे हैं, तब दूसरों के लिए क्या कहा जाय! बेचारे जाने आलम······' और वह चुप रह गईं।

'मैंने देखा उनका चेहरा कुछ उदास हो रहा था। इसलिए इस जिक्र को छोड़ कर कहा—'आप को मेरी ये गुलफाम मंजिल पसंद आईं ?'

'शैदा बेगम नजर उठा कर बोलीं—'बाहर से देखने में तो गुलफाम मंजिल बहुत खूबसूरत नजर आती है। किसी शाही इमारत से कम नहीं मालूम होती।' फिर इधर उधर घुमाकर कहा—'यह दीवानखाना भी अच्छा लम्बा चौड़ा है। लेकिन अभी हमने सारी इमारत को अन्दर घूम फिर कर नहीं देखा। देखेंगे।' उनका स्वर फिर भी उदास था।

'मैंने दूसरा जिक्र छेड़ा—'आपका शायरी का मशगला चल रहा है ?'

'वह प्रसन्न मुख से बोलीं—'वही एक मशगला तो इन मनहूस दिनों में दिल बहलाने का जरिया है। अगर वह मशगला न हों तो दिन काटना मुश्किल हो जाय।'

'कोई ताजा गजल कही हो तो सुनाइए ?'

'जाने-आलम के मोहब्बत नामे के जवाब में कल ही एक गजल कही है। उनके पास भेजना है। मगर उसके मसौदे वाला कागज इस वक्त हमारे हाथ में नहीं है। आठ-दस शेरों की गजल है। दो चार शेर याद हैं उन्हीं को सुनाये देते हैं। उसका पहला शेर है :—

तालिब हैं गुल के और न ख्वाहा बहार के,
मुस्ताक हम हैं बोसए रुख सारे यार के।

दूसरा शेर है :— ऐ गुल सहूँ फिराक के सदमें मैं कब तलक,
आओ गले मिलो कि दिन आये बहार के
आगे का शेर है :—कुंजे कफस में फँस गई आते ही फस्ले गुल,
देखे हजार है फन जोबन बहार के।
आखिरी शेर है :—इन सदमों के उठाने को छोड़ा अबस मुझे,
लाजिम था तुम सिधारते 'शैदा' को मार के।'

'बहुत कमाल की और खूबसूरस गजल कही है। और आखरी शेर में तो आपने अपना दिल खोल कर रख दिया है।' मैंने कहा।

'हुस्नआरा ने मुस्करा कहा—'शायरी मुझे भी सिखा दीजिए। मैं भी गजल कहा करूँ।'

'बेगम हँस कर बोलीं—'हुस्नआरा, शायरी अच्छी चीज भी है और दर्द-सर भी है? मगर अपने दिल को खुश रखने का एक अच्छा जरिया है। अगर तुम कुछ दिनों हमारी सोहबत में रहो तो जरूर गजल कहने लगो।'

'दस्तरख्वान पर बैठने का वक्त हो चुका था। सब लोग वहाँ से उठ कर दूसरे कमरे में पहुँचे। सब ने बैठकर एक साथ इतमीनान के साथ खाना खाया। मूँह धोए। उसके बाद शैदा बेगम ने गुलफाम मंजिल को नीचे ऊपर घूम कर एक-एक कमरे की सजावट आरायश देखी। बहुत खुश हुई। बाग को देखकर तो वह बाग-बाग हो गई। हौज के उस चबूतरे पर पहुँच कर कहा—'अगर हम यहाँ रहती होतीं तो इसी चबूतरे पर बैठ कर गजल कहा करती।'

'वहाँ से हम लोग फिर दीवानखाने में आ बैठे। बेगम ने हुस्नआरा से कहा—'सुना है तुम सितार बहुत खूब बजाती हो? ऐसा मौका और कब मिलेगा? दो-चार गतें बजाकर सुनाओ। देखें कैसा बजाती हो?'

'सितार आ गया। हुस्नआरा ने यमन की गत बजानी शुरू की। उसके उतार चढ़ाव को देख-सुन कर बेगम झूम-झूम गई। गत खतम होने पर कहा— 'हुस्नआरा सच बात है। तुम सितार नहीं बजाती। सितार के तारों और पर्दों पर तुम्हारी उँगलियाँ जादू करती हैं। हम भी सितार बजाती हैं, मगर हमारा बजाना तुम्हारे आगे कोई चीज नहीं है।'

'मैंने कहा—'इनके सितार बजाने का एक वाकया सुनिए। बरसात के दिन थे, पानी बरस कर निकल गया था। बादल छाये थे। मौसन सुहाना था। हुस्नआरा सितार लेकर हौज के उसी चबूतरे पर पहुँच गई। चबूतरे के इधर के किनारे पर जो कुन्द का बड़ा सा झाड़ खड़ा है उसी के करीब बैठकर ये सितार के तारों को झन-झनाने लगीं। और अपने करतब में डूब गई! मैं कही बाहर गया था। जब वापस लौटा। इन्हें गुलफाम मंजिल में न पाया। तलाश में बाग में पहुँचा। शाम करीब आ गई थी। ये बेहाशी के साथ अपनी उँगलियाँ पर्दों पर दौड़ा रही थी। तारों की झंकार गूँज रही थी। और एक लम्बा काला साँप कुँद के पेड़ से झूम कर सितार के ऊपरी

हिस्से खूँटियो के करीब अपना सर रखे खामोशी के साथ झंकार सुन रहा था। जाते ही मेरी नजर उस काले साँप पर पड़ी। अहट पाकर वह भागा उसी समय हुस्नआरा ने भी झंकार बन्द की। मैंने माजरा सुनाया और इन्हें वहाँ से गुलफाम मन्जिल के अन्दर ले आया।'

'सितार नवाजी की यही तारीफ है। वह काला साँप सुन कर मोह गया था।' बेगम ने कहा।

'इसके बाद हुस्नआरा ने केदारा और तिलक कामोद की दो गतें और बजाईं।

'शाम नजीदक आ गई थी। इसलिए शैदा बेगम उठ कर तैय्यार हो गईं। गाड़ी आ गई। बेगम और महरी के सवार हो जाने पर हुस्नआरा भी गाड़ी पर बैठ गईं।

'बेगम ने पुछा—'तुम क्यों गाड़ी पर आ बैठीं ?'

'आप को पहुँचाने चल रही हूँ। मकान पर छोड़ कर वापस आ जाऊँगी।'

'अरे वाह, हम चली न जातीं ? खैर।'

'और गाड़ी चाँदी बाजार को रवाना हो गई।'

बत्तीस

'मिरजा शैदा साहब, करबला-मुअल्ला की जयरात से लौटने पर जब मैं कानपुर में ठहरा हुआ था, वहाँ का जिक्र सुनाने को भूल गया था।' जमालुद्दौला ने कहा।

'क्या हर्ज है, अब सुना दीजिए ?' मिरजा ने इतमीनान से कहा।

'मैं जिनके यहाँ ठहरा था उनका मकान अग्रेजी छावनी के बहुत करीब था। समाने से लम्बी चौड़ी सड़क छावनी के अन्दर को जा रही थी। सुबह का सुहाना समय था। ठण्डी ठण्डी हवा बह रही थी। सूर्य अभी उपर नहीं उठा था। पूर्व में उसकी सफेदी सुर्खी फैल रही थी। मैं मकान के बाहर आकर धीरे-धीरे दरवाजे के समाने टहल रहा था। उसी समय छावनी की तरफ से एक मेम और उसका साहब घोड़ों पर सवार तेजी के साथ घोड़ों को दौड़ाते हुए चले आ रहे थे। आगे मेम का घोड़ा था और उसके पीछे बीस-तीस गज के फासले पर साहब का घोड़ा था। ज्यों ही मेम का घोड़ा मेरे मकान के सामने सड़क पर आया। सहसा सामने से एक मस्त खूंख्वार सा भैंसा बेतहाशा दौड़ता हुआ आ गया। और मेम के घोड़े से उसकी मुठ भेड़ हो गई। भैंसे के मत्थे और सींगों से घोड़ा करारी चोट खाकर जमीन पर गिरा। उसके गिरते ही मेम भी अपने होश-हवास खोकर जमीन पर गिर पड़ी और बेहोश हो गई। मैने झपट कर मेम को अपनी गोद में उठा लिया और मकान के दरवाजे पर आ गया। भैंसे ने अपने जोश में घोड़े को मत्थे की दो तीन ठोकरें और लगाई फिर कतरा कर आगे भागता चला गया। यह सारी घटना पलक झपकते हो गई थी।

'साहब ने शायद पीछे से भैंसे की मुठभेड़ घोड़े और मेम का गिरना देख लिया था। शीघ्र ही मौके पर आ गया। और घोड़े से कूद कर घबराया हुआ सा मेरे पास आ गया। मेम अब होश में आ गई, मेरी गोद से हट कर साहब से लिपट गई। उसे किसी तरह से चोट नहीं पहुँची थी। घबरा कर बेहोश सी हो गई थी। साहब ने मेरा बहुत बड़ा उपकार माना। कहा-अगर आप मेम साहब को अपनी गोद में लेकर इधर से उधर न हट आते तो वह खूंख्वार भैंसा जरूर मेम साहब पर हमला करता। फिर मेरा नाम और अता-पता दर वक्त किया और मुझे अपने साथ बंगले पर ले गया। बड़ी इज्जत के साथ मुझे कुर्सी पर बैठाया। वह साहब कोई मामूली अंग्रेज नहीं था। कानपुर की छावनी में जो गोरी पलटने मौजूद थी, उनका बड़ा अफसर था। उसने अपना नाम बताया था मगर इस वक्त मुझे याद नहीं आ रहा।' फिर हंस कर कहा—'अंग्रेजो के नाम भी तो बड़े ऊल-जलूल और टेढ़े-मेढ़े हुआ करते हैं।

बातें करते हुए उसने कहा—लखनऊ की बादशाहत खतम हो चुकी है। वहाँ अब कम्पनी सरकार की हुकूमत है। सारे अवध में कमिशनरियाँ कायम हो चुकी हैं ओहदों पर अंग्रेज अफसर हैं। लखनऊ में मेजर कारनेगी हमारे हमजुल्फ हैं। हमारी मेम साहब जिनको आज आप ने मौत के मुँह से निकला है और मेजर कारनेगी की मेम साहब सगी बहिनें हैं। यह बड़ी हैं और वह छोटी। फिर एक क्षण चुप रहने के बाद कहा—आप लखनऊ में रहते हैं। मेजर कारनेगी वहाँ शहर के मजिसट्रेट हैं अगर कभी कोई जरुरत आ पड़े, आप उनसे मिलिएगा। वह हर तरह से आप की मदद करेंगे। मैं उनके नाम एक चिट्ठी लिख कर देता हूँ। उसमें आज की घटना का पूरा जिक्र होगा। आप वह चिट्ठी मेजर कारनेगी को देंगे। उसके जरिए आप को उनसे जान पहचान और दोस्ती हो जायगी। उसने अंग्रेजी भाषा में पत्र लिख कर लिफाफे में बन्द करके मुझे दिया। विदा लेकर मैं मकान लौट आया।

'हुस्नआरा ने पूछा—'सुबह-सुबह आप कहाँ चले गये ?' मैंने सारी कैफियत कह सुनाई। लखनऊ का हाल सुनकर हुस्नआरा का दिल दुखी और उदास था। इसलिए उसने कुछ रुखे स्वर से कहा—'उधर अंग्रेजों ने लखनऊ का तख्ता उलट दिया है इधर आप उनसे दोस्ती करते फिरते हैं।'

'उस वक्त मैंने उसके कहने का कोई जवाब नहीं दिया था। कानपुर से लखनऊ आ गया। वह बात आई गई सो हो गई। दिन गुजरने लगे। लेकिन वह चिट्ठी मैंने हिफ़ाजत से रख छोड़ी थी।'

'सरफराज अली खाँ मुझसे मिलने आए। जब मैं करबला से लौटा था उसके दूसरे दिन जब सरफराज अली खाँ ने लखनऊ के उजड़ जाने की पूरी दास्तान सुनाई थी। उसके बाद से उन्होंने महीनों बाद शकल दिखाई थी। मैंने उनसे कहा—'वाह साहब, उस दिन से तो आप ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सर से सींग ?'

'मेरे गायब होने की तो आप को शिकायत है। लेकिन आप भी गुलफाम-मंजिल से कभी बाहर निकलते हैं ? यहीं बैठे अंडे सेया करते हैं। जरा लखनऊ में घूम फिर कर देखिए क्या हो रहा है।'

'घूम फिर कर देखने के लिए क्या लखनऊ में कोई नई रौनक बरस रही है। कोई तमाशा हो रहा है ?' मैंने थोड़ा मुस्करा कर कहा।

'जी हाँ ? बड़ा अजीब-गरीब तमाशा हो रहा है।' सरफराज ने भी मुस्करा-कर कहा—

'ऐसा तमाशा अपनी जिन्दगी में कभी किसी ने आँखों से न देखा होगा ? दिलाराम कोठी और रमना में सुबह से शाम तक लोगों की भीड़ जमा रहती है।' फिर जरा गम्भीर होकर कहा—'किसी दिन चल कर देखिए। वहाँ अवध सल्तनत और बादशाह वाजिद अली शाह की शान-व-शौकत नीलाम पर चढ़ रही है।'

'मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा। तुम जाने कैसी पहेलियाँ बुझा रहे हो ?'

'पहेलियाँ नहीं बुझा रहा। सच बात अर्ज कर रहा हूँ। लखनऊ की अंग्रेजी हुकूमत नये-नये गुल खिला रही है। हुकूमत ने इश्तहारों में छपवाकर हिन्दुस्तान के कोने-कोने से खरीदारों को बुलाया है। लखनऊ की सल्तनत मंसूरिया में एक जमाने से शान-व शौकत और ऐश-इशरत का जो साज-सामाज जमा था। जिसे पिछले नवाबों और बादशाहों ने करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा कर जमा किया था और सुलताने-आलम वाजिद अली शाह ने उसमें अपनी दिलचस्पी शामिल करके चार चाँद लगा दिए थे। उस सब को अंग्रेजी हुकूमत ने बेकार समझ कर नीलाम करना शुरू कर दिया है। लाखों की चीज कौड़ियों में नीलास हो रही है। दिलाराम कोठी में माल असबाब, कीमती-कीमती चीजें और रमना में हाथी, घोड़े, गाय-बैल, भैंसे, शेर, चीते, हिरन, कबूतर, और चिड़ियाँ वगैरा बोली पर चढ़ रहे हैं।' फिर मुस्करा कर कहा—'कुछ पसंद आए तो आप भी खरीद लीजिए।'

'मैं सन्नाटे में रह गया। कुछ न कह सका।'

'सरफराज फिर बोले—'कुछ शाही इमारतें भी नीलाम की जा रही हैं। आप को मालूम होगा। कैसर बाग के दक्षिणी फाटक से लालबाग की तरफ जाते हुए चौलख्खी कोठी है। बड़ी शानदार इमारत है। उसे अजीमुद्दौला नाई जो बादशाह मोहम्मद अली शाह का मुसाहब था, ने तामीर करायी थी। सुलताने-आलम को यह कोठी बहुत पसंद थी। कैसर बाग से मिली हुई भी थी, इसलिए उन्होंने चार लाख रुपया देकर खरीद ली थी और उसका नाम 'माशूक मंजिल' रखा था। कभी-कभी मलिका किश्वर बहादुर उसमें रहा करती थीं। कहने का मतलब यह है कि कौड़ियों कंकरों का सौदा है। वह चौलक्खी कोठी बारह हजार में एक साह जी ने खरीदी है। इसी तहर रमना के जानवरों का भी एक जिक्र सुन लीजिए। नवाब मुनव्वरउद्दौला ने एक काठियावाड़ी घोड़ा सौ रुपया में खरीद करके कानपुर की छावनी में रहने वाले अपने एक अंग्रेज दोस्त के पास भेजा था।, वह अंग्रेज अफसर उस घोड़े का दाम दस हजार रुपया दे रहा था, मगर नवाब ने नहीं दिया। घोड़ा साहब के नजर कर दिया।'

'इसके बाद कुछ देर तक खामोशी रही। फिर मैंने कहा—'और कोई खबर ?'

'सरफराज बोले—'हाँ, एक ताजा खबर और है। उसी को सुनाने के लिए मैं इस वक्त दौड़ा आया हूँ ?'

'वह क्या खबर है ?' मैंने उनकी तरफ देखकर उत्सुकता भरे स्वर से पूछा।

'जरा वाहीयात सी खबर है। मगर उसे बिलकुल सही न समझ लेना चाहिए। मुमकिन है बदल जाय।'

'आखिर ?' मेरी उत्सुकता अधिक बढ़ रही थी।

'गुलफाम मंजिल के सामने आप का जो इमामबाड़ा और महजिद है वह खोद कर जमीन में मिला दिया जायगा।'

'क्यों ? ऐसा जुल्म क्यों होगा ?' मैंने हैरत भरे लहजे से कहा।

'इस वक्त 'क्यों' का न कोई सवाल है न जवाब। अंग्रेजी हुकूमत है। जो चाहेगी करेगी।'

'आखिर कोई वजह तो होगी?'

'वजह लखनऊ की तबदीली है। जहाँ और सब रद्द-व-बदल हो रहे है। वहाँ लखनऊ शहर की हुलिया भी बदली जा रही है। नई-नई सड़कें निकल रही हैं। उनकी सिधाई और घुमाव-फिराव में जो इमारत, इमामबाड़ा, मसजिद, मकान वगैरह आ रहे हैं वह सब खोद कर फेंके जा रहे हैं। एक नई सड़क आप की गुलफाम मंजिल के सामने से भी गुजरेगी। उसकी जद में इमामबाड़ा और मसजिद आ रहे हैं।'

'मैं जरा देर सन्नाटे में रहा फिर कहा—'यह सब लखनऊ के चीफ कमिशनर कर रहे होंगे?'

'शहर के इस रद्द-व-बदल की जिम्मेदारी सिटी मजिसट्रेट मेजर कारनेगी की है।' फिर धीरे से कहा—'मेजर कारनेगी अजीब जिद्दी अंग्रेज है। किसी की भी नहीं सुनता। लखनऊ में झाड़ू लगा देने को तैयार है। मुफ्तीगंज की एक सड़क की सीध में मेरे मौसा नवाब जुल्फिकार अली खाँ साहब की हवेली आ गई। कम्बख्त मेजर कारनेगी ने खड़े-खड़े खुदवा कर फिंकवा दी। अब वह बेचारे किराये के मकान में रह रहे हैं।'

'सिटी मजिसट्रेट मेजर कारनेगी का नाम सुनकर मुझे वह कानपुर वाली घटना याद आई। ख्याल दौड़ा कि उस फौजी अफसर ने लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट कारनेगी को अपना हमजुल्फ बताया था। और उसके नाम की चिट्ठी भी दी थी। कुछ सोचने के बाद मैंने पूछा—'सिटी मजिस्ट्रेट मेजर कारनेगी रहने कहाँ है?'

'सभी अंग्रेज अफसरों के बंगले बेली गारद के अहाते के अन्दर हैं। क्यों?'

'कुछ नहीं, यों ही पूछ लिया।'

'अरे वह बड़ा खर दिमाग का अंग्रेज है।' सरफराज ने कहा—'कैसरबाग को वीरान कर दिया। एक दिन कोठी फरह-बख्श में जा पहुँचा। वहाँ शाही कुतुब-खाने की हजारहा अमूल्य किताबें आलमारियों में बन्द थी। बाहर निकलवा कर फिंकवा दीं। कहा—यह सब कूड़ा है। रखने की जरूरत नहीं है। फिर वहीं कोठी के सामने एक गड्ढा खुदवाकर वह सभी किताबें उसमें डलवा दीं। और दो चार पीपे तेल के उन पर बहा कर आग लगवा दी।'

'कोई तरकीब है कि इमामबाड़ा और मसजिद बच जाय?' मैंने कहा।

'मेरे ख्याल में तो कोई तरकीब नहीं आ रही।' और सरफराज ने उठते हुए कहा—'देखिए शायद बच जाये।' और वह चले गये।

'उनके जाने के बाद मैंने हुस्नआरा को वह मनहूस खबर सुनाई। सुनकर उन्होंने कहा—'इसके मानी ये हैं कि किसी दिन गुलफाम मंजिल का भी नाम मिटा दिया जायगा।'

'हो सकता है। हुकूमत पर किसका जोर चलेगा।' मैंने कहा।

'तब तो अब इस लखनऊ में रहना हराम है।' उसने धीरे से कहा।

'ये सिटी मजिस्ट्रेट मेजर कारनेगी वही हैं जिनको कानपुर के उस फौजी-अफसर ने अपना हमजुल्फ बताकर चिट्ठी दी थी।'

'तब ?' हुस्नआरा ने कुछ हैरत भरी नजर से मेरी तरफ देखा।

'वह चिट्ठी अभी मेरे पास मौजूद है। उसे लेकर कल मैं मेजर कारनेगी से मिलने जाऊँगा। मुमकिन है वह कुछ ख्याल करे। मसजिद इमामबाड़ा खुदने से बच जाय।'

'शौक से जाकर मिलिए।' हुस्नआरा ने मुस्कराकर कहा—'मगर अंग्रेज बन्दर हैं। किसी के सगे नहीं हो सकते। इनकी दोस्ती सिर्फ मतलब की हुआ करती है।'

'देखूँगा क्या नतीजा निकलता है।' मैंने धीरे से कहा।

'दूसरे दिन पहर दिन चढ़े मैं कपड़े बदल कर और अपनी गाड़ी में सवार होकर मेजर कारनेगी के बँगले पर पहुँचा। वह बँगले के अन्दर थे। बाहर दरबान बैठा था। मैं गाड़ी से उतर कर बँगले के बरामदे में पहुँचा। मेरा नवाबी ठाठ देखकर दरबान उठ कर खड़ा हो गया और कायदे के साथ मुझे सलाम किया। मैंने पूछा—'मेजर साहब कहाँ हैं ?' उसने कहा, 'अन्दर कमरे में हैं।' मैंने चिट्ठी उसके हाथ में देकर कहा—'मेरी यह चिट्ठी साहब के पास पहुँचा दो।' दरबान चिट्ठी लेकर अन्दर चला गया। और जरा देर में वापस आकर बोला—'जाइए। मेजर साहब आप का इन्तजार कर रहे हैं।'

'मैं अन्दर कमरे में पहुँचा। मेजर कारनेगी ने कुर्सी से उठ कर मुझसे हाथ मिलाया। फिर बड़ी इज्जत के साथ मुझें सामने की कुर्सी पर बैठाया। मेरी वह चिट्ठी खुली हुई उनकी मेज पर रखी थी।

'चिट्ठी पर एक नजर डाल कर और दूसरी नजर मेरे चेहरे पर जमा कर मेजर कारनेगी ने कहा—'आपका नाम नवाब जमालुद्दौला गुलफाम अली खाँ है ?'

'जी हाँ ?'

'आप यहाँ कहाँ रहते हैं ?'

'तोप दरवाजे के करीब गुलफाम मंजिल में।'

'आप से मिल कर हमको बहुत खुशी हुई।' फिर जरा रूक कर कहा—'यह चिट्ठी कर्नल राबर्ट जान की है। वह मेरे हमजुल्फ है। आपने उनकी मेम साहब को बचाया था। उस एहसान को वह तो मानते ही होंगे, मैं खुद भी आपका बहुत ऐहसान मन्द हूँ। मुझे आप अपना दोस्त समझिए। जब भी मेरे लायक जो काम हो, मिल कर कहिये। मैं जरूर उसे पूरा करूँगा।'

इसके बाद जरा देर लखनऊ के संबंध की कुछ बातें हुई। फिर मैंने अपने मतलब पर आकर लखनऊ में नई सड़कों के दौड़ने और अपने इमामबाड़े मस-जिदके बारे में पूछा।

'मेजर कारनेगी बोले—'जमालुद्दौला साहब, मुझे माफ करेंगे। बहुत देर हो गई। उस सड़क का नकशा बन कर काम शुरू हो चुका है। उसकी सीध में जो भी मकान, हवेली, मंदिर, मसजिद, गरज कि जो कुछ भी होगा वह अब नहीं बच सकता। वह सब खतम करके सड़क निकाली जायगी। अगर सड़क का नकशा तैय्यार होने और काम शुरू होने के पहले आप मुझसे मिले होते तो मैं जरूर आप की इमदाद करता। इसके अलावा अगर आप का कोई दूसरा काम हो तो निस्संकोच कहिए। मैं तैय्यार हूँ।'

'मैं समझ गया कि मसजिद और इमामबाड़ा अब किसी तरह भी बचाये नहीं बचते। उनका नाम-निशान मिट कर रहेगा। अन्त में मैंने कहा—'अभी तो कोई दूसरा काम नहीं हैं। जब होगा अर्ज करूँगा।'

'मेजर कारनेगी बड़े हौसले से बोले—'जरूर-जरूर, मुझे अपना सच्चा दोस्त समझ कर अपना काम मेरे सिपुर्द कीजिएगा। इसके अलावा फ़ुर्सत के वक्त मुझसे मिलते रहियेगा। अगर मौका मिलेगा तो मैं भी आप की गुलफाम मंजिल देखने आऊँगा। और उन्होंने मेरा अता-पता अपनी डायरी में लिख लिया।

'इसके बाद मैंने मेजर कारनेगी से बिदा माँगी। उठ कर उन्होंने प्रसन्न मुख-मुद्रा से हाथ मिलाया और बाहर आ कर मुझे गाड़ी तक पहुँचाया। मैं घर लौट आया।

'हुस्नआरा को मुलाकात की सारी कथा सुनाई। वह बोली—'यह तो मैं पहले से जानती थी। अंग्रेज बच्चे कभी किसी के सगे हुये हैं? वह तो सिर्फ अपने मतलब के यार हैं।' फिर जरा ठहर कर कहा—'खैर आप के दिल की उमंग पूरी हो गई। एक अंग्रेज से आप की कुछ जान-पहचान हो गई।'

'मैंने कहा—'तुमने जो कुछ कहा सही है। मेरे कहने का मतलब सिर्फ यह था कि सरफराज अली खाँ ने मेजर कारनेगी की जो जली-कटी तारीफ की थी, मैंने उन्हें वैसा नहीं पाया। मेरे नजदीक तो वह एक बहुत अच्छे अंग्रेज अफसर हैं।'

'वह बुरा समझते हैं, आप नेक समझते है। अपना-अपना ख्याल है। सचाई तो वक्त पर काम आने से ही साबित होती है।' हुस्नआरा ने धीरे से कहा।

'एक दिन मेजर कारनेगी नई सड़क को देखने के सिलसिले में गुलफाम मंजिल में आये। मैंने हर तरह से उनका स्वागत-सत्कार किया। खुश हुए। उस वक्त भी उन्होंने कहा—'नवाब गुलफाम अली खाँ साहब, मुझे अफसोस है। मगर आप पहले मुझसे मिले होते तो आप का इमामबाड़ा और मसजिद बच जाती। मगर अब मैं मजबूर हूँ।' और चाय पीकर चले गये। मैं जब-तब उनके बँगले पर पहुँचता रहा और वह बड़े तपाक से मिलते रहे।'

तैंतीस

'मिरजा साहब, आखिर गुलफाम मंजिल के सामने से नई सड़क दौड़ गई। इमामबाड़ा और मसजिद का नाम-निशान मिट गया।

'इमामबाड़े से हुस्नआरा को बहुत मोहब्बत थी। और निस्सन्देह वह इमामबाड़ा अपनी शान का एक ही था। शायद आपने बादशाह्न नसीरूद्दीन हैदर की एक बेगम मलिका जमानिया का नाम सुना होगा। उनका बनवाया हुआ इमामबाड़ा मोहल्ला गोलागंज में आज भी मौजूद है। उस समय लखनऊ में उसकी शान और मुकाबले का इमामबाड़ा न था। आसुफुद्दौला के बड़े इमामबाड़े तथा हुसैनाबाद के इमामबाड़े के बाद मलिका जमानिया के इमामबाड़े का ही नम्बर था। हुस्नआरा को वह इमामबाड़ा बहुत पसन्द था इसलिए उसी नमूने का इमामबाड़ा गुलफाम मंजिल के सामने बनवाया गया था। बाकर अली ने अपनी सारी कारीगरी उसकी बनावट में खतम कर दी थी। और उसके आगे मलिका जमानिया का इमामबाड़ा झक मारने लगा था। नहले पर दहला पड़ा दिखाई देता था।

'हुस्नआरा ने अपने इमामबाड़े को भी पूर्ण लगन के साथ सजवाया था और ताजियादारी भी शुरू कर दी थी। लखनऊ में गुलफाम मंजिल के इमामबाड़े का ताजिया और हुस्नआरा की ताजियादारी मशहूर हो गई थी। मोहर्रम के दिनों में जब उसमें रोशनी हुआ करती थी, देखने के लिए सारा लखनऊ उमड़ पड़ता था। दसवीं तारीख तक रोजाना बड़ी धूम-धाम के साथ मजलिसें हुआ करती थीं। मर्सिया पढ़े जाते थे और मातम होता था। लखनऊ के मशहूर मर्सियागो मीर अनीस के छोटे लड़के मीर रईस साहब मर्सिया पढ़ा करते थे। उनकी मर्सियाख्वानी की क्या तारीफ की जाय। खानदानी मर्सियागो थे, शुरू करते ही मजलिस पर सकता सा छा जाता था।

'सोजख्वानी भी बड़े गजब की हुआ करती थी। उन दिनों लखनऊ में चूने वाली हैदरी की सोजख्वानी बहुत मशहूर थी। कोई उसके मुकाबले पर नहीं आता था। उसके मुँह से सोज सुनने के लिए लखनऊ के लोग मोहर्रम के दिन उँगलियों पर गिनते रहते थे। हुस्नआरा ने अपने इमामबाड़े में सोज पढ़ने के लिए हैदरी को राजी कर लिया था और वह भी हुस्नआरा से कुछ ऐसी हिल-मिल गई थी कि बिना बुलाये आ जाया करती थी। जिस वक्त वह सोज पढ़ा करती थी, लोगों के दिल लौट जाते थे। आशोरे के दिन सैंकड़ों गरीब मोहताओं को भर पेट खाना खिलाया जाता था और खैरात बाँटी जाती थी। इसके अलावा मजलिसों के हिस्से

बड़ी उदारता के साथ बाँटा करती थी। खीर की बड़ी-बड़ी हाँडिया और पुलाव से भरे हुए थाल आमंत्रित लोगों के घरों पर से पहले से भिजवा दिया करती थीं।

'मजलिसों का सिलसिला चहल्लुम तक जारी रहता था। हर जुमेरात को हुआ करती थी।......मिरजा शैदा साहब, हुस्नआरा की वह ताजियादारी इमाम बाड़ा खुदते ही खतम हो गई थी।'

'हुस्नआरा ने अपनी आँखो से इमामबाड़े को खुदती और मिटते देखा। कुदाली की एक-एक चोट गोया उसके दिल पर पड़ रही थी। आँखों के आँसू सूख गये थे। लेकिन दिल अन्दर ही अन्दर रो रहा था। जबान से कुछ नहीं कहती थी, मगर अन्दर का दुख-दर्द चेहरे पर आकर छा गया था। जो चेहरा हर समय फूल की तरह खिला दिखाई दिया करता था वह अब सूख कर काँटा बन गया था। और मन का विराट सूनापन उसमें उलझा नजर आता था उसका वह बुल-बुल की तरह चहकना एकदम बन्द हो गया था। हर समय मौन धारण किए रहती थी।

'हुस्नआरा की यह दशा देख कर मेरा हृदय बैठा जा रहा था। लेकिन बिवश था। अपने काबू की बात न थी। अंग्रेजी हुकूमत ने जब लखनऊ को मिटा दिया था और कोई साँस तक नहीं ले सका था। उस ताकत, उस शक्ति के लिए हमारा इमामबाड़ा मिटा देना एक साधारण सी बात थी।

'अन्त में मैंने हुस्नआरा के आगे एक प्रस्ताव रखा—'बाग के आधे हिस्से में दूसरा इमामबाड़ा बनवा लिया जाय। बाकर अली अभी मौजूद है वह शीघ्र ही नया इमामबाड़ा खड़ा कर देगा।'

'मेरे इस प्रस्ताव पर उसने कहा—'जब बना हुआ बिगड़ गया, उसे बचया नहीं जा सका तो अब नया बनवाने से क्या फायदा है। बाग भी उजड़ जायगा और किसी दिन वह भी खोद कर जमीन में मिला दिया जायगा।'

'हुकूमत से किसका जोर चला है। इसे तो तुम खुद समझ सकती हो।'

'अब लखनऊ रहने की जगह नहीं है।' उसने कहा।

'तब कहाँ रहा जाय ?'

'हुस्नआरा कुछ देर तक चुप बैठी रही फिर नजर उठा कर कहा—'अब मेरा कहना यह है कि कलकत्ते चल कर जाने-आलम के पास रहें। आज अपने सभी लोग वहाँ हैं, तो हम आप यहाँ क्यों पड़े रहें।'

'तुम्हारी इसलाह मुझे पंसद है। मैं खुद जाने-आलम के नजदीक रहना चाहता हूँ। लेकिन ख्याल यह हो रहा है कि विलायत में राज्य के वापसी की जो पुकार चल रही है उसका नतीजा मालूम हो जाने के बाद लखनऊ को छोड़ने के बारे में निश्चय किया जाय।'

'बिलायत का नतीजा तो खुला हुआ है।' उसने दृढ़ स्वर से कहा—'अब जाने-आलम की बादशाहत वापस नहीं मिलती। अंग्रेजों को सोने की चिड़िया हाथ

आ गई है। वह हरगिज उसे नहीं छोड़ सकते। आप इसे पत्थर की लकीर समझ लीजिए।'

'हो सकता है तुम्हारा कहना सही हो।'

'हुस्नआरा ने जरा देर चुप रहने के बाद कहा—'अगर कलकत्ते नहीं चलना चाह रहे तो चलिए ईराक में रहें। सुना है नवाब ताजमहल करबला जाने की तैय्यारी कर रही हैं। हम लोग भी उन्हीं के साथ निकल चलें।'

'लखनऊ से तुम्हारा दिल इस कदर उचार हो रहा है ?'

'लखनऊ से ही क्या...मेरा दिल तो दुनिया से उचार हो रहा है।'

'ऐसा क्यों ?'

'खुदा जाने, मैं क्या बताऊँ।'

'इन बातों के बाद से हुस्नआरा और अधिक उदास रहने लग गई। उसका हमेशा का दिल बहलाव सितार की झंकार थी। उसे कभी नहीं भूलती थी। दिन-रात में घन्टे दो घन्टे जम कर सितार अवश्य झनझना लिया करती थी। लेकिन अब उसके सितार पर धूल जम रही थी, तार टूट रहे थे। मगर उसे परवाह न थी। कभी उस पर निगाह नहीं डालती थी। उसकी दूसरी दिलचस्पी सैर सपाटे से थी। वक्त का बेचैनी से इन्तजार रहता था। शाम के बहुत पहले खुद तैय्यार हो जाया करती थी और मुझसे तैय्यार होने का तकाजा करने लग जाती थी। कभी दिलकुशा पहुँच जाना, कभी गोमती के किनारे जा बैठना और चिराग जले वापस आना रोज का नियम था। लेकिन अब उसे सैर से भी नफरत हो गई थी। अगर मैं चलने को कहता,तो कहती आप जाइए, मैं नहीं जाऊँगी। पलंग पर चादर तान कर पड़े रहना ही पसंद था। बैठ कर बातें करना भी पसंद नहीं आता था। खामोशी ज्यादा पसंद थी। समझ में नहीं आता था कि उसे अपनी पहली हालत में किस तरह लाया जाय।

'मिरजा साहब, यह सन् सत्तावन का वह जमाना था जब देश में एक नई उथल-पुथल शुरू हो गई थी। हिन्दुस्तानी फौजों ने अंग्रेजी हुकूमत को उठा देने के लिए हथियार पकड़ लिए थे। आजादी की लड़ाई शुरू हो गई थी। चारों तरफ से फसाद की खबरें आ रही थीं। अगरचे लखनऊ में अभी तक कोई शोर-गुल नहीं था, फिर भी यहाँ के अंग्रेज चौकन्ने थे।

'हुस्नआरा की वजह से मैं तो कहीं जाता-आता न था। क्योंकि वह मुर्झाया मुख लिए दिन-रात पलंग पर पड़ी रहती थी। मैं उसे हँसाने-गुदगुदाने की भरसक कोशिश करता था लेकिन उसकी उदासी दूर नहीं हो रही थी। कभी-कभी सरफराज अली खाँ, सुलतान अली खाँ और राहत अली खाँ आ जाया करते थे। उन लोगों का जो इधर-उधर की खबरें मालूम हुआ करती थीं, मुझे सुना दिया करते थे। मैं सुन कर आश्चर्य से भर जाता था। इधर हुस्नआरा की उदासी, उधर मनहूस खबरें, हर वक्त मुझे झकझोरती रहती थीं। इसी तरह से दिन गुजर रहे थे।

'एक दिन सुलतान अली खाँ आए। दीवानखाने में मेरे पास बैठे। हुस्नआरा अपने कमरे में पलंग पर चादर ताने पड़ी थी।

'मैंने सुलतान से पूछा —'कोई खैर खबर ?'

'वह बोले—'इस वक्त आप खबरों की क्या पूछते हैं ? इस समय लखनऊ में खबरों की भरमार है। जहाँ दो-चार लोग मिल बैठे, खबरों का तूफान आ जाता है।'

'मैंने कहा—'कोई ताजा खबर हो तो सुनाइए ?'

'अब ताजा खबर है कि मेरठ और शाहजहानाबाद में खुल्लम-खुल्ला मार-काट शुरू हो गई है।'

'लखनऊ में तो कुछ नहीं है ?'

'लखनऊ में तो अभी तक कुछ नहीं है। लेकिन चीफ कमिशनर और दूसरे सभी अंग्रेज अफसर चौकन्ने हो रहे हैं। किला मच्छी भवन में जगह-जगह पर तोपें लगा दी गई हैं। कुछ बड़ी-बड़ी तोपें गोमती के पुल पार लगाई गई हैं। सारा हुसनबाग बराबर किया जा रहा है। अभी सुनता आ रहा हूँ कि शहर में एक मुनादी पिट रही थी कि शहर के रईसों, अमीरों और नवाबों को चाहिए कि अपनी जान-माल की हिफाजत के लिए सिपाही नौकर रख लें। पंच महल में जो शाही बेगमात रह रही थीं वे सब वहाँ से हट कर शहर में किराये के मकानों में आ गई हैं। बेली गारद के चारों तरफ खाइयाँ और धुँस तैयार किये जा रहे हैं। दूर-दूर तक मैदान बनाया जा रहा है। मकान हवेलियाँ वगैरा गिराई जा रही हैं।'

'इस सब के मानी यह हुए कि लखनऊ खतरे से खाली नहीं है। यहाँ भी एक दिन खूनखरावी हो सकती है।'

'क्यों नहीं ?' सुलतान ने कहा—'यहाँ तो अंग्रेजों का पूरा जमघट है।'

'इसके बाद सुलतान अली खाँ अपने घर चले गये। मैं उनकी सुनाई हुई खबरों पर गौर करने लगा। कुछ देर हो गई। तभी राहत अली खाँ दीवानखाने में आकर जम गये और बैठते ही बोले—'लीजिए जमालुद्दौला साहब ? आग की लपटें लखनऊ में भी ऊँची उठने लग गईं। अब कम्बख्त फिरंगियों की अकल दुरस्त हो जायगी। सालों ने बड़ा जुल्म ढाया था। जाने-आलम वाजिद अली शाह से बेवजह सल्तनत छीन ली थी। अब आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा।'

'मैंने हैरत भरे लहजे से कहा—'आखिर हुआ क्या ? आप अंग्रेजों को गालियाँ क्यों दे रहे हैं ? हुकूमत बदलने की बात कोई नई थोड़े ही है। ऐसा तो हिन्दुस्तान में हमेशा से होता चला आया है। कुछ बेचारे जाने-आलम ही दुश्मनों के शिकार नहीं हुए। हिन्दुस्तान के इतिहास में ऐसी बहुत सी मिसालें भरी पड़ी हैं। खैर, आप अपनी खबर तो कहिए ?'

'राहत अली खाँ बड़े इतमीनान के साथ बोले—'मेरी खबर यह है कि छावनी मंडियावन में जो हिन्दुस्तानी फौजें और रिसाले मौजूद थे, वह भी फिरंगियों के खिलाफ

होकर फसाद पर कमर कस कर तैय्यार ही गये हैं ।' फिर जरा रुक कर कहा—'और वह दुश्मन क्यों न बन जाते ? फिरगियों ने खुद उन्हें सोते से जगा दिया ।'

'किस तरह ?'

'कमिशनर वगैरह सभी अंग्रेजों ने सलाह करके छावनी के हिन्दुस्तानी सिपाहियों के हथियार छीन कर उन्हें खाली हाथ कर देना चाहा था । इस गरज से गोरों की दो कम्पनियाँ वहाँ भेजी गई थीं । तोपें भी गई थीं, बस आग भड़क उठी । सिपाही बंदूकें लेकर अपने-अपने कोठों से निकल पड़े और मुकाबला शुरू हो गया । गोरों को भागते राह न मिली । फौजी सिपाहियों ने छावनी के अंग्रेज अफसरों के इक्कीस बँगले जला दिए । उनका माल-असबाब लूट लिया । लूट-खसोट में उधर के गाँवों के लोग भी शामिल हो गये थे । यह सब करके सिपाहियों और सवारों ने दिल्ली का रास्ता पकड़ लिया है ।'

'मैं दो क्षण चुप रहा । फिर पूछा—'आगे ?'

'आगे, अब लखनऊ शहर में भी खिचड़ी खुद-ब-खुद पक रही है । गुंडे, शोहदे, बेकार-बेफिकरे और दिलजले लोग भी अपना गुल खिलाने की तरकीबें सोच रहे हैं । खुदा जाने कैसा क्या रंग लाएँ ?'

'मैं चुप रहा । राहत अली खाँ मुस्करा कर बोले—'आप को भी इन खबरों से खुश होना चाहिए ?'

'क्यों ?' मैंने धीरे से कहा ।

'आपके साथ भी इन बदजात फिरंगियों ने बड़ी ज्वादती की है । बनी बनाई मसजिद और इमामबाड़ा खुदवा डाला । कमबख्तों को खुदा का घर बिगाड़ने में भी संकोच नहीं हुआ था ।'

'कुछ देर तक इसी संबध की बातें करने के बाद राहत अली खाँ चले गये ।'

'दोपहर में जब मैं और हुस्नआरा दस्तरख्वान पर बैठे । मैंने हुस्नआरा को उन दोनों दोस्तों की सुनाई हुई खबरें सुनाईं । उसने जवाव में हाँ, हूँ भी न की । दस्तर ख्वान से उठ कर फिर पलँग पर लेट गई । मैंने उसके आराम में दखल देना उचित नहीं समझा ।

'एक दिन रात में हुस्नआरा ने एक सपना देखा । सुबह जागते ही उसने अपना वह सपना मुझे सुनाया—'हम तुम सैर को गये हैं । गाड़ी से उतर कर रेत के एक ऊँचे टीले पर गोमती के किनारे बैठे हैं । सामने दरिया लहरे मार रहा है । शाम धीरे-धीरे नजदीक चली आ रही है । ऐसे ही में जाने कहाँ से अजीजन आ जाती है । उसकी वही पोशाक, वही बनाव सिंगार और वही चेहरा-मोहरा है जो हमने आपने कभी देखा था । उसमें जरा भी फर्क नहीं है । उसे देख कर मैंने उससे पूछा—अरे, अजी-जन ? तुम तो उस दिन बजरे पर से कूद कर गोमतीकी गहराई में डूब गई थीं । आज हमारे सामने कहाँ से आ गई ?' अजीजन ठहाका मार कर बड़े जोर से हँस पड़ी । फिर सावधान हो कर बोली—'हाँ बाजी मैं डूब गई थी गोमती की तह में बैठ गई थी ।

और बैठे-बैठे तुम्हारे आने की राह देख रही थी। मगर तुम नहीं आईं। मैं थक गई।' और वह पुनः जोर से हँस पड़ी फिर बोली—'बाजी अब तुम्हें किस बात का मोह है अब तो तुम्हारी मसजिद और इमामबाड़ा बेनाम-निशान का हो गया! छोड़ो इस दुनिया को। उठो, मेरे साथ मेरी दुनिया में चलो। मेरी वह दुनिया बहुत खूबसूरत है। न कोई फिक्र है, न कोई झंझट है। यहाँ तो आये दिन एक बखेड़ा खड़ा रहता है। चलो मेरे साथ चलो। और अजीजन ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं उठकर उसके साथ चल पड़ी। आप पुकार रहे हैं। कह रहे हैं—'अरे हुस्नआरा, मुझे अकेला छोड़ कर कहाँ जा रही हो? क्या इतने ही दिनों की मोहब्बत जड़ी थी?' लेकिन मैं आप की एक भी नहीं सुन रही। पीछे फिर कर भी नहीं देख रही। अजीजन के साथ झपटती बढ़ी चली जा रही हूँ। और तभी वह सपना टूट गया। मेरी आँखें खुल गईं। यह कैसा अजीब सपना है?' उसने उदास स्वर से कहा।

'हुस्नआरा का सपना सुनकर मेरा हृदय धड़क उठा। ख्यालों की दौड़े शुरु हुई, लेकिन मैंने उनका पीछा छोड़ कर कहा—'उहुँ ऐसे सपने आते ही रहते हैं। ख्याल है। जिधर दौड़ गया। वैसा ही सपना दिखाई देने लगा। यह तो तुम्हारा कोई सपना नहीं है। इससे भी बिचित्र और भयानक सपने आँखों में आते है। जिन्हें देख कर डर पैदा हो जाता है।'

'उसी दिन तीसरे पहर सरफराज अली खाँ आये। सब मिल कर दीवनखाने में बैठे। हुस्नआरा ने कहा—'भाई जान, बहुत दिनों बाद इधर का रूख किया है। अभी तो लखनऊ में ऐसा हंगामा नहीं है कि आप घर से न निकल सकते?'

'हवा बढ़ते क्या देर लगती है?' उन्होने धीरे से कहा।

मैने पूछा—'कोई ताजा खबर है?'

'बड़ी वहशतनाक खबर है।'

'कैसी?' मैंने उनके चेहरे पर नजर जमा कर हैरत के साथ कहा।

'जाने-आलम पर बहुत बड़ी मुसीबत फट पड़ी। वह मटियाबुर्ज की कोठियों से ले जाकर किले में बन्द कर दिए गये।

'ऐ, जाने-आलम किले में कैद कर दिए गये?' हुस्नआरा ने आश्चर्य भरे लहजे से कहा।

'यह क्यों? जाने-आलन वहाँ क्यों किले में बन्द कर दिये गये। उन्होंने ऐसा कैन सा कसूर किया था? उन्होंने तो चुप-चाप अपनी हुकूमत अंग्रेजों के हवाले कर दी थी। यहाँ जरा भी हाथ-पैर नहीं हिलाए थे। अपनी पुकार ले कर कलकत्ते गये थे। और बिमारी की हालत में वहाँ पड़े हुए थे।'

'उनको ले जाकर किले में बन्द कर देने की वजह मुल्क में पैदा हुआ बलवा और फिसाद है। यहाँ मंडियावन छावनी में जो फौजें बिगड़ गई हैं उसकी खबर कलकत्ता पहुँची गई थी। गवर्नर जनरल को यह शुबहा हुआ कि फौजें का खिलाफ हो जाना शाहे-अवध के इशारे से हुआ है।'

'गजब हो गया ?' हुस्नआरा ने धीरे से कहा। फिर नजर उठा कर सरफराज से पूछा-'भाई जान, नवाब माशूक महल वगैरा कहाँ हैं । क्या उनके साथ बेगमात भी कैद में डाल दी गई हैं ?'

'नहीं बेगमात मटियाबुर्ज की कोठियों में मौजूदा हैं । लेकिन कोठियों के बाहर गोरों के पहरे खड़े हैं। जाने-आलम, कुछ साथी और चार पाँच नौकर किले में रखे गये हैं।'

'आप को यह मनहूस खबर किससे मालूम हुई है ?' मैंने पूछा।

'कल मुंशी सफदर और नज्मूद्दौला कलकत्ते से आये हुए हैं। उन्हीं की जवानी यह सब सुना गया है ?'

'और अब यहाँ की क्या खबर है।

'यहाँ की खबर कुछ मत पूछिए। सारे मुल्क का तूफान अब लखनऊ में आ कर जमा हो रहा है। आज की खबर यह है कि फैजाबाद से लड़ाके सिपाहियों की सात कम्पनिया, दो तोपें, एक रिसाले सवारों का लखनऊ से दो कोस की दूरी पर अलीगंज में जो हनुमान का मंदिर है वहाँ जमी हुई है। इसके अलावा तिलंगों की और कई कम्पनियाँ मेगजीन वगैरा साथ लिए पीछे चली आ रही है। उन्हीं का इन्तजार है। आ जाने पर सब मिल कर लखनऊ में आ धमकेंगे।'

'और अंग्रेजी हुकूमत का क्या हाल है ?'

'वह भी बलवाइयों को रोकने की तैय्यारी कर रहे हैं।' फिर रुक कर धीरे से कहा—'खुदा जाने इस लखनऊ में आगे क्या होकर रहे और किस पर कैसी बीतेगी।'

'यहाँ तो कुछ होगा ही। लेकिन कलकत्ते में लखनऊ के जो लोग हैं वह बेचारे बे-मौत मरे जा रहे होंगे।' हुस्नआरा ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा।

'सरफराज अली खाँ चले गये।

'उनके जाने के बाद मैंने हुस्नआरा से कहा—हुस्नआरा, तुम कलकत्ते चल कर रहने का इरादा कर रही थीं। अब भी क्या वहाँ चल कर रहने का बिचार है।

'अब मुझे कहीं जाकर नहीं रहना। अब तो सीधे खुदागंज में जाकर रहूँगी हुस्नआरा ने हताश भाव में धीरे से कहा।

'उसी दिन की रात में हुस्नआरा को बुखार हो गया। सुबह उठकर मैंने देखा उसे जोर का बुखार था। आग की तरह से शरीर जल रहा था और वह बोल नहीं रही थी। मैं घबरा गया। होश हवास खो से गये। समझ में न आया कि एकाएक इसे ऐसी कठिन बीमारी क्यों हो गई। हकीम बन्दाँ रजा खाँ लखनऊ के मशहूर हकीम थे। कुछ दूरी पर रहते थे। मैंने हसनू से कहा कि गाड़ी लेकर जाओ और जल्द हकीम साहब को अपने साथ ले आओ।

'हकीम बन्दा रजा खाँ साहब आ गये। हुस्नआरा की नब्ज देखकर बोले—'बुखार बहुत तेज है। इसी की वजह से बेहोशी है।' दवा देकर चले गये।

'मैं हुस्नआरा के पलंग पर पायंते बैठा था। साहसा हुस्नआरा बड़बड़ा उठी —'अब न कलकत्ते जाना है न ईराक जाना है···क्या करूँगी कहीं जाकर···अजीजन इन्तजार कर रही है···उसी के साथ जाकर खुदागंज में रहूँगी···यह दुनिया बेकार है···वही दुनिया सच्ची है।'

'मैंने पुकार कर कहा—'हुस्नआरा, यह क्या बेकार की बातें बक रही हो? होश में आओ?' कोई जवाब न मिला।

'कुछ देर बाद हुस्नआरा फिर बड़बड़ाई—'इमामबाड़ा मिट चुका। ताजियादारी खतम हो चुकी···अब खुदा का घर खोदा जा रहा है···उसे भी मिट जाने दो, यह तो उसका नकली घर था। इस दुनिया का घर था···असली घर तो वह है जहाँ मैं जा रही हूँ।'

'यह सुनकर मेरी आँखों के आगे अँधेरा सा छा गया। दिल की धड़कने बढ़ गईं। शाम को हकीम साहब फिर जाए। नब्ज देखकर बोले—'बुखार मियादी है। मगर अभी यह नहीं कहा जा सकता कि कितने दिन का है।' और दवा खिलाकर चले गये। दूसरे दिन भी हुस्नआरा के बुखार का वही हाल था। मैंने मसीहुद्दौला हकीम मिरजा अली हुसेन खाँ को बुला कर दिखाना चाहा। सोचा एक से दो की राय अच्छी होती है। उन्हें लाने के लिए गाड़ी लेकर हसनू को भेजा। मगर मालूम हुआ कि वह बादशाह सलामत के साथ कलकत्ते में हैं। इसके साथ हसनू ने यह खबर भी सुनाई—'फिरंगियों के दुश्मन अलीगंज से दीमक की तरह लखनऊ की तरफ बढ़े चले आ रहे थे। इधर से फिरंगियों की फौजें उनको रोकने के लिए पहुँची हैं। चिनहट के मुकाम पर दोनों की मुठभेड़ हुई। अच्छी मार-काट हुई। खूब तोपों के गोले बरसे। अन्त में गोरी फौजें हार गईं। तिलंगों की जीत हुई। अब तिलंगे लोहे के पुल से लखनऊ में घुस आये हैं। और अंग्रेजों को मच्छी भवन के किले से निकालकर उसे खाली कराने की तदवीरें कर रहे हैं। वहाँ गोले बरसाने के लिए तोपों के मुँह सीधे कर रहे है।'

'हसनू की जवान में यह मनहूस खबर सुनकर मैं सन्नाटे में रह गया। लेकिन उस समय मेरे दिल पर इस खबर का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मुझे तो हुस्न-आरा की फिक्र थी। उसका बुखार कम कर के उसे होश में लाने की चिन्ता घेरे हुए थी। हसनू शायद मेरी चिन्ता को समझ गया था। बोला—'सरकार मसी-हुद्दौला तो यहाँ नहीं हैं। लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि सेहतुद्दौला यहीं लखनऊ में अपने मकान में मौजूद हैं। वह भी शाही हकीम हैं। अगर हुक्म हो तो जाकर उन्हें ले आऊँ।'

'मैंने कहा—'हाँ जल्दी जाकर उन्हें ही अपने साथ ले आओ।'

'हसनू गाड़ी लेकर गया और हकीम सेहतुद्दौला आ गये। इस बीच में हकीम बन्दा रजा खाँ भी आ गये थे। दोनों हकीमों ने मिलकर हुस्नआरा की बीमारी

की जाँच की । दोनों की एक ही राय करार पाई । —'बीमारी खतरनाक है । बेहोशी से बहुत बड़ा खतरा हैं ।' दोनों हकीमों ने एक राय होकर दवा तजवीज की । पर्चा लिखा । दवाइयाँ आ गईं और तैय्यार करके दवा हुस्नआरा को खिला दी गई । और सुबह, दो पहर और रात में पहले पहर के बाद दवा खिलाने की हिदायत करके हकीम अपने घरों को चले गये ।

'मेरे होश हवास ठिकाने न थे । खाना-पीना हराम था । हर वक्त हुस्नआरा के पलंग पर बैठा उसका मुँह निहारता रहता था । उधर किला मच्छी भवन पर गोले बरस रहे थे । धड़ाके सुनाई दे रहे थे । इधर मेरा दिल धड़का जा रहा था । जिस दिन, जिस घड़ी और सायत मच्छी भवन अँग्रेजों से खाली हुआ ठीक उसी वक्त गुलफाम मंजिल भी हुस्नआरा से खाली हो गई । कितनी मनहूस घड़ी थी वह । मैं हुस्नआरा के पलंग पर पायंते की तरफ बैठा था । निगाहें उसके मुर्झाये हुए चेहरे पर जमी थीं । उसने आँखें खोल दीं । धीरे से बोली—'मेरी जान,' 'मेरे प्राण' 'गुलफाम' 'जमालुद्दौला ?'

'उसके आँखें खोल देने से मेरा दिल फूलने लगा । मैंने कहा—'हाँ, प्राण-प्यारी हुस्नआरा कहो, कैसी तबीयत है ?'

'हुस्नआरा जोर लगाकर उठी और मेरे गले से लिपट गई । मैंने उसे बाहों में भर लिया । उसका शरीर अब भी तवा की तरह जल रहा था । उसने अपना सिर मेरी छाती पर टिका लिया और बोली—'मुझे माफ करना'''मैं जा रही हूँ'''मेरी आप की मोहब्बत की इतनी ही जिन्दगी थी ।' मैंने अनुभव किया वह रो रही है । उसके आँसुओं से मेरा सीना भीग रहा था । कहा—'यह क्या कह रही हो हुस्न-आरा ?' और दोनों हाथों से उसका सिर पकड़ कर ऊपर उठाना चाहा ।

'वह उसी हालत में बोली—'कुछ नहीं,' और एक जोर की हिचकी के साथ उसके प्राण-पखेरू उड़ गये । वह तवा सा जलने वाला शरीर एकदम ठंडा हो गया ।'

चौंतीस

'मिरजा जफर हुसेन साहब, बुरे दिन अकेले नहीं आया करते। अपने साथ मुसीबतों की एक भीड़ भी लाते हैं।' जमालुद्दौला ने कहा—'हुस्नआरा के मरते ही सैकड़ों तरह की आफतों ने आकर मुझे घेर लिया। मच्छी भवन खाली हो चुका था। लखनऊ में जितने भी अंग्रेज बचे थे वे बेली गारद में जमा होकर अपनी रक्षा की तदबीरें कर रहे थे।

'लखनऊ शहर में विद्रोहियों की धूम थी। मेरठ, दिल्ली और चारों तरफ से विरोधी सिपाही लखनऊ में आकर जमा हो रहे थे। दिन रात तांता लगा रहता था। नक्कारा शाह भी अपने साथ तिलंगों की एक बहुत बड़ी संख्या लेकर फैजाबाद से लखनऊ में आकर जम गये थे। तारा कोठी में डेरा डाला था।'

'ये नक्कारा शाह कौन थे?' मिरजा जफर हुसेन ने कहा—'ये नाम तो मैं आज ही आप की जवान से सुन रहा हूँ।'

'अहमदुल्ला शाह नामी एक मदरासी फकीर थे। पहले मद्रास की तरफ से आकर लखनऊ की घसियारी मंडी में रहा करते थे। फिर फैंजाबाद चले गये थे। अंग्रेजों के पक्के विरोधी थे। उनके आगे नक्कारा पिटता हुआ चला करता था इस लिए नक्कारा शाह कहे जाते थे।

'अब एक तरह से लखनऊ शहर से अंग्रेजी हुकूमत उठ गई थी। उनके दुश्मन विरोधी सिपाहियों का कब्जा था। उन सब ने धूम मचा रखी थी। कोई किसी की नहीं सुनता था। और सच तो यह था कि सुने कौन? उनका कोई एक मुखिया तो था नहीं। हर एक सिपाही अपने दिल का मुखिया और बादशाह था। जो जिसके दिल में आता था कर बैठता था। कौन रोकने वाला था। उनके हाथों में हर वक्त नंगी तलवारें चमकती रहती थीं।

'लखनऊ में लूट शुरू हो गई। हर मोहल्ले, हर कूचे और गली में लूट का बाजार गरम हो गया था। एक भी रईस, अमीर, नवाब और शाही खानदान का कोई घर लूट से सुरक्षित न था। घर-घर में लूट-खसोट ही दिखाई देती थी। उसी लूट की आँधी में मेरी गुलफाम मंजिल भी लुट गई। नजर में आने वाला जितना जो कुछ माल असवाब था सब लुट गया। मैं अपनी आँखों से देखता था, लेकिन साँस नहीं ले सकता था।...'

मिरजा जफर हुसेन बीच में बोल उठे—'जमालुद्दौला साहब, आप ने अभी फरमाया कि गुलफाम मंजिल में ऊपर नजर आने वाला जो असवाब क्या वह सब लुट

गया। इसके मतलब यह समझ में आते हैं कि आप का खास माल और दौलत कहीं दूसरी जमीन के नीचे दफन थीं !'

जमालुद्दौला मुस्कराए। फिर इतमीनान के साथ बोले—'मिरजा साहब, खुदा बहुत बड़ा रक्षक और मुहाफिज है। मेरे बाप-दादों की वह पुश्तैनी और असंख्य दौलत जिसकी बदौलत मैं आज भी ऐश-आराम के साथ रह कर बे-फिक्री की जिन्दगी बिता रहा हूँ वह सब लूट से बच गई थी। और उसके लिए मैं बाकर अली को धन्यवाद देता हूँ। उसका शुक्रगुजार हूँ। फिर जरा रुक कर कहा –'बाकर अली मेमार जिसने गुलफाम मंजिल का नकशा तैय्यार करके इमारत खड़ी कराई थी, बहुत होशियार और समझदार आदमी था। इस इमारत में जो बीच का कमरा है और जिसमें हुस्नआरा रहा करती थी, बाकर अली ने उसके नीचे एक छिपा हुआ तहखाना बनाया था। उस तहखाने का रास्ता भी उसने बड़ा पेंचदार रखा था। उस कमरे की ऊपरी चारों तरफ की दीबारें दो-दो गज मोटी-चौड़ी हैं। लेकिन देखने से उनकी मुटाई-चौड़ाई का कोई पता नहीं चलता। दीवारों में तीन तरफ तीन आलमारियाँ और एक तरफ दरवाजा है। एक दीवार की जो आलमारी है उसके भीतर एक तरफ पत्थर का एक पटिया लगा हुआ है। उसमें ऊपर की तरफ एक सूराख है। लोहे की एक मोटी कील उस छेद में डाल कर घुमाने-फिराने से वह पत्थर का पटिया बराबर नीचे गिरता उठता है। और वही तहखाने का दरवाजा है। जीना लगा हुआ है। कहने का मतलब यह कि मेरी सारी दौलत उसी तहखाने में सुरक्षित थी।'

मिरजा ने फिर पूछा—'आपने एक जिक्र में बताया था कि वह अमूल्य नगदार छल्ला जो सब्जपरी ने गुलफाम को पहनाया था और आपके कब्जे में था, गुलफाम मंजिल की लूट में लुट गया था। क्या वह छल्ला तहखाने में महफूज न था ?'

'वह छल्ला हुस्नआरा अपनी उँगली में पहने रहती थी। उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका सारा जेवर और वह छल्ला मैंने कमरे की एक अलमारी में रख दिया था। लूट के उस वक्त किसको खबर थी।' जमालुद्दौला ने संतोष भरे लहजे से कहा—'मिरजा साहब, जो कुछ किस्मत से उतर गया उसका अब क्या जिक्र।' फिर जरा रुक कर कहा—'एक तरह से अच्छा ही हुआ कि हुस्नआरा का सारा जेवर और वह छल्ला लुट गया। अगर मौजूद रहता तो उसकी याद हर वक्त मुझे रुलाया करती।'

'अच्छा, आगे लखनऊ में क्या हुआ ?' मिरजा ने कहा—'लोग कहते हैं कि यहाँ बिरजिसी सरकार कायम हो गई थी ?'

'जी हाँ,' जमालुद्दौला ने कहा—'अब विरोधी फौजों के सामने अंग्रेजों को बेली गारद से निकाल बाहर करने का सवाल था। मगर यह काम कुछ आसान नहीं था, क्योंकि बेली गारद के अन्दर गोरे पलटनें भी मौजूद थीं। उनसे लड़ाई लेकर और जीत कर ही बेली गारद खाली कराया जा सकता था। लड़ाई लड़ने के लिए किसी

एक का हुक्म होना चाहिए। इसलिए फौजों के सूबेदारों ने मिलकर वाजिद अली शाह के एक कमउम्र दस-ग्यारह साल के शहज़ादे को लखनऊ के तख्त पर बैठाकर शाहजादे की माँ नवाब हजरत महल के हाथों में अवध की हुकूमत सौंप दी थी। उन्हीं की सरकार बिरजिसी सरकार थी। क्योंकि शाहज़ादे का नाम मिरजा बिरजिस कदर था।'

'सुना है कि नवाब हज़रत महल ने बड़ी हिम्मत के साथ अंग्रेजों का मुकाबला किया था?' मिरजा ने कहा—'क्या अपनी पहली जिन्दगी में बेगम हज़रत महल भी कोई बाजारी रंडी थीं?'

'नवाब हजरत महल बाजारी रंडी नहीं थीं। एक घर की खानगी औरत थीं। और किसी तरह अपने घर से निकल कर जाने-आलम के परीखाने में आ बैठी थीं। बाद में नवाब हजरत महल बन गई थीं।'

'तब उन्होंने बिरजिसी रियासत की बागडोर अपने हाथों में लेना खुशी के साथ मंजूर कर लिया होगा?'

'मिरजा साहब, गुलफाम मंजिल हर तरह से वीरान हो चुकी थी। उसकी खास रौनक तो हुस्नआरा अपने साथ ले गई थी। बाकी जो कमरों की सजावट और दूसरी किसिम का साज-बाज असबाब-सामान था वह लूटने वाले लूट ले गये थे। सिर्फ इमारत की शकल बच रही थी। इसलिए मेरा दिल नहीं लगता था। सूनी इमारत काटने को दौड़ती थी। अत: इन दिनों एक तरह से मैं फिर से आवारा हो गया था। कभी गाड़ी में सवार होकर और कभी पैदल चलकर सरफराज, सुलतान और राहत के यहाँ पहुँच जाता था क्यों कि यही तीनों तो मेरे पुराने मिलने वाले और यार थे। इनमें भी उस वक्त मेरी बैठक सुलतान अली खाँ के यहाँ ज्यादा रहती थी। इसकी भी एक वजह थी। नवाब हजरत महल के खास सलाहकार, कारपरदाज या जो कुछ भी समझ लीजिए उनकी ड्योढ़ी के दरोगा मम्मू खाँ थे। वह सुलतान अली खाँ के सगे तो नहीं मगर कुछ दूर के चचा होते थे। अकसर उनके यहाँ आ जाया करते थे और बिरजिसी सरकार की कैफियत सुनाया करते थे। रियासत की बागडोर हाथ में लेने के बारे में मम्मू खाँ ने बताया था—मिरजा बिरजिस कदर को जब फौजी सूबेदारों ने लखनऊ के तख्त पर बैठाने के लिए चुन लिया और हजरत महल के हाथों में सरकार की लगाम देकर अंग्रेजों से लड़ाई लड़नी चाही उस वक्त बेगम ने कहा था—'मम्मू खां? अगर खुदा को मंजूर है, वह बिना माँगे सल्तनत हमारे हाथों में दे रहा है, तो क्या इनकार है। मगर डर से हृदय काँपता है। क्या कैसा नतीजा सामने आए, यह सोच कर जरा पशो-पेश हो रहा है। लेकिन इस वक्त इनकार करना भी ठीक नहीं मालूम होता। जब खुदा मेहरबान है तो कोई डर नहीं है। हर हालत में वह हमारी मदद करेगा। मिलता हुआ तख्त-व-ताज को ठुकरा देना, खुदावन्द करीम की बखशीशों से मुँह मोड़ने के मानी रखता है।' फिर हजरत बेगम ने आगे कहा—'मगर यह भी एक जरूरी बात है। उन सभी सूबेदारों और

सिपाहियों से भी कौल-कसम ले लेना चाहिए कि हम खिदमत से कभी बाहर न होंगे। उसमें किसी तरह की कमी न आने देंगे। वक्त पर किसी तरह का कोई बहाना न करेंगे। कभी हमारा बुरा चाहने वाले न बनेंगे। जिन्दगी भर साथ देंगे। लड़ाई से मुँह मोड़ कर और हमें अकेला छोड़ कर भाग न जांयगे। किन्हीं गैरों के कहने-सुनने में न आएँगे। अगर रोटी का एक टुकड़ा मिलेगा, तो उसे खुशी के साथ बाँट कर खाएँगे।'

'इन बातों से तो मालूम होता है कि बेगम बहुत अकलमन्द और होशियार थीं।' मिरजा शैदा ने कहा।

'मिरजा शैदा साहब ? वकाई कहा जा सकता है कि नवाब हजरत महल बहुत सचेत और हुकूमत को संभालने वाली थीं। हिन्दुस्तान के इतिहास में मैंने हुकूमत करने वाली दो औरतों के नाम पढ़े हैं। एक रजिया सुलताना और दूसरी चाँद बीबी। लेकिन हजरत महल की दिन चर्चा को देख-सुन कर कहना पड़ता है कि वह उन दोनों से किसी हालत में कम न थीं। उनकी सरकार बन जाने पर मम्मू खां के साथ, मैं भी कई बार उनके दरबार में पहुँचा था। यों नवाब हजरत महल भी मुझे अच्छी तरह जानती-पहचानती थीं। क्योंकि नवाब माशूक महल ने जब मेरी शादी अपनी कोठी कैसर पसंद में रचाई थी। दूसरी बेगमों के साथ हजरत महल भी उस उत्सव में शामिल थीं। बल्कि दुलहा बनने पर मेरी आँखों में सुरमे की रेख बेगम हजरत महल ने अपने हाथों से खींची थी। कहने का मतलब यह है कि हजरत महल हर सूरत में मुल्के अवध पर हुकूमत करने लायक थीं। उस वक्त उन्हें सल्तनत की ही फिक्र हर समय बनी रहती थी। हर वक्त सजग और सचेत नजर आती थीं। वह औरत जरुर थीं लेकिन हिम्मत जवांमर्द थीं। हर एक का दुख दर्द देख सुन कर अपनी हुकूमत को आगे बढ़ातीं थीं। सवेरे चाँदीवाली कोठो में पहुँच कर कुर्सी नशीन हो जाती थीं। वहाँ वजीर और दूसरे कामकाजी पहले से आकर मौजूद रहते थे। इज्जत के साथ सिर झुका कर हर किस्सा का हाल बेगम को सुनाते थे। सुनकर बेगम पूरे इन्तजाम रख कर अंग्रेजों पर फतह पाने की ताकीद करती थीं। कभी अपनी फौज के खास अफसर से कहतीं—'देखो, लड़ाई में किसी तरह की कोताही न होने पाये। कोई भी सिपाही अपना कर्तव्य भूल कर ऐश आराम में न पड़ जाय।' कभी वजीरे आजम नवाब शरफुद्दौला मोहम्मद इब्राहीम खाँ से कहतीं—'मुल्क की आमदनी पूरी-पूरी नहीं आ रही। अगर खज़ाना खाली रहेगा तो सिपाहीयों को तनखाहें कहाँ से दी जायँगी। लड़ाई किस तरह जारी रहेगी। भूखे पेट कौन सिपाही अंग्रेजों से लड़ने जायेगा।' बेगम को फौजी सिपाहियों का बहुत ख्याल रहता था। इनाम-इकराम, कपड़े और मिठाइयाँ अकसर उनको भिजवाती रहती थीं। और मोरचों की पूरी-पूरी खबर रखती थी।'

'जमालुद्दौला साहब ?' मिरजा शैदा ने कहा—'कुछ आप को याद है विरजिस क़दर की तख्तनशीनी और बेगम हजरत महल की सरकार कब बनी थी ?'

'वह दिन और वह तरीखें कैसे भूल सकती हैं ।' जमालुद्दौला ने कहा—'सत्ताईस जून अठारह सौ सत्तावन को हुस्नआरा ने इस दुनिया को छोड़ा था और इसके एक हफ्ते बाद पाँच जुलाई को बिरजिस कदर तख्त-नशीन हुए थे । बेगम हजरत महल की हुकूमत चालू हुई थी ।'

'उस वक्त नवाब शरफुद्दौला वजीरे आजम बने थे ।'

'जी हाँ, पहले मुनव्वरुद्दौल और मिफताहुद्दौला के नाम लिए गये थे । मगर उन दोनों साहिबों ने मंजूर न किया । आखिर में शरफुद्दौला वजीरे आजम बनाये गये थे ।'

'आप की याददश्त जबरदस्त है,' मिरजा ने मुस्करा कर कहा—'कल ही मैंने लखनऊ के एक मजमून में बिरजिस कदर की तख्तनशीनी की यही तारीख पढ़ी थी ।'

'तब यों कहिए कि आप मेरी यादों की परीक्षा ले रहे थे ।' जमालुद्दौला ने मुस्करा कर कहा—'अगर हर एक बात जेहन से उतर गई होती । घटनाएँ भूल गई होतो, उस हालत में आप को मैं अपनी लम्बी कहानी किस तरह सुनाता ।'

'अच्छा, आगे कहिए । लखनऊ की वह नई सरकार खतम करके अंग्रेजों ने फिर किस तरह अपना कदम जमा लिया था । ?'

'वह तो एक बहुन बड़ी बकवास है । मेरी जिन्दगी की दस्तान से उसका कोई संबंध भी नहीं है । फिर भी आप की तसल्ली के लिए सिलसिला जोड़ कर अपनी बात पूरी करता हूँ ।' जमालुद्दौला ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'फौजी सिपाहियों ने नई सरकार की आड़ लेकर बेली गारद से अंग्रेजों को निकालने के लिए मोरचे बाँधे । दोनों तरफ से खूब तोपे चलीं, खूब गोले बरसे । नक्काराशाह ने भी शामिल होकर अपना काफी जोर लगाया और एक दिन वेली गारद खाली भी हो गया । खुशियाँ फट पड़ीं । अंग्रेज वहाँ से हट कर आलमबाग में जा जमे । नवाब हजरत महल और जाने-आलम की करीब-करीब सभी बेगमें कैसरबाग में नवाब हजरत महल की सुरक्षा में रह रही थीं । लखनऊ शहर में अब भी अंधेर मचा हुआ था । आज उसका घर लुटा । कल वह गिरफ्तार हुआ । परसों उसके गोली लगी । चारों तरफ से यही खबरें आकर कानों में घुस रही थीं । हजरत बेगम चाहती थीं कि उनकी सरकार बदनाम न हो । लखनाऊ में पूरा अमन-चैन रहे । मगर फौजी विद्रोही सिपाही किसी की नहीं सुनते थे । अपनी मनमानी करते थे । मिरजा शैदा साहब आप तो शायर हैं । आपने किसी का यह शेर जरूर सुना होगा:—

लाख तदबीर करे कोई तो क्या होता है,
वही होता है जो मंजूरे-खुदा होता है ।

'अंग्रेज आलमबाग में जमे हुए थे । विरोधी दुश्मन फौजें तथा बेगम की नई सरकार उन्हें आलमबाग से भी भगाने की कोशिश कर रही थीं । बराबर हमले हो रहे थे । तभी कानपुर से अंग्रेजी पलटनें उनकी मदद के लिए आलमबाग में आ पहुँची

उनके अलावा नैपाल के राणा जंगबहादुर भी अंग्रेजों की साहयता के लिए नैपाली गोरखों की भीड़ साथ लिए उनसे आ मिले। अब क्या था। इधर का पाया कमजोर हो गया। उलटे अंग्रेजों के आक्रमण लखनऊ पर होने लगे। और एक कैसरबाग पर दुश्मनों ने इस जोर-शोर की चढ़ाई की, तोपों ने वह गोले बरसाए की बेगम हजरत महल को वहाँ से भागना पड़ गया। उनके साथ दूसरी बेगमें भी भागीं। उस भगदड़ का वयान करना बहुत मुश्किल है। बेचारी शाही बेगमें होश-हवास खोकर लखनऊ की गलियों में भागती और छिपती फिरती थीं। उन्हें अपने सिर के दुपट्टों और पैरों की जूतियों तक की खबर न थी। हजरत महल बिरजिस कदर और कुछ खास साथी सलाहकार विद्रोही फौजी सिपाहियों की रक्षा में लखनऊ से बून्दी की तरफ रवाना हो गईं।

'कैसर बाग फतह हो चुका था। सड़कों पर खून की नदियाँ बह रही थीं। हर गली कूचे में बन्दूकें संभाले गोरे फैल रहे थे। जो नजर आ जाता था, थोड़ी सी पूछ-ताछ के बाद गोली मार देते थे।

'अब लखनऊ के लोगों को इज्जत आबरू, घर द्वार और धन दौलत की कोई फिक्र न थी। फिक्र थी लखनऊ से बाहर निकल कर जहाँ सींग समाये वहाँ जाने की। कोई किसी का साथी न था। अपनी जान लेकर भाग रहा था। इस भगदड़ को मैंने भी गनीमत समझ कर गुलफाम मंजिल हसनू को सौंप कर एक राह पकड़ ली, कहाँ जाना है, अभी इसकी कोई खबर नहीं थी। अभी तो सिर्फ़ लखनऊ से बाहर निकलने की पड़ी थी। छिपता छिपता, कदम बढ़ाता एक सड़क पर आया। जाने किस गली से चार पाँच गोरे सिपाही बन्दूकें ताने मेरे पास आ गये। रोक कर पूछने लगे-'कौन हो? कहाँ जा रहे हो?' मेरी जान होठों पर आ गई। समझ लिया कि गोली सीने के पार होने वाली है। कोई जवाब मुँह से नहीं निकल रहा था। घिग्घी सी बँध रही थी।

'एक दूसरा गोरा बोला—'मार दो गोली ठण्डा हो जाय।'

'सामने के गोरे ने बन्दूक सीधी की। तभी मेजर कारनेगी साहब घोड़े पर सवार वहाँ आ गये। वह गोरा गोली दागने से रुक गया। कारनेगी ने मुझे पहचान लिया। बोले—'गुलफाम अली खाँ, तुम इस वक्त यहाँ कहाँ आ से गये? यह वक्त तो बहुत बड़े खतरे का है। खैर, जल्दी करो कहाँ जाना चाहते हो?'

'मैंने धीरे से और बड़ी नम्रता के साथ कहा–'मेरी जान बचाकर मुझे लखनऊ के नाके से बाहर कर दीजिए।'

'कारनेगी के साथ दो गोरे घोड़ों पर सवार खड़े थे। उन्होंने उनकी तरफ देख कर कहा—'यह आदमी हमारी पहचान का है। इसे अपने साथ ले जाकर लखनऊ के खतरे से दूर नाके के बाहर छोड़ आओ और मैं उन दो घुड़सवार गोरों की रक्षा में नाके के बाहर आ गया। वह दोनों सवार वापस लखनऊ चले गये। मैंने एक रास्ता अपना लिया। मुझे कुछ भी खबर न थी कि वह रास्ता किधर को जा रहाहै।

'मिरजा शैदा साहब, मुझे लखनऊ के पड़ोस के कसबों, गावों का नाम तक नहीं मालूम था। वह कुछ ऐसी मुसीबत का वक्त था कि दिशाएँ तक भूली हुई थीं। पीछे फिर कर देखने की हिम्मत न थी। लम्बे-लम्बे कदम रखता आगे बढ़ा चला जा रहा था...'

'ठहर जाइए। मुझे एक बात पूछ लेने दीजिए।' मिरजा ने कहा।

'पूछिए ?' जमालुद्दौला ने रुक कर कहा।

'आप की जेबें और अंटी खाली थीं या उनमें कुछ मौजूद था ?'

'गुलफाम मंजिल से निकलते वक्त जो कुछ मैं आसानी के साथ छिपा कर ले चल सकता था ले लिया था। क्योंकि भगदड़ का क्या ठिकाना था। कब ख़तम हो और कैसा वक्त कहाँ पर आ जाए। इसलिए वक्त जरूरत के लिए कुछ तो अपनी गाँठ में होना जरूरी था। कोई कोस डेढ़-कोस चला होगा कि आगे जाते हुए लखनऊ के कुछ भगोड़े नजर आए। कदम बढ़ा कर उनसे जा मिला। एक से पूछा—'कहाँ जाओगे ?' पहले तो उसने बेतुका सा जवाब दिया—'जहाँ खुदा ले जायगा वहाँ जायेंगे ? कौन सा ठिकाना बताएँ। जान के लाले पड़े हैं। जहाँ जान बच सकेगी वहीं जायेंगे।' फिर जरा रुक कर कहा, 'आगे रसूलाबाद है। अभी तो वहीं रहेंगे। फिर देखा जायगा।'

'मैं चुपचाप उनके साथ चल पड़ा। शाम के वक्त रसूलाबाद पहुँचे। वह सब साथी तो अपनी-अपनी राह चले गये। मुझे बड़े जोर की प्यास लग रही थी। सामने एक बड़ी गढ़ी दिखाई दे रही थी। बाहरी दालान में चारपाई पर बैठे एक अधेड़ उम्र के साहब हुक्का पी रहे थे। सर घुटा, डाढ़ी बढ़ी हुई थी। चेहरे पर कुछ भलमंसाहत सी झलक रही थी। पास पहुँच कर मैंने सलाम किया। उन्होंने सवाल का जवाब देकर मुझे चारपाई पर बैठाया। पूछा—'आप कहाँ से आ रहे हैं ?' मैंने कहा—'लखनऊ से।' वह धीरे से बोले—'उफ लखनऊ पर तो खुदा का गजब फट पड़ा है। सब कुछ मिट गया। लोगों की इज्जत आबरू का क्या जिक्र, जान बचाना मुश्किल हो रहा है।'

'मैंने पानी पीने की ख्वाहिश जाहिर की। उन्होंने अन्दर के दरवाजे की तरफ गर्दन मोड़ कर आवाज दी—'ऐ पीने का पानी लाना।'

'दो क्षण बाद दरवाजे पर पड़ा हुआ टाट का पर्दा हटा कर एक औरत पानी लेकर बाहर आई। मुझे प्यास सता रही थी। लपक कर उसके हाथ से गिलास लेकर प्यास बुझाई। उस औरत ने मुझे पहचान कर कहा—'ऐ, जमालुद्दौला साहब ! आप यहाँ कहाँ ?'

'मैंने नजर उठा कर उस औरत की तरफ देखा और शीघ्र ही पहचान लिया। वह नवाब शैदा बेगम की वही महरी थी जो कभी उनके साथ गुलफ़ाम मंजिल में आई थी। मैंने कुछ हैरत के साथ उससे पूछा—'तुम यहाँ कब आईं ?'

'कल ही तो आए हैं ?'

'और बेगम साहब कहाँ हैं ?'

'अन्दर हैं ?' और वह उत्सुकता से अन्दर चली गई।

उसके जाने के बाद उन घुटे सर वाले महाशय से बातें शुरु हुईं। उन्होंने पूछा, 'क्या आप नवाब शैदा बेगम साहिबा को जानते हैं ?'

'बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ ?'

'मेरा नाम आबिद अली है। नवाब शैदा बेगम मेरी भाँजी होती हैं। कल लखनऊ से भाग कर यहाँ आकर ठहरी हैं। लखनऊ में तो आग बरस रही है। नवाब हजरत महल की सरकार खतम हो गई। लोगों की जानों की खैर उठ गई। सुना है जनाब आलिया विरजिस कदर को लेकर लखनऊ से किसी तरफ चली गई हैं। अब वहाँ कोई किसी को पूछने वाला नहीं है।'

तभी वहाँ किसी तरफ से एक साहब और आ गये और आते ही बोले, 'आबिद अली शाह ? आप ने सुना ?'

'क्या ?' उन्होंने कहा।

'नवाब हजरत महल साहिबा बलवाई फौजों को साथ लेकर बूँदी पहुँच गईं। और लखनऊ में वजीरे आजम नवाब शरफुद्दौला साहब तलवारों के घाट उतार दिए गये।'

'खुदा जाने अभी क्या हो ?' आबिद अली ने कहा।

'इसके बाद आबिद अली अन्दर चले गये और वह दूसरे साहब भी किसी तरफ चले गये। मैं अकेला चारपाई पर बैठा सोच रहा था—अब किधर जाऊँ ? कहाँ ठिकाना मिल सकता है ?' तभी आबिद अली साहब बाहर आए और मुझसे बोले—'जमालुद्दौला साहब ? आप आराम के साथ यहाँ ठहरिए। फिलहाल यहाँ कोई खतरा नहीं है। नवाब शैदा बेगम आप से मिलेंगी। वह आप को खूब जानती-पहचानती हैं।' और उन्होंने मुझे अपने साथ ले जा कर एक कमरे में ठहरा दिया। मैंने देखा, गढ़ी बहुत लम्बी चौड़ी थी। तीन बड़े-बड़े सहनों की परली तरफ जनानखाना था। हर सहन में मर्दाना बैठक थी। जिसमें फर्श, पलंग वगैरह सब कुछ मौजूद था। मैं दिन भर का थका था, पलंग पर लेट गया और न जाने कब नींद आ गयी।'

पैंतीस

'नवाब शैदा बेगम साहिबा से मुलाकात हुई। वह तो बहुत खुश मिजाज थीं। बात-बात में हंस पड़ती थीं। सामना होते ही हँस पड़ीं। बोलीं, 'वाह जमा-लुद्दौला, खूब मिले। न यह भाग-दौड़ होती और न आप मिलते ? खैर, खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगे दोवाने दो।' फिर जरा गम्भीर होकर कहा—'हमने हुस्नआरा के इन्तकाल की खबर कैसरबाग में सुनी थी, क्योंकि नवाब हजरत महल की सरकार बन जाने पर करीब-करीब जाने-आलम के जनानखाने की सभी बेगमें जो लखनऊ में मौजूद थीं, कैसरबाग में आकर बिरजिसी सरकार की सुरक्षा में रहने लगी थीं। हम तुम्हारी गुलफाम मंजिल में मातमपुर्सी के लिए आने को सोच रहे थे कि हुकूमत का हाल बिगड़ गया और उसके साथ काली आँधी भी आ गई। कैसरबाग से हम लोगों को अपनी-अपनी जानें लेकर भागना पड़ गया।'

'क्या कयामत थी !' मैंने धीरे से कहा।

'क्यों ?' वह हँस पड़ी। बोली—'हमें तो बड़ा मजा आया। बे-पैसे का तमाशा देखने को मिला।'

'आप इस मुसीबत को तमाशा कह रही हैं ?'

'और क्या कहें ?' उन्होंने हँसकर कहा—'जिस वक्त जनाब आलिया नवाब हजरत महल के साथ हम सब बेगमात कैसरबाग के कोठों पर से उतर कर घसियारी मंडी के फाटक से निकल कर बाहर हुईं, अजीब तमाशा था। सब की आँखों में आंसू भरे थे। साथ की नौकरानियाँ, महरियाँ, तो धाड़ें मार-मार कर रो रही थीं। बहुत सी बेगमें गलियों में गिरती पड़ती, ठोकरें खाती और कदम कदम पर उलझती हुई खुदा को याद कर रही थीं।'

'क्या आप उनमें नहीं थीं ?' मैंने पूछा।

'थीं क्यों नहीं ? लेकिन हमें मजा आ रहा था। मुसीबत कुछ आँसू बहाने और रोने-चिल्लाने से दूर थोड़े हो जाती है, उसे तो हँस-हँस कर ही दूर भगाना चाहिए। खैर टीला शाह पीर जलील से गुजर कर पुल मोलवीगंज पर पहुँचीं। वहाँ से जनाब आलिया और विरजिस कदर तो पनिस पर बैठकर जगन्नाथ उर्फ गुलाम रजा खाँ के घर की तरफ बढ़ गईं, बाकी सभी दूसरी बेगमें उस जगह से तितर-बितर हो गईं। और हमने रसूलाबाद की राह ली। यहाँ आकर जम गये।'

'क्या वह रसूलाबाद सुरक्षित जगह है ?' मैंने पूछा।

'नहीं,' बेगम कहा—'रसूलाबाद किस सूरत में महफ़ूज कहा जा सकता है ? यहाँ के जमींदार चौधरी मंसब अली बिरजिसी सरकार की तरफ से बेली गारद पर धावे कर रहे थे। तोपों के गोलों से अंग्रेजों को भून रहे थे अब और भी बेगम हजरत महल के साथ लगे चले गये हैं। ऐसी हालत में अंग्रेज उनके इलाके को किस तरह् अछूता छोड़ सकते हैं ? रसूलाबाद को उसी वक्त तक महफ़ूज समझना चाहिए, जब तक फिरंगी लखनऊ की सफाई में उलझे हुए हैं। वहाँ से निपट कर वह किसी न किसी दिन जरूर इसकी भी खबर लेंगे। और यहाँ खून खराबी होकर रहेगी ?'

'तब ?' मैंने धीरे से भयभीत स्वर से कहा।

'हम यहाँ से सफीपुर जाने को सोच रहे हैं। वहाँ हमारे एक मामूजाद भाई हैं। गाँव के जमींदार हैं। उन्हीं के यहाँ चलकर रहेंगी। हमने उनको खबर भेजी है। जिस दिन वहाँ से सवारियाँ आ गईं, उसी दिन चल पड़ेंगी। तुम भी हमारे साथ चलकर वहीं रहना।'

'मैं अब आपका सहारा छोड़कर और कहाँ जाऊँगा ?' मैंने कहा—'खुदा का शुक्र है कि मुझे आप मिल गई हैं।'

'दिन गुजरने लग गये। अगरचे मुझे वहाँ किसी तरह की तकलीफ नहीं थी। खाने-पीने, रहने सभी बातों का आराम था। दिन में दो-एक बार बेगम की महरी आकर खैर-खबर पूछ जाया करती थी। फिर भी तबीयत में ढाढ़स नहीं थी। जाने कैसे-कैसे ख्याल पैदा होते और दिल बैठने लग जाता।'

'सुबह के वक्त हवेली के मालिक आबिद अली बाहर की दालान में चारपाई पर बैठे रहते थे। मैं भी अन्दर से आकर उनकी चारपाई पर बैठ जाता था। गाँव के भी दो-चार आदमी आ जाया करते थे। बातें और चर्चाएँ चलने लगती थीं। चर्चाओं का विषय वही विरजिसी सरकार, अंग्रेजों से लड़ाई और जीत-हार थी। खबरों का तार बँध जाता था। लोग कहते—'फाल बिगड़ गया।···किसमतें पलट गईं। अंग्रेजों ने कैसरबाग को जीत कर वह धमा-चौकड़ी मचाई कि त्राहि-त्राहि मच गई। सड़कों पर खून की धाराएँ वह गईं। बेमौत लोग मारे गये। आँखों देखी बातें हैं—गोरे बिलकुल मौत की सूरत बन रहे थे। जिस किसी पर नजर पड़ती, गोली दाग देते थे। मर्द-औरत किसी को नहीं छोड़ रहे थे। शाहगंज में गोरों की धमा-चौकड़ी मची हुई थी। कुछ पर्देवाली और कुछ बेपर्दे वाली औरतें भीड़ की शकल में डरी-सहमी घरों से निकल कर भागी थीं। छिपने-बचने की जहग ढूँढती हुई एक गली से खुली जगह् पर आईं। गोरों ने बन्दूकें तानी। अब उन बेचारी आफत की मारी औरतों को गोरों के निशानों से बचने के लिए कोई उपाय नज़र न आया। सामने कुआँ था। सब दौड़ कर कुएँ में कूद गईं। तभी वहाँ नैपाल के राणा जंगबहादुर और उनके गोरखे आ गये। कुएँ से उन औरतों को निकलवाया। आधी से ज्यादा मर गई थी। बाकी बेहोश अधमरी निकलीं। सारा लखनऊ वीरान-सुनसान नजर आ रहा था। देसी फौजों के सिपाहियों ने लखनऊ में रहने वालों के घर लूटे थे। अंग्रेजों ने शाही महलों

को लूट कर झाड़ू लगादी। लखनऊ को पूरी तरह से तवाह करके अब फिरंगी बाहर के जमीदारों इलाकेदारों से बदला चुकाने के लिए कमर कस रहे है।·········बेगम हजरत महल बहराइच के निकट बूँदी में जा बैठी हैं। वहाँ भी उनका वही हाल है। अंग्रेजों से लड़ने के लिए वही तेवर, वही हिम्मत और वही मर्दानगी मौजूद है। फिरंगियों की दुश्मन देसी फौजें उनके साथ हैं। लखनऊ के भागे हुए लोग भी बूँदी पहुँच गये हैं। बड़ी चहल-पहल है। इस समय बूँदी का बाजार लखनऊ की चौक नजर आ रहा है। इस सब के अलावा यह भी एक गरम खबर है कि अवध के दूसरे जमींदार तालुकेदार राणा बेनीमाधव वगैरह भी अपनी ताकतों के साथ बेगम की सहायता के लिए बूँदी पहुँच गये हैं। अब तो या अंग्रेज नहीं है या बेगम हजरत महल ही नहीं हैं।'

'ऐसी खबरों को सुनकर मेरा दिल धक-धक करने लग जाता। बाहर से उठकर अन्दर कमरे में आ जाता और पलंग पर लेटकर खुदा को याद करने लग जाता था। इसी तरह से सुबह से शाम और शाम से सबेरा हो रहा था। कभी नवाब शैदा बेगम से भेंट होती, तो वह हर तरह से समझातीं और हँस कर मेरा मजाक भी उड़ातीं। उनके चेहरे पर इस मुसीबत का कोई असर नजर नहीं आ रहा था। उनकी जिन्दादिली, खिलखिलाहट और ठहाके उसी तरह मौजूद थे।

'ऐसे ही दिनों में एक सुबह मैं और शैदा बेगम बातें कर रहे थे। बेगम की जिन्दादिली चल रही थी। तभी आबिद अली ने बाहर से आकर खबर सुनाई कि अंग्रेजी गोरी पलटन लखनऊ से रसूलाबाद की तरफ आ रही है। शायद अब यहाँ खैर नहीं है। रसूलाबाद की गलियों में खून बह कर रहेगा। गोरे खून के प्यासे हैं। और वह पुन: बाहर चले गये।

'यह मनहूस खबर सुनकर मुझे काठ सा मार गया था। मुँह की बात मुँह में रह गयी थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लग गई थीं।

'मेरी हालत देखकर शैदा बेगम हँस पड़ी। फिर बोली—'जमालुद्दौला? तुम बहुत कमजोर दिल के हो। जरा सी बात सुन कर फौरन घबड़ा जाते हो। मुसीबत का थोड़ा भी मजा लेना नहीं जानते। हमने लखनऊ की भगदड़ का मजा लिया है। अब रसूलाबाद की खूनखराबी का भी लुत्फ उठायेंगी। खुदा ने ये दो आँखें किसलिए दी हैं। दुनिया का तमाशा देखने के लिए ही तो। जब दुनिया का तमाशा देख कर ये आँखें ऊब जायँगी। खुद-बखुद बन्द हो जायँगी। किस्सा खतम हो जायगा।' और वह खिलखिला कर हँस पड़ीं।

'मैं बेगम की खुशदिली देख कर हैरान था। खामोश बैठा उनका कहना सुन रहा था, तभी बाहर से आबिद अली फिर अन्दर आए और शैदा बेगम से कहा—'लिजिए, खुदा बहुत बड़ा मददगार है। सफीपुर से सवारियाँ और कुछ हथियार बन्द जवान आप को लेने के लिए आ गये हैं। आप उधर जाइए। इधर मैं भी हवेली को खाली करके किसी तरफ जाने की तदबीर करता हूँ।'

'शैदा बेगम मेरी तरफ देख कर मुस्कराते हुए बोलीं—'देखा जमालुद्दौला, दिल को मजबूत बनाए रखने और हँसने-हँसाने से अपने आप मुसीबत टल जाती है। उठो, और हमारे साथ सफीपुर चलो।'

'आई हुई सवारियों में तीन डोलियाँ, कहार और एक घोड़ा था। चलने की तैय्यारी हो गई। एक डोली में शैदा बेगम सवार हुईं और दूसरी डोली में उनकी महरी बैठ गई। मैं घोड़े पर सवार होने वाला था। लेकिन बेगम ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम कमजोर दिल के हो। तुम्हारा घोड़े पर बैठ कर चलना गलत है। तीसरी डोली में बैठ कर और पर्दे गिरा कर चलो।'

'उनके मजाक को पीकर मैं चुपचाप तीसरी डोली में बैठ गया। डोलियाँ कहारों के कंधों पर उठकर पच्चीस-तीस जवानों के घेरे में सफीपुर की राह पर चल पड़ीं।

'सफीपुर में नवाब शैदा बेगम के मामू के लड़के रमजान अली खाँ गाँव के एक रईस थे। उनकी हवेली बहुत बड़ी, तीन चौक वाली एक छोटे से किले की तरह थी। हवेली के बड़े फाटक पर नीम का पुराना, भारी भरकम दरख्त था। जिसकी छाया दूर तक फैली रहती थी। उसी दरख्त की छाया में रमजान अली खाँ चारपाई पर बैठ सवारियों का इन्तजार कर रहे थे। रमजान अली खाँ की उम्र चालीस-पैंतालीस के बीच में थी। जैसे ही डोलियाँ वहाँ पहुँचीं। वह उठकर साथ हो गये। फाटक के पहले चौक में पहुँच कर डोलियाँ कहारों के कँधों से जमीन पर आईं। नवाब शैदा बेगम और महरी अन्दर जनानखाने में चली गईं। पहला चौक पार कर के दूसरे चौक में एक मर्दाना कमरा था। मेरे ठहरने की वहीं व्यवस्था हो गई।

'यों तो चारों तरफ से अंग्रेजी पलटनों के धावों-मारकाट और विजय की खबरें आ रही थीं। हम लोगों के आने के बाद रसूलाबाद और कालोरी वगैरा में खून की नदियाँ बह गई थीं। लेकिन सफीपुर में कोई शोर-गुल न था। रमजान अली खाँ की हवेली में रहते हुए हम लोगों को दस-बारह दिन हो गये थे। एक दिन शाम के वक्त रमजान अली खाँ सवारी में सवार करा कर शैदा बेगम को अपना बाग और खेत वगैरा दिखाने ले गये। वहाँ से लौट कर सबेरे ही शैदा बेगम ने हवेली से चल कर उस बाग में रहने की तैय्यारी कर दी। उन्हें वह एकान्त जगह बहुत पसंद आई थी। और वहाँ समय काटने के लिए हम लोग चल पड़े।

'सफीपुर गाँव से दक्षिण की तरफ कोई आधे कोस के फासले पर वह जगह थी। मैंने जाकर देखा। एक छोटी नदी के किनारे पर आमों के दरख्तों का बहुत बड़ा बाग था। शायद डेढ़-दो सौ पेड़ थे। बाग के बीच में एक छोटा सा बंगला था जिस में दो बरामदे, तीन चार कमरे, बवर्चीखाना और गुसलखाना वगैरा थे। बाग के तीन तरफ हरे-भरे खेत थे। कुछ कच्चे मकान भी इधर-उधर नौकरों-चाकरों के लिए बने हुए थे। बड़ी रमणीक जगह थी। बंगले में रहने की व्यवस्था हो गई। हिफाजत के लिए चालीस पासी और पठान हर वक्त मौजूद रहने लगे। हवेली से चार पाँच

नौकरानियाँ महरियाँ आगई। हर तरह का आराम मिलने लगा। सुबह-शाम रमजान अली खाँ भी कुछ देर के लिए आ जाया करते थे।

'नवाब शैदा बेगम का वक्त ज्यादा तौर पर शायरी में व्यातीत होता था। करीब-करीब रोजाना एक गजल कह लिया करती थीं। कभी-कभी अपनी कोई ताजा कही हुई गजल मुझे सुनाया करती थीं। लखनऊ की तबाही और भगदड़ पर उन्होंने कई गजलें लिखी थीं जिनमें सच्चे वाकये मौजूद थे। इस प्रकार दिन गुजरते चले जा रहे थे।

'एक दिन रमजान अली खाँ ने आकर खबर सुनाई, कहा—'बूंदी में भी जनाबे-आलिया नवाब हजरत बेगम का शीराजा बिखर गया। जनरल क्लाइड बहुत बड़ी गोरी फौज लेकर पहुँचा। जनाब आलिया की मददगार बागी फौजें और राणा-बेनी माधव सिंह वगैरा खूब जी खोल कर लड़े। लेकिन अन्त में पाँव उखड़ गये। नैपाल के जंगलों में जाकर छिपना पड़ा। नवाब हजरत बेगम को अंग्रेजों ने बहुतेरा समझाया, बड़े-बड़े वादे किए। लेकिन वह अपनी आन-शान पर अड़ी रहीं। अंग्रेजों के आगे थोड़ा भी न झुकीं और शाहजादा बिरजिस कदर को साथ लेकर नैपाल चली गईं।

'चलिए किस्सा खतम हो गया।' शैदा बेगम ने कहा।

'इसके मानी यह हुए कि फिर से अंग्रेजों की हुकूमत कायम हो गई।' मैंने कहा।

'रमजान अली खाँ बोले—'इस में शक-शुभा को अब कौन सी गुंजाइश रह गई।'

'यह भी चन्द दिनों का मजाक बेलज्जत ही रहा।' शैदा बेगम ने कहा—'मजा न आया।'

'इस मजाक में किस कदर तबाही, बरबादी और खून-खराबी हुई। इसके सिवा आप और कौन सा मजा चाह रही थीं?' मैंने कहा।

'मजाक बेलज्जत का दूसरा नाम तबाही, बरबादी और खून-खराबी ही है। मजाक बालज्जत कुछ दूसरी ही चीज है।' और वह हँसने लगीं।

'एक महरी जो खाना पकाया करती थी, लखनऊ की रहने वाली थी वहाँ की तबाही अंग्रेजों की खून की प्यास और खून की बहती हुई धाराओं को देखकर सफीपुर भाग आई थी। सफीपुर में उसकी लड़की थी जो रमजान अली खाँ के यहाँ नौकरानियों में शामिल थी। उसकी वजह से वह भी नौकर पर रख ली गई थी। कोई पचास वर्ष उम्र की थी। बातें बड़े मीठे लहजे से किया करती थी। एक दिन मैं और शैदा बेगम बँगले के बाहरी बरामदे में बैठे थे। सुबह का वक्त था। ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही थी। शैदा बेगम ने पीने का पानी तलब किया था। वह महरी गिलास में पानी लेकर आई। बेगम ने पानी पीकर गिलास उसके हाथ में देकर उससे कहा—'तुम लखनऊ से भाग कर सफीपुर आई हो?'

'जी हाँ हुजूर।'

'वहाँ किस मोहल्ले में रहती थीं ?'

'फिरंगी महल में ?'

'लखनऊ से कब भागीं थीं ?'

'जनाब आलिया बेगम हजरत महल साहिबा के लखनऊ से हटने के चौथे दिन। उसी दिन नक्कारा शाह के तिलंगों ने नवाब शरफुद्दौला को टुकड़े-टुकड़े कर डाला था। उस वक्त की लखनऊ की हलचल और बरबादी को बयान नहीं किया जा सकता। वह भगदड़ मची हुई थी कि आज उसकी याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कलेजा काँप उठता है। उस भगदड़ में मैं भी घर से निकल भागी थी।' महरी ने खड़े-खड़े कहा।

'बेगम को मजा आ रहा था। फुर्सत का समय भी था। बोली—'बैठ कर अपने भागने का कुछ किस्सा सुनाओ।'

'ऐ हुजूर मेरे भागने की तो कोई अजीब कहानी नहीं है।' महरी ने वहीं जमीन पर बैठ कर कहा—'लेकिन राह की एक साथिन की कथा जरूर विचित्र सी है।'

'क्या ?' बेगम ने उसकी तरफ रूख किया।

महरी बड़े इतमीनान से बोली—'ऐ, हुजूर ! मैं अपने घर से निकलकर पहले शाह अब्बास की दरगाह में जा छिपी थी। वहाँ और भी बहुत सी पर्दा-नशीन और दूसरे किसिम की औरतें छिपी बैठीं थीं। अब वहाँ भी जान पर आ बनी। खून के प्यासे गोरों के आने का शोर-गुल सुनाई पड़ा। तब सब औरतें गिरती-पड़ती इधर-उधर भागने लगीं। मैं भी अपनी जान लेकर लखनऊ से बाहर निकल आई। यहीं सफीपुर आने का इरादा था। कोई दो कोस चलने पर गोरी-गोरी एक जवान औरत भी अपने घर से निकल कर किसी तरफ भागी चली जा रही थी। मेरा उसका साथ हो गया।' अपनी-अपनी मुसीबत कहने में रास्ता कटने लगा। मगर जिस कदर मैं डरी और घबराई हुई थी। वह औरत उस हालत में न थी। मैं रोकर बात करती और वह हँसकर जवाब देती थी।'

'शैदा बेगम ने बीच में कहा—'ऐसा तो होना ही चाहिये था। रोने और आँसू बहाने से क्या होता है।'

'ऐ, हुजूर, मैं और वह चले ही जा रहे थे कि जाने किधर से दो गोरे बंदूकें लिए आते दिखाई पड़े। मैं एकदम सहम गई और राह छोड़ कर झाड़ झंखाड़ों को चीरती एक गड्ढे में जाकर दुबक रही। लेकिन वह मर्दानी औरत वहीं कदम रोक कर खड़ी हो गई। और गोरों के नजदीक आने का इन्तजार करने लगी। मैं अपनी जगह से उसका तमाशा देख रही थी। दोनों गोरे उसके पास आ गये। वह औरत उन दोनों को लेकर एक छायादार दरख्त के नीचे जा बैठी। हँस-हँस कर उन तीनों में बातें होने लगीं। क्या बातें हो रही थीं यह मैं नहीं बता सकती। सुन नहीं सकती थी। हाँ उनकी गति-विधि जरूर देख रही थी। मैंने देखा, उस औरत ने एक गोरे के हाथ से बन्दूक अपने हाथ में ले ली। शायद वह बंदूक दोनली थी और उसमें कार

तूस चढ़े हुए थे। जिस गोरे के हाथ से उसने बंदूक अपने हाथ में ली थी वह हँस रहा था और कभी उसके गालों पर उँगली भी छुला देता था। दूसरा गोरा भी बेखबर सा बैठा मुस्करा रहा था। तभी बंदूक की एक आवाज हुई। मेरी आँखें झपक गईं। दिल काँप गया। और उसी आवाज के साथ बन्दूक की दूसरी आवाज हुई। मैंने हिम्मत करके आँखें खोली, देखा-वह औरत खड़ी थी और वे दोनों गोरे मुर्दे की तरह चित जमीन पर पड़े थे। इसके बाद मैंने देखा उसने उन दोनों गोरों को पैर की एक-एक ठोकर मार कर लुढ़का दिया। वे दोनों गोरे मर चुके थे। और उस मर्दानी औरत ने वहाँ से आगे कदम बढ़ा दिया। कुछ देर बाद मैं भी गड्ढ़े से निकल कर छिपती-छिपाती अपने रास्ते पर चल पड़ी थी।'

'बड़ी जवाँमर्द थी वह?' शैदा बेगम ने कहा—'हर औरत को अपनी इज्जत आबरू बचाने के लिये उसी की तरह जवाँमर्द होना चाहिए। रोना और हाय-हाय करना बेकार की बातें हैं।'

'इसी तरह के दिल बहलाव में धीरे-धीरे दिन आगे बढ़ रहे थे।

'एक दिन शाम के वक्त रमजान अली खाँ आए। उनके हाथ में एक छापा हुआ इश्तहार था। उन्होंने वह इश्तहार शैदा बेगम के हाथ में दे दिया। बेगम ने गौर से उसे पढ़ा। फिर मेरी तरफ बढ़ा कर कहा—'जमालुद्दौला, लो, इसे पढ़ो-समझो।' मैंने उसे लेकर पढ़ा। लखनऊ की अंग्रेजी हुकूमत ने शहर को फिर से आवाद करने के लिए इश्तहार छपवा कर लोगों को अमन, चैन की इतला दी थी। लिखा था—जो लोग लखनऊ से चले गये हैं और उनके मकान यहाँ मौजूद हैं। ताले पड़े हुए हैं। वह एक महीने के अन्दर शहर आकर और अपने मकान में आवाद होने की सिटी मजिस्ट्रेट से इजाजत हासिल करें और आवाद हों। अगर मेआद के अन्दर आकर आवाद न होंगे तो उनका मकान खोद कर जमीन में मिला दिया जायगा। मकान में जो माल-असबाब होगा वह सब नीलाम कर दिया जायगा।

'इश्तहार के अलावा रमजान अली खाँ ने कहा—'लखनऊ से आज सुबह एक शख्त आया है। उसकी जवानी वहाँ की पूरी कैफियत मालूम हुई है। उसका कहना है कि अब लखनऊ में अमन है। भागे हुए लोग वापस आकर अपने मकानों में आवाद हो रहे हैं। जो शाही बेगमात हजरत महल के साघ बूँदी में थीं और जो इधर-उधर रह रही थीं, वह सब लखनऊ वापस आ गई हैं। आठ बेगमों पर तो अंग्रेज सरकार ने अपनी खास मेहरबानी दिखलाई है। मीर वाजिद अली को उनका दरोगा बनाया है। उन बेगमात के नाम हैं :—नवाब सुलतान जहाँ महल, शहिंशाह, महल, अमीर महल, फख्र महल, खुर्द महल, उमराब महल, परी महल, और सईदा महल।

'हम जानती हैं, जिस वजह से अंग्रेजों ने इन आठों महलात पर मेहरबानी की है। विरजिसी सरकार के वक्त जब अंग्रेजों से लड़ाई लगी थी। बेली गारद पर धावे हो रहे थे। कुछ अंग्रेज और कुछ मेमें कहीं से पकड़ कर लाए गये। मर्द अलग और औरतें अलग नजरबन्द की गई थीं। उनकी देख-भाल और निगरानी मीर वाजिद

अली के सिपुर्द थी। मीर वाजिद अली सुलतान जहाँ महल के दरोगा थे। ये सब बेगमें एक ही जगह पर रह रही थीं। मीर वाजिद अली की सलाह से इन बेगमों ने उन मेमों को अपने यहाँ छिपा लिया था। कोई तकलीफ नहीं होने देती थीं। और बाद में उन सभी अंग्रेजी औरतों को आलमबाग जनरल आउट्रम के पास पहुँचा दिया गया था। शायद उसी एहसान का बदला अंग्रेजों ने चुकाया है।'

'इसके बाद सब की इसलाह लखनऊ वापस चलने को हो गई। और हम लोग सफीपुर से लखनऊ को चल पड़े।'

छत्तिस

'सफीपुर से चल कर मैं और नवाव शैदा बेगम लखनऊ आ गए। लेकिन खानाबदोश थे। क्यों कि बिना सिजी-मजिस्ट्रेट की इजाजत से अपने मकानों में कदम नहीं रख सकते थे। इसलिए एक सराय में ठहर गये।

'दूसरे दिन मैंने सिटी मजिस्ट्रेट का अता-पता लिया। लोगों से पूछ-ताछ की। मालूम हुआ कि वही मेजर कारनेगी साहब सिटी मजिस्ट्रेड हैं। लखनऊ के कमिश्नर मांटगोमरी ने भगोड़ों को फिर से आवाद करने, न करने की पूरी जिम्मेदारी मेजर कारनेगी को दे रखी है। यह जान कर मेरे दिल को कुछ ढाढ़स हुआ। लेकिन फिर भी बिश्वास डाँबाडोल था। ख्याल आता था कि जमाना बदल चुका है। मुमकिन है कारनेगी साहब भी बदल गए हों। इस बीच में मकानों का भी पता लिया। मालूम हुआ कि गुलफाम मंजिल तो वदस्तूर अपनी जगह पर खड़ी हुई है। लेकिन नवाब शैदा बेगम का चाँदी बाजर वाला मकान खुद चुका है। उसका साज-सामन जो कुछ भी था, सरकार के कब्जे में है। और भी बहुत से भागने वालों का माल असवाव सरकार के कब्जे में था और जाँच-पड़ताल छान-बीन के बाद वापस दिया जा रहा था।

'यह सब जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद एक दिन मैं मेजर, कारनेगी से मिला। औरों के लिए मेजर कारनेगी चाहे जैसे रहे हों, उन्होंने जो कुछ भी किया हो, लेकिन मेरे लिए वह एक सच्चे सहृदय मित्र का भाव रखने वाले थे। मुझसे बहुअ अच्छी तरह मिले। हर तरह का इतमीनान और तसल्ली दी। बड़ी खुशी के साथ मुझे गुलफाम मंजिल में रहने की इजाजत दी और जब तब मिलते रहने का वादा भी लिया। मेजर कारनेगी की ही कृपा से नवाब शैदा बेगम को चाँदी बाजार में ही एक दूसरा मकान किराये पर मिल गया। और उनकी जो जायदाद सरकार में जब्त रखी हुई थी वह सब भी वापस मिल गई। लेकिन मीर कुर्बान अली ने मेजर कारनेगी को ज्यादा दिन लखनऊ में न रहने दिया। उनको बिलायत लौट जाना पड़ा।'

'मोर कुर्बान अली कौन थे?' मिरजा जफर हुसेन शैदा ने पूछा—'कोई बहुत बड़े अफसर और जोरदार आदमी थे?'

'चरकटे थे?' जमालुद्दौला ने जरा मुसकरा कर कहा।

'अगर मुनासिब ख्याल फरमाएँ तो उनका चरकटापना मुझे भी सुना दें। वरना मेरे दिल में इसके लिए हसरत ही रह जायगी।'

'अगर आप को उनके कमीनेपन से इस कदर दिलचस्पी है तो उनके कारनामे सुन लीजिए।' जमालुद्दौला ने हँस कर कहा—'मीर कुर्बान अली धामपुर-नगीना बिजनौर के रहने वाले थे। बड़े फितरती और कमीने थे। हमेशा खुराफात करने के लिए कमर कसे तैय्यार रहते थे। हजरत वाजिद अली शाह की बादशाहत में किसी बहुत मामूली सी जगह पर नौकर थे। और अपनी नीचता के जरिए ऊँचा उठने की कोशिश में रहते थे। जब जाने-आलम वाजिद अली शाह की खिदमत से उनकी मुराद पूरी न हो सकी तो दूसरी तरफ हाथ-पैर मारने लगे। उस वक्त अंग्रेज रेजीडेन्ट डब्लू-ऐच० सलीमन और जाने-आलम में मनमुटाव था। क्योंकि सलीमन बड़े शातिर अंग्रेज थे। जाने-आलम की हुकूमत में छिद्र ढूँढने और उन्हें बदनाम करने के लिए ही लखनऊ आए थे। मीर कुर्वान अली ने जाकर उनका पल्ला पकड़ा और बादशाह के खिलाफ झूठी सच्ची खबरें सुना कर उनके दरबारी बन गए। सलीमन ने उनके सिर पर हाथ रख दिया।

'जब हजरत वाजिद अली शाह को मीर साहब की कारगुजारी का पता चला, उन्होंने नाराज हो कर कुर्वान अली को लखनऊ शहर से निकाल दिए जाने का हुक्म जारी कर दिया। मीर साहब ने भाग कर सलीमन के पैर पकड़ लिए और सिजदा करने लग गए। सलीमन तो बादशाह को नीचा दिखाने के लिए बहाना ही तलाशते रहते थे। फौरन मीर कुर्वान अली की सहायता के लिए कमर कस कर तैय्यार हो गए। बादशाह के पास लिख कर भेजा—'मुंशी मीर कुर्वान अली मुझसे मिलने के लिए आया करते हैं। आपने उनको लखनऊ से निकाल दिए जाने का हुक्म जारी कर दिया है। आप को यह मालूम हो जाना चाहिए कि अगर शाही हुक्म कायम रहा और उसकी तामील भी पूरी-पूरी की गई। उस हालत में मैं आप के शाही वकील को अपने पास न फटकने दूँगा। एकदम मिलना छोड़ दूँगा। बल्कि गवर्नर लखनऊ को भी लिख कर भेज दूँगा कि शाहे अवध को यह मंजूर नहीं है कि लखनऊ का कोई भी आदमी रजीडेन्ट से मिलने जाये। बेहतर होगा कि लखनऊ की रजीडेन्सी तोड़ दी जाये और अवध इलाके से कुल अंग्रेजी फौजें वापस बुला ली जाँयें।'

'जाने-आलम तो बहुत नरम-दिल के और लड़ाई-झगड़े से दूर रहने वाले बादशाह थे। उन्होंने मामले को दरगुजर कर दिया और मुंशी मीर कुर्वान अली नौकरी पर बहाल रह कर लखनऊ में मौजूद बने रहे।

'जब जाने-आलम हजरत वाजिद अली शाह से तख्त-व-ताज छीन लिया गया और लखनऊ में अंग्रेजी हुकूमत कायम हो गई, मीर कुर्वान अली सिटी मजिस्ट्रेट मेजर कारनेगी के मुंशी बन गये थे। उन्होंने मेजर कारनेगी को कुछ ऐसा मुट्ठी में बन्द कर लिया। उनके सिर पर कुछ ऐसी जादू की लकड़ी फेरी थी कि उनके जरिये जो जी चाहा वह कराया। अपने एक-एक दुश्मन से गिन-गिन के बदले लिए। उन के मकान खुदवाकर फिंकवा दिए और जायदादें जब्त करा लीं। बल्कि यों समझ लीजिए कि लखनऊ में झाड़ू लगा दी।

'अन्त में इन काली करतूतों की खबर लखतऊ से कलकत्ते जा पहुँची । गवर्नर जनरल चौंके । हुकूमत की बदनामी का ख्याल आया । जाँच-पड़ताल हुई । मेजर कार-नेगी तो बाल-बाल बच कर बिलायत को रवाना हो गये । लेकिन मुंशी मीर कुर्बान अली धर लिए गये । सात साल की सजा हुई । इलाहाबाद के जेलखाने में रखे गये । मगर किसमत के धनी थे । कुछ अँग्रेजों की शिफ़ारिश से जल्दी ही छूट गये । और फिर लखनऊ आ गये । मुफ्तीगंज में रहने लगे ।

'अब मुंशी मीर कुर्बान अली ने नया गुल खिलाया । जाने-आलम की एक मुताई सुन्दर नौजवान बेगम नवाब ताऊसमहल उसी मोहल्ले में रहती थीं । मीर साहब उनके यहाँ पहुँचने लगे और दो-चार मुलाकातों के बाद मोहब्बत के पेंग बढ़ाना शुरू कर दिए । ताऊस महल की जवानी का आलम था । जाल में फँस गई । मीर साहब ने आगे कदम बढ़ाया और बेगम साहिबा के सामने निकाह पढ़ा लेनें का सवाल रख दिया । लेकिन ताऊस महल ऐसे मुकाम पर जहाँ उन्हें बच्चा-बच्चा जानता था, रेशम के आँचल में टाट की थिगड़ी लगाने को तैय्यार न हुई । इनकार कर दिया । मीर कुर्वान अली हताश नहीं हुए । उन्होंने तदबीर ढूंढ निकाली और उस राह पर कदम बढ़ाने के लिए ताऊस महल को राजी कर लिया । एक विनय-पत्र बेगम से लिखवा कर चीफ कमिशनर के पास भिजवाया । उसमें करबला की जयारत पर जाने की इजाजत चाही गई थी । वहाँ से इजाजत मिल गई । बेगम के पास जाने-आलम की बख्शी हुई काफी दौलत, जेवर-जवाहरात और नकद रुपया था । सब संदूकों में बन्द किया गया । और एक दिन मुंह अंधेरे ताऊस महल ने अकेले माल-असवाब साथ लेकर कानपुर पहुँच कर वहाँ डेरा डाल दिया । दो-चार दिन बाद मीर कुर्वान अली भी लखनऊ से कानपुर पहुँच गये । वहाँ से अकेले मकान बिजनौर में पहुँच कर बाकायदा दोनों निकाह के धागे में बँध गये । नवाबी ठाठ से रहने और जिन्दगी बिताने लग गये । यह थे मुंशी मीर कुर्वान अली ।'

'वाकई, बड़े फितरती थे ?' मिरजा शैदा ने इतमीनान से कहा ।

कुछ देर की खामोशी के बाद जमालुद्दौला ने कहा—'अब मेरी सुनिए । मैं अपनी गुलफाम मंजिल में पहुँचा । वहाँ हसनू मोजूद था । मैंने सरसरी निगाह से देखा, सब कुछ बदस्तूर था । जो कुछ पहले लुट चुका था, वह तो लुट ही चुका था, बाकी जो कुछ भागने के वक्त मैं जहाँ रखा छोड़ गया था वह वहीं रखा था । मेरा तहखाना और उसकी धन राशि पूरी तरह सुरक्षित रखी हुई थी । इसके साथ मेरा एकाकी जीवन और सूनापन भी मौजूद था । मैं उन सब को लेकर जिन्दगी के दिन पूरे करने लग गया ।'

जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ तकिए का सहारा लेकर कुछ देर तक खामोश बैठे रहे । फिर गम्भीर मुख-मुद्रा से बोले—'मिरजा जफर हुसेन 'शैदा' साहब, मेरे बीते जीवन की सारी कहानी यही थी । मैंने आपको अपनी जिन्दगी के हर एक मोड़ और हर एक करवट की वारदात विस्तार से सुना दी । कुछ भी छिपा कर नहीं

रखा। अब सिर्फ एक करवट और बाकी है उसकी बहुत छोटी सी कहानी होगी।···
उसे भी किसी दिन सुन लीजिएगा।'

'वह कौन सी करवट और उसकी क्या कहानी है ?' मिरजा जफर हुसेन ने कौतूहल भरे लहजे से कहा—'लगे हाथों उसे भी सुना दीजिए।'

'उसे मैं खुद नहीं सुना सकता। उसे आप को सुनाने वाला कोई तीसरा आदमी होगा।'

'आप खुद क्यों नहीं सुना सकते ? क्या आप उस वारदात से वाकिफ नहीं हैं ?' मिरजा का लहजा आश्चर्य से भरा था।

जमालुद्दौला कुछ अधिक गम्भीर होकर बोले—'मैं क्या, दुनिया का कोई भी प्राणी, जिन्दगी की उस वारदात से वाकिफ नहीं होता। उसका नाम मौत है। उसका आना और वारदात करना दूसरे लोग ही बयान किया करते हैं। इसलिए वक्त पर कोई न कोई जान-पहचान का आदमी आप को सुना ही देगा कि आज जमालुद्दौला गुलफाम अली खाँ इस दुनिया से दूसरी दुनिया को कूच कर गये और गुलफ़ाम मंजिल खाली पड़ी है।'

'छोड़िये इन मनहूस वाहियात बातों को।' मिरजा शैदा ने कहा।

इसके बाद बहुत देर तक खामोशी का वातावरण रहा। जमालुद्दौला और मिरजा शैदा दोनों अपनी-अपनी धुन में चुप बैठे रहे।

फिर मिरजा जाफर हुसेन ने नजर उठाकर कहा—'नवाब जमालुद्दौला साहब, आप ने मुझ नाचीज पर बहुत बड़ा करम फरमाया। खुद अपनी जबान मुबारक से अपनी जिन्दगी की पूरी कहानी सुनाई। मैंने गौर से सुनकर उसका मसौदा भी तैय्यार कर लिया। इसका शुक्रिया अदा करने की मेरी जबान में ताकत नहीं हैं।' मिरजा जफर हुसैन जरा रुक गये। फिर आगे कहा—'अब सिर्फ चन्द सवालों के जवाब मैं आपकी जवान से सुनने का आरजूमंद हूँ। अगरचे उन सवालों का संबंध आप की निजी कहानी से नहीं है। लेकिन आप की जानकारी और मालूमात मुझे मजबूर कर रहे हैं कि मैं उन सवालों को आप के सामने रखूँ। और अपनी गुस्ताखी की माफी का ख्वास्तगार भी हूँ।' मिरजा ने बहुत मीठे लहजों में कहा।

'फरमाइए आप के क्या सवाल हैं ?' जमालुद्दौला ने इतमीनान से कहा—'अगर मुझे उन सवालों के विषयों की जानकारी होगी तो अवश्य उनके जवाब देने की कोशिश करूँगा।'

'मेरा पहला सवाल यह है कि हजरत सुलताने-आलम वाजिद अली शाह की बेगमों की जो भारी भीड़ इस लखनऊ में मौजूद थी, उन सबका बाद में क्या नतीजा हुआ ? क्योंकि बादशाह सलामत के साथ तो पाँच-सात बेगमें ही गई थीं, बाकी हुजूम तो लखनऊ ही में रह गया था। वह सब साबित कदम बनी रहीं या बहक गईं। और उनकी जिन्दगी किस तरह आगे बढ़ती रही। गुजर बसर किस तरह होता रहा।'

'मिरजा साहब, इस बारे में बिस्तार के साथ कहना तो बड़ा कठिन है।' जमालुद्दौला ने कहा—'हाँ संक्षेप में कुछ अर्ज करता हूँ। मेरी जानकारी में तो चार-पाँच बेगमों को छोड़ कर बाकी सभी जाने-आलम के नाम का माला फेरती रहीं। शाही महलात तो उन लोगों से छीन कर अंग्रेजी सरकार ने अपने कब्जे से कर लिए थे। इसलिए बहुत सी बेगमों ने लखनऊ के भिन्न-भिन्न मोहल्लों में अपने निजी मकान बनवा लिए थे और उन्हीं में रहा करती थीं। बहुतेरी बेगमें किराये के मकानों में रह रही थीं। गुजर-बसर का ये जरिया था कि करीब-करीब सभी बेगमों के पास जाने-आलम की दी हुई काफी दौलत मौजूद थी। जिसमें नकद रुपया और जेवर जवा-हरात भी शामिल थे। फिर जब वाजिद अली शाह उन सब को लखनऊ में छोड़ कर कलकत्ते जाने लगे तब हर एक बेगम को सौ रुपया माहवार देने का वादा कर गये थे। और कलकत्ते पहुँच कर यह रकम बराबर उनके पास भेजते भी रहे। लेकिन जब जाने-आलम किले के अन्दर नजरबंद कर दिये गये तो बेगमों की तनखाहों का यह सिलसिला बन्द हो गया था क्योंकि जाने-आलम एक कैदी की सूरत में खुद मोहताज थे।

'इधर लखनऊ में सत्तावन की लड़ाई छिड़ गई। बिगड़ी हुई देशी फौजें आ गईं और लूट-खसोट का बाजार गरम हो गया था। उस हुल्लड़ में औरों के साथ बेगमों के मकान भी लूटे गये थे। गरज कहने का मतलब यह है कि उस वक्त जरूर बेगमों मी हालत खराब हो गई थी। फिर भी जो होशियार समझदार थीं वह कुछ चुराए-छिपाए हुए कंगाल बनी हुई थीं। लखनऊ की आग बुझ जाने और अंग्रेजी राज पुनः जम जाने से बाद लखनऊ की हुकूमत ने उन लुटी-पिटी बेगमों को फिर से लखनऊ में आबाद किया और उनकी गुजर बसर की तरफ ध्यान दिया। बादशाह की निकाही बेगमों को छोड़कर जितनी भी मुताई बेगमें थी उनको खानदान मर्तबा यानी जो महल कहलाती थीं, जो बेगम कही जाती थीं और जो सिर्फ दिल बहलाव का जरिया थीं, उन सब को आठ दर्जो में बाँट दिया। और डेढ़ सौ रुपया माहवार से लेकर पन्द्रह रुपया माहवार तक उनको गुजारे के लिए दिये थे। बहुतों को एकमुश्त रकम देकर रुखसत कर दिया गया था। ज्यादा कम गुजारा पाने के लिए भी बेगमें तीन भागों में बाँटी गईं थीं। पहले भाग में वह मुताई बेगमें थीं जिनकी गोदों में शहजादे थे, जैसे नवाब फख्र महल, नवाब ताजुक महल, नवाब खाकान महल, नवाब उलफत महल और नवाब मुमताज महल वगैरा। दूसरे भाग में वह बेगमें थीं जिनकी गोदों में शाहजादे नहीं थे, जैसे-नवाब शैदा बेगम, अफजल बेगम, चंदरी बेगम, महररू बेगम और चमन आरा बेगम वगैरा। तीसरे भाग में दिलबहलाव वाली थी, जैसे—मुनव्वर बेगम, दिल अफरोज बेगम और वजीर बेगम वगैरा।

'अब जाने-आलम कैद से छूट कर मटियाबुर्ज में रहने लग गये थे और उन्हे सरकार से एक लाख रुपया माहवार मिलने लगा था। लखनऊ से बेगमें बराबर कलकत्ते जाती आती रहती थीं और बहुत कुछ छीन-झपट लाया करती थीं।'

'मेरा दूसरा सवाल यह है कि हजरत वाजिद अली शाह लखनऊ में रहते हुए

तो साठ-सत्तर बेगमों के बीच में बैठकर दिल बहलाया करते थे। मगर कलकत्ता में सिर्फ पाँच-सात बेगमों से ही उनका दिल बहल गया था, ऐसा क्यों ? क्या मुसीबतों ने उनकी तबीयत को भी बदल दिया था ?'

जमालुद्दौला बोले—'इस बारे में सही तौर पर कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि जाने-आलम से मेरी आखिरी मुलाकात करबला की जयारत को जाने के कुछ पहले हुई थी। वहाँ से जब मैं वापस लौटा था वह कलकत्ता जा चुके थे। उसके बाद मुझ पर जो मुसीबतें फट पड़ी थीं उन्हें मैं अपनी कहानी के सिलसिले में सुना चुका हूँ। गुलफाम मंजिल में फिर से आदाब होने के बाद मैंने कई बार इरादा किया कि कलकत्ता जाकर जाने-आलम को देखूं और आदाब बजा लाऊँ, मगर नहीं जा सका था। इसलिए आप के सवाल का जवाब दूसरों के मुँह से सुनी बातों से दे सकता हूँ। लेकिन मेरा ख्याल है कि वह बताई और सुनी हुई बातें गलत नहीं है। आपको याद होगा कि राहत अली खाँ मेरे पुराने लंगोटिया यार थे। उनके वालिद नवाब जाफिर अली खाँ उस वक्त कलकत्ता में जाने-आलम के पास मौजूद थे। और राहत अली खाँ अकसर उनसे मिलने के लिए कलकत्ता जाया करते थे और लौट कर मुझे वहाँ का हाल बताया करते थे। ऐसे ही एक बार बेगमों की चर्चा चलने पर उन्होंने बताया था कि कलकत्ता में भी जाने-आलम के पास बेगमात का एक अच्छा जमघट हो गया है। उनकी तादात ढाई सौ से कम नहीं है और वे सब परी जमालें मुताई बेगमें हैं। एक भी ऐसी नहीं है जिनके साथ मुता की रसम अदा नहीं हुई। जाने-आलम के दिल की यह तारीफ है कि उनकी खिदमत में कोई नौकरानी भी बिला मुता के धागे बँधी हुई नहीं पहुँच सकती। यहाँ तक कि पानी लाने वाली भिश्तिन और गंदगी साफ करने वाली मेहतरानी भी नवाब आबरसा बेगम और नवाब मुसफ्फा बेगम के खिताब पाकर मुता में आ गई हैं। इस बयान से आप ख्याल फरमा सकते हैं कि जाने-आलम की तबीयत कलकत्ते में भी वही लखनऊ वाली थी या बदल गई थी।'

मिरजा ने कहा, अब तीसरा सवाल सुनिए—'हजरत सुलताने-आलम की वफात के बाद अंग्रेजों ने उनका जांनशीं किस शाहजादे को माना था ? क्योंकि उनके दर्जनों शाहजादों के नाम सुनने में आते है।'

'सही बात है। जाने-आलम के शाहजादे बहुत काफी थे। लेकिन हजरत की मृत्यु के बाद अंग्रेज सरकार ने शाहजादा कमर कदर मिरजा आबिद अली को जांनशीं माना था। गो मिरजा आबिद अली शाहजादा बिरजिस कदर से छोटे थे, लेकिन बिरजिस कदर का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता था क्योंकि वह नेपाल में थे और एक तरफ से उनका संबंध भी टूट चुका था। इसलिए शाहजादा कमर कदर जांनशीं मान लिए गये थे और उन्हें दूसरे सभी शाहजादों से ज्यादा गुजारा, तीन हजार रुपया माहवार दिया गया था।'

'जरा यह भी बता दीजिए कि कमर कदर मिरजा आबिद अली किस बेगम की गोद के लाल थे ?' मिरजा ने उत्सुकता से पूछा।

'वह नवाब फख्रमहल की गोदी के लाल थे।' जमालुद्दौला ने जरा रुक कर आगे कहा—'नवाब फख्रमहल पर अंग्रेज सरकार की खास इनायत भी थी।'

'यह क्यों ?' मिरजा ने कौतूहल से पूछा।

'नवाब फख्र महल उन बेगमों में खास थीं, जिन्होंने दंगे के वक्त में कुछ अंग्रेज-बीबियों को अपने यहाँ छिपा कर उनकी जानें बचाई थीं। जब वालिद अली शाह लखनऊ में थे, पाँच सौ रुपया माहवार फख्र महल को दिया करते थे। कलकत्ता चले जाने के बाद डेढ़ सौ रुपया माहवार देने लगे थे। अंग्रेज सरकार ने भी बेगम की वही डेढ़ सौ रुपया माहवार पेंशन कायम रखी थी।'

'अब सिर्फ एक छोटा सा सवाल बाकी रह गया है। उसका भी जवाब सुना दीजिए। बस फिर अल्ला-अल्ला सैर सल्ला है।' मिरजा शैदा ने मुस्करा कर कहा।

'वह क्या सवाल है ?' जमालुद्दौला ने पूछा।

'जाने-आलम की मृत्यु के बाद मदारुद्दौला वजीरे आजम नवाब अली नकी खाँ बहादुर का क्या हश्र हुआ ? लखनऊ वापस आये थे या कलकत्ता में ही दफन हो गये थे ?'

'जाने-आलम वाजिद अली शाह की वफात के बाद पहली बार नवाब अली नकी खाँ कलकत्ता से लखनऊ आए थे और अपने समधी नवाब मुहसनुद्दौला के मकान में ठहरे थे। फिर हैजा की बीमारी में पड़ कर वहीं मर गये। लाश करबला-मुअल्ला भेज दी गई थी। लेकिन उनके सिर की यह बदनामी आज तक मशहूर है कि उन्होंने बादशाह से दगा और अंग्रेजों से वफा की साजिश करके अपने निजी फायदे के लिए बिना उँगली हिलाए अवध राज्य को कम्पनी राज में मिला लेने दिया था और उन्हें इस नमकहरामी का कोई बदला भी न मिला था।'

इसके बाद मिरजा जफर हुसैन ने अपना मसौदा संभाला और उठ कर तसलीम के लिए हाथ उठा कर कहा—'अच्छा नवाब जमालुद्दौला साहब, माफ कीजिएगा। अब फिर कभी खिदमत में हाजिर हूँगा।'

और वह दीवानखाने से बाहर चले गये।

सैंतिस

अभी तक जमालुद्दौला नवाब गुलफाम अली खाँ का सुबह का वक्त बड़े मजे से गुजर जाता था। उन्हें अपना अकेलापन, तथा सूनसान, घर की उदासी महसूस नहीं होती थी। मिरजा शैदा आ जाया करते थे। नबाब साहब अपनी कहानी सुनाना शुरू कर देते थे। यह क्रम बराबर दोपहर के कुछ पहले तक चलता रहता था, दस्तरख्वान पर बैठने के बाद वह आरामगाह में पहुँच जाते थे और तभी वहीदन आ जाया करती थी।

अब जमालुद्दौला के सामने फिर से वही मुसीबत आकर खड़ी हो गई थी। सबेरे का वह समय उनके लिए काला पहाड़ बन गया था। किसी प्रकार काटे नहीं कटता था। वह जैसे ही आकर दीवानखाने में बैठने चेहरे पर उदासी छा जाती, तरह-तरह के विचार आकर हृदय को झकझोरना शुरू कर देते थे। उनसे पीछा छुड़ाना बहुत कठिन हो जाता था।

ऐसी मनहूस परेशानियों से भरी जिन्दगी में जमालुद्दौला के पास दिल बहलाने तथा उदासी को दूर करने का केवल एक ही उपाय था और वह था बीबी वहीदन का सत्संग, सम्पर्क। लेकिन वहीदन तीसरे पहर आया करती थी। अतः एक दिन जैसे ही वहीदन आकर उनके पास बैठी, उन्होंने कहा—'बीबी वहीदन ? पहले मेरे एक सवाल का जवाब दो। उनके बाद दूसरी बात करना।'

'कहिए,' वहीदन ने सहज भाव से कहा—'ऐसा वह क्या सवाल है जिसके लिए आप इतने उतावले हो रहे हैं ?'

'मैं तुमसे यह पूछ रहा हूँ कि मैं जल्दी ही इस दुनिया से कूच कर जाऊँ या कुछ दिन और जिन्दा रहूँ ? तुम्हें जो पसंद हो वैसा कहो।'

'ऐ, आज क्या कुछ गहरी छान ली है ?' वहीदन ने मुस्कराती हुई नजर उनके चेहरे पर जमा कर कहा—'आज यह कैसी मनहूस बात मुँह से निकाल रहे हैं ?'

'बात मनहूस है या खुशियोंभरी, इससे कोई मतलब-गरज नहीं है। तुम तो हमें अपनी पसंद का जवाब दो।'

'ऐ, इसका मैं क्या जवाब दूँ ? अपनी पसंद क्या बताऊँ ? मैं तो अपने प्यारे माशूक को हजारों वर्ष अपनी आँखों के आगे रखना चाहती हूँ। लेकिन आज आप मुँह से ऐसा क्यों निकाल रहे हैं ? इसकी वजह तो कहिए।'

'वजह यह है कि सुबह का वक्त हमारे लिए बहुत मनहूस साबित हो रहा है। किसी तरीके से भी नहीं गुजरता। हम अकेले बैठे रहते है और अकेले में यह

दीवानखाना काटने को दौड़ा करता है। अगर यही हालत कायम रही, हमें रोजाना ऐसी ही मुसीबत का सामना करना पड़ा तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम बहुत जल्द इस दुनिया से सफर करके दूसरी दुनिया में पहुँच जायँगे।'

'और आप के वह मिरजा कहाँ गये, जो रोजाना सबेरे के वक्त आप के पास आकर बैंठा करते थे ? क्या अब वह नहीं आते-जाते ?'

'मिरजा शैदा का क्या है। अब उनको फ़ुर्सत होगी, आएँगे। लेकिन यहाँ तो रोज ही मनहूसियत सवार रहती है।'

'क्यों ? मिरजा के आने-जाने में ऐसा कौन सा अड़ंगा पड़ गया। आप से उन से किसी बात पर कुछ मनमुटाव हो गया है ?'

'ऐ नहीं, जमालुद्दौला ने बड़े इतमीनान के साथ कहा—'मिरजा शैदा तो बहुत अच्छे मिजाज और खुशदिल आदमी हैं। हमसे उनसे कभी मनमुटाव नहीं हो सकता।'

'फिर क्यों नहीं आते ? आप तो उन्हें दास्तान सुनाया करते थे ?'

'वह दास्तान पूरी हो गई ?'

'तभी वह घर बैठ रहे। आप ने बहुत बड़ी गलती की ?'

'हमने कौन सी गलती की ?' नवाब ने कुछ हैरत से उसकी तरफ देखा।

'गलती यह की कि दास्तान जल्द खतम कर दी। और उन्होंने साबित करके दिखा दिया—'दमी भाई किसके, दम लगाई खिसके।'

जमालुद्दौला जोर से हँस पड़े। फिर सावधान होकर कहा—'बीबी वहीदन, बात तो कुछ ऐसी ही रही।'

'ऐ सच कहती हूँ, अगर मैं कोई कहानी सुनाती होती, तो बरसों उन्हें उलटा लटकाए रहती। झक मार कर आते और नाक रगड़ते। बड़े हजरत भी हैं वह आप की तस्वीर मेरे पास से जबरन उठा ले गये थे और अभी तक लौटाई नहीं··· खैर, उन्हें छोड़िए आप अपनी वक्त गुजारी के लिए कोई दूसरा मशगला ढूँढ़ लीजिए।'

'हम कोई मशगला नहीं ढूंढ सकते ! नवाब ने धीरे से कहा।

'और कौन ढूँढ़ेगा। वक्त तो आप को काटना है ?'

'हमारी वक्त गुजारी और दिल बहलने का मशगला बीबी वहीदन के हाथ में है। उसे कहीं खोजने-तलाशने नहीं जाना है।'

'ऐ, मेरे हाथ में क्या है ?' फिर एक नखरे के साथ के कहा—'अब पहेलियाँ बुझाना रहने दीजिए। मतलब की जो बात हो उसे साफ-साफ कहिए। मेरे अन्दर उथल-पुथल मची हुई है।'

'अच्छा तो सुनो ?' जमालुद्दौला ने धीरे से वहीदन का हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोले—'अब तुम बड़े तड़के ही यहाँ आ जाया करो। बल्कि अच्छा तो यह हो कि तुम अपने उस चौक के मकान में ताला लटका कर तथा नौकर-नौकरानियों

को छुट्टी देकर यहाँ आ जाओ और इसी गुलफाम मंजिल में रहा करो। इस तरीके से हमारी उदासी दूर हो जायगी। अकेले से दुकले हो जायेंगे। बोलो मंजूर है ?'

'ऐ, आप मंजूरी क्या चाहते है !' मैं तो कच्चे धागे से आप के साथ बँधी हूँ।' फिर गम्भीर होकर कहा—'आप जो हुक्म देंगे वह मेरे सिर आँखों पर है। आप से उलग रहना मुझे खुद पसद नहीं है। लेकिन बिला हुक्म के कैसे कदम रख सकती थी।'

'बस तो अब तुम यहीं रहा करो।'

'रहूँगी, और अखीर दम तक रहूँगी।···मेरा तो विश्वास है कि इस जन्म की तरह मैं व आप अगले जन्म में भी साथ रहेंगे। खुदा से यही इल्तजा करती हूँ कि आप के हाथों मेरी मिट्टी प्यारी हो जाय, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।···पहले जन्म में मैंने कुछ ऐसे गुनाह किए थे जिनकी सजा मुझे इस जन्म में भुगतनी पड़ी थी और वह इस तरह कि अपनी शुरू जिन्दगी से आपका दामन नहीं पकड़ सकी थी। इधर-उधर भटकती फिरती रही थी। लेकिन जिस दिन मेरे उन गुनाहों की सजा पूरी हो गई, मेरा माशूक मुझे मिल गया। मैं आकर आप के गले से लिपट गई।'

'हकीकत है बीबी वहीदन ?' जमालुद्दौला ने कहा—'खुदा के भेदों को समझना बहुत मुश्किल है।···लेकिन इसे भी सच समझो कि मेरी जिन्दगी अब तुम्हारे ही हाथों में है। जिस दिन तुमने रूठ-मुकर कर हमें अकेला छोड़ दिया उसी दिन हमारी इस जिन्दगी का खात्मा है।'

'ऐ मेरे माशूक ! आगे अब कभी ऐसा मत कहना।' वहीदन नवाब के गले से लिपट गई और देर तक लिपटी रही।

अब वहीदन गुलफाम मंजिल में रहती थी। जमालुद्दौला हर वक्त के लिए एक से दो हो गये थे। दीवानखाने में कभी जमालुद्दौला वहीदन की गोद में और कभी वहीदन उनकी गोद में हुआ करती थी। प्रेम-प्यार की झड़ियाँ लगी रहती थीं। जीवन का आनन्द दोनों के सामने बिखरा हुआ दिखाई देता था।

वहीदन कभी हँसी-ठठोली, कभी कुछ गा-बताकर और कभी मजेदार हँसने हँसाने वाले लतीफे चुटकुले सुनाकर नवाब का दिल बहलाया-गुदगुदाया करती थी। नजाब में ताजगी पैदा हो जाती थी। ऐसे ही दिनों में एक दिन वहीदन ने जमालुद्दौला को अपनी एक पड़ोसिन साहबजान का एक किस्सा सुनाया। बोली—'देखना, हँसना नहीं। आज मैं आप को एक बहुत मजेदार आँखों देखी कहानी सुनाती हूँ।'

'भई, यह कैसे हो सकता है ' नवाब ने कहा—'अगर कोई हँसी की बात होगी तब बिना हँसे कैसे रहा जायगा ?'

'बात तो हँसी की ही है। मगर···'

'तब तुम्हीं कहो, किस तरह हँसी रोकी जायगी।' वह बीच में बोले।

'पूरा लतीफा सुनने के बाद हंस लीजिएगा।'

'खैर, तुम लतीफा तो शुरु करो।'

'सुनिए, कभी चौक मैं साहबजान का कोठा मेरे कोठे से मिला हुआ था। केवल बीच की दीवाल का अन्तर था और···'

'क्या अब वह वहाँ नहीं है ?' नवाब ने टोका।

'लीजिए आपने मुँह खोलते ही अड़ंगे डालना शुरू कर दिया। लतीफा कैसे आगे बढ़ाया जाय। चुपके बैठे सुनते जाइए। जब कोई बात समझ में न आए, पूछ लेना।'

'अच्छा भई, आगे चलो।' और वह तकिए का सहारा लेकर चुप बैठ गये।

'साहबजान बहुत खूबसूरत गोरी-चट्टी बीस-इक्कीस साल की छोकरी थी। उठती जवानी से अठखेलियाँ कर रही थी। गाना तो मामूली सा जानती थी। लेकिन नाचती बहुत अच्छा थी। इसके अलावा पढ़ी-लिखी भी थी। किस्से-कहानी की किताबें पढ़ने का बहुत शौक था। ढेरों किताबें जमा कर रखी थी। साहब जान की माँ नवाब जान अपने जमाने में लखनऊ की इनी गिनी रंडियों में शुमार की जाती थी। शाही जमाना था, लखनऊ में दिलफेंक रईस नवाबों की क्या कमी थी। इधर नवाबजान की जवानी का जोबन आसमान छूने को दौड़ रहा था। इसलिए सैकड़ों दिल वाले उसके कदमों पर लोटते रहते थे। एक सीधी नजर पर हजारों की थैलियाँ लुटा दिया करते थे। नवाबजान के मुजरे लखनऊ की रेजीडेन्सी में ज्यादा हुआ करते थे। अंग्रेज अफसर खुले हाथों दौलत लुटाया करते थे। लखनऊ के ऐजीडेन्ट से उसकी आशनाई थी। और उसी आशनाई की निशानी साहबजान थी। कहने का मतलब यह है कि नवाब जान ने अपनी जिन्दगी में लाखों रुपया कमा कर घर में रख लिया था। नवाबजान मर चुकी थी और अब वह सारी कमाई साहबजान के कब्जे में थी। अत: उसे धन दौलत कमाने की थोड़ी भी परवाह न थी। हमेशा तलवार की धार बनी रहती थी। किस्से कहानियाँ पढ़-पढ़ कर अपने को अच्छी तरह से सान पर चढ़ा लिया था। इश्कबाजी के उसको हजारों लटकें याद थे। उसके जाल में फँस जाने वाला सिवाय तड़पने के कुछ भी नहीं कर पाता था। हजारों उस पर आशिक थे। मगर वह किसी पर नहीं मरती थी। तबियत में शोखी, शरारत और मजाक बहुत था और यही उसका रन्डीपन था।' उसके चाहने वालो में रेजीडन्सी का एक अंग्रेज जवान भी था। जब मैंने उसे देखा था उसकी उम्र पच्चीस-छब्बीस साल की रही होगी। उसका नाम भी सुना था, मगर इस वक्त याद नहीं आ रहा।'

'क्या उसी फिरगी जवान के साथ उसने कोई शरारत की थी ?' नवाब ने पूछा।

'सुनते जाइए। बीच में छेड़ने से कहानी का मजा कम हो जाता है।' वहीदन ने रूखे लहजे से कहा।

'अच्छा भई, अब न बोलेंगे।'

'वह अंग्रेज जवान बिला नागा साहबजान के कोठे पर आया करता था। मैं बता चुकी हूँ कि साहबजान के कोठे और मेरे कोठे में सिर्फ एक दीवाल का पर्दा था।

उस दीवाल में ऊपर की तरफ काठ का बना जालीदार रोशनदान लगा था। जब वह फिरंगी जवान उसके कोठे पर आकर बैठा होता और मुझे उसके आने की आहट मिल जाती, मैं रोशनदान के नीचे चारपाई बिछा कर खड़ी हो जाया करती। उन दोनों की बातें सुनती और बे-पैसों का तमाशा भी देखा करती थी।...'

'भई, अब तो बे-बोले नहीं रहा जाता।' नवाब ने संभल कर कहा—'इस मौके पर तुमसे दो-एक सवाल करने के लिए तबीयत मचल रही है।'

'कीजिए ? क्या सवाल करना चाहते हैं ?' वहीदन ने नजर मिला कर कहा।

'तुम्हें किसी दूसरे के मजे की ताक-झाँक करने की क्या जरूरत थी।'

'वाह, जरूरत क्यों नहीं थी। मैं जानती थी कि साहबजान एक ही शरीर है। इसलिए उसकी शरारतें देखने का मुझे शौक था। मजा आता था ?'

'अच्छा यह कब का जिक्र है ?'

'लखनऊ की बादशाहत खतम होने के एक दो साल पहले का।'

'उस वक्त तुम्हारी क्या उम्र थी ?'

'सही तौर पर नहीं कह सकती। शायद अठारह-उन्नीस साल की रही होगी।'

'तभी तुम्हें ताक-झाँक करने की आदत थी, वह उम्र कुछ ऐसे ही हुआ है।'

'और नहीं क्या ? अब इस उम्र में ऐसा कर सकती हूँ !' वहीदन ने थोड़ा मुस्करा कर कहा।

'खैर, तुमने जो मजा उठाया वह तो उठाया। अब साहबजान का बयान करो। हम तो उसकी शरारत सुनने के लिए बेचैन हो रहे है।'

'मैं चारपाई पर खड़ी हुई देख-सुन रही थी···लीजिए अब याद आ गया। उस अंग्रेज जवान का नाम हार्डी था। साहबजान और वह आमने-सामने बैठे थे। नजर से नजर मिल रही थी। साहबजान जरा मुस्कराई। फिर एक अन्दाज के साथ हार्डी से पूछा—'तुम मुझे चाहते हो ?'

'यह भी क्या पूछने की बात है ?' हार्डी ने प्रसन्न मुख से कहा—'दिल से चाहता हूँ···क्या करूँ, सीना चीर कर नहीं दिखा सकता। वरना दिखा देता कि देखो तुम किस तरह मेरे दिल में घर बनाए बैठी हो।'

'झूठ कहते हो ?' उसने जरा मुँह बिगाड़ कर कहा।

'नहीं, सच कह रहा हूँ।'

'हमें किस तरह यकीन हो ? अपने दीन-ईमान की कसम लो ?'

'मेरे दिल के ईसा मसीह गवाह हैं।···क्या, इस वक्त बाइबिल मेरे हाथ में नहीं है, वरना उसे चूम कर अपना कहना सच साबित कर देता।'

'साहबजान एक क्षण चुप रही। फिर मुस्कराते हुए पूछा—'तुम्हारी शादी हो गई है। मेम साहब बंगले में मौजूद हैं।'

'नहीं, अभी मैं अकेला हूँ।'

'मेरे साथ शादी करोगे। मुझे अपनी मेम बनाओगे ?'

'हार्डी के चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ पड़ी। होंठ मुस्कानों से भर गये। मुँह से कुछ न कह कर, नजर से नजर मिला कर रह गया।

'मेरा मन तुमसे मिल गया है ? मैं तुम्हारे गिरजाघर में चल कर ईसाईन बनने को तैय्यार हूँ। बोलो मुझे अपनी मेम बनाओगे ?'

'हार्डी प्रसन्न होकर बोला—'मैं दिल-जान से आपको अपनी मेम स्वीकार करता हूँ। कल इतिवार का दिन है। चर्च में मेरी आप की शादी हो जाय।'

'लेकिन इसके साथ एक शर्त है।' साहबजान ने गम्भीर होकर कहा—'जब मैं तुम्हारी मेम साहब बन जाऊँगी, तुम मुझे किस निगाह से देखा करोगे ? तुम्हें पूरी तरह से मेरी इज्जत करनी पड़ेगी। मुझे अपने से बड़ा समझना पड़ेगा। जो मैं कहूँगी उसे सिर झुका कर मानना पड़ेगा।'

'हार्डी सगर्व बोला—'शायद आप को मालूम नहीं है। हम लोग अपनी मेम साहब का बहुत ख्याल रखते हैं। हर तरह से उनकी इज्जत करते हैं। हमारे लिए मेम साहब मडोना की शकल में हुआ करती हैं। वह जो भी हुक्म देती हैं उसे हम लोग बिना किसी सोच-बिचार और संकोच के मान लिया करते हैं। हमारी अंग्रेज जाति को इस बात का बड़ा घमंड भी है। मेम साहब, सही-गलत, अच्छा-बुरा कैसा भी हुक्म दें, उसको करना हमारा फर्ज होता है।'

'साहबजान शोखी शरारत पर उतर आई। चेहरे पर पूरी गम्भीरता लाकर बोली—'तुम्हारी मेम साहब बन कर और तुम्हें अपना प्रिय साहब समझ कर मैं जो हुक्म दूँगी, जो कुछ चाहूँगी, उसे तुम पूरा करोगे ?'

'अवश्य ?' हार्डी ने दृढ़ स्वर से कहा।

'मैं कहूँगी कान पकड़ कर उठो-बैठो। तुम उस हुक्म का पालन करोगे ?'

'उसी क्षण आज्ञा का पालन करूँगा ?' हार्डी का स्वर उत्साह से भरा था।

'झूठ कहते हो ?' साहबजान ने एक विचित्र लहजे से कहा—'तुम कभी नहीं उठो-बैठोगे। यह तुम्हारा जबानी जमा खर्च है।'

'हार्डी दृढ़ता से भर गया। चेहरे पर गर्व झलक उठा। बोला—'आप अभी कोई हुक्म दीजिए। देखिए मैं उसका पालन करता हूँ या नहीं।'

'साहबजान अधिक गम्भीर होकर बोली—'अच्छा, मैं हुक्म देती हूँ। सात बार कान पकड़ कर उठो-बैठो।'

'हार्डी हुक्म पाते ही उठ कर खड़ा हो गया। दोनो कानों को हाथों से पकड़ कर उठने-बैठने लगा। साहबजान, एक, दो, तीन कहकर गिनती जा रही थी।

'आज्ञा का पालन हो जाने के बाद साहबजान मुस्करा कर बोली—'ठीक है, अब मैं तुम्हारी मेम और तुम मेरे साहब। आज जाओ। कल सुबह मेम साहब के लिए रेशमी पोशाक, साया वगैरा और सवारी के लिए घोड़ा गाड़ी लेकर आ जाना। मैं तुम्हारे साथ शादी रचाने के लिए गिरजाघर चलूँगी।'

'इसके बाद हार्डी प्रसन्नता से भरा कोठे के जीने से उतर गया। साहबजान बैठी मुस्करा रही थी।'

कहानी सुनकर जमालुद्दौला लोट-पोट हो गए। देर तक हँसते रहे। फिर सहज होकर बोले—'बीबी वहीहन आज तुमने बहुत मजेदार लतीफा सुनाया। भई, ऐसे लतीफे हमें रोज सुनाया करो।···अच्छा, अब यह बताओ दूसरे दिन साहबजान गिरजा घर गई या नहीं ?'

वहीदन मुस्कराई, बोली—'उसकी बला गिरजा घर जाती। इस तरह से लोगों को उँगलियों पर नचाना और उल्लू बनाना उसका रोज का काम था। उसके दिल बहलाव के यही तो ढंग थे।'

'बड़ी शोख शरीर रंडी थी। अब है या नहीं ?'

अब वह यहाँ कहाँ है। वहीदन ने कहा—'उसी जमाने में दिल्ली से एक साहब लखनऊ आकर चौक में ठहरे थे। निसार हुसैन नाम था। तरहदार जवान और रंगीन मिजाज थे। साहबजान के कोठे पर पहुँचा करते थे। आखिर दोनों की चूल बैठ गई। साहबजान ने उनके साथ निकाह पढ़ा लिया। अपना सारा माल-असबाब बाँध कर चौक का वह कोठा खाली करके निसार हुसैन के साथ दिल्ली चली गई थी। खुदा जाने अब जिन्दा है या मर गई।'

जमालुद्दौला तथा वहीदन का सम्पर्क इसी प्रकार से चल रहा था। दिन गुजर रहे थे।

जमालुद्दौला की प्रिय हुस्नआरा बेगम की कब्र मोहल्ला गोलागंज में स्थित मलिका जमानिया के इमामबाड़े में थी। उसका दफन-कफन वहाँ होने की एक खास वजह भी थी। अब गुलफाम-मंजिल के सामने वाला इमामबाड़ा सड़क की सीध में पड़ कर गिराया जा रहा था और हुस्नआरा उसका मिटना देख रही थी तब उसने हताश भाव से जमालुद्दौला से कहा था—'मेरी मीठी नींद सोने की जगह तो खोद कर धूल उड़ाई जा रही है। मेरे प्रिय इमामबाड़े का नाम-निशान मिट रहा है। उसका असली रुप मलिका जमानिया का इमामबाड़ा अभी गोलागंज में मौजूद है। मैं वहीं पैर फैलाकर मीठी नींद लूँगी।'

हुस्नआरा की मृत्यु हो जाने पर जमालुद्दौल को उसका कहना याद आया था। उन्होंने हुस्नआरा का जनाजा गोलागंज ले जाकर मलिका जमानिया के इमामबाड़े में दफना दिया था और उस पर एक सुन्दर कब्र बनवाकर काठ का कटेहरा लगवा दिया था।

जमालुद्दौला का नियम था कि हर महीने चाँद की रात को वह हुस्नआरा की कब्र पर चादर चढ़ाने और शमा जलाने के लिए जाया करते थे। पहले तो वह अकेले ही जाया करते थे, मगर जब से वहीदन उनके पास गुलफाम मंजिल में रहने लगी थी, वह भी उनके साथ जाया करती थी। ऐसे ही एक दिन जमालुद्दौला तथा बीबी वहीदन गाड़ी पर सवार हो कर गोलागंज के इमामबाड़े में

पहुँचे । इमामबाड़े में और भी लोग मौजूद थे । अपने-अपने प्रिय की कब्रों पर शमा जला रहे थे । जमालुद्दौला ने हुस्नआरा की कब्र पर चादर चढ़ाई, फूल बिखेरे और शमा जलाई । वहीदन गम्भीर मुख-मुद्रा लिए चुपचाप खड़ी देख रही थी । जब नवाब अपने काम से फारिक हो गये । वहीदन कब्र के निकट बैठ गई और सर झुका कर धीरे से बोली—'बेगम साहिब, आप खुशकिस्मत थीं । आप को मिट्टी नवाब के हाथों अजीज हो चुकी···लेकिन मेरी मिट्टी अभी नवाब के हाथों अजीज होने को बाकी है ।···मैं भी आप की बगल में सोना चाहती हूँ···आप और मैं दोनों एक ही राह के पथिक थे ।' और वहीदन कब्र से लिपट गई । आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी ।

पहले तो जमालुद्दौला ने वहीदन के इस वियोग-संयोग को साधारण सा ही समझा । लेकिन जब वहीदन को कब्र से लिपटे हुए काफी देर हो गई । उन्होंने उससे उठने-चलने को कहा । जब उसका भी कोई जवाब न मिला तो उन्होंने हाथों से पकड़ कर वहीदन को उठाना चाहा । लेकिन हाथ लगाते ही वह आश्चर्य में पड़ गये । वहीदन का शरीर बर्फ के समान ठण्डा था । उसके प्राण पखेरु उड़ गये थे । उनके मुँह से निकल पड़ा—'हाय, यह क्या हो गया !'

और भी लोग वहाँ आ गये । निश्चित हो गया कि वहीदन खुदा को प्यारी हो गई जमालुद्दौला खामोश थे आँखों के आँसू सूख गये । अन्त में वहीं हुस्नआरा की कब्र के बगल में वहीदन को दफना दिया गया ।

अब जमालुद्दौला की आँखों में अंधेरा ही था । उन्हें अपनी जिन्दगी बहुत बेशरम मालूम होती थी । एक-एक क्षण काटना कठिन था । कोई भी उनका साथी न था । वह थे और गुलफ़ाम मंजिल । अकेले गुमसुम दीवानखाने में बैठे रहते थे और यादें उन्हें झकझोरा करती थीं ।

तीसरा पहर चल रहा था । जमालुद्दौला आरामगाह से आकर दीवानखाने में बैठे थे । किसी के आने की आहट मालूम हुई । दरवाजे की तरफ निगाह उठ गई । मिरजा शैदा ने दीवानखाने में कदम रख कर तसलीम अर्ज किया ।

तस्लीम का जवाब देकर जमालुद्दौला ने कहा—'आइए मिरजा शैदा साहब, तशरीफ रखिए । एक अर्से के बाद आना हुआ है । कहिए क्या हाल-चाल है ? इस वक्त कहाँ से आ रहे हैं ।'

'चौक से आ रहा हूँ । बीबी वहीदन के यहाँ गया था । उनके मकान में ताला लटका हुआ था । ख्याल आया कि वह यहाँ होंगी । उन्हें आपकी वह तस्वीर लौटानी थी ।' और तस्वीर जमालुद्दौला के हाथ में देकर कहा 'इसे मैं किताब छपाने के लिए माँग कर ले गया था । क्या बीबी अन्दर किसी काम में मशगूल हैं ?'

'जी मिरजा साहब, अब बीबी वहीदन यहाँ कहाँ हैं ?' उन्होंने धीरे से कहा ।

'क्यों, मकान में भी नहीं, यहाँ भी नहीं । तब क्या कहीं बाहर चली गई हैं?'

'बीबी वहीदन हमसे रुठ कर दुनिया से ही चली गईं ।'

'एं, यह कब और किस तरह ?' मिरजा ने आश्चर्य से कहा ।

इसके बाद जरा देर तक खामोशी रही । फिर मिरजा ने कहा—'अच्छा नवाब साहब इजाजत दीजिए ? फिर हाजिर हूँगा ।'

'क्यों कुछ जरूरी काम है ?'

'जरूरी ही समझिए । यहाँ से सीधा छापाखाने जाऊँगा । आप की कहानी करीब-करीब छप चुकी है । सिर्फ आवरण छपना और जिल्दबन्दी होना बाकी है । उसी सिलसिले में रोजाना छापाखाना जाना पड़ता है । अब किताब को लेकर ही आप की खिदमत में हाजिर हूँगा ।' और मिरजा शैदा तस्लीम करके चले गये ।

जमालुद्दौला कुछ देर तक अपनी उस जवानी की तस्वीर को देखते रहे फिर पिछली यादों में खो गये ।

एक सुबह को सरफराज, राहत और सुलतान अली खाँ मिलने आए। दीवान-खाने में बैठक जमी । देर तक बीबी वहीदन की मृत्यु को लेकर चर्चाएँ चलती रहीं । मित्रगण, अपने अपने विचार प्रकट करते रहे । लेकिन नवाब जमालुद्दौला मौन ही रहे । केवल हाँ, हूँ से ही अपनी मौजूदगी का सबूत देते रहे । कुछ इधर-उधर की बातों के बाद सुलतान अली खाँ ने कहा—'यह जमाना बड़ा विचित्र सा नजर आ रहा है ।'

सरफराज ने पूछा —'क्यों ? कोई नई खबर है ?'

'नई क्या, बहुत वाहीयात खबर है ।' सुलतान ने कहा—'इस लखनऊ में पुरानी यादगारों के नाम से जो कुछ बाकी रह जाय वही गनीमत है ।'

'आखिर ?'

'आखिर क्या अर्ज करूँ । तोप दरवाजे का यह हिस्सा जहाँ इस वक्त हम आप बैठे हुए बातें कर रहे है । मैदान किया जाने वाला है । इधर की सारी हवेलियाँ और इमारतें गिराई जाने वाली हैं ?'

'ऐसा क्यों ? यह गजब क्यों होने वाला है ?'

'इसका जवाब तो हुकूमत ही दे सकती है ।' सुलतान ने कहा ।

'यहाँ मैदान बना देने से हुकूमत का क्या मतलब है ?'

'तरह-तरह की खबरें है । कोई कहता है यहाँ लम्बा-चौड़ा पार्क बनेगा । उसमें मलिका विक्टोरिया की मूर्ति खड़ी की जायगी । कोई कहता है अजायबघर बनेगा । सही तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता । हाँ, यह हकीकत है कि इस हिस्से में मैदान होने वाला है । लाला सीताराम वह जो इनजीनियरी महकमे के सरकारी ठेकेदार हैं उन्हें मैदान करने का ठेका दिया जा चुका है । उन्हीं की जबानी मैंने ये खबर सुनी है ।'

इस खबर को सुनकर जमालुद्दौला के चेहरे का रंग फीका पड़ रहा था । उदासी जोर पकड़ रही थी । फिर भी वह चुप बैठे हुए थे ।

राहत अली खाँ ने धीरे से कहा—'इसके मानी ये है कि यह गुलफ़ाम मंजिल भी यहाँ न रहेगी । इसका नाम-निशान भी मिट जायगा ! वाह री हुकूमत ।'

'और इधर की हवेलियों-मकानों में रहने वालों का क्या होगा ?' सरफराज ने सुलतान की तरफ देखकर कहा—'वह सब खाना-बदोश हो जायेंगे ।'

'इस बारे में मैं क्या अर्ज करूँ। शायद कुछ मुआवजा मिल जाय ।'

घड़ी ने गयारह बजा दिये । सब लोग जमालुद्दौला से सलाम कर के चले गये।

जमालुद्दौला दीवानखाने से उठकर आराम के कमरे में जाकर बिस्तर पर लेट गये । नौकरों ने दस्तरख्वान लगा रखा । बैठने के लिए अर्ज किया । लेकिन नवाब ने इनकार कर दिया । कह दिया, मेरी तबीयत ठीक नहीं है । तुम लोग जाकर खाना खाओ । मुझे चुपचाप पड़ा रहने दो । उन्होंने आँखें बन्द कर ली । विचारों ने आकर घेर लिया ।

उस दिन के पड़े नवाब जमालुद्दौला पलंग से न उठे । उनका हृदय टूट गया था । उनकी दुनिया अब पूरी तरह से उजड़ चुकी थी । नामलेवा एक गुलफ़ाम मंजिल खड़ी थी, उसके मिटने की सूचना भी मिल चुकी थी । अत: वह अपनी बेशरम जिन्दगी को कोसते-कोसते वास्तव में बीमार पड़ गये । बीमारी काली आँधी बन गई । घड़ी-घड़ी पर अपना भयानक रूप दिखाने लगी । किसी की दवा काम न आई ।

धीरे-धीरे संध्या निकट चली आ रही थी । सूर्य पश्चिम में डूबने के लिए जा रहा था । जमालुद्दौला का निर्जीव शरीर जनाजे पर रखा हुआ था । दोस्त अहबाब और पड़ोस के सैकड़ों लोग गुलफाम मंजिल में जमा थे । तभी मिरजा जफर हुसैन शैदा वहाँ आए । उनके हाथ में बहुत सुन्दर रंगीन आवरण वाली एक पुस्तक थी । आवरण पर गुलफाम मंजिल का चित्र अंकित था । उसके ऊपर बहुत सुन्दर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'गुलफ़ाम मंजिल' नीचे के किनारे पर छोटे अक्षरों से लिखा था—'मिरजा जफर हुसैन 'शैदा' ।

अन्दर कदम रखते ही मिरजा शैदा के चेहरे पर उदासी छा गई । क्षण भर खामोश खड़े नवाब जमालुद्दौला के जनाजे की तरफ हसरत भरी निगाह से देखते रहे । फिर अपने हाथ की उस 'गुलफाम मंजिल' नामक पुस्तक को धीरे से जनाजे पर रख कर सिर झुकाया और रुंधे हुए कंठ से बोले—'नवाब जमालुद्दौला साहब मैं बदकिस्मत और नाकाम रहा । आप की जिन्दगी में आपकी सुनाई हुई आपनी कहानी छपा कर आपके हाथों में न दे सका ।···फिर भी मुझे यकीन है कि आप की आत्मा मेरी इस भेंट को अवश्य स्वीकार करेगी ।···आज आप इस दुनिया से उठ गये । मुमकिन है कल यह 'गुलफाम मंजिल' भी न रहे···लेकिन आपकी ये कहानी जिसका नाम मैंने 'गुलाफाम मंजिल' रखा है हमेशा-हमेशा आपको जिन्दा बनाए रखेगी । इसके जिरिए आप का नाम और आप की याद हर एक के दिल में मौजूद रहेगी ।'

शाम का सूरज डूब गया था । अंधेरी चादर गुलफाम मंजिल को ढँकती जा रही थी । जैसे वह भी अब जिन्दगी से अंधेरे में खो जाने को तैयार थी ।